...लसी-परिशीलन

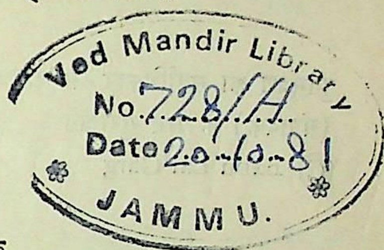
बाबूलाल गर्ग, एम० ए०



तुलसी-परिशीलन

[स्मृति-ग्रन्थ]

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में तुलसी-साहित्य में
जीवन-मूल्यों की एक सहकारी तलाश



सम्पादक

बाबूलाल गर्ग, शास्त्री

एम०, ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्याचार्य

प्रकाशक

चित्रकूटधाम नगरपालिका • करवी (बाँदा)

उत्तर प्रदेश

प्रकाशक
चित्रकूटधाम नगरपालिका
करवी (बाँदा), उत्तर प्रदेश

●

●

प्रकाशन वर्ष : १९७२
प्रथमावृत्ति : ११०० प्रतियाँ

●

मूल्य :
राज संस्करण : पन्द्रह रुपये
साधारण संस्करण : दस रुपये

●

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
इलाहाबाद (भारत)

तुलसी-परिशीलन [स्मृति ग्रन्थ]

कार्यसमिति

⊙

संरक्षक-मण्डल

डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप जी
सभापति : विधान परिषद, उ० प्र०

श्री जनार्दनदत्त शुक्ल, आई.सी.एस.
अध्यक्ष : राजस्व परिषद, उ० प्र०

श्री राधाकृष्ण गोस्वामी
राज्यमंत्री : उत्तर प्रदेश शासन

श्री श्रीमुरली श्याम मनोहर
जिलाधीश : बाँदा

श्री आर० सी० मिश्र
ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट, करवी

⊙

परामर्श-मण्डल

डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा, डी० फिल्०
प्रबन्ध सम्पादक : 'भारत' प्रयाग

डॉ० शम्भुनाथ सिंह, डी० लिट्०
रीडर : काशी विद्यापीठ

डॉ० रमानाथ त्रिपाठी, डी० लिट्०
प्राध्यापक : दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री
स० मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

श्रीमती इन्दुजा अवस्थी, एम० ए०
प्राध्यापिका : दिल्ली विश्वविद्यालय

⊙

व्यवस्थापक

श्री गोपाल कृष्ण करवरिया
अध्यक्ष : चित्रकूटधाम नगरपालिका, करवी

⊙

सम्पादक

श्री बाबूलाल गर्ग, एम० ए०, साहित्याचार्य
प्राध्यापक एवं पत्रकार
भारती भवन, करवी (चित्रकूटधाम), उत्तर प्रदेश

⊙

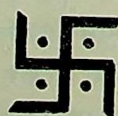
सम्पादन-सहयोगी

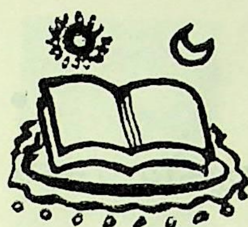
श्री गुरुचरणलाल, एडवोकेट
करवी (चित्रकूटधाम)

⊙

प्रकाशक : चित्रकूटधाम नगरपालिका · करवी

अनुक्रमणिका





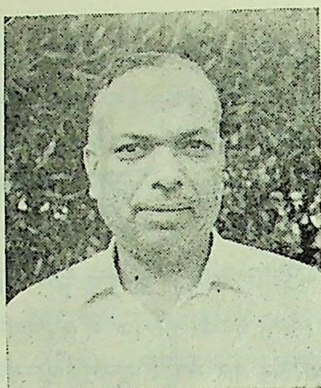
शुभाशंसा

'तुलसी-परिशीलन' (स्मृति-ग्रन्थ) के कुछ लेख मैंने उलट-पलट कर देखे। मेरी इच्छा हुई कि मैं संपूर्ण ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक अनुशीलन कर सकूँ। तुलसी भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि तथा भारतीय आस्था के प्रतीक होने के कारण हमारी जनता के हृदय सिंहासन पर एक-छत्र सम्राट की तरह आसीन हैं। पिछली अनेक शतियों से वे सुख-दुख, संकट-शान्ति के क्षणों में भारतीय जनों तथा बुद्धिजीवियों का पथ प्रदर्शन करते आए हैं। उनके महान् व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर इस संकलन में महत्वपूर्ण निबन्ध संग्रहीत हैं। उन पर और अनेक नवीन दृष्टियों से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। रामचरित मानस में जो शाश्वत तत्व संग्रहीत हैं, उन्हें युग के अनुरूप नये अनुसंधानों का परिधान पहनाना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। भारतीय संस्कृति के इस विराट दर्पण में इतिहास और अध्यातम दोनों का अप्रतिहत प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है।

मैं साहित्याचार्य श्री गर्ग जी को उनके इस सत्प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

सुमित्रानन्दन पन्त
(पद्मभूषण)

इलाहाबाद



संरक्षकीय वक्तव्य

संत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी काव्य-जगत में एक ऐसे कान्तिमान लोकदिशा-बोधी नक्षत्र हो गए हैं, जिनके अवदान के पुञ्जीभूत प्रकाश से भारत ही नहीं समूचा विश्व आलोक प्राप्त कर रहा है। उस आलोक की विविध रश्मियों को जन-जन तक पहुँचाना प्रत्येक सजग, सचेतन एवं बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति का सामाजिक दायित्व है। प्रसन्नता की बात है कि जनपद के सुपरिचित लेखक एवं पत्रकार श्री बाबूलाल गर्ग, जो बाँदा जनपदीय मानस चतुःशती समिति के मंत्री भी हैं, कवि की स्मृति में चित्रकूट-धाम नगरपालिका, करवी के सहयोग से मानस चतुःशती के इस अवसर पर 'तुलसी-परिशीलन' नामक स्मृति-ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। यह कार्य तुलसी की ही जन्मभूमि वाले जनपद की प्रातिभ चेतना द्वारा सम्पन्न हुआ, यह उचित ही था। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ, जिसे चोटी के साहित्य-कारों, कवियों तथा समीक्षकों का साहित्यिक सहयोग प्राप्त हुआ है, आज की दिग्भ्रान्त प्रज्ञा को मानवता की नूतन सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना के द्वार तक ले जाने की दिशा में समर्थ भूमिका अदा करेगा।

श्रीमुरली श्याम मनोहर
जिलाधीश एवं अध्यक्ष

श्री रामचरित मानस चतुःशती समिति
जनपद-बाँदा



प्रकाशक की ओर से

श्री रामचरित मानस चतुःशती के अवसर पर मानस के प्रणेता प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास जी की पुण्य-स्मृति में हम 'तुलसी-परिशीलन' स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर उसे मानस-प्रेमी पाठकों के सम्मुख सहर्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। ग्रन्थ में समाविष्ट सामग्री कहाँ तक पाठकों का परितोष कर सकेगी, इसका निर्णय तो स्वयं पाठक ही करेंगे, पर हमें इस बात पर बड़ा सन्तोष है कि इसे देश-विदेश के विशिष्टतम विद्वानों का उदार सहयोग प्राप्त हुआ है। इसके लिए हम उन सभी साहित्यकारों के प्रति कृतज्ञ भाव से नतमस्तक हैं, साथ ही ग्रन्थ के सम्पादक श्री बाबूलाल जी गर्ग को भी हम धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते, जिनकी साहित्यिक अभिरुचि, संग्राहक कौशल तथा अथक प्रयास से ही ऐसी दुर्लभ सामग्री उपलब्ध हो सकी है।

ग्रन्थ के अन्त में चित्रकूट-परिशिष्ट भी जोड़ा गया है ताकि तुलसी के साथ ही कवि की साधना एवं प्रेरणा भूमि चित्रकूट का भी किञ्चित् परिचय सुदूरवासी पाठक महानुभावों को प्राप्त हो सके। 'मानस', 'मानस प्रणेता' तथा मानस की कथावस्तु 'रामकथा' के प्रति जनचेतना को उत्प्रेरित करने की दिशा में इसका थोड़ा भी योगदान यदि हो सका तो हम ग्रन्थ के प्रकाशन को सार्थक समझेंगे।

गोपाल कृष्ण करवरिया
अध्यक्ष

चित्रकूटधाम नगरपालिका
करवी (बाँदा)

प्राक्कथन

मानवीय चेतना जैसी अशान्त, भ्रान्त और संकटाक्रान्त आज दिखाई पड़ रही है, वैसी सृष्टि-क्रम के इतिहास में शायद कभी नहीं रही। क्यों? आज मन और मस्तिष्क का रिश्ता बिगड़ गया है। दोनों के बीच सामञ्जस्य नहीं रहा। मस्तिष्क जो कुछ सोचता है, मन उसे पचा नहीं पाता। मस्तिष्क की गतिशीलता तो इतनी अधिक बढ़ गयी है कि वह अद्यावधि दृष्ट जगत से परे चन्द्रलोक तक पहुँच गया है, पर मन बौद्धिक विकास के इस युग में भी, उत्तरोत्तर और जड़ एवं गतिहीन होता चला जा रहा है। फलस्वरूप सिमट कर वह अत्यन्त बौना हो गया है। ऐसी दशा में, मस्तिष्क धरती और आकाश की अनन्त दूरी को खतम करने में भले ही सफल हो जाय, पर उसके और मन के बीच जो दूरी बढ़ती जा रही है, उस परिवेश में वह मानवीय चेतना को ऐकान्तिक और आत्यन्तिक सुख एवं शान्ति प्रदान करने में कथमपि समर्थ नहीं हो सकता। मस्तिष्क बुद्धि का आधार है और मन भावों का। सुख-दुख, राग-द्वेषादि की उपलब्धि का साधन मन ही है। इसीलिए सुख, दुख, हर्ष, दया, करुणा, क्रोध, मोह आदि को मन की वृत्तियाँ कहा जाता है। हमारी ये मनोवृत्तियाँ जब तक रुग्ण हैं, कुण्ठित एवं नीरस हैं और उनका परिष्कार-विकास नहीं होता; बुद्धि चाहे जितनी उन्नतगामी हो, मानव का न तो अभ्युदय हो सकता है और न उसे किसी प्रकार की निःश्रेयस सिद्धि ही मिल सकती है। मानवीय चेतना 'बुद्धि' (मस्तिष्क) के क्षेत्र में जितनी आगे बढ़ी है, 'भाव' (मन) के क्षेत्र में वह उतनी ही पिछड़ी है। बौद्धिक विकास से यथेष्ट भौतिक उपलब्धियाँ हो सकती हैं। पर आध्यात्मिक शान्ति एवं सुख तो मन की उन्नत दशा पर ही सम्भव है। मन का विकास न होने के कारण ही जगत में सब से बड़ा भौतिक सम्पत्ति का स्वामी अमेरिका वास्तविक शान्ति एवं सुख की खोज में 'हिप्पी' बना आज 'भारत' की गलियों में भटक रहा है। इसलिए मानसिक ह्रास के इन क्षणों में आवश्यकता है

आज मन के स्तर को ऊपर उठाने की और सत्य, न्याय, करुणा, परोपकार आदि उदात्त मनोवृत्तियों का उद्दीपन, संयोजन एवं परिष्करण करने की। और इसके लिए 'तुलसी-साहित्य' एक सघन अवलम्बन है।

साहित्य में ज्ञान सम्पादन और मानसावगाहन की अद्‌भुत शक्ति अन्तर्निहित होती है। पर उसका पहला काम मानसावगाहन यानी मन का परिष्कार कर उसे निर्मल बना देना है। वह सर्वप्रथम मनोवेगों-अनुभूतियों को उत्तेजित कर मानवीय चेतना को परिस्थितियों से ऊपर उठा देता है और ऐसी 'भाव-भूमा' पर उसे लाकर खड़ा कर देता है, जहाँ वह 'स्व-पर' की संकीर्ण परिधि से बाहर आ जाती है और 'सद्यः परनिर्वृति' (परम आनन्द) की दशा में लीन हो जाती है। और तब उसे 'ज्ञान' की जो उपलब्धि होती है, उसका मन की उदात्तता, निर्मलता तथा परिष्कृति से पूर्ण सामञ्जस्य बना रहता है। इस प्रकार साहित्य 'मस्तिष्क और मन' का तादात्म्य कभी भी मिटने नहीं देता। सभी उत्कृष्ट काव्यों की यही प्रमुख भूमिका है, पर 'तुलसी-काव्य' की विशेषता ही कुछ और है। जब हम 'तुलसी-साहित्य' की चर्चा करते हैं तो हमें उस समय तुलसी-काव्य की कथावस्तु 'रामकथा' के विशाल साहित्य का स्मरण हो आता है और रामकथा की व्यापकता, प्रभविष्णुता एवं ऐक्य-शक्ति तथा लोकहित के साँचे में ढाल कर तुलसी द्वारा उसके प्रस्तुतीकरण का समन्वित रूप एक साथ हमारे सामने साकार हो उठता है।

तुलसी ने जिस 'रामकथा' को आधार बना कर काव्य रचना की, उस रामकथा ने भारत ही नहीं, भारत से बाहर भी कई देशों की यात्रा की और वहाँ के जन जीवन में वह इतनी घुल-मिल गई है कि वह उन देशों की संस्कृति की प्रमुख अंग बन गई है। वैसे तो रामकथा किसी-न-किसी रूप में समूचे विश्व में पाई जाती है, पर एशिया के कई देशों में इसका व्यापक प्रचलन है। रामकथा से प्रभावित संस्कृति वाले देशों में हिन्देशिया (सुवर्ण द्वीप), बरमा (ब्रह्मदेश), थाई देश, मलेशिया (मलय देश), कम्बोडिया (कम्बुज देश), लाओस (लव देश) तथा श्रीलंका प्रमुख हैं। हिन्देशिया में 'रामायण काकाविन' रामकथा का प्रसिद्ध काव्य है। बरमा में 'रामयागन'

नामक काव्य की रचना १८०० ई० में की गई थी। थाई देश में 'रामक्येन' नामक रामकाव्य उपलब्ध है, जो वाल्मीकि रामायण से रूपान्तरित हुआ था। मलेशिया में १५वीं शताब्दी में 'हिकायत सेरी राम' तथा 'हिकायत महाराज रावण' काव्यों की रचना की गई थी। कम्बोडिया में रूमेर भाषा में 'रामकेर्ति' नामक ८० सर्गों का महाकाव्य उपलब्ध है। आंकोर के देवालयों में रामकथा का तक्षण भी किया गया था। लाओस में 'फ्रा लाक् फ्रालाम' तथा 'फोम्मा चाक' नाम से रामायण के दो रूप मिलते हैं। श्रीलंका में 'जानकी हरणम्' नामक संस्कृत काव्य की रचना छठी शताब्दी में हुई थी और आगे चल कर १२वीं शताब्दी में जिसका रूपान्तरण सिंहली भाषा में भी किया गया। रामकथा की व्यापकता का यह स्वरूप दक्षिण-पूर्वी एशिया का है। इसके अतिरिक्त चीन, तिब्बत, पूर्वी तुर्किस्तान का खोतानी भूभाग, जापान, कोरिया, रूस आदि भारत के उत्तर-पश्चिमी देशों में भी रामकथा किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलती है। पर इन देशों में उसका इतना प्रचलन नहीं है, जितना दक्षिण-पूर्वी एशिया में है। एशिया के इन देशों में रामकथा की व्यापकता को देख कर ही कुछ विचारकों ने यह भी कल्पना की है कि रामायण-वृत्त वाले इन देशों का एक छोटा 'कॉमन-वेल्थ' बन जाना चाहिए। ऐसा होने पर समान संस्कृति वाले इन देशों में अधिकाधिक पारस्परिक सौहार्द एवं मधुरतम सम्बन्धों का नवीन सृजन किया जा सकता है। पर यह सब तभी सम्भव है, जब हम पहले अपने देश के प्रमुख रामकथा-गायक कवि सम्राट संत तुलसी की काव्य चेतना से गहन साक्षात्कार कर के आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में उसके जाँचने-परखने तथा उसके सर्वग्राही स्वरूप को प्रतिष्ठित कर जन-चेतना के सम्मुख प्रस्तुत करने का सामूहिक प्रयास करेंगे।

बाहरी देशों में रामायण (रामकथा) को एक सांस्कृतिक-शक्ति के रूप में मान्यता हजारों वर्ष पूर्व मिल चुकी थी, पर उसके मूल देश भारत में प्रगतिशील चिन्तकों के एक बहुत बड़े भाग द्वारा उसे सामान्यतया अब तक एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ ही समझा जाता रहा। किन्तु इधर रामायण—विशेषकर तुलसीकृत रामायण—की अन्तः शक्ति ने संस्कृति प्रेमी चिन्तकों एवं मुक्त विचारकों को भी अभिभूत किया,

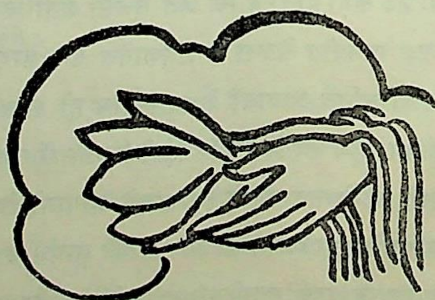
जिन्होंने इस ग्रन्थ को देश की भावात्मक एकता तथा एशिया के रामायण-देशों के साथ सांस्कृतिक-सम्बद्धता के लिए एक प्रबल माध्यम के रूप में निरूपित किया। वस्तुतस्तु, आज की इस विषम परिस्थिति में देश को एक ऐसे कवि एवं काव्यांश की नितान्त अपेक्षा थी, जो राष्ट्र के रुग्ण एवं निर्जीव स्नायुओं में नया स्पन्दन भर सके, उसकी स्खलित वाणी को ऊर्जस्वित स्वर दे सके और समसामयिक-बोध एवं आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में जड़ीभूत समाज को नूतन शक्ति तथा नयी दिशा देकर उसे जीवन्त और गतिशील बना सके। इस सन्दर्भ में खरे उतरने वाले तुलसी ही एक मात्र ऐसे कवि तथा उनका रामचरित मानस ही एक ऐसा काव्य ग्रन्थ है, जिसमें हमारी अशेष अनुभूतियाँ, वैचारिक उपलब्धियाँ तथा अधुनातन समस्याओं की निराकृतियाँ पुञ्जीभूत हुई हैं।

सन्त कवि तुलसी ने न केवल अपने युग के परिवेश का प्रभावी स्पर्श किया, वरन्, ४०० वर्षों के इस लम्बे कालखण्ड के बाद आज भी वह उसी तरह विश्व के एक बहुत बड़े भाग को प्रभावित किए हुए हैं। इसीलिए तुलसी के बहुमान्य ग्रन्थ 'रामचरित मानस' की 'चतुः शताब्दी' मना कर उसे समादृत करने का उपक्रम सारे देश में बड़ी ही श्रद्धा, निष्ठा तथा आदर भावना के साथ किया जा रहा है। किसी देश के इतिहास में शायद यह प्रथम अवसर होगा, जब इस प्रकार किसी 'ग्रन्थ' विशेष को सम्मानित किया जा रहा हो। किन्तु, जब किसी व्यक्ति या वस्तु की पूजा और समर्चा इस प्रकार की जा रही हो, तो पूजार्ह व्यक्ति या वस्तु को मूल्यांकित करने की प्रक्रिया भी स्वतः स्फूर्त हो उठती है। अतः तुलसी के मूल्यांकन के दौरान यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है कि जब तुलसी शताब्दियाँ पार कर चुका है, और तब से अब तक मानवीय चेतना ने अनेकानेक रूप धारण कर लिया है, तो मानवीय चेतना के परिवर्तित आयामों के साथ-साथ हो सकता है कि तुलसी की चेतना ने भी अनेक रूप ग्रहण कर लिए हों। ऐसी स्थिति में समाज की गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य में तुलसी की चिन्तन पद्धति का, उसके आयामों के विस्तार एवं सीमा-बद्धता का, उसके सामाजिक दाय भाग का और उसके सार्वभौम एवं शाश्वत् अवदान का युगानुकूल व्याख्यान एवं पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है। 'तुलसी-परिशीलन'

स्मृति-ग्रन्थ इसी अपेक्षा का एक पूरक विधान है। ग्रन्थ अपने अभिलषित उद्देश्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सका है, इसका निर्णय सुधी पाठकों पर छोड़ मैं ग्रन्थ के निर्माण में उदार साहित्यिक योगदान करने वाले सभी सम्मानित लेखकों, कवियों तथा साहित्यकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन के साथ उन्हें हृदय से साधुवाद देता हूँ। अन्त में मैं ग्रन्थ की कार्य-समिति के संरक्षकों, परामर्शदाताओं और चित्रकूटधाम नगरपालिका, करवी के आर्थिक एवं सम्मेलन मुद्रणालय के मुद्रकीय सहयोग के लिए आभार व्यक्त किए बिना नहीं रह सकता, जिनकी अनुकम्पा से ग्रन्थ की संरचना सम्पन्न हो सकी है।

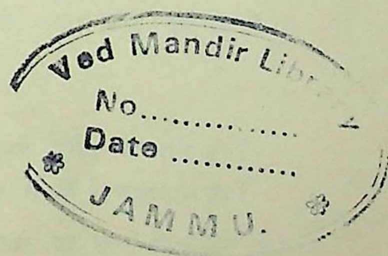
—बाबूलाल गर्ग
संपादक

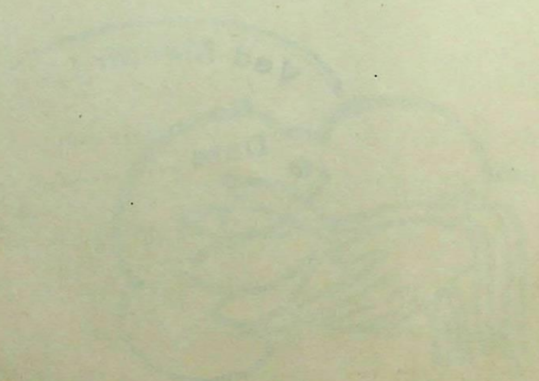
भारती भवन
करवी (चित्रकूटधाम), बाँदा
दीपमालिका : संवत् २०२९



तुलसी-परिशीलन

[स्मृति-ग्रन्थ]







किन्तु कला के आँगन में तुलसी का तो उपमान नहीं

⊙

प्रा० श्री चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित 'ललित'

प्रवक्ता : हिन्दी-विभाग, पं० जवाहरलाल नेहरू पोस्ट डिग्री कालेज, बाँदा

कविता कला अनाम हो,
तुम तुलसी या राम हो,
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो!

तुम वह जन्म दिवस हो जिस पर बजी नहीं शहनाइयाँ।
तुम वह आँगन जिस पर चन्दा की न पड़ी परछाइयाँ।।
एक अभावों की करुणा हो, पीड़ा हो असमर्थों की—
तुम मरुथल के शैशव जिसको छू न सकी अमराइयाँ।

तुम परित्यक्त कबीर हो,
आँसू की जंजीर हो,
चट्टानों की धूप-शीत में उगे बीज उद्दाम हो!
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो!

युवा स्वप्न घिर आये दिन बीते बिन गाये लोरी के।
माखन रोटी बिसरीं माये बन्धन रेशम डोरी के।।
रत्ना ने जयमाल पिन्हाई तुलसी ने सिरमौर धरा—
प्राण जुड़ाने लगे कि जैसे चन्दा और चकोरी के।।

अधर रूप को पीते थे;
भ्रमर गंध को जीते थे,
चातक की तुम तृषा समर्पित प्रणय, प्रीति के नाम हो!
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो!

तुमने सब कुछ सौंप दिया था रत्ना के संसार में।
और एक पल का वियोग खलता था तुमको प्यार में।
सावन की रातें बरसातें रोक न पायीं ज्वारों को—
पागल प्राण-प्रिया के पीछे जा पहुँचे ससुरार में।।

रत्ना कुछ शरमायी होगी,
लाज नयन में आयी होगी,
कुल के बंधन कहते होंगे तुम न अरी बदनाम हो !
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो !

प्रेयसि ने देखा प्रियतम की स्वप्न-मोह की वासना।
बोली प्रिया शरम की मारी बुझे रूप से प्यास ना॥
प्यास तृषा की चरीं बनकर तृप्ति नहीं पाने वाली—
मर जाता है फूल किन्तु मिट सकता है मधुमास ना॥

अन्तिम कोई ठौर है,
जीवन तो कुछ और है,
एक सबेरा बनो कि जिसमें कभी न उतरी शाम हो !
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो !

आँधी आयी एक ज्ञान की मोह पात भ्रम छूट गये।
हाथों में जयमाल सजी थी किन्तु फूल सब टूट गये॥
बाँहों में रत्ना के रत्ना को बाँहों में यों बाँधा—
जिस बंधन में प्रणय प्यार अरमान सभी कुछ लूट गये॥

भूले पिछले गाँवों को,
ममता रोके पाँवों को,
रूप नहीं आचरण देश के बुद्धदेव निष्काम हो !
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो !

जब कुबेर के घर में कैदी कविता भरती पानी थी।
जब कविता सिंहासन के आसन पर बैठी रानी थी॥
रूपसियों के लिए रक्त की तलवारों में बिजली थी—
कला और कविता के घर में तुलसी की अगवानी थी॥

मजहब के बँटवारों में,
कोलाहल के नारों में,
जन जन के मानस, मानस के तुम ही ललित ललाम हो !
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो !

भावों के तुम लोक लोक की संवेदन की आशा हो।
शिल्पकार तुम-सा न मिला जिसमें जीवन की भाषा हो।।
रस की गागर तेरे पनघट में ही अमृत पाती है—
लौट न पाया जो भी आया तट पर तेरे प्यासा हो।।

कविता नहीं ऋचाएँ हैं,
मंत्रों की मालाएँ हैं,
शिखरों की कविता के समरस प्रगतिशील परिणाम हो!
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो!

सूर सूर है जिसके सागर का कोई जलयान नहीं है।
संत महाकवि चन्ददास के चन्दामृत-सा पान नहीं है।।
मीराँ की पीड़ा, कबीर की वाणी में संचेतना है—
किन्तु कला के आँगन में तुलसी का तो उपमान नहीं है।।

नाभा के सिरमौर हो,
चन्ददास के ठौर है,
आदि काव्य के आदि अन्त तक श्रद्धा सहित प्रणाम हो!
या कि किसी परिचित रत्ना के सपनों के घनश्याम हो!

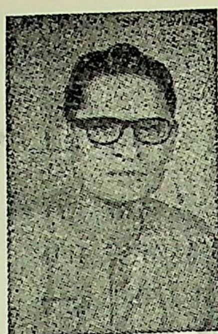
●

तुलसी : एक रक्षक कवि



तुलसी की कविता से निकली हैं अनगिनत रोज की उक्तियाँ और कहावतें; जो आदमी को टिकाती हैं, सहारा देती हैं और सीधे रखती हैं।...तुलसी के बारे में मैं अपनी निजी राय बता दूँ, जिसको मानना जरूरी नहीं है। तुलसी एक रक्षक कवि थे। जब चारों तरफ से अझेल हमले हों, तो बचाना, थाड़ना, टेक देना शायद ही तुलसी से बढ़ कर कोई कर सकता है।

—डॉ० राममनोहर लोहिया



आधुनिक सन्दर्भ में तुलसी

⊙

प्रो. श्री विष्णुकान्त शास्त्री एम.ए., एल-एल.बी.
प्राध्यापक : कलकत्ता विश्वविद्यालय

[यह सच है कि इन चार सौ वर्षों में हमारे जातीय मानस की जटिलता और बढ़ी है, किन्तु हिन्दी में अब भी 'रामचरित मानस' ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है; जिसके द्वारा जातीय-मानस की मौलिक संरचना को समझा जा सकता है। अतः तुलसीदास आज भी हम लोगों के लिए अपरिहार्य हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापक एवं भारतीय-मनीषा के प्रगतिशील व्याख्याकार प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री का आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के अवदान का एक अनुभूति-प्रवण मूल्यांकन—सम्पादक]

आज भी भारतीय-समाज मुख्यतः हिन्दीभाषी समाज पर तुलसीदास का व्यापक और गहरा प्रभाव है, यह उनके प्रबल समर्थन और किसी-किसी क्षेत्र में उनके प्रचण्ड विरोध द्वारा प्रत्यक्ष है। चार सौ वर्षों के बाद भी तुलसीदास की जीवन्तता का कुछ अनुमान इन तथ्यों से लगाया जा सकता है कि उनका रामचरित मानस आज भी भारत में सब से अधिक छपने, बिकने एवं पढ़ा जाने वाला ग्रन्थ है। तुलसी-जयन्ती हिन्दी-जगत का सब से बड़ा वार्षिक त्यौहार है, तुलसी और उनके साहित्य पर ही हिन्दी में सर्वाधिक शोध-ग्रन्थ, आलोचना-ग्रन्थ एवं टीका-ग्रन्थ लिखे गए हैं; हिन्दी के बाहर भी सर्वाधिक चर्चित, अनूदित एवं पठित हिन्दी कवि तुलसीदास ही हैं। तुलसी साहित्य—विषशेतः मानस एवं विनय-पत्रिका—भक्ति-मार्ग के पथिकों का बहुत बड़ा सम्बल है और तुलसी द्वारा निरूपित साहित्यिक, सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्श आज भी अधिकांश जनता द्वारा सम्माननीय हैं। उसी तरह यह भी ठीक है कि सामाजिक एवं वैचारिक क्रान्ति के समर्थकों की सबसे अधिक टकराहट भी तुलसीदास से ही हुई है और कुछ ने उनका उग्र विरोध भी किया है। पक्ष-विपक्ष के भावावेग से ऊपर उठ कर आधुनिक संदर्भ में तुलसी की प्रासंगिकता का विचार करना

तुलसी के प्रति ही नहीं, अपने युग के प्रति भी सर्जनात्मक निष्ठा का प्रमाण देना है।

तुलसीदास में ऐसा बहुत कुछ है, जो आज के और आनेवाले जमाने के लिए भी प्रेरणाप्रद है और रहेगा; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी समस्त मान्यतायें आज ज्यों-की-त्यों अपनायी जा सकती हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि तुलसीदास कृषि अर्थ-व्यवस्था पर आधारित सामान्तशाही मुगल-युग में उत्पन्न हुए थे। स्वभावतः उनकी बहुत-सी स्थापनाएँ आधुनिक औद्योगिक, पूँजीवादी तथा राज्य-नियंत्रित वर्गवादी अर्थ-व्यवस्थाओं के संघात के गति-चंचल युग के अनुकूल नहीं हो सकतीं। आखिर तब से आज तक के मानव अनुभवों और उपलब्धियों ने हमारी सामाजिक-राजनीतिक आशा, आकांक्षा और न्याय चेतना को बहुत-कुछ बदल भी तो दिया है। पर यह भी सच है कि बाहरी हजार परिवर्तनों के बावजूद मूलभूत मानवीय प्रकृति भीतर से करीब-करीब अपरिवर्तित ही है। इसलिए आज भी देश-विदेश के पुराने कवियों की वाणी हमारे मर्म को स्पर्श करती है। किन्तु हमारे लिए तुलसीदास केवल मानवीय स्तर पर ही प्रासंगिक हैं, ऐसी बात नहीं है। हमारा जातीय-मानस जिन तत्वों से गठित हुआ है, उनके वे अपूर्व ज्ञाता थे। उसके विविध स्तरों और कहीं-कहीं परस्पर विरोधी जानेवाले भावों को उन्होंने भलीभाँति समझ कर उन सब का अपूर्व समाहार 'रामचरित मानस' में किया है, इसीलिए वह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय और सामान्य हो सका है। यह सच है कि इन चार सौ वर्षों में हमारे जातीय-मानस की जटिलता और बढ़ी है और इसलिए केवल रामचरित मानस ही उसकी संतृप्ति के लिए काफी नहीं है। किन्तु हिन्दी में अब भी वही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसके द्वारा जातीय-मानस की मौलिक संरचना को समझा जा सकता है और उसके बहुत बड़े अंश को संतृप्त किया जा सकता है। अतः तुलसीदास आज भी हम लोगों के लिए अपरिहार्य हैं।

एक उदाहरण के द्वारा इस बात को स्पष्ट करने की चेष्टा की जाय। हमारे देश की अधिकांश जनता आस्तिक है, किन्तु आस्तिकता का स्वरूप एक ही नहीं है। बुद्धि-प्रधान ज्ञानियों, भाव-प्रधान भक्तों और कर्मठ समाज-सेवकों आदि की आस्तिक भावना को एक ही आलम्बन के द्वारा तुष्ट करना कितना कठिन है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है; किन्तु तुलसीदास ने यही किया है। धनुष-यज्ञ के अवसर पर उन्होंने लिखा है : 'जिन्हकी रही भावना

जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।' यह केवल एक स्थान पर कही गयी चमत्कार विधायक उक्तिमात्र नहीं है। वास्तव में तुलसीदास ने 'श्रीराम' को अपने पूरे साहित्य में उसी प्रकार अंकित किया है। वे ज्ञानियों के लिए निर्गुण निराकार हैं, तो उपासकों के लिए सगुण साकार। लीलारसिक भक्तों के लिए कृपासिन्धु भगवान् हैं, तो समाज-व्यवस्थापकों के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम। वे पौराणिक अवतार भी हैं, ऐतिहासिक महापुरुष भी और सच्चिदानन्द के विशुद्ध प्रतीक भी। जातीय-मानस के विविध स्तरों की माँगों का एक ही साथ समाधान करने में समर्थ होने के कारण ही उनकी राम-कथा 'बुध विश्राम सकल जन रंजिनि' बन सकी है। क्या यह उदार लोक-संग्रही दृष्टि आज भी हमारे इस विशाल देश के लोकनायकों के लिए अनुकरणीय नहीं है?

तुलसीदास ने अपना सम्बन्ध अपने प्रभु से सेवक-सेव्य भाव से जोड़ा था। कहीं किसी को यह भ्रान्ति न हो जाए कि प्रभु की सेवा अवतार-काल में या मन्दिरों में ही हो सकती है, अतः उन्होंने श्रीराम के मुख से अनन्य सेवक की व्याख्या इस प्रकार करवाई है :

सो अनन्य जा के अस मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त॥

चराचर जगत को प्रभु का व्यक्त रूप समझ कर उसकी सेवा करने का अर्थ ही है समष्टि हित के लिए व्यक्ति स्वार्थ का विलय। यह समष्टि हित कैसे सावित होगा और व्यक्ति को उसके लिए क्या करना होगा, इसका संकेत भी तुलसीदास ने बहुत ही स्पष्ट रूप से किया है। श्रीराम के अवतार के अनेक हेतुओं में 'सज्जनों की पीड़ा हरना तथा असुरों का संहार करना' भी है। 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह' प्रभु ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं पृथ्वी को निशाचर-हीन कर दूँगा। क्या ये निशाचर 'कोई मुखहीन, बिपुल मुख काहू, बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू' जैसे किंभूत किमाकार काल्पनिक जीव ही हैं? नहीं, तुलसी ने निशाचर की व्याख्या करते हुए लिखा है :

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहिं कवन मिति॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा, जे लंपट पर धन, परदारा।
मानहिं मातु पिता नहीं देवा, साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी, ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।

क्या ऐसे निशाचर आज भी नहीं हैं? और फिर तुलसीदास की कल्पना केवल विध्वंसक ही नहीं थी। दुष्टों के दमन पर ही वे नहीं रुकते, रामराज्य की स्थापना की विधायक कल्पना भी वे प्रस्तुत करते हैं, जिसका आदर्श था :

नहिं दरिद्र कोई दुखी न दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी, नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।

क्या हम ऐसा 'विषमतारहित' समाज बना सके हैं? यदि नहीं तो राम का काम अभी शेष है।

तुलसीदास की बड़ी अद्‌भुत विशेषता यह है कि उन्होंने अन्य मध्यकालीन सन्तों और भक्तों की तरह राम का नाम लेने पर ही जोर नहीं दिया है, राम का काम करने पर भी समान जोर दिया है। 'राम काज लगि तव अवतारा', 'राम काजु कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम', 'राम काजु सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान', 'राम काज कारन तनु त्यागी', 'हरि पुर गयउ परम बड़ भागी' आदि-आदि वचनों से सिद्ध है कि तुलसी की दृष्टि में मानव का जन्म राम के कार्य के लिए होता है, उसकी सिद्धि रामकार्य की सम्पन्नता में है और उसके लिए शरीर त्याग तक कर देना परम सौभाग्य समझना चाहिए। राम के भक्तों के मन में यह शंका जाग सकती है कि हम तो दुर्बल हैं, साधनहीन हैं, हम कैसे राम का काम कर सकते हैं, कैसे प्रबल प्रतापी रावणत्व से मोर्चा ले सकते हैं; किन्तु तुलसी ने बताया है कि 'साखामृग के बक्षि मनुसाई, साखाते साखा पर जाई' अर्थात् जिन बानरों की बहुत बड़ी क्षमता यही थी कि वे एक डाल से छलांग मार कर दूसरी डाल पर चले जायें, वे ही संगठित होकर राम की शक्ति से शक्तिमान् होकर लंका को जीत सके थे। भले ही रावण रथी हो और राम रथहीन, किन्तु जय तो धर्म के रथ के कारण होती है फिर निराशा क्यों? निशाचर-रहित रामराज्य की स्थापना ही वह रामकाज है, जिसके लिए दृढ़ विश्वास के साथ रामभक्त को अपने को होम देना चाहिए। क्या यह सार्वकालिक प्रेरणा नहीं है?

फिर तुलसी ने यह भी बताया है कि राम-रावण का युद्ध केवल सामाजिक स्तर पर बाहर ही नहीं चल रहा है। प्रत्येक व्यक्ति के—राम के भक्त के भी—भीतर राम-रावण युद्ध चल रहा है। हम जब अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह से ग्रस्त हो जाते हैं, तब हमारे भीतर का रावणत्व हम पर हावी होने लगता है। इस युद्ध में सतत जागरूक रहकर श्रीराम की कृपा के द्वारा मन को वशी-

भूत करने की साधना करने का पथ तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' के माध्यम से हमें दिखाया है और यह बताया है कि पतन के गहरे-से-गहरे गर्त में गिर पड़ने पर भी उद्धार संभव है। निश्छल शरणागति की प्रेरणा देते हुए आश्वासन की मंगलमयी वाणी में उन्होंने कहा है :

तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ राम पद कमल माथ।
जनि डरपहिं तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥

आत्म-ग्लानि से मुक्त कर आत्मशोधन के पथ पर व्यक्ति को अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाली यह उक्ति कभी पुरानी नहीं पड़ सकती।

इस तरह हम देखते हैं कि अपने आरंभिक जीवन में समाज से लांछना, तिरस्कार और पग-पग पर विरोध पाने पर भी, उस कटुता के विष को सहज भाव से पीकर अपनी अमृतमयी साधना के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति का पुनर्नवीकरण करनेवाले तुलसीदास अपने मूलभूत रूप में आज भी हमारे प्रेरक हैं और निश्चय ही भविष्य में भी रहेंगे।

●

'मानस' का धर्म



गोस्वामी तुलसीदास की रामायण राजमहल से लेकर झोपड़ी तक प्रत्येक मनुष्य के हाथों में देखी जाती है, हिन्दू-जाति के प्रत्येक वर्ण द्वारा समान रूप से पढ़ी और सुनी जाती है। वह हिन्दू जनता के जीवन, भाषा अथवा चरित्र में प्रायः तीन-चार सौ वर्ष से ओत-प्रोत है और केवल अपने कवितागत सौन्दर्य के लिए ही आदर तथा प्रेम नहीं प्राप्त करती है, यह उनसे पवित्र धर्म-पुस्तक की भाँति सम्मानित होती है। जिस धर्म का, उसने प्रचार किया है, वह सादा और उच्च है एवं ईश्वर के नाम के पूर्ण विश्वास पर निर्भर है।

—जार्ज ग्रियर्सन



मेरे अपने तुलसी

⊙

रेवरेण्ड फादर डॉ॰ कामिल बुल्के एम.ए., डी॰ फिल्
अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, संत जेवियर कालेज, राँची

[तुलसी इतने महान हैं कि वह काल, देश और धर्म-विशेष की सीमायें पार कर मानव मात्र को मुग्ध करने में समर्थ हैं। क्यों और कैसे? साक्ष्य में प्रस्तुत हैं, रामकथा के अनन्य अध्येता, आध्यात्मिक चिन्तक एवं साधनाशील मनीषी विद्वान डॉ० कामिल बुल्के की गोस्वामी तुलसीदास के प्रति आस्था भरी भावाभिव्यक्ति—सम्पादक]

कविकुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास से मेरा प्रथम परिचय किस प्रकार हुआ था, यह मुझे भलीभाँति याद है। आज से लगभग छत्तीस वर्ष पहले मैं अपनी जन्म-भूमि बेलजियम में विश्व-साहित्य-विषयक एक जर्मन ग्रन्थ के पन्ने उलट रहा था कि मेरी आँखें रामचरित मानस की पंक्तियाँ पढ़ने लगीं :

धन्य जनम जगतीतल तासू।
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।।
चारि पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु मातु प्रानसम जाके।।

उस समय तो नागरी लिपि का काला अक्षर भैंस बराबर मेरे लिए लागू था और मैं अवधी भाषा का एक शब्द भी नहीं समझता था; किन्तु उस ग्रन्थ में सभी उद्धरणों का जर्मन अनुवाद दिया हुआ था। मैंने कई बार यह चौपाई पढ़ ली। मेरी हृत्तन्त्री के तार झंकृत हो उठे और मुझे मानो एक मधुर संगीत सुनाई देने लगा। क्या मुझे उस समय अदृष्ट का संकेत मिल रहा था कि मैं उस कवि के देश में जाकर बस जाऊँगा, उसकी रचना से मोहित होकर उसके साहित्य का विशेष अध्ययन करूँगा, उसी काव्य के कथानक पर अनुसंधान करूँगा और बाद में उस कवि की जयन्ती के अवसर पर उनका गुणगान करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो सकेगा? उस समय तो मैं यह सब नहीं जान सका, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि मैं प्रभावित हुआ और उसी समय मेरे हृदय में तुलसी

के प्रति श्रद्धा का उद्भव हुआ था। सन् १९३५ ई० में भारत पहुँचकर मैंने उसी वर्ष हिन्दी का अध्ययन प्रारंभ कर दिया था। खड़ी बोली का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के बाद मैं तुलसी की रचनाएँ पढ़ने लगा। इसके फलस्वरूप मुझ पर एक प्रकार का जादू हो गया। मैं आज तक तुलसी-साहित्य का अनु-शीलन करता रहता हूँ और ऐसा लगता है कि आजीवन करता रहूँगा। मेरे हृदय और मेरे मानस, दोनों पर तुलवी की अमिट छाप लग गई है। मेरा तो यहाँ आजीवन रहने का विचार है; किन्तु किसी कारण से मुझे भारत छोड़ना पड़े, तो मैं अवश्य ही रामचरित मानस की एक प्रति अपने साथ ले जाऊँगा।

सन् १९३८ ई० में मैंने रामचरित मानस तथा विनय-पत्रिका को प्रथम बार आद्योपांत पढ़ा। उस समय तुलसीदास के प्रति मेरे हृदय में जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और बाद में बराबर बढ़ती गई, वह भावुकता मात्र नहीं है। साहित्य तथा धार्मिकता के विषय में मेरी धारणाओं से उस श्रद्धा का गहरा सम्बन्ध है।

कला और साहित्य मानव-जाति की महती उपलब्धियाँ हैं। मनुष्य की उच्च कल्पनाएँ तथा गहरी अनुभूतियाँ उनमें अभिव्यक्त हो जाती हैं—इसलिए आस्तिक उन्हें मानव-जीवन के उद्देश्य से अलग नहीं कर सकता। वह मानता है कि सौंदर्य की सृष्टि कला तथा साहित्य का लक्ष्य है, किन्तु उसके लिए यहाँ का सीमित सौंदर्य अनंत सौंदर्य का प्रतिबिंब है, जैसा कि कठोपनिषद् में लिखा है :

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

मनुष्य के हृदय में उस अनंत सौंदर्य की अभिलाषा बनी रहती है और इस कारण वह उसके प्रतिबिंब के प्रति, सीमित सौंदर्य के प्रति अनिवार्य रूप से आक-र्षित हो जाता है; कलाकार तथा साहित्यकार को मनुष्य की इस स्वाभाविक सौन्दर्य-पिपासा को बनाये रखना तथा इसका उदात्तीकरण करना चाहिए—उसी में उसकी कला की सार्थकता है। इस कसौटी पर तुलसीदास का साहित्य खरा उतरता है। उन्होंने अवश्य लिखा है कि मैं 'स्वांतः सुखाय' रघुनाथ गाथा की रचना करता हूँ; किंतु 'कला का कला के लिए' आदि कला की उद्देश्यहीनता विषयक सिद्धांत उनके मानस के कोसों दूर हैं। उनकी धारणा है कि :

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

तुलसीदास के कारण मैंने वर्षों तक रामकथा-साहित्य का अध्ययन किया है। लोकसंग्रह उस महान साहित्यिक परंपरा की एक प्रमुख विशेषता है और उस दृष्टि से तुलसीदास रामकथा-परंपरा के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। उन्होंने रामचरित के माध्यम से जो भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया है, उसमें नैतिकता तथा भक्ति के अनिवार्य संबंध पर बहुत बल दिया गया है। तुलसी के अनुसार एक ओर नैतिकता के अभाव में भगवद्भक्ति नितांत व्यर्थ है और दूसरी ओर भगवद्भक्ति के सहारे ही मनुष्य नैतिकता के मार्ग पर दृढ़ कदमों से आगे बढ़ सकता है।

इष्ट अलग हैं, भाव एक हैं

कुछ अन्य विशेषताओं के कारण भी मैं तुलसी के भक्तिमार्ग की ओर आकर्षित हो गया और उनका साहित्य पढ़ते-पढ़ते मेरे जीवन पर तुलसी की अमिट छाप पड़ गयी है; तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में तर्क की सीमाओं का सुस्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई, निसि गृह मध्य दीप बातन्ह तम निवृत्त नहीं कोई' में निरे कर्मकांड की व्यर्थता तथा 'जोग जप विराग तप सुतीर्थ अटत। बांधिवे को भव गयद रेनु की रज बटत' कहकर भक्ति मार्ग की आडंबर-हीनता पर बल दिया है। 'सूधे मन सूधे वचन सूधे सकल करतूती, तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूती।' उन्होंने यह भी माना है कि भक्त में चातक की एकनिष्ठता के साथ-साथ हंस का विवेक भी होना चाहिए—'राम प्रेम भाजन भरत बड़ेहि न एहि करतूति। चातक हंस सराहियत टेक विवेक बिभूति।'

तुलसी के इस प्रकार के भक्तिपूर्ण उद्गार पढ़ कर मैं भाव-विह्वल हो जाता हूँ :

> **एक भरोसे, एक बल, एक आस विस्वास।**
> **स्वाति सलिल रघुनाथवर चातक तुलसीदास॥**

और मुझे लगता है कि मैं तुलसी का हाथ पकड़ कर साधना के पथ पर आगे बढ़ता हूँ।

तुलसी के इष्टदेव राम हैं और मैं ईसा को अपना इष्टदेव मानता हूँ, फिर भी मैं हम दोनों के भक्ति-भाव में बहुत कुछ समानता पाता हूँ। थोड़ा अन्तर है भी तो इसका एक कारण यह है कि मुझमें तुलसी की चातक टेक का अभाव है।

कुछ पाठकों के हृदय में संभवतः यह प्रश्न उठता है कि आखिर एक विदेशी ईसाई के लिए तुलसी की रचना में क्या आकर्षण हो सकता है ? इस आकर्षण में व्यक्तिगत रुचि का समावेश भले ही हो, किन्तु इसका वास्तविक कारण यह है कि तुलसी इतने महान हैं कि वह काल, देश और धर्म-विशेष की सीमाएँ पारकर मानव-मात्र को मुग्ध करने में समर्थ हैं।

एक तो परंपरागत कथा में मानव हृदय को द्रवित करने की जो क्षमता विद्यमान है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरे, तुलसी की रचना में जो कला और आदर्श का समन्वय है, वह इतना आकर्षक है कि कोई भी साहित्य-प्रेमी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। तीसरे, तुलसी की रचनाओं में जो सगुण दास्य भक्ति का मार्ग प्रतिपादित किया गया है, जो जीते-जागते नैतिक आदर्श नितान्त स्वाभाविक एवं सरल भाषा में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किये गए हैं, परमात्मा के प्रति दैन्य और आत्मसमर्पण के जो सच्चे और गहरे भाव प्रकट किये गए हैं, इन सब बातों से जो व्यक्ति आकर्षित नहीं होता, उसे मैं धार्मिक और ईश्वर-भक्त कहलाने योग्य नहीं मानता।

तुलसीदास के विषय में शोधकार्य छपते रहते हैं, किन्तु उनके मनोविज्ञान पर अब तक किसी ने विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया है। सन्तुलन उनकी एक बड़ी विशेषता प्रतीत होती है। बचपन से माता-पिता के संरक्षण से वंचित होकर उन्हें भीख माँगनी पड़ी, जैसा कि वह स्वयं कहते हैं : 'कूकर टूकनि लागि ललाई' (कुत्तों के आगे फेंके हुए रोटी के टुकड़ों के लालच में मैं इधर-उधर फिरा करता था) फिर भी उनकी रचनाओं में कटुता का लेशमात्र ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। वह थोड़े ही समय तक गृहस्थ-जीवन का आनन्द भोग सके, फिर भी परिवार के सभी सम्बन्धों का कितना मोहक चित्र उन्होंने अपने रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है। बनवास में अपने पति का साथ देने के लिए सीता का आग्रह पढ़ते ही बनता है :

प्राननाथ ! करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिन रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान।।

तुलसी का हृदय अत्यन्त कोमल और दयार्द्र हुआ होगा। वह सबों का कल्याण चाहते थे और उसी काव्य को सफल समझते थे, जो दूसरों के लिए हितकर हो :

कीरत भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

तुलसी को दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य का कल्याण तभी सम्भव है, जब वह परमात्मा के अनुकूल ही आचरण करता है : 'जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला'। इसलिए उन्होंने गहरी सौन्दर्यानुभूति तथा असाधारण काव्य-प्रतिमा सौन्दर्य अर्थात् भगवान की अभिलाषा जाग्रत और विकसित करने का प्रयास किया है। कर्मकाण्ड की जटिलताओं पर बल देकर तुलसी ने नैतिक आचरण को अधिक महत्व दिया है, क्योंकि वह नैतिकता को धार्मिक भाव और साधना का आधार मानते थे। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी तुलसी ने समझ लिया था कि भगवान के प्रति हमारी भक्ति की कसौटी है दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार :

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

इस कारण से वह संतों के लक्षणों का वर्णन करते समय उनकी भगवद्-भक्ति का उल्लेख न करके शत्रु के प्रति उनके सद्भाव की प्रशंसा करते हैं। सन्त चन्दनवृक्ष के समान हैं, जो कुल्हाड़ी को अपनी सुगन्ध प्रदान करता है :

सन्त असन्तन्ह के असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई।।

सन्तों का हृदय मक्खन की तरह कोमल है, तुलसी कवियों की इस तुलना को इसलिए अनुपयुक्त समझते थे कि मक्खन अपने परिताप के कारण पिघल जाता है; जब कि सन्तों का हृदय दूसरों का दुःख देखकर दयार्द्र हो जाता है :

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह पै कहा न जाना।।
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता।।

बुढ़ापे में तुलसी को किसी दिन कुछ निराशा-सी हुई होगी, जिससे उन्होंने अपनी कवितावली में लिखा है : 'बिधिहु न लिखि कछु भाल भलाई'—विधाता ने मेरे मस्तक पर कुछ सौभाग्य नहीं लिखा है। इतिहासकार तुलसीदास के इस कथन से पूर्णरूप से असहमत हैं। वी० ए० स्मिथ ने अकबर की जीवनी लिखी है। उसमें वह तुलसीदास के विषय में कहते हैं : "उनका नाम आपको न तो आइन-ए-अकबरी, न किसी मुस्लिम वृत्तान्त के पृष्ठों में और न फारसी

इतिहासकारों पर आधारित यूरोपीय लेखकों के ग्रन्थों में मिलेगा। फिर भी यह हिन्दू भारत में अपने समय के सबसे महान पुरुष थे। वह अकबर से भी महान थे, क्योंकि उस कवि ने करोड़ों मनुष्यों के हृदय पर अधिकार कर लिया है और यह विजय सम्राट द्वारा युद्ध में प्राप्त किसी भी विजय अथवा उसकी सभी विजयों से कहीं अधिक चिरस्थायी एवं महत्वपूर्ण है।"

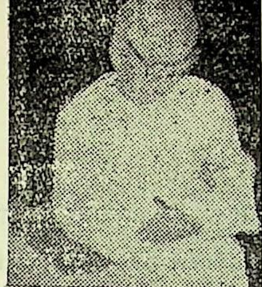
पिछली तीन शताब्दियों से तुलसी न केवल करोड़ों मनुष्यों को मुग्ध करते आ रहे हैं, प्रत्युत वह उन्हें धार्मिक दृष्टि से प्रभावित करते आ रहे हैं। उनका रामचरित मानस उत्तर भारत की जनता में न केवल काव्यग्रन्थ के रूप में अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर सका, वह उसके लिए नैतिक मेरुदण्ड भी सिद्ध हुआ; जिससे हम निस्संकोच कह सकते हैं : "हे तुलसी आप तो कहते हैं—'बिधिहु न लिखि कछु भाल भलाई', किन्तु इतिहास साक्षी है कि उत्तर भारत के सबसे लोकप्रिय कवि होने के अतिरिक्त यहाँ के सबसे प्रभावशाली एवं हितकारी लोकनायक होने का सौभाग्य आपको प्राप्त है।"

साहित्यिक सौन्दर्य एवं धार्मिक प्रेरणा का अनुपम ग्रन्थ



यदि आप तुलसीदास की रामायण को गहराई से पढ़ें, तो शायद आप मेरी इस राय से सहमत होंगे कि संसार की आधुनिक भाषाओं के साहित्य में उसके मुकाबिले में कोई दूसरी किताब नहीं ठहरती। उस एक ही ग्रन्थ ने मुझे जितनी श्रद्धा और आशा दी है, उतनी किसी दूसरी किताब से मुझे नहीं मिली। मेरा खयाल है वह हर तरह की आलोचना और छानबीन के बाद साहित्यिक-सौन्दर्य, अलंकार और धार्मिक प्रेरणा सभी दृष्टियों से खरी उतरेगी।

—महात्मा गांधी



लोक-जीवन से उद्भूत तुलसी की चेतना आज के संदर्भ में

⊙

(कविवर) श्री केदारनाथ अग्रवाल
बाँदा

[आस्था के स्वर में प्रगतिशील काव्य के उन्नायक महाकवि बाबू केदारनाथ अग्रवाल की मान्यता है कि तुलसी की चेतना लोक-जीवन से उद्भूत चेतना थी। वह कवि थे, विद्वान थे, अपने महान ज्ञान-भण्डार से भरपूर अवगत भी थे; किन्तु उनकी चेतना वैज्ञानिक की चेतना नहीं थी। वह कवि की चेतना होने के कारण जीवन के चाहे-अनचाहे सभी पक्षों को समेट कर चली है। अतः यदि उनकी चेतना को विज्ञान, बुद्धि और विवेक से जोड़ कर बाहर न निकाला गया तो वह दिन दूर नहीं, जब उनकी चेतना का हमारे जीवन में मूल्य ही न रह जायगा—सम्पादक]

'मर कर भी नहीं मरे बाबा तुलसीदास' : अपनी कविता की बदौलत जो चार-सौ साल से बराबर जीती चली आ रही है और उन्हें भी आज तक अपने साथ जिलाये हुए है; यही सत्य इस बात का प्रमाण है कि यह कविता कालजयी है।

कालजयी कविता में लिखी रामायण घर-घर में पढ़ी जाती है। अन्य किसी काव्य-ग्रन्थ का इतना प्रचार और प्रसार नहीं हुआ; जितना इसका हुआ है। मार्के की बात तो यह है कि समाज के सभी स्तरों को भेद कर यह जन-मानस में अत्यधिक गहरे प्रवेश कर गई है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं बचा, जो इसके प्रभुत्व और प्रभाव से अछूता रह गया हो।

छोटा हो या बड़ा, विद्वान हो या मूढ़, दार्शनिक हो या दुनियादार, भक्त हो या ज्ञानी, रागी हो या विरागी, स्वामी हो या सेवक, राजधर्मी हो या प्रजाधर्मी, नैतित हो या अनैतिक, निंदक हो या प्रशंसक, संत हो या असंत, कर्मी हो या अकर्मी, जहाँ जो है; वह इसे (—रामायण को), अपने जीवन के किसी-न-किसी छोर पर, सहारा या सम्बल के लिए, उसी तरह पकड़े हुए है, जैसे हारिल (पक्षी) लकड़ी पकड़े रहता है। इसके बिना तो जैसे कोई आदमी जीता ही नहीं ! यह काव्य का ग्रन्थ न होकर जीवन का ग्रन्थ हो गया है !

हिन्दी-भाषी क्षेत्र में तो इसे सार्वभौम प्रभुसत्ता प्राप्त है। अहिन्दी क्षेत्रों में भी इसे महती महत्ता मिली है। वहाँ भी इसका पारायण होता रहता है।

देश से बाहर, विदेशों में भी इसके अनुवाद प्रस्तुत हुए हैं। यह विश्व की प्रमुख भाषाओं का ग्रन्थ बन गया है।

इसी रामायण को जब यह रची गई थी, तब विद्वानों ने—साहित्य और संस्कृति के पुंगवों ने काव्य का ग्रन्थ मानने से इनकार कर दिया था। प्रशस्ति के बजाय इसे उनसे अवमान ही मिला था। आज युग और युग के लोग इसके प्रबल पक्षधर हो गए हैं और इसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते।

प्रशंसा कालिदास के रघुवंश की भी होती है। उस महाकाव्य को काव्य के सुधी मर्मज्ञजन श्रेष्ठ महाकाव्य मानते हैं और कंठस्थ कर लेने पर अपने को धन्य समझते हैं। निस्संदेह उस ग्रन्थ की भी महती महत्ता है। लेकिन उसकी तुलना में भी रामायण बाजी मार ले जाती है। और उसे दूर—बहुत दूर—पीछे छोड़ जाती है। बाजी मार ले जाने का बड़ा ठोस कारण है। रघुवंश केवल रघुवंशियों का महाकाव्य होकर उनकी ही प्रशस्ति का गौरव-ग्रन्थ बन कर रह गया है। रामायण महाप्रतापी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का महाकाव्य होकर भी केवल उन्हीं की प्रशस्ति का गौरव-ग्रन्थ नहीं है; बल्कि राम के चरित्र के बखान के माध्यम से जनसाधारण के जीवन का अपरिहार्य और अनिवार्य लोक ग्रन्थ बन गया है। जब जनता रामचरित मानस को पढ़ती है, तब महापुरुष राम के चरित्र को तो घोखती ही है; लेकिन उसके साथ-साथ उस चरित्र के मानवी मूलाधारों से अपने को सम्बद्ध भी करती चलती है और जग में जी सकने की क्षमता का अनुभूत ज्ञान भी संचित करती चलती है। तभी तो राम सबके घट-घटवासी राम बन गए हैं। तुलसीदास ने अपने राम के चरित्र के इतने-इतने, अनेकानेक, बहुमुखी पक्ष उजागर किए हैं और इस तरह जन-जीवन से सम्पृक्त करके उजागर किए हैं कि राम का चरित्र मानवमात्र का चरित्र बन गया है। ऐसा लगता है जैसे राम अपना जीवन जीते-जीते सबका जीवन जीने लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे राम राज-परिवार का जीवन नहीं जीते, बल्कि साधारण आदमी के सुख-दुख का जीवन जीते हैं। राम वैसे ही भाग्यमान भोगते हैं, जैसे आम आदमी भोगते हैं। तुलसी बाबा ने अपने आराध्य के चरित्र की राजकीयता पर बल देते हुए भी बल नहीं दिया, बल्कि राजकीयता से वंचित कर दिए गए राम के उदात्त मानवीय गुणों से परिपुष्ट चरित्र को ही सबके

लिए सुलभ कर दिया है कि विमल विवेक के इस दर्पण में हरेक अपना प्रतिविम्ब देख सके और राममय होकर वैसा ही जीवन जिये, जैसा भोग्यमान भोगते राम जी सके।

मेरे लिए यह सदैव ही एक बड़ी उलझी हुई गुत्थी रही है कि सीताहरण के बाद तुलसी के राम अपने अवधवासियों से, अपने राज-परिवारवालों से अपनी फौज-फाटा से सहायता क्यों नहीं माँगते—वे न माँगते तो अवधवासी या रघु-वंशी या राज्य की फौज-फाटा का तो यह धर्म था कि वह अपने प्रिय राम को अयाचित सहायता देते या देती। लेकिन उन सबसे किसी प्रकार की सहायता मिलने की बात भी तुलसीदास ने कहीं नहीं उठाई। मैंने बहुतों से पूछा। जितनों से पूछा उतनों ने यही बताया कि राम भगवान थे —उन्हें उनकी सहायता की जरूरत न थी—वह स्वयं रावण को मार कर सीता को वापस ले आने में सक्षम थे। मुझे इस प्रकार के उत्तर से कभी संतोष नहीं हुआ। मेरा प्रश्न मेरे सामने हमेशा ही आकर खड़ा हो जाता रहा है और मैं बौद्धिक होने के नाते, इस शंका का समाधान खोजने के लिए, अपने दुनियाई ढंग से ही विचार करता रहा हूँ और अवध की जनता और उसके राजपरिवार को राम के विरुद्ध षडयंत्र करने का दोषी ठहराता रहा हूँ और इसलिए यह भी मान कर चलता रहा हूँ कि राम ने अपनी आत्मरक्षा में बनवासी होना स्वीकार किया था और सीता को लेकर लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष की लम्बी अवधि तक जंगल-जंगल की धूल फाँकते फिरे थे। परन्तु अब आज मेरी शंका का समाधान मिल गया है और अब मैं यह जान गया हूँ कि क्यों तुलसीदास ने राम के लिए वैसे घोर संकट के समय अवध से किसी प्रकार की मदद पहुँचाने ी कल्पना तक नहीं की। सत्य साफ दिख रहा है। महाकवि राम को, संकट में पड़े आदमी की तरह, चित्रित करना चाहते थे। यही किया भी उन्होंने। यही उचित भी था। अगर राम वहाँ—बनवास में—राजा राम या युवराज राम की तरह संघर्ष का सामना करते तो अवश्य ही वह अवध से हर प्रकार की मदद लेते। फिर तो वह साधारण आदमी का जीवन न जीते। तब राम राजपुरुष होते—साधारण जन के जीवन में उतर आये राम न होते। और तब रामायण भी रघुवंश जैसा महाकाव्य मात्र होकर रह जाती और आज की इस व्यापक प्रशस्ति से वंचित रह जाती।

तुलसी की चेतना लोक-जीवन से उद्‌भूत चेतना थी। उनकी चेतना राज-

वंश से लालित-पालित चेतना न थी। वह कवि थे, विद्वान् भी थे, अपने महान ज्ञानभंडार से भरपूर अवगत भी थे। तिस पर भी उनकी चेतना अपना काम अपने ढंग से करती रही। तब का—उनके युग का—लोक-जीवन उनकी चेतना में प्रतिबिम्बित हुआ और वह उसी प्रतिबिम्बन (Reflection) के आधार पर अपने राम का चरित लिखते रहे।

यह सच है कि अपने राम को वैसा चित्रित करते समय भी तुलसीदास ने राम को जगह-जगह पर भगवान राम कहा है और उनको महान दैवी गुणों से सम्पन्न दिखाया है तथा उनके समस्त चरित्र को अलौकिक आलोक से आलोकित किया है। इस बात से अवश्य ही भटकाव और भ्रम भी पैदा हुआ है। यह दुर्बलता बार-बार प्रकट हुई है। इस दुर्बलता की वजह से अब आज रामायण मानवीय चेतना के क्षेत्र से दूर जा पड़ी है और उस पर विचार करना या सोचना-समझना भी बंद कर दिया गया है। रामायण धर्म-ग्रन्थ बन गया है। धर्मग्रन्थ से बढ़ कर तावीज बन गया है, जिसके ग्रहण करने मात्र से भव-भय से मुक्ति मिल जाती है। यह तो हुई कम पढ़े-लिखे लोगों की बात। बड़े विद्वान और विज्ञ-जन भी किसी दूसरे को इतनी छूट तक नहीं देते कि वह रामायण की कथावस्तु या उसके कथ्य या शिल्प को लेकर अपना बौद्धिक विचार व्यक्त करे और नयी दृष्टि से जाँच-पड़ताल करे और गलत-सही को प्रस्तुत करे।

कहा जा सकता है और सच भी यही जान पड़ता है कि तुलसी की कथा अपने सहज साधारण रूप में जन-जीवन की सहज साधारण चेतना थी, लेकिन इनकी यह चेतना पूर्णतया अन्य युगीन प्रभावों से सर्वथा मुक्त नहीं रह सकी। तभी तो राम की कथा को बड़ों के मुँह से बड़ों को सुनाया गया बताया है तुलसी बाबा ने। तभी तो Law of primogeniture के विरुद्ध आवाज उठाने वाली कैकेयी को और आग में घी डालने वाली मंथरा को महाकवि ने अच्छा नहीं कहा। राजवंश की परम्परा को यथावत् बनाये रखने की कामना से ही तो महाकवि उसका सबल समर्थन करते हैं, तभी तो महाकवि अपने को राम का सेवक घोषित करते हैं; तभी तो राम की भक्ति को सराहते और प्रतिपादित करते हैं। उन्होंने कहा भी है कि "जाको प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।" तभी तो उन्होंने "ज्ञानहि भवितहिं नहि कुछ भेदा" भी कहा है। यह समन्वय की नीति अपने असली अर्थ में यही व्यक्त करती है कि जहाँ जो है, वैसा चलता चला जाये—राजनीति या अर्थतंत्र

में कोई परिवर्तन न किया जाये—साधारण जन भी उसी व्यवस्था में उसी के अनुरूप जिएँ और मरें और अवसर आने पर भी चूँ-चपड़ न करें। तभी तो तुलसी भरत पर बलि-बलि जाते हैं। राम पर फूल बरसाते हैं।

ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि महाकवि को अपना जीवन भी ऐसे ही बिताना पड़ा था। वह भी आर्थिक दृष्टि से निरवलम्ब थे। घर-बार कुछ भी नहीं रह गया था। पत्नी का परित्याग कर ही चुके थे। एकाकी जीवन-यापन करते-करते वह यही निष्कर्ष निकाल सके कि जीवन का लक्ष्य राम की भक्ति से राम में लीन हो जाना है। कर ही क्या सकते थे। इसलिए उनका चिंतन मुक्त चिंतन न हो कर श्रद्धा और भक्ति से बँधा चिंतन है। इसीलिए आज के युग में इसको पूरा ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ, उसके उस पक्ष को अवश्य स्वीकार किया जा सकता है जो मानवीयता का पूरा-पूरा बोध करता है और आज की युगीन चेतना से जुड़ जाता है। मुझे परशुराम और लक्ष्मण के संवाद में उसी पक्ष का समर्थन मिलता है। राम चुप रहते हैं। उनका राजतिलक होगा ही, वह राजा बनेंगे ही; इसलिए वह शील से सधे शालीन ही रह जाते हैं। परन्तु धनुष के तोड़े जाने पर वाद-विवादमें पड़े लक्ष्मण तो मुक्त मानव के मुख से बोलते हुए परशुराम से अपराजित ही रहते हैं और खुल कर सब कुछ कहते हैं, जो-कुछ जितना कहा जा सकता था और जिसे राम नहीं कह सकते थे। तुलसी बाबा यहाँ जी खोल कर निर्भीक भाव से वाक्-युद्ध में संलग्न हुए हैं, देखते ही बनता है। यही है वह वाणी जो जनसाधारण का अमोघ अस्त्र हो सकती है। आज का बौद्धिक युवक उसी स्वर में अपने को परम्परा और प्रतिष्ठान के विरुद्ध स्थापित करने का बीड़ा उठाये हैं। रामायण का यह संवाद-स्थल भाषा की दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है। भाषा पूरी मुक्ति पाकर आज आक्रोश से भभक उठी है और व्यंग तथा प्रहार के वार करने लगी है। कहीं कोई प्रतिबंध नहीं रह गया है। पता नहीं, बाबा तुलसीदास में कहाँ-से ऐसा मुक्त चिंतन जागा कि वह आज के युवक की तरह भभक उठे। शिव का धनुष तोड़ा गया था। उसे राम ने तोड़ा था। हो सकता है कि इसीलिए तुलसीदास लक्ष्मण के मुँह से परशुराम पर आग बरसा पड़े। वैसे यह तो सही है ही कि तुलसी राम के प्रति इतने श्रद्धालु हैं कि उनके किये काम के विरोध को वह एक क्षण भी बरदाश्त नहीं कर सकते। मालूम होता है कि भक्त ने अपने आराध्य के विवादी परशुराम को इसीलिए भरी सभा में लज्जित किया और फिर

धनुष भी तो शिव का था, राम उसे न तोड़ते तो सीता कैसे पाते? ऐसा न्याय तुलसी बाबा की दृष्टि में सर्वथा उचित ठहरता था। तभी तो वह शम्भु के धनुष तोड़ने पर कोई आपत्ति नहीं व्यक्त कर सके। शिव भी तुलसीदास को प्यारे थे। तभी राम के द्वारा रामेश्वरम् में शिव की स्थापना महाकवि ने जानबूझ कर कराई कि शिव के उपासक धनुष तोड़े जाने की व्यथा को भूल जायें।

इसके अतिरिक्त जहाँ तुलसीदास की भाषा प्रतिबंधित रही है, वहाँ वह रीति के स्वभाव की होकर आगे-पीछे चली है। अलंकारिक भी हुई है, काव्यात्मक भी हुई है और ध्वनिपरक भी हुई है। सीता के रूप का वर्णन कुछ इसी प्रकार का है। उस वर्णन की सराहना करते-करते लोग दुहरे हो जाते हैं। "छविगृह दीपशिखा जनु बरई" में आत्मा परमात्मा का रहस्यवाद बिंबित देखते-देखते लोग-बाग नहीं थकते। पर मुझे तो यह रूप वर्णन पिष्टपेषण ही मालूम होता है। औपचारिकता की अति हो गई है। सीता अलौकिक हो गई है। वैसे तो वे भूमिजा हैं। तुलसीदास भूल जाते हैं कि वह भूमिजा का रूप वर्णन कर रहे हैं। सम्भवतः उनके आराध्य की प्रिया होने वाली सीता का ऐसा रूप-वर्णन ही उन्हें औचित्यपूर्ण लगा था। राम राजकुँवर थे। गद्दी पर बैठते। इसीलिए उनकी जीवनसंगिनी भला लौकिक कैसे रह सकती थी और उनका लावण्य भला कैसे लौकिक रह सकता था। अतः बाबा तुलसीदास ने सीता के रूप को प्रकाश में चढ़ा दिया और सौन्दर्य से भी सुन्दर बना दिया। अन्यथा भूमिजा—मानवी—कैसे भगवान की धर्मपत्नी बन सकती थी। उन्हें तो छबि को भी छबि देनेवाली होना ही चाहिए। वही किया भी बाबा तुलसीदास ने उनके रूप-वर्णन में। जैसे आदमी मुक्ति चाहता है वैसे भाषा भी मुक्ति चाहती है। जहाँ मुक्त नहीं होती, वहाँ भाषा और मनुष्य दोनों ही, अपनी सहज स्वाभाविक शक्ति-सम्पन्नता खो देते हैं और किसी दूसरे के इशारे पर वैसे ही नाचते हैं जैसे वह नचाता है। रावण और अंगद के संवाद में भी तुलसी की भाषा खुली है। परन्तु वहाँ की उस भाषा का स्तर परशुराम-लक्ष्मण के संवाद की भाषा के स्तर से नीचे रह गया है।

वैसे भी देखा जाय तो रामायण की कथा-वस्तु का वही प्रमुख अंग है, जो राम के वन-गमन से शुरू होता है और लंका-विजय तक जाता है। इस काल के राम राजा राम नहीं हैं और नहीं उस तरह आचरण करते हैं। दूसरे लोग—बनवासी लोग—अन्य जातियों के सम्पर्क में आनेवाले और सहाय्य होने वाले

लोग—भले ही मानवीय राम को दैवी राम के रूप मे देखने का लोभ संवरण न कर सके हों। अहिल्या शापवश शिला हो गई थी। राम ने उसे अपने चरण-स्पर्श से पुनः नारी के रूप में परिवर्तित कर दिया। यह काम साधारण मनुष्य नहीं कर सकता था। बाबा तुलसीदास ने ऐसा क्यों किया और क्या ऐसा कराने में वह राम को नर नहीं, नारायण मानते थे ? यह प्रश्न उचित ही है—शंका उचित ही है। यही तो महाकवि की चेतना की प्रतिबद्धता को स्पष्ट करती है। इसी प्रतिबद्धता में बँधे हुए तुलसी बाबा राम को, मूलरूप से नर मानते हुए भी, नारायण कह-कह कर पुकारने लगते हैं। लेकिन इस प्रतिबद्धता से रामायण की प्रमुख कथा-वस्तु का मानवीय स्वरूप किसी प्रकार विनष्ट नहीं हुआ। कथा-वस्तु का मानवीय स्वरूप इस विशद और विस्तृत आकार-प्रकार से जीवन के धरातल पर व्यक्त हुआ है कि उसे ही सर्वोपरि स्थान देना होगा न कि राम के दैवी रूप के गुणों के बखान को; जो रह-रहकर स्थान-स्थान पर मुखरित होता रहा है। रामायण का पाठक मानव राम के चरित्र से इसलिए प्रतिभूत होता है, क्योंकि वह उसे जीवन के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। पाठक राम के दुख को अपना दुख समझने लगता है। दुखी राम के साथ प्रत्येक पाठक सहानुभूति करने लगता है। सहानुभूति करते-करते पाठक की भावनाएँ परिष्कृत हो जाती है। उसमें भी उन्हीं मानवीय गुणों का विकास होने लगता है और वह भी जीवन के जीने में जी-जान से लग जाता है। जो विद्वान इस पक्ष को महत्व नहीं देते, वह भूल करते हैं और रामायण को केवल श्रद्धा और भक्ति का पूजनीय ग्रन्थ बना कर उसकी युगीन महत्ता से इनकार करने का घोर अपराध करते हैं। आज के विज्ञान के युग में जब महान आत्मिक संकट उभर कर ऊपर आ गया है, तब रामायण को श्रद्धा और भक्ति का ग्रन्थ कहना किसी प्रकार से न्याय संगत नहीं कहा जा सकता। युगीन परिप्रेक्ष्य में रामायण की महत्ता को, उसके उपरोक्त मानवीय पक्ष को लेकर ही प्रतिपादित और प्रतिष्ठित किया जा सकता है। अन्यथा भविष्य में रामायण का महत्व घट कर ही रहेगा, उसे कोई रोक नहीं सकता।

तुलसीदास की चेतना वैज्ञानिक की चेतना नहीं थी। वह कवि की चेतना होने की वजह से जीवन के चाहे-अनचाहे, सभी पक्षों को समेट कर चली है। तभी तो उस समेट कर चलने में वह राम के मानवीय गुणों के साथ-साथ राम के दैवी गुणों को भी समेटती चली गई है और दैवी गुणों से राम को विभूषित करने में कहीं तनिक भी नहीं चूकी है।

मानवीय चेतना जब भक्ति-भाव से भर जाती है, किनारा कर लेती है, तब वह ऐसे जीवन से ही प्रतिबिम्बित हो चुकी होती है। ऐसे किनारा कर लेने के बाद चेतना इस पचड़े में भी नहीं पड़ती कि कोई देखे-सुने-समझे कि क्यों, कैसा और क्या-क्या हो रहा है। वह सब उसे निस्सार लगता है और आराध्य की आराधना ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। भक्त कवियों की चेतना इसी कोटि की होती है। भक्त-कवि अपने आराध्य के गुणगान ही बखानने में लग जाते हैं और दूसरों को भुला देते हैं। आराध्य के विमुख जन भी तभी तो उन्हें फूटी आँख नहीं सुहाते। महाकवि तुलसीदास की चेतना भी इसीलिए लोक-जीवन से उद्भूत होते हुए भी, लोकजीवन के पक्षों को उजागर करते हुए भी, बार-बार अपने राम को भगवान राम कह उठती है। रामायण में इसीलिए तो मानव राम भगवान राम के पद पर आसीन दिखते हैं। भक्ति के आरोपित राम को मानव राम की ओट में करते-से दिखते हैं। लेकिन आज की युगीन चेतना मानव राम को ओट में नहीं रहने देती और सामने लाकर उनसे साक्षात्कार करती है और उनके अलौकिक ईश्वरीय रूप को भक्तों की मंडली में ही रहने देती है। जब ऐसा किया जाता है, तब राम आदमी का जीवन जीने लगते हैं और हमारे जीवन के सहभोगी बन जाते हैं तथा हम उन्हें अपनी आधुनिक दृष्टि से देखने-सुनने-समझने लगते हैं।

भक्ति-पक्ष की प्रबलता के कारण ही तो भक्त यह सोचना भूल जाता है कि अहिल्या का उद्धार चरण-स्पर्श से असम्भव है। वह चरण-स्पर्श से उद्धार किया जाना सहर्ष स्वीकार कर लेता है। वह संदेह करने के निकट तक नहीं जाता। संदेह करने से उसकी भक्ति पर आँच आती है। आज के विज्ञान के युग में नारी-उद्धार (Woman-emancipation) की ऐसी कल्पना की ही नहीं जा सकती—ऐसी घटना के स्वीकार किए जाने की बात तो कोसों दूर है। अहिल्या-उद्धार की घटना Woman-emancipation की ही घटना तो है। नारियों का उद्धार अब इस युग में ऐसे नहीं होता। बाबा तुलसीदास ने इस घटना को मात्र भक्तिभाव से सहज ही स्वीकार कर लिया था और अपने आराध्य राम को उनके उद्धार का अमर श्रेय दे दिया था। आधुनिक काल में इस घटना पर कोई बौद्धिक व्यक्ति विश्वास नहीं करेगा और निरी कपोल-कल्पित ही मानेगा।

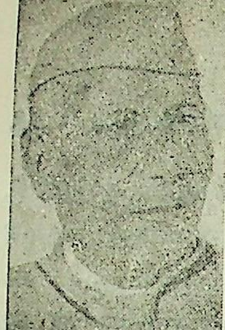
तुलसीदास की चेतना में यदि इसी तरह भक्ति का पक्ष निरन्तर और अधिक काल तक आरोपित किया जाता रहा और यदि उनकी चेतना को विज्ञान,

बुद्धि और विवेक से जोड़ कर बाहर न निकाला गया; तो वह दिन दूर नहीं है, जब उनकी चेतना का हमारे जीवन में मूल्य ही न रह जायेगा। यह सत्य कटु अवश्य है, परन्तु नितान्त ग्रहणीय है।

आज राम का कीर्तन जिस जोर-शोर से, लाउडस्पीकर लगा कर किया जा रहा है; वैसा पहले कभी नहीं होता था। इसके बावजूद वही कीर्तनियाँ राम के एक भी गुण को अपने चरित्र में नहीं उतारते। कैसी बिडम्बना है यह! असहनीय है यह!

राजापुर में सरकार ने तुलसी-स्मारक का निर्माण कराया है। वहाँ रामायण को लेकर उसके विविध पक्षों पर विद्वानों द्वारा—शोधकर्त्ताओं द्वारा—विचार-विनमय चालू किया जाना चाहिए था। वही नहीं किया गया। वहाँ तो कीर्तन होता है—रामलीला होती है। और सब कुछ होने पर भी ऐसा लगता है कि कुछ हो ही नहीं रहा है। न जनता कुछ जानती है, न कोई कुछ जानता है। ऐसा केवल इसलिए होता है; क्योंकि वहाँ के प्रबन्धकों को तुलसी केवल भक्त दिखते हैं—रामायण केवल धर्मग्रन्थ दिखती है—राम केवल भगवान दिखते हैं—और कहीं कुछ नहीं दिखता।

यह सब बातें यहाँ इस लेख में इसलिए कही गई हैं कि अपना देश इस शताब्दी में तुलसी के चार सौ साल बाद—यह विचार करे कि तुलसी के काव्य पर सही दृष्टिकोण से कैसे और किस सीमा तक जाया जा सकता है और जनता के जीवन में उनका काव्य कहाँ तक—कितनी सीमा तक उपयोगी हो सकता है। ऐसे विचार किए बिना न तुलसी का उद्धार होगा—न रामायण का—न हमारा और न हमारे देश के काव्य का। वस्तुस्थिति का सामना करना और उसके अनुरूप आगे बढ़ना परम आवश्यक है—परम हितकारी है। अन्त में एक बात और महत्वपूर्ण है। उसे कहना आवश्यक है। तुलसी बाबा का सबसे महत्वपूर्ण योग-दान यह है कि उन्होंने 'संस्कीरत' के स्थान पर अपने काव्य की भाषा अवधी रखी। वह इतनी सुरुचिपूर्ण और सम्पन्न उन्हीं के कृतित्व के बल-बूते पर हुई है। हिन्दी-संसार इस बात के लिए उनका हमेशा-हमेशा आभारी रहेगा। चौपाई और दोहे तो अन्य छंदों से इतने छोटे और सरल-सपाट रहे हैं कि काव्य में टिक ही नहीं सकते थे। परन्तु वाह रे बाबा तुलसीदास! कि वे दूसरे छंदों से सबसे अधिक समृद्ध और प्राणवान बन गए हैं और उनकी समता शायद ही कोई दूसरा छंद कर सके। अवध के राम अवधी में जीकर जनता के जीवन के राम बने तो इसीलिए कि तुलसीदास ने लोकचेतना को लोकवाणी में व्यक्त किया। ●



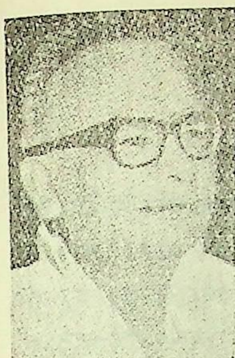
सम्राट और कवि

(राष्ट्रीय कवि) श्री सोहनलाल द्विवेदी
बिन्दकी

अकबर और तुलसीदास
पैदा हुए एक समय, एक देश
कहता है इतिहास।
'अकबर महान!'
का गूँजता था कीर्तिगान
वैभव प्रासाद बड़े
जो थे सब यहाँ खड़े
ध्वंस बने आज पड़े!
किन्तु, कवि तुलसीदास,
रामचरित का प्रासाद
अब भी है अचल खड़ा,
अब भी है अडिग खड़ा,
ऊर्जा उत्साह बड़ा,
देता है अविराम!

एक था सम्राट
जिनका वैभव विराट!
एक कवि तुलसीदास
कौड़ी भी नहीं पास!
किन्तु, आज
महाकालों की ताल चीर
गूँजती है, नृपति की नहीं,
कवि की वाणी गंभीर
हरती भव व्यथा पीर।

लगता है: अकबर महान मृत!
तुलसीदास अमृत!!



राम-कथा का रस विशेष

डॉ० राममनोहर लोहिया (स्वर्गीय)

[एक समय था जब सामान्यतया रामायण को एक सम्प्रदाय विशेष का धर्मग्रन्थ माना जाता था और तब इसी परिप्रेक्ष्य में इसके विधि-निषेध का भाव भी लोगों में निष्पन्न होता था। किन्तु इधर रामकथा की अन्तःशक्ति ने अनेक प्रबुद्ध सामाजिक एवं राजनैतिक मनीषियों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया, जिन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण एवं गहन आलोड़न-विलोड़न के बाद इसे देश की भावात्मक एकता तथा संस्कृति की सर्जनात्मक गतिशीलता के प्रबल माध्यम के रूप में निरूपित किया। रामायण को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित करने वालों में समाजवादी चिन्तक डॉ० राममनोहर लोहिया प्रथम थे, जिन्होंने एक दशक पूर्व चित्रकूट में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रामायण मेला सम्पन्न करने का संकल्प किया था। प्रस्तुत लेख-जो यहाँ 'धर्मयुग' के सौजन्य से साभार प्रकाशित किया जा रहा है-में डॉ० लोहिया के रामकथा-विषयक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व हुआ है—सम्पादक]

तुलसी और रामायण का महत्व हमारे देश के सांस्कृतिक जीवन में निर्विवाद है। उनको मैंने बार-बार पढ़ा है और उसके रस में डूबा, लेकिन कुछ विचार भी मन में उठते रहे और अब भी उठते हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि आर्य, द्रविड़ और मंगोल, ये सब भेद गढ़े गए हैं, विशेषकर विदेशियों ने गढ़े हैं। यदि ये थे भी, तो तीन-चार हजार वर्ष पहले। अब वे बिलकुल झूठे हैं। इसी झूठ के सहारे हिन्दुस्तान का पूरा इतिहास, साहित्य, भूगोल और संस्कृति इत्यादि अब तक पढ़ाये जाते हैं। इससे अनर्थ हो रहा है।

दक्षिण आर्य यानी श्रेष्ठ है

रावण को दक्षिण का राजा माना जाता है। उसका कार्यकलाप भी दक्षिण में रक्खा गया है। बानर और रीछ दक्षिण के बताए गए हैं। अब जरा इसे

जाँचिये। जहाँ तक बानर और रीछ का सवाल है वे तो साफ तौर से देवताओं के अवतार थे, जो विष्णु के अवतार के साथ-साथ पृथ्वी पर आये। इसलिए उनके सम्बन्ध में उत्तर दक्षिण का कोई प्रश्न नहीं। रह गया रावण; वह तो उत्तर का ही कोई राजा मालूम पड़ता है: "उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।" यह तो साफ लिखा है कि रावण बरदान पाने के बाद अपने पुराने घर और राज्य को छोड़ कर लंका द्वीप में चला गया, जहाँ उसे लगा कि एक अभेद्य राज्य बन सकता है। यह सही है कि आजकल रामलीला ऐसे ढंग से की जाने लगी है कि जिससे देश के दक्षिण वालों को रामकथा के बारे में भ्रम हो। रावण वंश को काला-कलूटा बनाया जाता है। साथ ही उसके खिलाफ नफरत जगाने के लिए दाँत बाहर निकाल दिए जाते हैं। वास्तविकता बिलकुल उल्टी है। मन्दोदरी तो नारी ललना कही गयी है। शूर्पणखा बहुत सुन्दर स्त्री थी। उसके नाखून चपटे और चौड़े थे, जिस कारण बचपन में उसके भाई उसे शूर्पणखा कह कर चिढ़ाते थे। राक्षसों को मायावी कहा गया है। मूलतः वे सुन्दर रहे होंगे। डराने के लिए कभी-कभी भयंकर वेश बना लेते होंगे। ऐसी अवस्था में राक्षस कुल को दक्षिणवाले अपना समझते हैं, यह भ्रम है; लेकिन रामलीला वाले इस भ्रम को बढ़ाने में मददगार होते हैं।

रामलीला के पात्रों के चेहरे आदि में बदलाव करना जरूरी है। यह हरगिज नहीं भूलना चाहिए कि राम और भरत साँवले थे। रंग के मामले में राम और भरत दक्षिणवालों के ज्यादा नज़दीक हैं, बनिस्बत उत्तरवालों के।

धर्म और राजनीति

मुझे तो बराबर लगता है कि रामायण उत्तर और दक्षिण की एकता का ग्रन्थ है। अफसोस है कि आज वही ग्रन्थ उत्तर और दक्षिण दोनों की नासमझी के कारण कुछ तबकों के मन को मलीन बनाता है। राम तो हिन्दुस्तान के उत्तर दक्षिण की एकता के देवता थे; कृष्ण थे पूर्व पश्चिम की एकता के। राम कृष्ण दोनों में और अनेक गुण थे, लेकिन एकीकरण के गुण से बढ़कर किसी अन्य गुण का माहात्म्य नहीं। आप कहेंगे कि यह तो धर्म और राजनीति को मिलाना हुआ। मगर हिन्दू धर्म में ही यह बात नहीं है। मैंने और धर्मों को विचारा, सभी में कमोवेश यही बात पायी। धर्म और राजनीति के दायरे अलग रखना ही अच्छा है, लेकिन यह समझते हुए कि दोनों की जड़ें एक हैं। धर्म दीर्घकालीन

राजनीति है : राजनीति अल्पकालीन धर्म है। एक ही वस्तु के दो स्वरूपों (अल्पकालीन और दीर्घकालीन) के भेद का एक नतीजा अवश्य होता है। वह
यह कि लम्बान में काल शांत है। अल्प में काल रुद्र है। दोनों का तात्पर्य एक है। धर्म जो दीर्घकाल है, अच्छाई करता है और अच्छाई की स्तुति। राजनीति जो अल्पकाल है, बुराई से लड़ती है और बुराई की निन्दा करती है : जब फर्क बहुत बढ़ जाता है और एक दूसरे से सम्पर्क टूट जाता है, तब अच्छे की वस्तु निर्जीव हो जाती है और बुरे की निन्दा केवल कलहप्रियता बन जाती है। अच्छे-से-अच्छे धर्म के सामने खतरा है कि वह अर्धमुर्दा न हो जाये। अच्छी-से-अच्छी राजनीति के सामने यह खतरा रहता है कि वह झगड़ालू न बन जाय, लेकिन यहाँ चर्चा बुरे धर्म और बुरी राजनीति की नहीं ।

हाँ, धर्म और राजनीति का अविवेकी मिलन दोनों को भ्रष्ट कर देता है। किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति से नहीं मिलना चाहिए। इससे साम्प्र-दायिक कट्टरता जनमती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का जो आधुनिक सिद्धांत है उसका सब से बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक कट्टरता न उपजने पाए।
एक और मतलब यह भी है कि राजनीति के दण्ड देने के अधिकार और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए—नहीं तो दकियानूसी भी बढ़ सकती है और भ्रष्टाचार भी। **इतना ध्यान में रखते हुए भी, फिर भी जरूरी है कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोड़ें, मर्यादा निभाते हुए।**

हमारे तीन महान् स्वप्न

राम, कृष्ण और शिव भारत में पूर्णता के तीन महान स्वप्न हैं। सबका रास्ता अलग-अलग है। राम की पूर्णता मर्यादित व्यक्तित्व में है। कृष्ण की उन्मुक्त सम्पूर्ण व्यक्तित्व में और शिव की असीमित व्यक्तित्व में। लेकिन हर एक पूर्ण है। किसी एक का एक या दूसरे से अधिक पूर्ण होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। पूर्णता में केवल गुण या किस्म का विभेद होता है। हर आदमी अपनी पसन्द कर सकता है या अपने जीवन के किसी विशेष क्षण से सम्बन्धित गुण या पूर्णता चुन सकता है। कुछ लोगों के लिए यह भी सम्भव है कि पूर्णता की तीनों किस्में साथ-साथ चलें; मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व साथ-साथ रह सकते हैं। हिन्दुस्तान के महान् ऋषियों ने सचमुच इसकी कोशिश की है। उन्होंने राम के मर्यादित व्यक्तित्व को शिव और कृष्ण से बहुत दूर नहीं रखा

है। रामेश्वर में राम को शिव की स्थापना करते और सरयू के तीर राम को होली खेलते भी दिखाया है। लोगों के पूर्णता के स्वप्न अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे में घुलमिल गए हैं; लेकिन अपना रूप भी अक्षुण्ण बनाये रक्खे हैं। राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के दो मानवीय रूप हैं, जिनका अवतार तब होता है, जब धरती पर धर्म का नाश और अधर्म की वृद्धि होती है। राम धरती पर त्रेता में आए, जब धर्म का रूप इतना अधिक नष्ट नहीं हुआ था। वे आठ कलाओं से बने थे, इसलिए मर्यादित पुरुष थे। कृष्ण द्वापर में आए थे, जब अधर्म बढ़ती पर था, वे सोलहों कलाओं से बने थे और इसीलिए सम्पूर्ण पुरुष थे। जब विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया, तो स्वर्ग में उनका सिंहासन बिल्कुल सूना था। लेकिन जब राम के रूप में आए, तो विष्णु अंशतः स्वर्ग में थे और अंशतः धरती पर!

राम समन्वय के प्रतीक

राम इस समन्वय के प्रतीक थे। इसीलिए राम आनन्द-सागर हैं, हिलोरों वाला नहीं, विश्रांत। जिस तरह हिमालय के निर्मल निर्झर से शरीर शांत होता है, फलस्वरूप थोड़ा-थोड़ा मन भी, उसी तरह राम के निर्मल निर्झर से मन धुलता है और फिर क्या? पूरी रामायण में शांतरस है, इतना जितना कहीं और नहीं! तुलसी इसी शांत रस की सीमा हैं।

तुलसी का तो शब्द चयन तक शांति की समा बाँधता है। कभी-कभी अति होती है। तुलसी की रामायण में प्रायः सभी अच्छे पात्र बहुत ज्यादा अश्रु-लोचन हैं। राम की आँखों में अक्सर आँसू झलकते हैं। शांति और करुणा एक-दूसरे के बहुत नजदीक हैं। मनुष्य जब गद्‌गद् होता है, तब उसमें करुणा व्यापती है और विस्तार भी। इसमें खतरा है, एक तरफ विडम्बना का और दूसरी तरफ निर्जीवता का। हिन्द के दिमागी इतिहास में दीर्घकाल से ऐसा ही हो रहा है। जो इन खतरों से सावधान रहते हैं, रामायण के शांत रस का निर्बन्ध मजा लेते हैं। यहाँ गोता लगाना नहीं होता, यहाँ तो आदमी डूबता है।

शांत रस और आधुनिक मन

लोग पूछ सकते हैं कि मुझ जैसे आदमी को शांत रस से ऐसा लगाव कैसे? बात यह है : कर्म-फल-संग को छोड़ कर लड़ी जाने वाली लड़ाई अन्दर की शांति के बिना नहीं चल सकती। नहीं तो जय-पराजय के चक्कर में आदमी जय छोड़

देगा। चौदह बरस के पहले ही वनवास खतम कर लौट आना चाहेगा। धर्म की धुरी नहीं बनेगा, मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं हो पाएगा। चारों तरफ समझौते करने लगेगा।

यह सही है कि अंदर की शांति भी हो, बाहर का सौम्य हो और फिर भी बुराई के खिलाफ लड़ाई चलती रहे, ऐसा दुष्कर है, प्रायः असम्भव है। राम इसी असम्भव सूरज, चाँद की ओर हमें खींचते हैं। आखिर अपने पुरखे ही तो हैं। उतना न सही, पर जितना उन जैसा बना जा सके; उतना अच्छा ! आदमी खुद बिना हिले और घटनाओं को हिलाए। जो लोग घटनाओं को हिलाना छोड़ देते हैं, उन्हें अन्दर की शान्ति भी नहीं मिलती। जो अन्दर की शान्ति के बिना हिलते रहते हैं, उन्हें कहीं-न-कहीं स्वार्थ के पंक में फँसना पड़ जाता है।

राम खुद हिले, तीन-चार बार। न हिले होते तो अच्छा होता। यह होते हुए भी उन जैसा मर्यादित जीवन कहीं और नहीं; न इतिहास में, न कल्पना में। उनको हिलाने में कवियों और कहानीकारों ने अलग-अलग किस्से बनाये हैं। धोबीवाला किस्सा राम को नरनारी सम्बन्ध के सिलसिले में अति-दोषी बनाता है। हालाँकि मनोविकार से उनको मुक्त करता है। हाँ, इस किस्से ने एक फिजूल किस्म के जनतन्त्र की बहस जरूर छेड़ दी है। इसी किस्से का विदेश की कुछ रामायणों में और देश के भी कुछ पुराने नाटकों और रामायणों में दूसरा प्रकार है। चाहे सोती, चाहे जागती सीता के पास रावण का चित्र मिलता है, एक ननद की नटखटी के कारण ननद ने ज्यादा दूर की जाने कौन-सी चाल सोची हो। जो भी हो, रामकथा के कई रूप कई रामायणों में हैं। तुलसी की रामायण के साथ-साथ उनकी जानकारी से भी दृष्टि पैनी और साफ जरूर होगी। उन्हें भी जानना चाहिये। ●

रामायण राष्ट्र की निधि

राजापुर में गोस्वामी तुलसीदास जी की हस्तलिखित रामायण को राष्ट्र की निधि बनानी चाहिए। जो लोग रामायण दिखा कर कुछ जीविकोपार्जन कर लेते हैं, उन्हें सरकारी कुछ स्थायी आर्थिक सहायता दे देनी चाहिए; जिससे वे रामायण रखने तथा उससे पैसा पैदा करने का मोह छोड़ सकें और संतुष्ट भीर हें।

—पं० जवाहरलाल नेहरू



लोहिया का प्रस्तावित रामायण मेला : निष्पति और परिणति

प्राध्यापक श्री बाबूलाल गर्ग, एम० ए०, शास्त्री
मंत्री : अ० भा० रामायण मेला समिति

एक दशक पूर्व अनीश्वरवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के विरल व्याख्याता समाजवादी-चिन्तक डॉ० राममनोहर लोहिया ने संतकवि तुलसीदास के 'राम-चरित मानस' को केन्द्र-बिन्दु बनाकर प्रसिद्ध तीर्थ चित्रकूट में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विराट 'रामायण मेला' आयोजित करने की घोषणा की, तो उस समय न केवल रूढ़िवादी परम्परा प्रतिबद्ध धर्मनिष्ठ लोग चौंके थे, वरन् कुछ तथा-कथित प्रगतिशील एवं अग्रगामी चिन्तकों को भी डॉ० लोहिया के विचारों में साम्प्रदायिकता एवं प्रतिक्रियावादिता की एक छिपी गन्ध की अनुभूति हुई थी। और ऐसा शायद इसलिए कि उन लोगों ने इस तथ्य को नजरन्दाज कर दिया था कि भारतीय समाज और उसकी मूलभूत चिन्तन-प्रक्रिया एवं जीवन-पद्धति की आकृतियों-व्याकृतियों का सूक्ष्म एवं गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण सहज तटस्थता एवं तलस्पर्शी गहराई के साथ गान्धी जी के बाद यदि किसी राजनैतिक पुरुष ने किया था, तो वह डॉक्टर राममनोहर लोहिया थे !

डॉ० लोहिया न केवल राजनीति के प्रौढ़ अध्येता, वरन देश के सामाजिक-सांस्कृतिक बोध के वह सूक्ष्म-द्रष्टा एवं तत्वान्वेषी व्याख्याता भी थे। उन्होंने इस तथ्य को अच्छी तरह से समझा था कि भारतीय जन-जीवन की चेतना-जड़ें एक सुदीर्घ परम्परा एवं समृद्धि, संस्कृति और सुविचारित शाश्वत धर्म की मिट्टी में दृढ़ता के साथ जमी हुई हैं। अतएव ऐसे संस्कृति-धर्म-संश्लिष्ट समाज के सामने धर्म एवं संस्कृति का स्पर्श किए बिना कोरी राजनीति की बात करना व्यर्थ, अप्रभावी तथा संगतिहीन है। राजनीति से बाह्य उत्कर्ष—भौतिक उपलब्धि के विकास का अवसर भले ही प्राप्त हो जाय, किन्तु मानवीय संवेदनाओं एवं नैतिकता के धरातल पर जीवन-मूल्यों के मानदण्डों के स्थिरीकरण की दिशा में जनमानस का निर्माण-विकास उसकी सांस्कृतिक पकड़ के बिना सम्भव नहीं; इसीलिए डॉक्टर लोहिया ने इस पर गहराई से सोचा और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में धर्म और संस्कृति का भी अध्ययन-आलोड़न किया। अन्तर्मन्थन

की उस प्रक्रिया ने उन्हें अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया कि मूलरूप में राजनीति और धर्म कोई दो चीजें नहीं; बल्कि दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। उनमें केवल समय और प्रयोग का भेदमात्र है। जिसे आज हम राजनीति कहते हैं, वही कालान्तर में समाज में संस्कारबद्धता से स्थायित्व प्राप्त कर धर्म की नामोपाधि ग्रहण कर लेती है। और इसी प्रकार आज का धर्म सुदूर अतीत में नियमित, निरापद एवं लोक सापेक्ष्य जीवन-यापन के निमित्त निर्मित राजनैतिक नियमों-व्यवस्थाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं। डा० लोहिया के शब्दों में : 'धर्म दीर्घकालीन राजनीति है : राजनीति अल्पकालीन धर्म है। एक ही वस्तु के दो स्वरूपों-अल्पकालीन और दीर्घकालीन-के भेद का एक नतीजा अवश्य होता है। वह यह कि लम्बान में काल शान्त होता है : अल्प में काल रुद्र है। दोनों का तात्पर्य एक है। धर्म जो दीर्घ काल है, अच्छाई करता है, और अच्छाई की स्तुति। राजनीति जो अल्पकाल है, बुराई से लड़ती है और बुराई की निन्दा करती है। जब फर्क बहुत बढ़ जाता है और दूसरे से सम्पर्क टूट जाता है, तब धर्म अच्छाई न कर केवल स्तुति भर करता है; अतएव वह निष्प्राण हो जाता है : और राजनीति बुराई से नहीं लड़ती, केवल निन्दा भर करती है, अतएव वह कलही हो जाती है।'

धर्म को निष्प्राणता और राजनीति को कलहधर्मिता से उबारने के लिए डॉ० लोहिया ने धर्म और राजनीति के व्यावहारिक दर्शन की सरल व्याख्या ही नहीं प्रस्तुत की, बल्कि दोनों के समन्वित रूप को जीवन में उतारने के लिए उन्होंने विविध सांस्कृतिक आन्दोलनों-आयोजनों को भी जन्म दिया। और अपनी इसी प्रज्ञा से सम्प्रेरित होकर उन्होंने भारतीय धर्म-ग्रन्थों, प्राचीन काव्यों-पुराणों तथा भारतीय देवी-देवताओं का अध्ययन-मनन और विभिन्न तीर्थों का परिभ्रमण कर उनके तत्व-बोध का आकलन-मूल्यांकन किया। भारत के प्राचीन विश्वासों, मान्यताओं, जीवन पद्धतियों और कलाकृतियों के निकट पर्यवेक्षण ने उन्हें जनजीवन के प्रभावी, सर्जक तथा परिष्कारी तत्वों के प्रति नये ढंग से सोचने-समझने की प्रेरणा दी। जिसका फल यह हुआ कि संस्कृति-सम्पृक्त विचारधारायें उनकी राजनैतिक जीवन-पद्धति का प्रमुख अंग बन गयीं।

चिन्तन के इन क्षणों में डॉ० राममनोहर लोहिया को सर्वाधिक अभिभूत किया 'रामकथा' ने—अपनी व्यापकता, प्रभविष्णुता, सम्प्रेषणीयता और जन-स्पर्शिता के कारण। इस वैज्ञानिक युग में, जहाँ पुराने मूल्यों, परम्पराओं एवं

उपलब्धियों को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में बौद्धिकता ने पूर्णरूपेण नकार दिया है, डॉक्टर लोहिया जैसे प्रबुद्ध एवं प्रगतिशील समाजवादी नेता द्वारा 'रामकथा' में जीवन के विकासशील तत्वों को स्वीकारना एक बहुत बड़ी अहमियत रखता है। स्पष्ट है कि इसके स्वीकरण का कारण है भारतीय जन-जीवन में 'रामकथा' की गहरी पैठ। रामकथा की अविच्छिन्न रसधारा ने भाषाविभेदों की दुर्गम प्राचीरों तथा कालखण्ड की पर्वतकाराओं को ढहाकर आर्यावर्त के समग्र भूखण्ड के जन-जन को आप्लावित किया है। यही नहीं; इसने एशिया के प्रमुख देशों की भी अबाध यात्रा की है और उन देशों की आन्तरिक चेतना को स्पन्दित कर वहाँ की संस्कृति में वह संश्लिष्ट हो गयी है। इसलिए अकेली 'रामकथा' में इतनी प्रबल सर्जनात्मक गतिशीलता एवं सम्प्रेरक शक्ति निहित है कि यदि इसका सही मूल्यांकन एवं अधिग्रहण किया जाय; तो वह भारत में ही नहीं, एशिया के जनजीवन में भी एक जबर्दस्त क्रान्ति ला सकती है; जिसकी आज सबसे बड़ी आवश्यकता है और जिसके लिए महान विचारक एड़ी-चोटी का पसीना एक किए जा रहे हैं। 'रामकथा' भारत तथा एशिया के प्रमुख देशों के बीच एकसूत्रबद्धता की मजबूत तथा शक्तिशाली कड़ी हो सकती है। कम-से-कम थाईलैण्ड, लंका, बरमा, कम्बोडिया, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा, बाली, नेपाल तथा भारत तो 'रामकथा' के माध्यम से सहज ही सांस्कृतिक-बन्धनों में आबद्ध होकर एकजुट हो सकते हैं; क्योंकि इन सभी देशों ने अपने आदर्शों तथा मूल्यों को जीवन्त बनाने के लिए 'रामकथा' को स्वीकारा है।

'रामकथा' पर देश-विदेश में अनेक रामायणें लिखी गयी हैं, जिनमें अपनी-अपनी भाषाओं में अपने-अपने ढंग से उसका चित्रण और प्रस्तुतीकरण किया गया है। संस्कृत में 'रामकथा' का सर्वप्रमुख ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण' है; अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, उदारराघव आदि भी 'रामकथा' के प्रमुख ग्रन्थ हैं। संस्कृत के अतिरिक्त तमिल में 'द्रविड़ रामायण' तथा 'कम्ब रामायण' और तेलुगु में 'द्विपाद रामायण', 'रंगनाथ रामायण' लिखी गयी हैं; जो वहाँ के लोक जीवन में श्लाघनीय प्रभाव रखती हैं। इसी प्रकार असमिया में 'कन्दली रामायण', बंगला में 'कृत्तिवासी रामायण' तथा उड़िया में बलरामदास कृत रामायण उपलब्ध है और सभी रामायणें अपने प्रणेताओं के परिवेश, मान्यताओं, आकांक्षाओं, विवेक तथा दृष्टिबोध के अनुसार अपनी निज की विशेषतायें रखती हैं।

बौद्धों तथा जैनियों ने भी रामकथा का अंकन किया है, किन्तु इनमें वर्णित रामकथा वाल्मीकि रामायण की कथा-वस्तु से कुछ भिन्न है। 'पउमचरित,' 'दशरथजातकम्,' 'अनामकम् जातम्' आदि इनके रामकथा काव्य हैं।

रूस में खोतानी' रामायण बताई जाती है। इण्डोनेशिया की सबसे प्राचीन रामायण 'काकाविन रामायण' है, जो जावानी भाषा में लिखी गयी है। ऐसे ही भारत के दक्षिण-पूर्वी देशों—थाईदेश, मलाया, कम्बोडिया और मारीशस आदि में भी रामकथा का व्यापक महत्व है। इसका प्रमाण इन देशों के प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

किन्तु हिन्दी भाषा में लिखी गयी तुलसी की रामायण 'रामचरित मानस' की महत्ता सर्वोपरि है। राम-कथा का यह एक ऐसा विलक्षण ग्रन्थ है, जिसने जनजीवन का स्पर्श बड़ी हो निकटता एवं रागात्मक संश्लिष्टता के साथ किया है। जिसमें सच बात तो यह है कि : 'राम का तो नाम है गाथा कहानी है हमारी।'

इस प्रकार रामकथा की व्यापकता एवं प्रभविष्णुता को देखकर उसके माध्यम से डॉ० लोहिया जहाँ एक ओर भारतीय समाज में क्रान्तिकारी तेजस्विता लाना चाहते थे, वहाँ दूसरी ओर वह एशिया के प्रमुख देशों की सांस्कृतिक एकता को दृढ़ बनाकर उन्हें एकसूत्र में आबद्ध करना भी उनका लक्ष्य था। सांस्कृतिक एकता का बीज डालकर महात्मा बुद्ध ने भी एशिया के अनेक देशों में भावात्मक सूत्रबद्धता के अंकुर रोपे थे। बुद्ध के बाद २५०० वर्षों के अन्तराल में ऐसा कोई महापुरुष देखने में नहीं आया, जिसका प्रयास इस दिशा में हुआ हो। इतिहास के इस लम्बे काल खण्ड के बाद डॉ० राममनोहर लोहिया ही ऐसे दूरदर्शी प्रभविष्णु राजनीतिक नेता हुए, जिन्होंने इस तथ्य को हृदयंगम किया और ऐसा माध्यम खोज निकाला; जिसकी धड़कनें इन सभी देशों के लोक-जीवन में एक साथ स्पन्दित हो रही हों और वह माध्यम था 'रामकथा : रामायण'।

और चित्रकूट में रामायण मेला' सम्पन्न करने का उनका संकल्प उनके इन्हीं विचारों का प्रतिफल था। रामायण मेला की पृष्ठभूमि में डॉ० लोहिया ने कहा था : 'संत कवि गोस्वामी तुलसीदास की रामायण (रामचरित मानस) को आधार बनाकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की प्रवासभूमि चित्रकूट में 'रामायण मेला' किया जाय, जिसका उद्देश्य हो आनन्द, दृष्टिबोध, रस संचार तथा हिन्दुस्तानी को बढ़ावा। तुलसी और रामायण जन-जीवन में एक अमिट

स्थान बना चुके हैं। रामायण उत्तर और दक्षिण की एकता का ग्रन्थ है और राम हिन्दुस्तान की उत्तर-दक्षिण एकता के प्रमुख देवता। इसलिए राम, रामायण और तुलसी का महत्व हमारे सांस्कृतिक जीवन में सर्वोपरि है।'

रामायण मेला के इस विराट विचार-यज्ञ की पृष्ठभूमि में एक ओर जहाँ डॉक्टर लोहिया की यह इच्छाशक्ति अन्तर्निहित थी कि राम के माध्यम से जनजीवन में तेजस्विता आये, देश की भावात्मक एकता सुदृढ़ हो और एशिया के अन्य देशों से सम्बन्ध मधुरतम हों, वहाँ दूसरी ओर वह चाहते थे तुलसी का पुनर्मूल्यांकन करना भी। कारण स्पष्ट है। प्रत्येक विकास-कामी एवं विकास-गामी समाज में उस साहित्य, कला एवं विचारपद्धति का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है, जो समाज के संचालन-प्रोन्नयन में अपना प्रभावकारी स्पर्श रखते हों। पाश्चात्य विचारक हेनरिक इब्सन ने एक जगह कहा है कि 'प्रत्येक प्रगतिशील और अग्रगामी समाज में सामाजिक आचार पद्धति एवं चिन्तन दृष्टि का एक स्तर पन्द्रह या बीस वर्ष में अवश्य बासी पड़ जाता है और यदि वह बासी नहीं पड़ा या बासी पड़ जाने पर ताजा नहीं किया जा सका, तो समझो कि वह समाज जराग्रस्त और मरणासन्न हो चुका है।' फिर तुलसी तो शताब्दियाँ पार कर गया है और चेतना के अनेक रूप धारण कर चुका है। इसलिए समाज की गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य में उसकी चिन्तन-पद्धति का, उसके आयामों की सीमाबद्धता का, उसके समकालीन भावबोध का, उसके सामाजिक दाय भाग का और उसके सार्वभौम एवं शाश्वत अवदान का युगानुकूल मूल्यांकन करना क्षण की बहुत बड़ी माँग है और वैसे विचार किया जाय तो पूर्व स्थापित मूल्यों एवं चिन्तन-पद्धतियों का पुनर्मूल्यांकन स्वयं तुलसी ने भी जितने सहज, संवेदन एवं गम्भीर भाव से किया है, उतना शायद अन्य कवि नहीं कर सका। उनका 'मानस'—रामायण प्रबन्ध काव्य पूर्ववर्ती बाल्मीकि प्रभृति रामकथा काव्य प्रणेताओं का एक प्रकार से पुनर्मूल्यांकन ही तो है, जो 'क्वचिदन्यतोऽपि' की उद्घोषणा के साथ एक सर्वथा नये भावबोध में प्रतिफलित हुआ है; इसलिये पुनर्मूल्यांकन शब्द से चौंकने की आवश्यकता नहीं। तुलसी के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया से समाज में युगबोध की ताजा एवं परिष्कृत चेतना जनमेगी, जो उज्ज्वल भविष्य के नाना बीजों को स्वयं में धारण किये रहेगी—ऐसा डॉक्टर लोहिया का दृढ़ विश्वास रहा।

किन्तु लोहिया जी की उत्कट इच्छा के बावजूद रामायण मेला न हो सका।

यह इस वैचारिक-अनुष्ठान की दुखद परिणति रही। प्रारम्भ में योजना का विस्तार-प्रचार तो काफी अच्छा एवं उत्साहवर्द्धक हुआ, पर कार्यान्वयन की दिशा में कार्यपद्धति को गतिशीलता एवं सिद्धि नहीं मिली और घटनाओं की शृंखलाओं ने यहाँ तक मोड़ ले लिया कि अन्ततोगत्वा दुखी होकर लोहिया जी को उसको स्थगित करने की घोषणा करनी पड़ी। इसमें कारण अनेक कहे जा सकते हैं। कुछेक तो लोहिया जी ने प्रकट भी किये हैं। पर वे सब मेरी समझ में आनुषंगिक या गौण हैं। मूल कारण तो यही कहा जा सकता है कि रामायण मेला के मौलिक सत्य को पचाने तथा बुद्धिग्राह्य बनाने की दिशा में तत्कालीन भारतीय जनमानस की अक्षमता, सम्प्रक्त उदासीनता और उसके मूल्यबोध के स्वीकरण का निषेधात्मक भाव था। भला जिसे हृदय तथा बुद्धि की स्वीकृति नहीं मिली, उसकी साकारता कभी अस्तित्व में आ सकती है? रामायण मेला की भी यही नियति, यही विडम्बना थी। जब डॉ० लोहिया के दल के खुद अनेक अंतरंग सहयोगी-अनुयायी भी रामायण मेला के प्रति शंकालु एवं द्विधाग्रस्त दिखे और उन्हें लोहिया जी के प्रतिगामी, प्रतिक्रियावादी एवं पुरातनपन्थी हो जाने की आशंका घेरने लगी तो रूढ़िग्रस्त एवं परम्परा-प्रतिबद्ध जनसाधारण की दृष्टि उसके प्रति कैसे साफ रह सकती थी? हाँ, देश का बौद्धिक वर्ग अवश्य इस योजना से उत्साहित-अनुप्रेरित होकर इसकी कल्याणकारी सम्भावनाओं एवं सुदूरगामी परिणामों के प्रति आश्वस्त रहा और आज भी उसकी उद्दाम लालसा है कि देश के सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से रामायण मेला की योजना साकार हो। पर बुद्धिजीवियों की कोई औपचारिक जमात या पार्टी तो होती नहीं, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की ऐसी समयसाध्य, व्ययसाध्य और जनसाध्य विशाल योजना की अपेक्षित व्यवस्था कर सकती।

और अब तो रामायण मेला के योजना-नायक डॉ० राममनोहर लोहिया भी नहीं रहे। अपने अधूरे सपनों को वे अपने साथ सँजोये चले गये। पर सन्तोष है—कुछ अवशेष आज भी बाकी हैं और वे हैं डॉ० लोहिया के जीवन की ढेर सारी सांस्कृतिक एवं वैचारिक उपलब्धियाँ। 'कीर्तिर्यस्य सजीवति'—की भारतीय मान्यता के अनुसार आज भी लोहिया जी रहे हैं और रामायण मेला से सम्बद्ध उनके वे विचार बड़ी द्रुतगति से अभिभूत-आक्रान्त करते जा रहे हैं विश्व के जनमानस को। हालाँकि यह सही है कि उनके जीते-जी रामायण मेला संपन्न नहीं हो सका, पर वह केवल स्थूल जगत में। किन्तु लोक चेतना के

अन्तराल में रामायण मेला की जो गूँज भर गयी है, वह उसे नित्य उत्प्रेरित और आन्दोलित करती रहती है। और अब तो उसका स्थूलरूप भी जहाँ-तहाँ देखने-सुनने में आ रहा है। देश के कोने-कोने से ही नहीं, विदेशों से भी समय-समय पर रामायण मेला होने के समाचार मिलने लगे हैं। साक्षी है—इण्डोनेशिया में विश्व का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन (महोत्सव) जो इस वर्ष बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ है; जिसमें भारत, नेपाल, बरमा, थाईलैण्ड कम्बोडिया, मलयेशिया और इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि मण्डल सम्मिलित हुए हैं। मानस चतुश्शती समारोह के अन्तर्गत भारत में सम्पन्न होने वाले विश्व रामायण सम्मेलन को 'यूनेस्को' द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान करने की घोषणा क्या डॉ० राममनोहर लोहिया के 'रामायण मेला' की योजना से सम्प्रेरित नहीं कही जा सकती? ऐसी स्थिति में सचाई तो यह है कि 'रामायण मेला' अपनी असम्पन्नता में भी अपना काम करता चला जा रहा है—ऐसा हमारा विश्वास है।[1] ●

विश्व के आध्यात्मिक साहित्य में सर्वोपरि स्थान

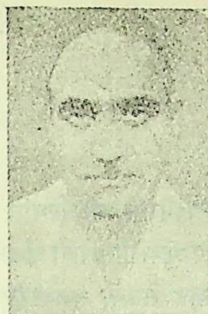
रामचरित मानस में वर्णित मानवता, धर्मनिष्ठा और कर्तव्य-परायणता के सन्देश का आज के युग में बड़ा महत्व है। गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति हमारी सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि कर्तव्य-परायणता और मानव-सेवा के उनके सन्देश को हम अपने जीवन में उतार पावें।

भारतीय दर्शन में तुलसी का अनुपम स्थान है। जिस ज्ञानदीप को कविवर ने प्रज्ज्वलित किया, वह आज भी प्रकाशमान है। विश्व के अध्यात्मिक साहित्य में तुलसी रामायण का स्थान सर्वोपरि है। मन मुग्ध करने की इसमें वह शक्ति है, जो न तो महाभारत में मिलती है और न वाल्मीकि रामायण में।

—वी० वी० गिरि
(राष्ट्रपति, भारत गणराज्य)

---

१. प्रस्तुत लेख लेखक की 'रामायण-मेला और लोहिया संस्मरण' पुस्तक की भूमिका (पृष्ठभूमि) से उद्धृत किया गया है।



तुलसी : लोक-जीवन के निर्माता-कवि

डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर

[हिन्दी के वरेण्य लेखक एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० भगीरथ मिश्र ने आज के आपाधापी युग में तुलसी के आस्थाप्रधान साहित्य की उपयोगिता पर विशद प्रकाश डालते हुए कहा है कि तुलसी-साहित्य में हिमालय के समान उदात्तता है, साथ ही वसुन्धरा के समान सब को धारण करने की शक्ति उसमें विद्यमान है। उनका साहित्य नित्यप्रति जीवन को स्पर्श करता हुआ भी उच्च-आदर्श की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है—सम्पादक]

'रामचरित मानस' की रचना को चार सौ वर्ष होने जा रहे हैं। यह ग्रंथ एक युगावतार था, जिसने असंख्य व्यक्तियों का उद्धार किया। जब तक लोगों के मन में श्रद्धा-भक्ति नहीं, तब तक इसके संबंध में कुछ अधिक करने और कहने की आवश्यकता न थी, पर आज का युग बुद्धिप्रधान, स्वार्थपरता का युग है। प्रश्न यह है कि इस घोर कलियुग में जहाँ अनास्था का सागर उमड़ रहा है; विश्वास-घात, कपट, बेईमानी का बोलबाला है, तब तुलसी के आस्थाप्रधान साहित्य का क्या उपयोग होगा ? विचारणीय यह भी है कि 'मानस' में विवेचित जो विभिन्न मानव-मूल्य हैं, आज के संदर्भ में उनकी क्या उपादेयता है? मानस चतुश्शती के अवसर पर हमें इसी मूल प्रश्न पर विचार करना है। आज जाति-गत, व्यक्तिनिष्ठ, कर्मगत और पदगत ऊँच-नीच समाप्त हो रही है। आज चारों ओर कर्तव्य के प्रति चरम उदासीनता का वातावरण है, जब कि 'मानस' में चित्रित स्थिति अधिकार के प्रति उदासीनता और कर्त्तव्य तथा सेवा के प्रति प्रखर जागरूकता प्रस्तुत करती है, अतः बिलकुल उलटी दशा है। तब फिर तुलसीदास के आदर्श का आज क्या महत्व हो सकता है ?

यहाँ हमें हताश नहीं होना चाहिए। 'रामचरित मानस' आज भी सहारा देने के लिए समर्थ है। वास्तव में तुलसीदास ने जब 'मानस' लिखा था, तब भी

यही स्थिति थी। जन-सामान्य की बात छोड़िये, पर राज्यशासन की स्थिति आज जैसी ही रही थी। शासन का अधिकार पाने के लिए पुत्र पिता को कैद करता था, भतीजा चाचा का वध करता था और भाई के खून से रंगी तलवारों से ही राजसिंहासन सुशोभित होते थे। आज भी राजनीति और शासन में उसी प्रकार के दाँवपेंच, चरित्र-वध और नैतिकता की हत्यायें हो रही हैं, अतः आज 'मानस' की अधिक आवश्यकता है; क्योंकि तुलसीदास ने इसका निर्माण ऐसी ही परिस्थिति में किया था। यह दिखाने के लिए कि राज्याधिकार, पद और वैभव आदि की अपेक्षा मानवता के गुणों का कहीं अधिक मूल्य है। दूसरों की सम्पत्ति को छीना-झपटी की वृत्ति की अपेक्षा त्याग का मूल्य कहीं अधिक स्थायी है; क्योंकि उससे मनुष्य को चारित्रिक महत्ता प्राप्त होती है। आज इस बुद्धि-प्रधान युग में क्या हम लोभियों, चोरों, डाकुओं, दंभियों को त्यागी, तपस्वी, अपरिग्रही और सज्जनों से अच्छा समझते हैं। क्या हम मानते हैं कि सत्य की अपेक्षा झूठ, ज्ञान की अपेक्षा मूर्खता, ईमानदारी की अपेक्षा छल-कपट हमारे वैयक्तिक या सामाजिक जीवन के लिए अधिक लाभदायी हैं? यदि नहीं, तो 'राम-चरित मानस' का मूल्य आज भी घटा नहीं है, वरन इस विघटनोन्मुख दशा में समाज के जोड़ने वाले उसमें प्रतिपादित तत्वों की अधिक आवश्यकता है। आज भी हमें राम जैसा शासक चाहिए; जो अपने स्वार्थ को त्याग कर दंभी, विलासी और दूसरों से बरबस छीनी हुई संपत्ति का उपभोग करने वाले रावणों का विनाश कर सके। आज हमें भरत जैसा निष्ठावान व्यक्ति चाहिए, जो राम के प्रति पूर्ण आस्था रखता हुआ अपने को समर्पित कर सके और अवसर पड़ने पर चौदह वर्षों तक कुशलता पूर्वक त्याग से शासन-प्रबंध कर सके। शासन और जन कल्याण का प्रथम आधार है त्याग और तपस्या (कष्ट सहन)। आज हम इसीलिए तो समाज के नेताओं के प्रति विक्षोभ का भाव रखते हैं, क्योंकि उनमें त्याग न होकर स्वार्थपरता है। जनता और समाज के हित के कार्य करने की क्षमता किसी की उतनी ही ऊँची होती है, जितनी कम उसकी आतमभरता और पदलोलुपता हो। ऐसे व्यक्तियों को लोग स्वयं नेतृत्व देना चाहते हैं, जो योग्य होते हुए भी त्यागी हों। आज देश के रंगमंच पर नेतृत्व करने वाले ढूँढने से भी नहीं मिलते, क्योंकि उनमें त्याग और योग्यता की नितांत कमी है। 'रामचरित मानस' हमें इन्हीं गुणों को विकसित करने की प्रेरणा देता है, अतः 'मानस' हमारे लिए आज भी मार्ग-दर्शक है।

तुलसीदास ने मानस में भारतीय संस्कृति का एक प्रामाणिक एवं सर्व-ग्राह्य स्वरूप अंकित किया है। इस कथन के साथ-साथ कुछ लोगों के मन में वर्णाश्रम व्यवस्था और उस पर गोस्वामी जी की उक्तियों के सम्बन्ध में शंकाएं उठ सकती हैं, अत: उनका मत स्पष्ट कर देना आवश्यक है। उनकी वर्णाश्रम व्यवस्था समता पर आधारित है। 'राम प्रताप विषमता खोई' के साथ-साथ वे 'वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग' की बातें कहते हैं। यदि वर्ण-व्यवस्था चलती है, तो सभी को अपने-अपने कर्त्तव्य में चौकस होना चाहिए। ऊँच-नीच की भावना तो तब आती है, जब इस व्यवस्था में वैषम्य आ जाता है, जैसा कि उनके द्वारा चित्रित कलियुग में है, जिसके अन्तर्गत अपना कर्त्तव्य न करते हुए भी प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति दंभी है और कहता यह है कि हम श्रेष्ठ हैं। भ्रष्टाचार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी में निन्दनीय है। यह व्यवस्था कर्म से ही तो चलती रहती है। आज भी है; कोई बौद्धिक कार्य करता है, कोई सुरक्षा का कार्य करता है, कोई व्यापार का कार्य करता है और कोई सेवा का। प्रत्येक व्यवस्थित समाज में यह कर्मगत व्यवस्था है। यदि कर्मणा व्यवस्था के साथ-साथ जन्मना व्यवस्था का निर्वाह समानता की भावना के आधार पर किया जाय, तो अधिक योग्यता के साथ कार्य हो सकता है। उसके विकृत स्वरूप का पूर्ण त्याग करना आवश्यक है, पर यह व्यवस्था का कोई दोष नहीं। आज भी जिसके हाथ में शक्ति है, धन है, उसका सम्मान होता है—अतः दोष वैयक्तिक आचरण का होता है, जो शक्ति प्राप्त करने पर अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। इसी प्रकार आश्रम व्यवस्था भी आवश्यक है। संन्यासी और त्यागी व्यक्तियों की कमी हो जाने पर जीवन भर पद या धन के लालच में लगे रहने वाले स्वार्थी लोगों की समाज में भरमार हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यापक सामाजिक हित की दृष्टि का विकास रुक जाता है और क्षुद्र स्वार्थी भाव परिव्याप्त हो जाते हैं। अतः हमें त्यागी, तपस्वी व्यक्तियों का सम्मान करके आश्रम व्यवस्था का कोई न कोई रूप अपनाना चाहिए, यह संकेत हम तुलसी के विचारों से ग्रहण कर सकते हैं। इसी प्रकार के अनेक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन को सुदृढ़ बनाने वाले तत्त्वों के संकेत हमें तुलसीदास के ग्रंथों में मिलते हैं।

पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय, तीनों ही प्रकार के जीवन के प्रसंग में तुलसीदास का सत्य और प्रेम की रक्षा करने का सन्देश हम पाते हैं। दशरथ

की वन्दना करते हुए उनके अन्तर्गत इन दो विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :

> बन्दहुँ अवध भुवाल, सत्य प्रेम जेहि राम-पद ।
> बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ ॥

उनकी इस सत्य और प्रेम की विशेषताओं का उल्लेख चित्रकूट में भरत के राम को घर वापस ले चलने के आग्रह का उत्तर देते हुए राम ने इस प्रकार किया है :

> राखेउ राउ सत्य मोंहि त्यागी । तन परिहरेउ प्रेम पन लागी ॥
> तासु बचन मेटत उर सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू ॥

राम के सामने भी सत्य और प्रेम, दोनों के पालन की समस्या है। राजा की आज्ञा पालन करना सत्य को पूरा करना है और भरत के भाव की रक्षा करना प्रेम का पालन करना है। अतः चित्रकूट में भरत को स्नेहपूर्ण व्यवहार के द्वारा समझा-बुझाकर वापस करने में राम ने सत्य और प्रेम, दोनों ही का पालन किया। भरत ने भी राम की आज्ञा मानकर सत्य का और अयोध्या से पैदल चित्रकूट तक जाकर राम को मना लाने के प्रयत्न में प्रेम का पालन किया। यह घटना तो सभी रामायणों में है, पर इस घटना से जीवन के दो परिपूरक तत्त्वों-सत्य और प्रेम को मथकर निकाल लेने का कार्य तुलसीदास जी का अपना है। सत्य और प्रेम, इन दोनों के पालन से मनुष्य का चरित्र उच्चता और सर्वप्रियता को प्राप्त होता है। सत्य का पालन सामाजिक कर्तव्य का निर्वाह है और प्रेम का पालन वैयक्तिक कर्त्तव्य है। प्रेम का भी सामाजिक रूप है' पर कभी-कभी दोनों में संघर्ष उपस्थित हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रेम की अपेक्षा सत्य का निर्वाह करना अधिक समाजहितकारी होता है, पर यदि दोनों का निर्वाह हो सके, तो सर्वोत्तम है। गांधी जी ने अपने जीवन में सत्य और अहिंसा को अपनाने का उपदेश दिया था। अहिंसा प्रेम का ही रूप है। अहिंसा निषेधात्मक या हिंसा की अभावात्मक विशेषता है, पर प्रेम एक भावात्मक गुण है। यदि प्रेम का उदात्त रूप विकसित हो सके, तो अहिंसा उसमें स्वतः समाविष्ट हो जाती है, अतः सत्य और प्रेम को जीवन के परिपूरक मूलभूत तत्त्वों के रूप में देखना चाहिए, यह तुलसी का दृष्टिकोण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास केवल कवि नहीं, सरल

शब्दावली में जीवन का तत्त्व प्रकट करने के कारण, वे केवल कवि रूप में आने वाले उत्कृष्ट साहित्यकारों से बढ़ जाते हैं। विश्व के उत्कृष्ट कवि, जिनकी रचनाओं में काव्य की कलात्मक विशेषतायें ही विद्यमान हैं, तुलसी से पीछे रह जाते हैं। साथ ही वे इतने लोकप्रिय भी नहीं, जितने तुलसीदास। इस विशेषता के कारण इन्हें हम सर्वाधिक लोकप्रिय भारतीय कवि कह सकते हैं।

वास्तव में तुलसीदास के काव्य में कई सर्वश्रेष्ट विशेषताओं का समन्वय हुआ है, जो उनकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। उन्होंने अपनी महान कृति का निर्माण समस्त उपलब्ध श्रेष्ट साहित्य के आधार पर किया है और उसमें केवल साहित्यिक पक्ष ही नहीं, जीवन के अन्य पक्ष आचार, धर्म, नीति, संस्कृति, राजनीति आदि का व्यावहारिक रूप में समावेश है। गोस्वामी जी की कला लोककाव्य की सहज स्वाभाविकता और साहित्यिक परंपरा दोनों को लेकर चलती है। उसमें उक्तिवैचित्र्य के साथ-साथ सरलता, लालित्य के साथ-साथ सर्वग्राह्यता, लोकानुभव पर आधारित अलंकृति, महाकाव्य की विशेषताओं के साथ नाटकीय तत्त्वों का समावेश, विवरण एवं वर्णन के साथ औचित्य का निर्वाह, शब्दों के सूक्ष्म सांकेतिक एवं सार्थक प्रयोग के साथ-साथ उदात्त प्रेरकता और स्मरणीयता, ये सब विशेषतायें मिलकर उनकी रचना में एक अद्भुत प्रभाव भर देती हैं और वह सहज ही हमारे हृदय को द्रवित और मन को विशिष्ट चेतनासम्पन्न करती चलती है। हम उसके प्रभाव से इतने सुपरिचित हैं कि कभी-कभी उसका विश्लेषण कठिन हो जाता है, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसमें व्यक्ति और समाज के संस्कार बनाने की शक्ति है। उनका काव्य सांस्कृतिक काव्य है।

गोस्वामी तुलसीदास ने जीवन के एकांगी स्वरूप का चित्रण नहीं किया, वरन् उसके समग्र सम्पूर्ण रूप को सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। अपने जीवन के सर्वांगीण विकास के चित्रण में वे कबीर, सूर, जायसी आदि अन्य महान कवियों से अधिक व्यापक, स्वस्थ एवं सामाजिक प्रभाव रखते हैं। गोस्वामी जी की कृतियों में हमें मानव-जीवन की जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त विभिन्न स्थितियों और अवस्थाओं का वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न संस्कारों एवं क्रियाकलापों का सजीव रूप हमारे अपने अनुभव को जाग्रत करता है और उसे सम्पन्न बनाता है। विभिन्न संस्कारों, उत्सवों, रूढ़ियों, विश्वासों को सँजोये हुए लोकजीवन अपने सहज रूप में प्रवहमान हो रहा है। ये चित्रण ऐसे लगते हैं, जैसे हमारे

अपने जीवन के चित्रण हैं। इन चित्रणों में कहीं तो समृद्ध, कलापूर्ण पृष्ठभूमि है और कहीं सामान्य अकिंचन, प्राकृतिक जीवन। परन्तु मानवोचित उदात्त उत्कृष्ट व्यवहार की कमी हमें कहीं भी देखने को नहीं मिलती। सभी स्तरों के जीवन में दुष्ट मनोवृत्तियों के साथ उच्च और आदर्श मनोवृत्तियाँ भी हैं—चाहे वह राक्षसों का जीवन हो या वानरों का, कोल-भीलों, निषादों या सामान्य जनों का। उनके इस प्रकार के चित्रण का संकेत है कि जीवन का कोई स्तर दोषपूर्ण नहीं। वे व्यक्ति हैं, जिनमें दोष हैं। दोषों के परिहार का उपाय करना प्रत्येक व्यक्ति का काम है। सन्त कवियों में वही एक अकेले कवि हैं, जो जीवन के प्रति एक अदम्य उत्साह, आनंदमयी स्फूर्ति एवं कर्त्तव्यनिष्ठा भर देते हैं, क्योंकि अन्य सन्त जीवन के प्रति वैराग्य भाव जगाना चाहते हैं, पर तुलसी उसमें जीवन की परिपूर्णता एवं आनन्दोपलब्धि देते हैं।

ग्राम्य और नगर दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों की समन्वित झाँकियाँ तुलसीदास के 'मानस' में विद्यमान हैं। उन्हें कोरा आदर्शवादी कहना भूल है। उनका आदर्श यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित है। उनमें आदर्श और यथार्थ, दोनों पक्षों का व्यावहारिक समन्वय है। उनके संसार में कलियुग भी है और रामराज्य भी। उसमें कौशल्या और सीता भी हैं तथा कैकेयी और मन्थरा भी। उसमें स्वार्थी और दुष्ट भी हैं तथा प्रेमी और त्यागी भी। गोस्वामी जी के वर्णनों में जीवन की सुकुमारता और स्निग्धता के साथ-साथ उग्रता और भीषणता, मधुरता के साथ-साथ कटुता, करुणा के साथ-साथ निष्ठुरता, संकीर्णता और स्वार्थ के साथ-साथ उदारता और त्याग, मोह के साथ-साथ उदासीनता, शांति के साथ-साथ जीवन का हाहाकार और ध्वंस : सब एक साथ विद्यमान हैं। ये सब वर्णन न केवल हमारा मनोरंजन करते हैं, वरन् विविध अनुभवों से हमारे मानस को ओतप्रोत कर देते हैं। गोस्वामी जी द्वारा वर्णित रामकथा में कहीं जीवन की भीषण और विषम परिस्थितियाँ कर्तव्य, धर्म, स्नेह और मर्यादा को निगल जाने के लिए तैयार हैं, तो कहीं उसका सरल, स्निग्ध और भोला रूप हमारी समस्त कुटिलता और कर्कशता को द्रवीभूत कर बहा देने का जादू रखता है। उसमें कहीं विषाद और हाहाकार है, तो कहीं उल्लास के फुहारे और आनन्द का अजस्र धारा-प्रवाह भी। कहने का तात्पर्य यही है कि जीवन अपनी व्यापक समग्रता के साथ समस्त रूपों और रसों को लिए हुए लहरा रहा है।

गोस्वामी जी सिद्ध रस कवि हैं। उन्हें लोकमानस का यथार्थ ज्ञान है। उसको प्रेरित, प्रभावित एवं भावमग्न करने की सिद्धि उन्हें प्राप्त है। साधु-असाधु, सरल, कुटिल स्निग्ध, कठोर सबके हृद्गत भावों का सही रूप में चित्रण करने की सामर्थ्य उनमें है। प्रेम, करुणा, वीरता, उल्लास, क्रोध, भय आदि के भावों में बहा देने की शक्ति उनके काव्य में सर्वत्र दिखलाई देती है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव-तरंग को संचालित करने की कुशलता उनके शब्दों में है। वे अपने चित्रणों में भावों के केवल प्रेरक और उत्तेजक ही नहीं, वरन् संस्कारक भी हैं। शृंगार का विशद और स्वाभाविक वर्णन करते हुए भी वे सदैव मर्यादापूर्ण हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण सामाजिक है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं। भाव और रस की पृष्ठभूमि के रूप में जो उन्होंने व्यक्तित्व एवं परिस्थिति का सजीव रूप सामने रखा है, वह कल्पना और अनुभूति पर प्रभाव की रेखाओं को उभारने की अद्भुत क्षमता रखता है। उनकी दो-चार पंक्तियाँ ही व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताओं को सजीव कर देती हैं। उदाहरणार्थ :

माखे लखन कुटिल भईं भौंहैं। रद-पुट फरकत नयन रिसौं हैं।।

अथवा तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा।।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।।
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा।।
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते। सहजहिं चितवत मनहुँ रिसाते।।

अथवा

नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।।

या

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियन अँखियन बीच।।

इन चित्रणों में हम देखते हैं कि भाव और परिस्थिति के अनुरूप चरित्र की रूपरेखाओं को स्पष्ट करने की सामर्थ्य है। ये रूप-रेखायें आगे आने वाले भाव या क्रिया-कलाप की उभरी हुई अविस्मरणीय पृष्ठभूमि बन जाती हैं, जिनका अमिट प्रभाव पड़ता है।

तुलसीदास कुशल कवि और सामाजिक विचार के अतिरिक्त भावुक भक्त और साधक भी हैं। उनकी दृष्टि से भक्ति समस्त मानसिक विकारों तथा

लौकिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं को दूर करने का अचूक उपचार है। अन्य साधनों का महत्व बाद को आता है :

> नाम राम को अंक है, सब साधन हैं सून ।
> अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दस गून ।।
> तुलसी राम सनेह करु, त्यागि सकल उपचारु ।
> जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहारु ।।
> रामनाम अवलंब बिन, परमारथ की आस ।
> बरसत बारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ।।

यह भक्ति ईश्वरीय या उच्च मानवता के गुणों का विकास और उनके प्रति प्रेम-भाव है, इसीलिए वे निर्गुण ब्रह्म का जप न कहकर राम-रूप सगुण ईश्वर की आराधना की बात कहते हैं। उनकी यह व्याख्या बड़ी प्रगतिशील है। उनके राम दीनबंधु, स्नेह निभाने वाले और दुष्टों की दुष्टता दूर कर उनका कल्याण करने वाले हैं। इन्हीं गुणों को हृदयंगम करना भक्ति की सबसे बड़ी कसौटी है। तुलसीदास ने उसको इस प्रकार सर्वग्राह्य रूप में व्यक्त किया है :

> सुनि सीतापति सील सुभाउ ।
> मोद न मन तन पुलक नयन जल,
> सो नर खेहवर खाउ ।।

राम के शील स्वभाव को हृदयंगम करना तुलसी की भक्ति या मानवता का एक मुख्य रूप है। अतः निश्चित है कि उनकी भक्ति जटिल वैयक्तिक, ऐकान्तिक, एकांगी साधना न होकर सर्वांगीण सामाजिक जीवन का सुन्दर दर्शन है। इसी कारण वे उसका बार-बार उपदेश करते हैं और जीवन का प्रशस्त राजपथ मानते हैं : "गुरु कह्यौ रामभजन नीको मोहि लगत राजडगरो सो।" उनके भक्ति मार्ग का द्वार सबके लिए खुला है। भक्ति का अंकुर उग आने पर मनुष्य बुराई से दूर होता जाता है, जबकि अन्य मार्गों में, जिनमें अपनी साधना की सफलता का अहंवाद विद्यमान है, विकारग्रस्त हो जाने का खतरा सदैव रहता है। इस मार्ग में राम के गुणों का सम, विषम परिस्थिति में उनके आचार का तथा उनकी कृपा का सदैव सहारा है, अतः मार्ग से भ्रमित होने एवं फिसलने का डर इसमें नहीं। इस प्रकार भक्ति मार्ग की सरलता और निश्चयता के द्वारा तुलसीदास लोगों के हृदयों में गहरी दृढ़ आस्था एवं आस्तिकता भर सके, जिसके बिना निराशा और

अंधकार में जीवन भार हो जाता है। उसी जीवन के प्रति आस्था को प्राप्त करने के लिए आज भी हम महात्मा तुलसीदास के पास जाते हैं। यह उनके युग-युग और जन-जन को प्रिय होने का रहस्य है।

तुलसीदास समन्वयवादी थे। मर्यादा के पालन का आदर्श रखते हुए भी वे रूढ़ि-विरोधी थे, स्वयं भक्त और संन्यासी होते हुए भी उन्होंने लोक-जीवन के प्रति एक अदम्य उत्साह लोगों में भर दिया; निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति, निवृत्ति-प्रवृत्ति और भोग-त्याग आदि के बीच समन्वयवादी दृष्टिकोण की स्थापना कर कट्टरता को दूर करने का प्रयत्न किया। 'साह ही को गीत, गीत होत है गुलाम को' कहकर उन्होंने समस्त भक्तों की एक ही जाति और गोत्र को स्वीकार कर भेदभाव को दूर बहाया और उदार मानववादी दृष्टिकोण का विकास किया। तुलसी में ऊँच-नीच की भावना का पोषण नहीं, अपने को नीच कहना तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित संस्कृति का एक तत्त्व है। जो अपने को स्वयं ऊँचा कहता है, वही वास्तव में निकृष्ट है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने इस प्रकार के उच्च विचारों एवं भावों से संपन्न साहित्य को लोकभाषा में अवतरित किया; जिससे उसके द्वारा समस्त समाज का, शिक्षित-अशिक्षित और सब का कल्याण हो सके। अपने ज्ञान और अनुभव को, यदि उसमें कुछ वास्तविक तथ्य है, तो कुछ ही व्यक्तियों में सीमित रखना सामाजिक अन्याय है। इसलिए किसी एक भाषा-विशेष को उन्होंने महत्त्व नहीं दिया : "का भाषा की संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच" कहकर उन्होंने कही जाने वाली बात को अधिक महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने हमें एक व्यापक राष्ट्रभाषा के विकास का भी मार्ग दिखाया है। सर्वाधिक प्रचलित भाषा और उसके प्रयोगों का ढाँचा लेकर हमें आवश्यकतानुसार उसके रूप को भरने, सजाने-सँवारने के कार्य में विभिन्न भाषाओं के उपयुक्त शब्दों को लेते रहना चाहिए, पर यह कार्य मूल भाषा के रूप को बिगाड़ने वाला न होकर उसे अधिक प्रांजल और समृद्ध बनाने वाला होना चाहिए। अपने ग्रंथों में अवधी या ब्रज के मूल रूप को लेकर उसमें उन्होंने संस्कृत, अरबी, फारसी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के शब्दों को यथास्थान स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। मुख्य पारिभाषिक शब्दावली को संस्कृत से लेकर उसे लोकभाषा में ढालकर प्रस्तुत किया है। अतः वे हमारी आज की समस्याओं को सुलझाने में सहायक हैं।

गोस्वामी जी की एक महत्वपूर्ण विशेषता उदात्त प्रेरणा है। उनकी रचनाओं

का अध्ययन करने वाला व्यक्ति कभी भी इस भ्रम में नहीं पड़ सकता कि इस स्थिति में उसे क्या करना चाहिए। जान-बूझकर न करे, यह दूसरी बात है। उनकी प्रेरणा केवल बौद्धिक नहीं, वरन् भावुक भी है। वे उदात्त भावनाओं के संस्कार बना देते हैं और हमें आचरण का एक मानदंड प्रदान करते हैं, जिस पर हम किसी के भी आचरण को तौल सकते हैं। उसका मूल्यांकन कर सकते हैं। मेरा निजी विचार है कि किसी भी साहित्यकार या कवि की यह विशेषता उसकी बहुत बड़ी क्षमता का द्योतक है।

गोस्वामी जी अपने युग के प्रतिनिधि उतने नहीं, जितने वे युग-निर्माता तथा युग-युग के संस्कारक हैं। उनके ग्रंथों की व्याख्या में युगानुकूल थोड़े परिवर्तन की आवश्यकता है। बहुत कम ऐसे स्थल उनकी कृतियों में हमें मिलते हैं, जहाँ वे अपने युग की सीमाओं में घिरे हुए दीखते हों, इसलिए किसी भी युग की सीमाओं में उनकी रचनाएँ बँध नहीं पातीं और ऐसा जान पड़ता है कि जो युग हमारे सामने उपस्थित है, उसी के लिए ही वे लिखी गई हैं।

इतनी व्यापक एवं विविध क्षेत्रों की चेतना को अपने में सँजोकर लिखने वाला कौन कवि है? संस्कृत के अनेक कवि हैं, उनकी कविता अत्यंत उत्कृष्ट है, पर उनके काव्य में कलात्मक मनोरंजन होता है या फिर उपदेश मिलते हैं। काव्यानंद के साथ-साथ जीवन की वह प्रेरणा हमें नहीं मिलती, जो तुलसी देते हैं। अंग्रेजी के भी अनेक ऊँचे कवि हैं। एक-एक पक्ष में तुलसी से श्रेष्ठ हो सकते हैं, परन्तु एक साथ इतने क्षेत्रों की उत्कृष्ट उपलब्धियों को हमारे आधुनिक जीवन के लिए उपयोगी रूप में प्रस्तुत करने की विशेषता उनमें से कितनों में है? और वह भी इस रूप में प्रस्तुत करने की विशेषता कि शिक्षित-अशिक्षित, ग्राम्यजन और नागरिक सभी के द्वारा ग्राह्य हो सके। अतः हम कहते हैं कि उनके साहित्य में हिमालय के समान उदात्तता है, साथ ही वसुन्धरा के समान सबको धारण करने की शक्ति उसमें विद्यमान है। उनका साहित्य, नित्यप्रति जीवन को स्पर्श करता हुआ भी उच्च आदर्श की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है, अतः विविध सिद्धियों वाले गोस्वामी तुलसीदास युग-युग और जन-जन के कवि हैं। वे लोकमानस के कवि हैं। हम उन्हें पाकर गौरवान्वित हैं।

●



पूर्वाञ्चलीय राम-काव्य और मानस : तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० रमानाथ त्रिपाठी, एम० ए०, डी० लिट्०
प्राध्यापक : हिन्दी विभाग : दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

[रामकथा-साहित्य के मर्मगामी अध्येता एवं मुक्त चिन्तनशील विद्वान् डॉ० रमानाथ त्रिपाठी ने प्रस्तुत शोध-लेख में असमियाँ, बंगला तथा उड़िया भाषाओं की रामायणों से तुलसी की रामायण-रामचरित मानस-का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए रामकथा की व्यापकता तथा प्रत्येक भाषा के रामकाव्य में उस प्रदेश की विशिष्टता पर विशद प्रकाश डाला है—सम्पादक]

निरुक्तकार यास्क (७-८वीं शती) एवं पाणिनि (५वीं शती) दोनों ने ही मगध की ओर के प्रदेश को प्राच्य कहा है। शुद्धवादी का दर्प करने वाले आर्यों की दृष्टि में प्राच्य-देश के लोग सुसंस्कृत न थे। महाभारत में अंग-बंग-कलिंग-पुण्ड्र और सुह्य नामक पाँच राज्यों का वर्णन हुआ है। इन पाँचों को मिलाकर पंच-गौड़ कहा जाता था। गौड़ देश के समुन्नत दिनों में आसपास के कुछ अन्य राज्य भी अपने को गौड़ देश के अन्तर्गत मानते थे। पंच-गौड़ तथा इसके उत्तर प्राग्ज्योतिष एवं पश्चिम में मगध और मिथिला को सम्मिलित रूप से पूर्वभारत कहते थे। यहाँ का शासक जरासंध था। पूर्वभारत के अन्तर्गत बिहार, असम, और उत्कल प्रान्त का अधिकांश क्षेत्र आ जाता है। यहाँ बोली जाने वाली बोलियों का मूलस्रोत भी एक ही है – मागधी, प्राकृत और अपभ्रंश। मागधी अपभ्रंश की पूर्वी शाखा की भाषाओं के क्षेत्र असम, वंग और उत्कल प्रदेशों की भाषाओं के रामचरित-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन मैंने प्रस्तुत किया है और इसी क्षेत्र को पुकारने की सुविधा के लिए पूर्वांचल कहा है।

अंग्रेजों की कृपा से असम आसाम हो गया। असम नाम ढाई-तीन सौ वर्ष से पुराना नहीं है। प्राग्ज्योतिष नाम प्राचीन है। रघुवंश में प्राग्ज्योतिष के साथ कामरूप नाम का भी प्रयोग है। बंगाल वंग, वरेन्द्र और राढ़ देशों से

मिलकर बना है। वंग अब पाकिस्तान में है। वरेन्द्र उत्तरी बंगाल को कहते हैं, इसका अन्य नाम पुण्ड्र भी था। पश्चिमी-दक्षिणी बंगाल राढ़ कहलाता था। उड़ीसा राज्य तीन प्रदेशों से मिल कर बना है—उड्र, उत्कल और कलिंग।

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों के समान पूर्वांचल में भी भाषाओं के साहित्य के प्रेरणास्रोत थे : रामायण, महाभारत एवं भागवत ग्रन्थ। यहाँ कृष्णभक्ति का प्रबल प्रसार हुआ, किन्तु रामचरित-काव्य इसके पूर्व लिखे जा चुके थे। राम के निष्कलंक परिवारिक आदर्श के प्रभाव ने भी यहाँ की उपासना-पद्धतियों को नियंत्रित किया है। रामकथाकारों एवं कृष्णभक्त कवियों ने इन प्रदेशों को अनार्य-उपासनाओं के प्रभाव से मुक्त रखने का प्रयास किया है, लेकिन अधिक सफलता रामकथाकारों को मिली।

आलोच्य चारों रामायण-लेखकों का प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं होता। असमीया-रामायण के लेखक माधव कन्दली थे। उन्होंने लंका-कांड के अंत में लिखा कि बराहराजा महामाणिक्य के अनुरोध से उन्होंने रामायण की रचना की। बराहराजा की खोज कर माधव कन्दली का जीवनकाल अनुमानित किया गया। इनका जन्म १४०० ई० के आसपास हुआ होगा। इनकी रामायण के कुल पाँच काण्ड उपलब्ध हैं। दो कांड लुप्त हुए, इन दो कांडों की पूर्ति का प्रयास असम के महान् संत शंकरदेव (१४४९-१५५६ ई०) के द्वारा हुआ। उन्होंने स्वयं उत्तरकांड लिख कर जोड़ा तथा अपने शिष्य माधवदेव कायस्थ (१४८९-१५९६ ई०) के द्वारा उन्होंने आदिकांड लिखाया। माधव कन्दली की रामायण वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करती है। लेखक को मार्मिक स्थलों की पहचान है, वह रामभक्त है। शंकरदेव एवं माधवदेव ने कन्दली की शैली का अनुसरण करते हुए भी कृष्ण-भक्ति का आरोप करने का प्रयास किया है।

बंगला-रामायण लेखक कृत्तिवास का जन्म फुलिया गाँव में १५वीं शताब्दी के मध्य हुआ। वे स्वाभिमानी ब्राह्मण थे, किसी गौड़ेश्वर की सभा में जब उन्हें अर्थ पुरस्कार प्रदान किया जा रहा था, तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया और केवल गौरव माँगा। कृत्तिवासी रामायण की अतिख्याति उसके शुद्ध पाठ के लिए घातक बनती गयी। कथक लोग मृदंग और मंजीर के साथ रामायण का गायन करते थे और उसमें प्रसंगानुकूल रोचक कथाएँ जोड़ते जाते थे, फलतः पाठ अशुद्ध एवं प्रक्षिप्त होता गया, किन्तु ख्याति बढ़ती गयी। बंगला रामायण

के रोचक प्रसंगों का प्रभाव असम एवं उड़ीसा तक पहुँच गया था। असमीया विद्वानों को शिकायत है कि उनके प्रदेश के लोग अपनी रामायण की अपेक्षा बंगला की 'रंगचोया' (अर्थात् अवान्तर प्रसंगों से युक्त) रामायण की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं। श्रीरामपुर के मिशनरियों ने सर्वप्रथम कृत्तिवासी बंगला-रामायण का संस्करण प्रकाशित किया था, संपादक थे जयगोपाल तर्कालंकार। पहला संस्करण ठीक संपादित हुआ था, दूसरे संस्करण में उन्होंने बहुत परिवर्तन कर दिये। अब प्रथम संस्करण उपलब्ध नहीं है, बंगला में जितने भी संस्करण बिक रहे हैं, वे सब तर्कालंकार के द्वितीय-संस्करण के पुनर्मुद्रण मात्र हैं।

उड़िया-रामायण लेखक बलरामदास १४७०-८० ई० के मध्य कभी उत्पन्न हुए। १५१० ई० के पूर्व तक उन्होंने रामायण लिख ली होगी। ये शूद्र-जातीय थे। जगन्नाथ स्वामी के परमभक्त बलरामदास प्रतिभाशाली कवि थे, वे कहीं शब्द-कृपण नहीं दिखाई पड़ते। कई स्थलों पर वे अधिकारिक कथा-वर्णन से हट गये हैं। उन्होंने अनेक स्थलों पर ज्योतिष, रागरागिनी, तीर्थ, पत्थर, धातु-रत्न, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, देश-नगर-द्वीप, स्वप्न-विचार आदि की विस्तार-सहित चर्चा की है। स्त्री-पुरुष के उत्तेजित कामालाप एवं रतिक्रीड़ा के चित्रात्मक वर्णन में लेखक की रसिकता प्रकट होती है। स्वयं शूद्र होते हुए भी वे ब्राह्मण-विद्वेषी नहीं थे। तपःपूत ब्राह्मणों के आगे वे श्रद्धानत थे, किन्तु ढोंगी ब्राह्मणों पर व्यंग्य करने में वे कभी चूके नहीं हैं।

गो० तुलसीदास ने कम से कम ग्रन्थ-रचना का संवत् तो दे दिया है। उनका मृत्यु-संवत् १६८० वि० भी सर्वस्वीकृत है, पर जन्म-संवत के विषय में मतभेद है। उनके जन्म-स्थल के विषय में भी मतभेद है—हाजीपुर, हस्तिनापुर, तारी और काशी में तो तुलसीदास का जन्म नहीं ही हुआ, राजापुर के पक्ष में भी प्रामाणिक सामग्री नहीं है। इधर बाँदा जिले के राजापुर के अतिरिक्त दो और राजापुर प्रकाश में आये हैं : बाराबंकी का राजापुर और बिहार का राजापुर। अयोध्या और सोरों का पक्ष अधिक पुष्ट है। सोरों-सामग्री सबसे अधिक व्यवस्थित है। इसीलिए वह संदिग्ध मानी गयी। रामभक्ति में आकंठ सरल, सात्त्विक, निरभिमानी भक्त तुलसीदास अत्यन्त कोमल स्वभाव के थे। वे सरल थे सज्जनों के लिए, किन्तु दुष्टों को वे तेजोदीप्त वाणी में फटकार भी लगाया करते थे। राम जैसे सुन्दर और सुशील सशक्त आदर्श पुरुषोत्तम पर न

रीझने वालों के जीवन को घृण्य पशुओं-सा मान कर ऐसे जनों के प्रति वे अत्य-धिक अनुदार हो उठते थे। जीवन के घोर यथार्थ का उन्हें ज्ञान था। संसार में दुष्ट लोग फलते-फूलते हैं एवं साधुजन पल-पल में कष्ट उठाते हैं : जीवन के इस कटु सत्य से वे खूब परिचित थे :

फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल ।
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ।।

प्रत्येक आलोच्य रामायण का अपने-अपने प्रदेश में कुटीर से लेकर प्रासाद तक प्रचार था, जन-जन के कंठ पर इनके छन्दों का वास था। अपने-अपने प्रदेशों की समाज-संस्कृति का बिम्ब भी इन ग्रंथों में मिलता है। यदि इन राम-कथाकारों ने रामकथा को भाषाओं में लिपिबद्ध न किया होता, तो वाल्मीकि के राम आकाश-कुसुम ही रह जाते। प्रदेशीय प्रतिनिधि रामचरित-काव्य होने के नाते ही इनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, अन्यथा मानस की तुलना में ये ग्रन्थ आते ही नहीं हैं। मानस अपने प्रदेश की सीमाओं को लाँघ कर ख्याति अर्जित कर सका है। इस महाकाव्य की तुलनात्मक श्रेष्ठता इस बात से भी प्रकट है कि बंगला एवं उड़िया भाषाओं में इसके दर्जन से ऊपर अनुवाद हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, नेपाली, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, केरली और असमीया-भाषाओं में भी इसके कई अनुवाद हो चुके हैं।

रामायणों में युगीन चित्रण के अध्ययन में मैंने विशेष रुचि ली है। रामायण-रचनाकाल तक हिन्दी और बँगला भाषी क्षेत्रों पर विदेशी आततायी शक्तियों के अनेक असहिष्णु अत्याचार हो चुके थे, इन दोनो प्रदेशो के लेखकों ने राक्षसों के चित्रों में तत्कालीन अत्याचारियों की झलक देखी है :

जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउं पुर आगि लगावहिं ।।

आदि लिख कर तुलसी ने कहा है :

जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।।

बँगला-लेखक ने भी इसी प्रकार का साम्य देखा। उसने रावण को तत्कालीन अत्याचारीशक्ति के समतुल्य मान कर उसके दरबार में तस्लीम-प्रथा का पालन कराया है। जब कोई राम की सभा में उपस्थित होता है तो केवल एक बार माथा झुकाने की प्रथा पूरी की जाती है—राज्यव्यवहारे कुकुर नोआय माथा। किन्तु रावण के दरबार में तीन बार माथा झुकाने की रस्म थी :

तीन बार माथा नोडाय राज्यव्यबहारे।

जियाउद्दीन बर्नी ने तारीखे फीरोजशाही में वर्णन किया है कि बंगाल के सूबेदार बुगराखां ने बादशाह के कुबाद के सामने माथा झुका कर तीन बार पृथ्वी चूमने की रस्म अदा की। आईने अकबरी में भी तस्लीम करते हुए तीन बार झुकना पड़ता था। पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज शहाबुद्दीन को बन्दी बना कर तथा उसकी अपनी पद्धति से अपने को तीन बार सलाम करने के उपरान्त छोड़ देता है—'किय सलाम तिय बार।'

असमीया-रामायण एवं विशेषतः उड़िया रामायण में योधन-नीति (स्ट्रेटेजी) का अच्छा परिचय दिया गया है। इस ग्रन्थ में विश्वामित्र ने दशरथ से पूछा था—'क्या गढ़ के आसपास खाई है? गढ़ के भीतर पर्याप्त जल और अन्न का संचय है? क्या गढ़ के द्वार पर कुंत, शावल आदि अस्त्र, लाख, तेल, बारूद-गोली और पत्थर रखे हैं? लोहे के किवाड़ों में काँटेदार कीलें लगी हैं या नहीं? सैन्य-भंग होने पर प्रयोग के लिए चोरद्वार है या नहीं? गढ़ जीतने की कोई संधि तो नहीं जानता? दूसरे की सेना को गढ़ के भीतर तो नहीं रखा जाता? मार्ग में चलते समय गुप्त बातें तो नहीं कही जातीं?' युद्ध की तैयारी का वर्णन इस प्रकार—(शत्रु के ऊपर फेंकने के लिए) तेल गरम करो, प्राचीरों पर तीक्ष्ण अस्त्र रखो, निरन्तर सीढ़ी लगाये रहो। चोर-द्वारों पर मत्तगज रखो। निरन्तर मशालें जलाते रहो। अकेले मत जाओ, एक दूसरे की पीठ की रक्षा करो। मोर्चों पर बिना बोले जागते रहो।' संत तुलसीदास राजप्रभाव से बहुत दूर थे। उन्होंने राजनीति-विषयक अपनी धारणाएँ तो कहीं-कहीं प्रकट की हैं, किन्तु उन्हें रण-चातुर्य-ज्ञान नहीं था। एक भक्त एवं कवि को इसके ज्ञान की विशेष आवश्यकता भी नहीं है। तत्कालीन बारूद, गोले एवं चोगान खेल का काल-दोष-पूर्ण वर्णन तुलसीदास ने किया है।

सभी रामायणों में शिव, शक्ति, गणेश, कृष्ण आदि की उपासना का वर्णन मिल जाता है। शिव-शक्ति के मंगलमय एवं भयंकर दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। उड़िया-रामायण के शिव अत्यन्त कामुक एवं रसिक हैं, बंगला के शिव साधारण गृहस्थ जैसे हैं। मानस के योगिराज एवं भक्त शिव जैसा चरित्र पूर्वांचलीय ग्रन्थों के शिव का नहीं है। उड़िया में हठयोग की साधना वर्णित है। चारों रामायणों में अवैदिक उपासनाओं की उपेक्षा की गयी है। वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत, ब्राह्मण का महत्त्व आदि वर्णन सभी रामायणों में है।

नारी के सम्बन्ध में भारत-प्रसिद्ध दृष्टिकोण अपनाया गया है। उसे पतिव्रता होना चाहिए, वह अबला है, उसे स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए एवं चंचल स्वभाव की होने के कारण वह विश्वसनीय नहीं। पूर्वांचल के जनों को स्त्री प्यारी होती है, यहाँ के रामायण-लेखकों ने परम्परागत निन्दा करते हुए भी उसकी प्रशंसा भी की है। उड़िया लेखक ने नारी के स्पृहणीय अतिशय मनोरम रूप का वर्णन करते हुए उसका रमण अत्यन्त सुखकर बताया है। नारी निन्दा में तुलसी अधिक उग्र हो गये हैं।

ग्रन्थों में स्थानीय चित्रण (लोकल कलर) भी आ गया है। प्रायः संस्कार, प्रसाधन, वस्त्रालंकार, भोज्यपदार्थ, पशुपक्षी, वनस्पति, आदिमजाति, धर्म-साधना एवं स्थान-विशेष का वर्णन करते समय कविगण अपने-अपने परिवेश की झलक दे गये हैं। पूर्वांचलीय रामायणों में स्त्रियाँ मंगल अवसरों पर उलुध्वनि करती हैं। सीता (असमीया-बंगला में) शंखचूड़ी पहने हैं। नेत वस्त्रों का प्रयोग किया गया है। असमीया-रामायण में वासिविहा, बंगला-रामायण में शुभदृष्टि, काल-रात्रि आदि प्रथाओं तथा उड़िया-रामायण में लवणचउरी प्रथा का वर्णन है। मानस में लहकौर और कोहबर की प्रथाओं का पालन कराया जाता है। नारी के शृंगार-प्रसाधन का वर्णन मानस में भले न मिले, किन्तु पूर्वांचलीय रामायणों में प्रचुर मात्रा में मिल जाएगा। आलता-काजल-सिंदूर का प्रायः वर्णन है। नैषधीय-चरित की नारायणीय व्याख्या में लिखा भी है :

प्राच्ये हि सुन्दर्यो विलोचने नेत्रत्रप्रान्त निर्गत या ।
कर्णोपान्तस्पर्शिन्याञ्जन रेखया भूषयन्ति ॥

आज भी पूर्वांचलीय नारियाँ नेत्रों में काजल लगा कर उसकी नोकें कानों की ओर निकाल लेती हैं। उड़िया-रामायण के कई स्थलों पर स्त्रियों द्वारा हल्दी से मुंह धोकर शृंगार करने का वर्णन है :

गाले हलदी ये पुणि नयने कज्जल ।
पुणि पुणि भिडि करि बान्धयन्ति बाल ॥

आज भी उड़िया नारी हल्दी और काजल से सजधज कर केशों में फूल खोंसती हैं। बंगला रामायण में सीता के प्रसाधन के विषय में लिखा है :

विन्दु विन्दु गोरोचना शोभा करे अति ।
अलका तिलका रेखा अर्द्ध अर्द्ध पाति ॥

मैं अलकातिलका के अर्थ की खोज में बहुत दिनों तक जुटा रहा। पुष्पदंत के आदि-पुराण में एक पंक्ति मिली—"कवि अलय तिलय देविहि"। राहुल जी ने अलय तिलय का अर्थ बताया मलय तिलक। विद्यापति की पदावली तथा कीर्तिलता में 'अलकतिलका' का प्रयोग है। बाबूराम सक्सेना, बेनीपुरी, बसंत कुमार माथुर और शिवप्रसाद सिंह ने इसका अर्थ केश और तिलक बताया। गुणानन्द जुयाल ने अलक का अर्थ अलक्तक किया। वस्तुतः यह एक पत्र-रचना थी जिसे भ्रू-युग के ऊपर चंदन-कुंकुम से रचा जाता था।[1] मैंने इस प्रकार के शब्दों के अर्थोद्धार में पर्याप्त परिश्रम किया है। इससे कभी-कभी अपने विषय से भटकाव भी हो गया है।

वाल्मीकि रामायण में आर्यों की गौरवमयी संस्कृति की झलक है। राम एक आदर्श गृहस्थ एवं शासक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे अपने सद्गुणों के कारण नर से नारायणत्व तक उन्नत हुए हैं और परवर्ती युग में उन्हें ब्रह्म का अवतार माना जाने लगा है। यहीं उनके चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण में परिवर्त्तन हो गया; वाल्मीकि के राम अथवा कैकेयी आदि पात्रों के गुणदोष मानवीय थे, उनमें दुर्बलताएं थीं तो वे भी मानवीय थीं। भाषा-रामायणों के रचनाकाल तक राम के ब्रह्मत्व का प्रचार हो जाने के कारण राम अथवा राम से सम्बन्धित कई पात्रों की दुर्बलता को ढकने की चेष्टाएं की गयीं। अनेक आख्यानों की कल्पना कर उनके चरित्रों को नया रंग दिया गया। राम को अवतार मान लेने से चरित्र-विषयक दृष्टिकोण में एक नया परिवर्त्तन यह भी देखा गया कि उन्हें अत्यन्त मधुर एवं सुकुमार चित्रित किया गया है। वाल्मीकि की कौशल्या को चिंता है कि राम लौहदण्ड (परिघ) के समान कठोर भुजाओं का तकिया बना कर कैसे सो पाते होंगे। वाल्मीकि के ऐसे पुष्ट सशक्त राम क्रोध करने पर नाग के समान फुफकारते हुए, धनुषबाण लेकर कालाग्नि के समान पर्वत की चोटियाँ काट गिराने, सागर को सोख लेने तथा वन को जलाकर भस्म कर देने को प्रस्तुत हो जाते हैं। भाषा-रामायणों में ऐसे उग्र आवेशमय राम सजल-जलद-कान्ति, पुष्प-सुकुमार एवं नवनीत-कोमल चित्रित हुए। भक्तों को सुख देने के लिए वे अवतरित हुए थे न! कोमलमन न होते तो

---

१. अलकातिलका—देखिए, लेखक का ग्रन्थ कृत्तिवासी बँगला-रामायण और मानस का अध्ययन, पृष्ठ ११२-१३।

आर्त्तजनों की पीड़ा की सहानुभूति उन्हें कैसे होती ? मन की छाया तन पर भी होती है, अतएव उनका तन भी कोमल हो गया। कहाँ परिघ-सा तन और कहाँ दूर्वादल श्याम सुकोमल शरीर। इस ब्रह्मत्त्व के दृष्टिकोण के कारण ही अग्नि के समान तेजस्वी एवं आदित्य के समान दुष्प्रेक्ष्य उद्दंड अत्याचारी रावण भाषा-रामायणों में शापग्रस्त भक्त बना दिया गया। बाल्मीकि का रावण केवल भोगी है, भाषा-रामायणों का भोगी और भक्त दोनों ही। वह अपने उद्धार के लिए राम से विरोध करता है।

युग-युग से प्रचारित भक्ति-भावना अनेक आचार्यों एवं भक्त कवियों की बुद्धि एवं मन का सम्बल पाकर जन-मानस में इतनी अधिक सशक्त हो गयी कि भक्ति-परक दृष्टिकोण से पृथक् राम और समस्त रामायणी चरित्रों की हम कल्पना नहीं कर सकते। भले ही ऐतिहासिक राम को हमने खोया हो, किंतु हमने जो कुछ पाया है, उसका मूल्य भी कम नहीं।

चरित्र-चित्रण में युगीन प्रभाव भी है। बाल्मीकि के पात्र बलिष्ठ आर्य एवं तपःपूत ऋषि हैं। वे अपने काल के अनुरूप विपुलांस, महाबाहु एवं महोरस्क हैं। उनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, स्वर नगाड़े जैसा है—(दुन्दुभिस्वन निर्घोषः)। भाषा-रामायणों में चित्रित ऋषि अथवा ब्रह्मचारीवर्ग पर युगीन प्रभाव अधिक है। मध्यकाल के शक्तिहीन दुर्बल ब्राह्मण भी रामायणों के ऋषि एवं ब्राह्मण-वर्ग के रूप में प्रतिबिम्बित हुए हैं। असमीया के दुर्वासा मथुरा के भोजनभट्ट चौबे जैसे हैं। बंगला के विश्वामित्र तथा अन्य पात्र दुर्बल, चिड़चिड़े एवं अत्यन्त भीरु बंगाली ब्राह्मण हैं। उड़िया के ऋषिलोग छाता, पोथी, डंडा आदि धारण कर उड़िया ब्राह्मण की भाँति जीवनयापन करते हैं। मानस के ऋषियों में अवश्य ही गांभीर्य है, किन्तु नहीं है तो बाल्मीकि के ऋषियों का तपःतेज। मध्यकालीन नारी के सहज कुतूहल, भय, दुराव, छुईमुई होने का भाव आदि गुण इन रामायणों के नारी पात्रों में मिल जाते हैं।

अन्य रामायणों एवं मानस के पात्रों में पारस्परिक अंतर की मुख्य विशषता है मानसकार के अद्भुत संयम-चित्रण की। अन्य रामायणों में राम के ब्रह्मत्व एवं नरत्व का गड़बड़घोटाला है। एक ओर वे बाल्मीकि के राम की भाँति आवेश का परिचय देते हैं तो दूसरी ओर वे ब्रह्म भी हैं। मानस में वे सदैव ब्रह्म हैं इसलिए उनके चरित्र में विरोधाभास नहीं है। वनवास का समाचार पाकर असमीया के राम का मुख गोधूलि के सूर्य-सा मलिन हो गया था। सीता के

पाताल-प्रवेश कर जाने पर वे रात-रात भर सो न पाते थे। एवं सोते हुए बच्चों को कंठ से लगाकर रोते रहते थे। बंगला-रामायण के राम अभिषेक एवं वनवास के समाचारों से क्रमशः प्रसन्न एवं क्षुब्ध हुए हैं। रावण द्वारा फेंकी गयी शक्ति को लक्ष्मण की ओर आती देख वे गिड़गिड़ा कर शक्ति की प्रार्थना करते हैं। ये राम उस ब्रह्म के अवतार हैं जो अवतार-ग्रहण की प्रतिज्ञा कर विच्छेद के भय से लक्ष्मी के गले में बाहें डाल कर रोये हैं। उड़िया के राम भी साधारण मनुष्य जैसा सत्य व्यवहार करते हैं। वे एकांतमिलन में सीता के प्रति कामुक पति के समान वासनाकुल भाषा का प्रयोग करते हैं। सीता के विरह में यही राम सुध-बुध खोकर प्रमत्तों की भाँति प्रलाप भी करते हैं। मानस के राम के चित्रण में ब्रह्मत्व है, उसमें असंगति नहीं है। वे सर्वत्र ब्रह्म रहते हैं। जहाँ वे शोक-पूर्ण हर्ष के आवेग का प्रकाश करते हैं, वहाँ स्मरण दिला दिया जाता है कि वे नरलीला कर रहे हैं।

वाल्मीकि रामायण के समान पूर्वांचलीय रामायणों के अन्य पात्र भी आवेशपूर्ण हैं। प्रेम, शोक अथवा क्रोध के आवेश में कहनी-अनकहनी कह जाते हैं। वनवास का समाचार ज्ञात कर कौशल्या और लक्ष्मण क्रोध-शोकपूर्ण अविवेक का परिचय देते हैं, सीता मारीच की कपट-ध्वनि से व्याकुल होकर लक्ष्मण के प्रति अति कटु वचनों का प्रयोग करती हैं। यह अविवेकपूर्ण भाव-चित्रण मानवीय सहज-व्यक्तित्व अंकन की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम है। मानस के पात्र ऐसे प्रसंगों पर भावों के आवेग का उग्र अनुभव करते हुए भी असंयम एवं अविवेक का परिचय नहीं देते। यहाँ कौशल्या न तो मंथरा को कोसती हैं और न कैकेयी को। वे राम के साथ चलने का हठ कर उन्हें धर्मसंकट में भी नहीं डालना चाहतीं। अन्य रामायणों का अंगद सीता को न खोज पाने पर सुग्रीव के विरुद्ध षड्यन्त्र करता है, बंगला रामायण में वह राम पर भी सन्देह करता है, किन्तु मानस में कोई भी पात्र राम के ब्रह्मत्व एवं उनकी सत्यता पर शंका नहीं करता। अत्यन्त साधारण पात्रों में भी विवेकमय संयम देखा जाता है। तुलसीदास की यह विशेषता अन्य ग्रन्थों के चरित्रों में दुष्प्राप्य है। इस दृष्टिकोण से उनके पात्र वाल्मीकि के पात्रों से भी विशिष्ट हैं।

पूर्वांचलीय सभी रामायणों की मूलकथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वाल्मीकि के अनुसार ही है, किन्तु दृष्टिकोणों एवं अनेक प्रसंगों में अन्तर भी पर्याप्त है। भाषा-रामायणों के काल तक रामकथा-विषयक अनेक काव्य-नाटकों की रचना हो चुकी थी, किसी ने कहीं से प्रेरणा ली और किसी ने कहीं

से। सभी में समानता का आधार भक्ति-परक दृष्टिकोण है। यदि समस्त भाषा-रामायणों को किसी भी भारतीय भाषा में अनूदित किया जाय, तो उनकी कथा अथवा प्रतिपाद्य विषय से भारतीय जनमात्र तादात्म्य कर लेगा। पूर्वांचलीय रामायणों की मुख्य कथा एवं दृष्टिकोणों में मूलतः एकता है। भिन्न-भिन्न प्रेरणा स्रोतों के अतिरिक्त कथा की भिन्नता का दूसरा कारण है रामभक्ति का प्रचार। वाल्मीकि के राम थे महामानव, वे अब हो गये ब्रह्म के अवतार। अब राम से सम्बन्धित अनेक पात्रों (जैसे कि अहल्या, कैकेयी, विभीषण आदि) के चरित्रों को निष्कलंक सिद्ध करने के लिए कई कल्पित आख्यान जोड़े गए। उदाहरण के लिए कैकेयी की कलंक-मुक्ति-विषयक आख्यान लिए जा सकते हैं। मंथरा कैकेयी के मायके की दासी थी। अतएव स्वाभाविक था कि वह कैकेयी का पक्ष ले, एक साधारण माता के समान कैकेयी ने भी सच ही भरत के कल्याण के लिए राम को निर्वासित किया था। भरत जैसे चरित्र की माता के गौरव को लघु न करने के लिए अनेक आख्यानों की कल्पना हुई। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमी एवं गौड़ीय पाठ के अनुसार एक ब्राह्मण ने उसे शाप दिया था कि तेरा अपयश होगा। बंगला और उड़िया रामायणों में भी इस शाप का उल्लेख है। उड़िया रामायण में देवताओं का हित करने के लिए खल कैकेयी में और दुर्बल दशरथ में प्रवेश कर उन्हें क्रमशः खल-बुद्धि एवं दुर्बल-बुद्धि बनाते हैं।

इसी प्रकार मंथरा के विषय में भी तीन उद्भावनाएँ की गयीं—१. वह अप्सरा है और देव-हित के लिये कैकेयी को भड़काती है।—महाभारत के रामोपाख्यान एवं बंगला-उडिया रामायणों में। २. मोहित-बुद्धि—आध्यात्म रामायण एवं मानस में सरस्वती उसकी बुद्धि फेर जाती है। ३. राम से शत्रुता—उड़िया रामायण में राम-विवाह के अवसर पर मंथरा अश्लील गीत गाती है, राम क्रुद्ध होकर उसे मारते हैं, इसीलिए उसने राम से प्रतिशोध लिया। ब्रह्म राम के महत्त्ववर्धन के लिये अनेक चमत्कारपूर्ण कथाओं, कथा का फल-कथन, भक्ति-निवेदन, स्तुतियाँ, नाम-जप आदि का भी संयोजन हुआ।

असमीया-रामायण में अवान्तर कथाएँ बहुत कम हैं। बंगला-रामायण में कई रोचक लौकिक एवं पौराणिक आख्यानों को रामायण से सम्बद्ध किया है। मानस में चार-चार वक्ता हैं। उड़िया-रामायण भी शिवपार्वती के संवाद-स्वरूप प्रस्तुत की गयी है। कथा-संगठन में तुलसीदास ने दक्षता का परिचय

दिया है। उन्होंने अनावश्यक कथा का बहिष्कार किया है। वाल्मीकि-रामायण की कथावस्तु में शैथिल्य है, उसमें अनेक स्थलों पर पुनरुक्तियाँ हैं। जब कभी दो पात्र मिलते हैं, पूर्वघटित प्रसंग सुना जाते हैं। पाठक इन प्रसंगों से पूर्व परिचित होता है, अतएव उसके लिए ये वर्णन रोचक नहीं होते। तुलसीदास कथा की पुनरुक्ति अथवा व्यर्थ-विस्तार नहीं करते, वे प्रायः ऐसी पंक्ति द्वारा काम निकाल लेते हैं :

गाधि सुवन सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥

भक्ति में जहां उसका दार्शनिक एवं समाज-सुधारक रूप उभर आता है, वहीं कथा-प्रवाह बाधित एवं आरोचक हो उठता है। वैसे सहज-प्रवाह, स्वाभाविक, रोचकता, नाटकीय-चमत्कार एवं सांकेतिकता आदि अनेक गुण मानस में अन्य रामायणों की अपेक्षा अधिक हैं। इन्द्र-अहल्या मिलन जैसे अमर्यादित प्रसंगों का तुलसीदास ने या तो वर्जन किया है अथवा उसे संक्षेप में लिखा है। महाकाव्य की कला तथा राम के शील की रक्षा के लिए उन्होंने उत्तरकाण्ड की कथा—सीता-त्याग, शम्बूक-वध आदि का वर्णन नहीं किया।

पूर्वाञ्चलीय रामायणों ने तुलसीदास की भाँति ऐसा निश्चय नहीं किया :

जगत मातु पितु संभु भवानी । तेहिं सिंगारु न कहउं बखानी ॥

असमीया-रामायण में भी श्रृंगार-वर्णन कम है। सीता-राम के हृदय में प्रणय-भाव उदित होता है। वे लक्ष्मण को आखेट के लिए भेज देते हैं और फिर सीता के अंक में शयन करते हैं। बंगला-रामायण में काट-छांट बहुत है। राम श्रृंगारान्तर्गत दाम्पत्य-प्रेम का एक उदाहरण षष्ठीपूजन के समय मिल जाता है। सीता को अंधेरे घर में लिटा कर सखियां राम से कहती हैं, सीता को हाथ पकड़कर उठा लाओ। सीता ने यह सोचकर कि कहीं पति का हाथ उनके पैर पर न पड़ जाए, बायें हाथ की शंख-चूड़ी झनझना दी और राम ने हाथ पकड़ कर उठा लिया। किन्तु सखियां यही कहती रहीं कि पैर पकड़ कर उठाया है। तांत्रिक वैष्णवधारा के कवि बलरामदास जगन्नाथपुरी के थे, उन्होंने अश्लील श्रृंगार का कई स्थलों पर जम कर वर्णन किया है। राम के प्रति काम-विह्वल नारियों का वर्णन इस प्रकार है :

नासिका फुलाइण ठारन्ति केहु बाली ।
आखि छिटा मारि के हुअन्त ठेलाठेलि ॥

मने मन मिशाइण चुम्बन भावन्ति ।
बिकारे आनु आन से बोलन्ति ।।
स्तम्भीभूत होइ के मुखकु चाहे फेड़ी ।
मदन बिकारे केहु न संभाले शाढ़ी ।।

(कोई बाला नाक फुला कर संकेत कर रही है, कोई कटाक्ष फेंक कर ठेला-ठेली कर रही है। कोई मन ही मन मिलन कल्पित कर चुम्बन कर रही है और मदन विकार के कारण कुछ का कुछ बोल रही है। कोई स्तम्भित होकर मुँह मोड़ लेती है, और काम के वशीभूत होकर साड़ी नहीं संभाल पाती।)

अश्लील होने के कारण अन्य उदाहरण नहीं दिये जा सकते।

उड़िया-रामायण-लेखक स्त्रियों के हाव-भाव व सौन्दर्य-चेष्टाओं का अधिक वर्णन करता है। उसका रावण सीता से अनुरोध करता है—"नासिका फुलाइण हसिण कथा कहु।" उड़िया रामायण में एक ऐसा प्रसंग भी है जो तुलसीदास के वर्णन से साम्य रखता है—सहभोजन के समय सीता रत्नचूड़ी में राम का रूप देख मुग्ध स्तंभित रह जाती है। यहां तुलसी की इन पंक्तियों की याद आ जाती है :

निज पानि मनि महुं देखिअति मूरति सुरूप निधान की ।
चालति न भुज बल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी ।।

तुलसीदास ने रामसीता के श्रृंगार का वर्णन अत्यन्त पवित्र भाव से किया है। कहीं कामोत्तेजक बातें नहीं, तथापि निश्छल स्वभाव के सरल किशोर-किशोरी का प्रथम स्नेह-मिलन पाठकों को तन्मय कर देता है। कंकण-किंकिण-नूपुर-ध्वनि सुन कर फुलवाड़ी में प्रकाश करती-सी सीता को देखकर राम का सहज-पुनीत मन क्षुब्ध हो गया। सीता के कमल-मुख की शोभा को वे भ्रमर की भाँति पीने लगे। उधर सीता की स्थिति यह है कि वे एकटक देखती ही रह गयीं। प्रेम के अत्यधिक आवेग से विह्वल होकर वे शरच्चन्द्र-मुग्ध चकोरी-सी हो गयीं :

अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।

दाम्पत्य-प्रेम के अनेक उदाहरण मानस में मिल जाएँगे। पति के प्रति पूज्य-भाव केवल इस एक अर्धाली में मिल जाएगा :

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलत सभीता ।।

राम के विरह-वर्णन में असमीया लेखक ने भी तुलसीदास जैसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है :

परम ईश्वर राम सीता जगन्मात । देखाइलन्त विषयी जनर इटो भाव ।।

राम सीता के दारुण विरह का वर्णन अग्निपरीक्षा एवं पाताल-परीक्षा के समय अत्यन्त मार्मिकता के साथ किया है। बंगला-रामायण में विरह का स्वाभाविक चित्रण है:

दशदिके शून्य देखि सीता अदर्शने ।
सीता बिना किछ नाहि लय मम मने।।
सीता ध्यान सीता ज्ञान सीता चिन्तामणि ।
सीता बिना आमि येन मणिहाराफणि।।
शुन शुन मृग पक्षी शुन बक्षलता ।
के हरिल आमार से चन्द्रमुखी सीता।।

उड़िया-रामायण-लेखक राम के विरह-वर्णन में भी अपनी रसिकता नहीं भूला है। राम की चिन्ता है कि झर-झर आँसू बहाती सीता के स्तनों पर पत्रावली नहीं रची गयी होगी। फिर भी विरह के मार्मिक प्रसंग भी कई हैं—राम ने स्वप्न देखा, अयोध्या में सीता के साथ प्रणयकेलि में देवी का मुक्ताहार छिन्न हो गया, रक्त-पुष्प-सदृश्य ओष्ठवाली सीता रुष्ट होकर बोलीं—'मेरा हार गूंथ दो।' इसी समय राम की आँख खुल गयी, वे सीता-सीता पुकार उठे उन्हें चेत हुआ, यहाँ सीता कहाँ, यह अयोध्या नहीं माल्यवंत पर्वत है। ठंडी साँस भर कर बोले—सीता को मोती-माला कैसे गूँथ पाऊँगा, रावण तो मेरे मुख में कालिख लगा गया है:

काहिं मुहिं सीतार गुन्थिबि मोती मालि ।
रावण ये मुखे मोर लगाइछि कालि।।

मानस के राम पर ब्रह्मत्व के आरोप के कारण राम के विरह का सत्य वर्णन नहीं हो सका। एक बात यह भी है कि सत्य-सीता का नहीं, छाया-सीता का हरण हुआ था और वह भी उन्हीं की योजना के अनुसार। तुलसीदास ने अन्य पात्रों के हर्षशोक का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग में राम का भी शोक-परिपूर्ण चित्र अंकित है। पिता के वचनों को सत्य करने के लिए जिस राजकुमार ने राजसुख छोड़ा, पत्नी-हरण का कलंकित दुःख सह लिया, किन्तु कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुआ, वही राजकुमार अपने छाया-सदृश्य भाई की पीड़ा न देख सका। वह यहाँ तक कह उठा:

जौं जनतेउ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउं नहिं ओहू ।।

पूर्वाञ्चलीय रामायणों के प्रकृति-चित्रण में सभी का समान दृष्टिकोण है। तुलसीदास की विशेषता है उपदेशात्मक चित्रण की। सबसे सुन्दर और विस्तृत चित्र उड़िया-रामायण में मिलते हैं :

काठकटा बाँकिया हाण हछड़ि गछ ।
पलान्ति जम्बुके ये चाहिण पछ पछ ॥

कटफोड़वा पक्षी पेड़ पर तिरछा बैठा हुआ प्रहार कर रहा, जिसे सुन कर गीदड़ (मुड़-मुड़ कर) पीछे की ओर देखते हुए भाग रहा है।

पूर्वांचलीय रामायणों के पात्रों के संवाद मर्मप्रेरित हैं, उनमें पात्रों के प्रेम, क्रोध, घृणा, व्यंग्य आदि की सशक्त व्यंजना हुई है।

असमीया-रामायण की निर्वासिता सीता तड़प कर कहती है : अब मैं फिर राघव की गृहिणी कहलाऊँ, तो मुझसे बढ़कर निर्लज्ज नारी कौन होगी ? राम किस साहस से मुझे ग्रहण करेंगे. . .गर्भ के दो पुत्रों को मारना चाहा, स्वामी के गुण-वर्णन करते समय मेरा शरीर जलता है। ऐसे यम-सदृश राम का मुख मैं कैसे देखूं ?

बँगला-रामायण के पात्रों में व्यंग की सुन्दर पुट है। सीता लौटाने के लिए रावण ने अंगद के सामने कुछ शर्तें रखी थीं, जिनमें एक थी—राम नाक पर तिनका रख कर क्षमा मांगें। वाक्पटु अंगद शर्तें स्वीकार करते गये किन्तु अन्त में एक ऐसी मार्मिक चोट की कि रावण तिलमिला कर रह गया—ठीक है; सेतु तोड़ दिया जाएगा, विभीषण तुम्हें लौटा दिया जाएगा, तुम्हारी जली हुई लंका का पुनर्निर्माण कर दिया जाएगा, किन्तु रावण ! एक बात तो बताओ :

शूर्पणखार नाक कान केमने यावे जोड़ा।

उड़िया-रामायण के संवादों में वचनवक्रता अधिक है। लक्ष्मण द्वार पर फुंकार रहे हैं। द्वारपाल सुग्रीव को सूचना देता है, सुग्रीव अज्ञान बन कर पूछता है—कौन लक्ष्मण आया है ? लक्ष्मण सरोष कहते हैं—जिसके बल पर किष्किन्धा का राज्य और सुन्दरी तारा का भोग कर रहे हो, उसका छोटा भाई लक्ष्मण आया है। राम की आत्मग्लानि की अनुभूति निम्न कथन में मिलती है। गाय चराते हुए ग्वाले से भूखे राम-लक्ष्मण ने दूध माँगा, उसके न देने पर लक्ष्मण ने राम को सम्मति दी कि इसे मार कर दूध ले लिया जाए। राम ने कहा—अपनी स्त्री के हरणकर्ता का मैं कुछ बिगाड़ न सका, इस अदोष को कैसे मारूँ :

एड़े बड़पणे मोर नाहिं एवे कार्य ।
सीता हरिनेला बनु बिश्रवा तनुज ॥
ताहाकु त किछि सुहिं न पारिलि करि ।
अदोषि लोककुं कि मुआसि अछि मरि ॥

मानस में कुछ संवाद ऐसे हैं जिनमें तत्व-निरूपण हुआ है, पूर्वांचलीय रामायणों में इस प्रकार के दार्शनिक संवाद नहीं हैं। साहित्यिक-सौन्दर्य से युक्त संवाद हैं—पार्वती-सप्तर्षि, परशुराम-लक्ष्मण, मंथरा-कैकेयी, कैकेयी-दशरथ, हनुमान-रावण और अंगद-रावण के। सप्तर्षि से पार्वती ने कहा—यदि तुमसे विवाह कराये बिना नहीं रहा जाता है तो संसार में अनेक वर-कन्या हैं—अर्थात् यहाँ से पधारिए। राढ़ के टेढ़े नयन देख लक्ष्मण चुप हो गये, परशुराम के क्रोधपूर्ण वचन सुन उनसे फिर न रहा गया, बोल पड़े :

जौं पै कृपा जरिहिं मुनि गाता । क्रोध भए तन राख बिधाता ॥

मंथरा-कैकेयी और कैकेयीं-दशरथ संवादों में भी कैसी तीखी व्यंग्योक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कैकेयी मंथरा को घरफोरी कह कर उसकी जीभ निकलवाने को प्रस्तुत हो गयी थी, किन्तु वही कैकेयी जब मंथरा को फुसला कर उसके मन की बात जानने की चेष्टा करती है, तो तुरन्त चुभता हुआ उत्तर मिलता है :

एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥

दशरथ के सामने क्रोध-रूपी नंगी तलवार के समान खड़ी हुई कैकेयी का एक-एक शब्द तीखे विष से बुझा है। मधुर व्यंग्यों का भी प्रयोग मानस में है। राम को देख तन्मय खड़ी सीता को देख सखी कहती हैं :

बहुरि गौरि कर ध्यान करेऊ।

अन्य सखी हँस कर कहती है :

पुनि आउब एहि बेरिआ काली।

उत्तर-प्रत्युत्तर के दांवपेंच रावण के साथ हुए संवादों में भी मिलते हैं। हनुमान ने रावण को रामभजन का उपदेश दिया, वह बोला :

मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ग्यानी।

अंगद की अनेक उक्तियाँ और तर्क सुन कर भी वह बड़े मजे में कहता है :

बालि न कबहुं गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तै भएसि लबारा ॥

पूर्वांचलीय रामायणों में मानस जैसा दार्शनिक विवेचन नहीं है, फिर भी ब्रह्म के स्वरूप एवं भक्ति का परिचय तो मिल ही जाता है। चारो भाइयों में राम को

परब्रह्म का साकार अवतार माना गया है। उन्होंने गीता के उद्देश्य के अनुसार धर्म की रक्षा एवं दुर्जनों के विनाश के लिए लीलावश अवतार ग्रहण किया है। यह सगुण ब्रह्म शंकर के अनुसार मायावशवर्ती न होकर माया का स्वामी है। यहाँ रामानुजाचार्य के दृष्टिकोण से साम्य है। शंकर के अनुसार संसार को सभी ने मिथ्या माना है। सभी ने दशावतारों को एक-समान क्रम की ओर संकेत किया है। राम के ब्रह्मत्व को मानसकार ने जिस उच्च-भूमि पर अधिष्ठित किया है, पूर्वांचलीय लेखक नहीं कर पाये हैं। असमीया-रामायण के दो काण्डों के लेखक शंकरदेव एवं माधवदेव ने रामायण पर कृष्णभक्ति का रंग देने की चेष्टा की है। उड़िया-रामायण के लेखक ने राम को जगन्नाथ-स्वामी से अभिन्न माना है। बँगला के राम अत्यन्त भावुक गृहस्थ ब्रह्म हैं, जो कि अवतार से पूर्व सीता से वियोग की कल्पना कर रो पड़े हैं। सभी ने राम को त्रिदेवों से उच्च बताया है, किन्तु इसे तुलसीदास ही पूर्णतः सिद्ध कर सके हैं। सीता लक्ष्मी की अवतार एवं सामान्य कुलवधू हैं, मानस में वे राम की शक्ति माया भी हैं। कलियुग में रामनाम जप का सभी लेखकों ने उपदेश दिया है। भक्ति के क्षेत्र में सभी लेखकों ने ब्रह्म के करुणामय सुकुमार-रूप का चिन्तन कर अपने दैन्य का प्रकाश किया है। कहीं-कहीं निष्काम भक्ति के भी दर्शन हो जाते हैं। मानस की भक्ति अधिक उच्चकोटि की है। सभी रामायणों की भक्ति जनांदोलनकारी है, किन्तु तुलसीदास की रामायण ने यह कार्य अधिक सुचारु रूप से किया। मानस के माध्यम से उन्होंने साधारण-जन को नैतिक-शिक्षा दी तथा समाज के अनेक क्षेत्रों के पारस्परिक विरोधों को दूर कर समन्वय स्थापित किया।

हमारी सांस्कृतिक-उपलब्धियों के राम श्रेष्ठ आदर्श हैं। उन्हें केन्द्रित कर समस्त भारत एवं भारत-प्रभावित देशों में असंख्य चरित-काव्य लिखे गये। पूर्वांचल किसी समय आर्यों द्वारा उपेक्षित था, परन्तु यहाँ भी भारत के अन्य प्रदेशों की भाँति ही रामचरित-विषयक आख्यानों का कुटीरों से लेकर प्रासादों तक सुप्रचार हुआ। एक ही पवित्र कथा भाषा का झीना आवरण डाल कर केवल दृश्यमान भिन्नताओं के साथ अभिव्यक्त हुई है। प्रत्येक भाषा के राम-काव्य में अपने प्रदेश की विशिष्टता का समाहार हुआ है, किन्तु सबकी आत्मा एक है। विभिन्न भाषाओं के रामचरित काव्यों के तुलनात्मक-अध्ययन द्वारा साहित्य के मध्य भी भारतीय-ऐक्य का संधान देना, मेरे लेख ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है।

संस्कृति-सर्जक गतिशीलता में रामकथा का महत्व

डॉ० रघुवंश
प्राध्यापक : प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग,

[जनता के जीवन में परिव्याप्त विजड़ित अगतिशील मूल्यों में संघर्षशील गति उत्पन्न करने के लिए इनका सही ज्ञान ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में होना आवश्यक है और इस दिशा में 'रामायण' को एक शक्ति के रूप में प्रयुक्त करना बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से जनता के मानस का विकास तथा रूपान्तरण उसके जीवन की सर्जनात्मकता से गतिशील और आशान्वित करने में समर्थ होगा : ऐसी आशा की जा सकती है। प्रयाग विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक एवं अपने ढंग के एकनिष्ठ विचारक डॉ० रघुवंश के मौलिक चिन्तन का एक मनोग्राही सारखण्ड—सम्पादक]

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या है सारी जनता को सर्जनात्मक गति में संचालित और नये भविष्य की आशा से उत्प्रेरित करना है। आज मात्र जागरण का नारा थोथा है। यदि हमारे राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के नेता जाने या अनजाने इतना भी नहीं समझते, तो यही कहना चाहिए कि उनको या तो इतिहास का ज्ञान नहीं, इतिहास की शक्तियों को पहचानने की शक्ति नहीं है अथवा जानबूझ कर अपने किसी निहित स्वार्थ के कारण 'जागो जागो' के नारों में हमारे जन-जीवन की मौलिक समस्याओं को भुला देने का प्रयास कर रहे हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का इतना परिणाम मानना चाहिए कि उससे जनता जागी है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के कारणों के विवादास्पद विवेचन में न पड़कर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता-संग्राम ने जनता को राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना के स्तर पर जाग्रत अवश्य कर दिया था।

संभवतः राष्ट्र के कर्णधारों ने, विशेषकर गांधी जी ने देश को अपनी नयी तथा मौलिक आशाओं के अनुरूप, सर्जन की गत्यात्मक शक्ति से भविष्य-निर्माण

की ओर प्रेरित तथा अग्रसर करने का कार्य स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद के लिए स्थगित कर दिया था।

परन्तु देश के स्वाधीन होने के बाद इसी तथ्य को भुला दिया गया। शायद इस तथ्य की पकड़ जिसमें सबसे गहरी थी, उसका आकस्मिक महाप्रस्थान भी इसका बहुत बड़ा कारण है। स्वाधीनता के बाद देश ने बड़ी-बड़ी योजनायें बनाई हैं, बहुत महत्वाकांक्षी कार्य उठाए हैं, अनेक क्षेत्रों में मौलिक परिवर्तन करने का संकल्प किया है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हमारे देश ने स्वाधीनता के बाद के इन वर्षों में कार्य करने का प्रयत्न नहीं किया है, या कुछ किया ही नहीं है। एक दूसरे की योजनाओं, कार्यक्रमों तथा घोषणाओं की आलोचना करना और उनके समक्ष अपनी योजनाओं, कार्यक्रमों तथा घोषणाओं को अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण प्रतिपादित करना, यह राजनीतिक दलों की कार्य-पद्धति है। प्रजातांत्रिक देशों में यह स्वीकृत पद्धति है और इस प्रकार की स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता इस शासन-व्यवस्था में हितकर ही मानी जाती है।

परन्तु राष्ट्र की समस्या को दलगत दृष्टि से न देखकर जो अपने व्यक्तिगत विवेक के आधार पर उस पर विचार करते हैं, उनके सामने यह स्पष्ट है कि हमारे देश की कठिनाई यह नहीं है कि शासन करने वाले दल की योजनाओं को विरोधी दल दोषपूर्ण, अव्यावहारिक या प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनुकूल मानते हैं। ऐसा होना ठीक ही है। परन्तु स्वतंत्र-चेता व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है कि जनता किसी भी योजना, कार्यक्रम अथवा घोषणा से प्रेरित क्यों नहीं होती? प्रश्न शासन करने वाले दल का ही तो नहीं है, उसकी यह निरपेक्ष मनःस्थिति तो सभी दलों की घोषणाओं के लिए समान है।

इसकी शिकायत की जाती है। सभी दलों के नेता करते हैं, सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधि करते हैं। हमारे बड़े से बड़े नेताओं ने बार-बार इसकी शिकायत की है। इसका कारण क्या है? देश में इतना बड़ा परिवर्तन हो गया है। किसी देश के जीवन में स्वाधीनता पा जाना साधारण घटना नहीं है। फिर यह स्वाधीनता प्रजातांत्रिक है, यह तो बिलकुल नये भविष्य की संभावनाओं को लेकर प्रस्तुत हुई है। इतना बड़ा देश, राष्ट्र, उसकी इतनी जन-शक्ति और उसका इतना नया भविष्य उद्घाटित हुआ हो और जनता के जीवन में कोई आवेग न हो, कोई उत्तेजना न हो, उत्साह या आवेश न हो! यह कैसी बात है? आश्चर्य करना, खीझना, शिकायत करना, सभी जायज़ है।

पर असम्पृक्त विवेकी दृष्टि से इसके कारण को समझना कठिन नहीं है। स्वाधीनता के बाद हम भूल गये हैं कि हमारा देश मात्र चेष्टा की स्थिति में है। उसका जागरण बौद्धिक स्तर पर न होकर मात्र शारीरिक चेष्टा का है। जागा हुआ व्यक्ति आँख खोलकर चारों ओर देखता है, स्थिति का बोध प्राप्त करता है। परन्तु यह जागृति अपने आप में न गत्यात्मक है न सर्जनात्मक ही। इसके लिए उसमें विवेक की आवश्यकता होगी, ताकि वह विवेक द्वारा गत-आगत के आधार पर निर्णय लेने में समर्थ हो सके। बिना अपने भविष्य की आशाओं का ठीक अन्दाज़ लगाये किसी भी व्यक्ति की गत्यात्मक सर्जन-शक्ति संचलित नहीं हो सकती। और हमारे देश की जनता के जन-मानस को इस स्तर पर स्पर्श करने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। मात्र इन सुविधाओं और आकांक्षाओं के प्रति जाग्रत करना प्रजातांत्रिक देश में खतरनाक भी है, क्योंकि दल इस प्रकार के वादे तो कर सकते हैं, पर शासन-व्यवस्था को उनको पूरा करने में नियोजित नहीं कर सकते। प्रजातंत्र में जनता की क्रियाशक्ति शासकीय दृष्टि से नियोजित नहीं की जा सकती और किसी भी बड़ी योजना का निर्वाह नौकरशाही भी तभी सुचारु रूप से कर पाती है, जब वह ऊपर से तानाशाही शक्तियों से शासित हो।

ऐसी स्थिति में जन-मानस को भविष्य-निर्माण की कल्पनाओं, संभावनाओं तथा स्वप्नों से स्फुरित तथा स्पंदित करना जनता को सर्जनात्मक गतिशीलता से युक्त करने के लिए अनिवार्य स्थिति है। जब तक नवीन सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, आर्थिक अथवा वैज्ञानिक दृष्टि से जनता संपृक्त होकर अपने भविष्य की आशा की कल्पना करने में समर्थ नहीं हो सकेगी, वह राष्ट्रीय जीवन से अपने को संसक्त नहीं कर सकती। उसके लिए सारे देश की उन्नति एक करिश्मा से अधिक नहीं जान पड़ सकती; जिसका दायित्व महापुरुषों या नेताओं पर है; उस पर नहीं। हमारे नेतागण वैज्ञानिक प्रगति को जनता के लिए श्रद्धा का विषय भले ही बना सकें, जिससे हमारे बाँध और प्लान्ट उनके लिए तीर्थाटन और पूजापाठ के क्षेत्र भले ही हो जायँ, लेकिन उनमें उनके प्रति वह दृष्टि नहीं उभर सकती; जिससे वास्तविक आधुनिक मानस का उदय हो सकता है।

वास्तव में हमारा देश बहुत लम्बी सांस्कृतिक परम्परा का देश है और इस देश में एक अजीब बात यह भी रही है कि यहाँ शिष्ट-संस्कृति और लोक-संस्कृति में बहुत घना तथा सक्रिय सहयोग सदा चला आया है। युग-युग की संस्कृति के अध्येता के सामने यह बहुत प्रत्यक्ष बात है कि हमारा लोक-मानस

सांस्कृतिक संचरण के चक्रों से बहुत गहरे स्तर पर सक्रिय होता रहा है। और यह लोक-मानस अपनी परम्पराओं में इतना सशक्त भी रहा है कि उसने सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करने में अपनी व्यापक समन्वयशील प्रकृति को अधिक महत्व दिया है। इस कारण जब कोई विचारों, आदर्शों अथवा मूल्यों का आन्दोलन किसी भी युग में प्रारम्भ हुआ, तो उसके विचारक महापुरुष को लोक-मानस की जीवन्त परम्परा का ध्यान रखना पड़ा। उसने अपने विचारों की व्याख्या में जन-जीवन की इस परम्परा का आधार ग्रहण किया और उसी के माध्यम से अपने नवीन विचारों की व्याख्या करने में सफलता प्राप्त की है।

किसी देश का लम्बी सांस्कृतिक परम्परा से सम्बद्ध होना कभी-कभी लगता है नवीन मौलिक विचारों, आदर्शों, मूल्यों के ग्रहण में बाधक है। ऐसा जान पड़ता है आदिम संस्कारों अथवा कम परम्परा वाले समाज में नवीन मूल्यों के ग्रहण में आसानी होती है। उनके जीवन में पुराने मूल्यों का मोह नहीं होता, अतः उनके राष्ट्रीय जीवन में मूल्यों के संघर्ष की स्थिति भी नहीं होती या कम होती है। अफरीकी तथा अमरीकी देशों की स्थिति प्रायः ऐसी ही मानी जा सकती है। एक यदि वैज्ञानिक तथा आधुनिक दृष्टि में बिना किसी हिचक के आगे बढ़ रहा है, तो दूसरा जब इस ओर आगे बढ़ेगा तो उसका अनुकरण द्वंद्वातीत होगा। परन्तु अधिकांश योरोप तथा एशिया के प्रजातांत्रिक देशों की स्थिति इसके विपरीत है। उनका लम्बा इतिहास, उनकी लम्बी सांस्कृतिक परम्पराएं पग पग पर मूल्यों, आदर्शों और विचारों की संक्रांति उत्पन्न करती हैं। योरोप ने पिछली शताब्दी से यह वैज्ञानिक उन्नति की, नवीन व्यवस्थाओं का परीक्षण किया है, अतः पिछले दो महायुद्धों ने उसको सांस्कृतिक संक्रांति की स्थिति से गुजरने को विवश किया है। अनेक बार इस संघर्ष और संक्रांति में उसने अपना विश्वास खोया और पाया है। वह अपना वास्तविक मार्ग कौन-सा अन्वेषित कर रहा है, या कर पायेगा, यह भविष्य बतायेगा।

वस्तुतः वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति का वह स्तर जहाँ पर हमारी नैतिक आवश्यकताओं का रूप निर्धारित होता है तथा उनकी पूर्ति के उपकरण जुटाए जाते हैं, किसी भी देश या समाज की सांस्कृतिक दृष्टि का आधार प्रस्तुत नहीं कर सकती। अपने आप में यह क्रिया विज्ञान के समान क्रियात्मक ही होगी। सांस्कृतिक दृष्टि से इसका संबंध तभी जुड़ सकेगा; जब यह स्थिति हमारी वैचारिक, मूल्यगत तथा नैतिक धारणाओं को प्रभावित करती है। हमको इनके संबंध

में आधुनिक दृष्टि प्रदान करने में सहायक होती है। संस्कृति की मूल्यगत परम्पराओं के अभाव में अथवा इस प्रकार की परम्पराओं के जीवन्त प्रभाव के अभाव में वैज्ञानिक या प्राविधिक उन्नति और इस क्षेत्र की प्रतिद्वंद्विता कोई मूल्यगत संक्रांति उत्पन्न करने में असमर्थ रहेगी। यह स्थिति भी वैसी ही मानी जायेगी, जैसी तानाशाही देशों में विचार-स्वातंत्र्य के अपहरण द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न कर दी जाती है। इस संक्रांति और मूल्यगत संघर्ष के अभाव में दोनों ही प्रकार के समाज में सम्पूर्ण वैज्ञानिक और प्राविधिक उन्नति के बावजूद मूल्यों का स्तर सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत कुछ आदिम समाज के मनोभाव के निकट होगा। जिसमें स्वास्थ्य, स्वतंत्रता, उल्लास अनेक प्रकार की मानसिक विकृतियों से मुक्ति आदि तो मिलेगी, पर आन्तरिक मूल्यों की खोज की नितान्त कमी होगी।

एक क्षण के लिए यह स्थिति वांछित मान ली जाय, तो भी सांस्कृतिक परंपरा के देशों के पास इस स्थिति को लाने का उपाय प्रजातंत्र की अपेक्षा तानाशाही अधिक उचित होगी। किसी देश को सोचने की स्वाधीनता देना और फिर किसी बँधे मार्ग पर चलाना एक साथ नहीं संभव हो सकता। जिस देश की सारी सांस्कृतिक चेष्टा का स्तर वैज्ञानिक तथा प्राविधिक उन्नति से उत्पन्न आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के उपकरण की खोज पर प्रतिष्ठित है, उसके जैसा सौभाग्य और दुर्भाग्य हमारे देश को प्राप्त नहीं हो सकता। पहले कहा गया है कि किसी देश का इतिहास और उसकी सांस्कृतिक परंपरा उसके लिये बहुत बड़ा बंधन है।

पर हमारे शास्त्रों में बंधन को मोक्ष का कारण माना गया है। इस प्रसंग में यह सटीक बात है। हमारे लिए जो बंधन है, आँख बंद कर लेने मात्र से हम उससे मुक्त हो सकते हैं, इसमें कौन विश्वास करेगा। किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का जीवन किन्हीं परम्पराओं या किसी वातावरण से उखाड़कर दूसरे मूल्यों की भूमिका में आरोपित नहीं किया जा सकता। वह बड़ी से बड़ी क्रांति, परिवर्तन या संक्रांति अपने संस्कारों की आंतरिक प्रक्रिया के माध्यम से करने या झेलने में समर्थ होता है। आरोपित शासन के समान आरोपित क्रांति या संक्रांति व्यक्ति या समाज के जीवन को कुंठित या विजड़ित ही करती है। और आरोपित मूल्य तो जैसे कि उस सांस्कृतिक प्रक्रिया को अवरुद्ध कर उसकी मौलिक मूल्य निर्धारित करने की संभावना को ही समाप्त कर देते हैं।

कोई भी मूल्य व्यक्ति या राष्ट्र के समग्र व्यक्तित्व से संसक्त होकर ही सक्रिय हो पाते हैं। जितना ही बड़ा परिवर्तन इस क्षेत्र में होगा, उतनी ही गहरी उसकी आन्तरिक प्रक्रिया होगी।

व्यक्ति की अपेक्षा समूचे राष्ट्र की स्थिति भिन्न है। व्यक्ति के लिए परिस्थितियाँ और संस्कार, प्रतिभा तथा आत्मिक शक्ति के अनुसार नये मल्यों का आकलन, उपलब्धि या अनुकरण संभव है। वह अपने व्यक्तिगत अध्ययन, मनन, चिन्तन और अनुकरण द्वारा अपनी सामाजिक भूमिका से अन्य नवीन मूल्य और नवीन दृष्टि को प्राप्त कर सकता है। यद्यपि व्यक्ति के संबंध में भी यह कहा जा सकता है कि जो इस मूल्य की समस्या को अपने सांस्कृतिक स्तर पर ग्रहण करता है; वही अपने देश के जीवन के संदर्भ में कुछ मौलिक समाधान प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाता है, उसमें मूल्यों के ग्रहण-त्याग की प्रक्रिया इतनी सजग और सचेष्ट नहीं हो पाती। यह आशा करना कि प्रत्येक समाज का सदस्य मूल्यों की इस प्रक्रिया को अपने ही विवेक के आधार पर ग्रहण करेगा, समाज की मानसिक स्थिति के बारे में नासमझी है। सामाजिक जीवन में मूल्यों का यह परिवर्तन उसकी अन्तर्वर्ती संस्कार तथा संस्कृति की उस मूलधारा के आधार पर ही हो सकता है, जो युग-युग से उसको धारण करने में समर्थ हुई है। विद्रोह तथा निर्माण दोनों की शक्ति उसे इसी से मिलती है। किसी नये निर्माण के लिए पुराने के प्रति विद्रोह करना यहाँ उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार पुराने मूल्यों के विध्वंस पर ही नए मूल्यों की उपलब्धि संभव हो सकती है। इस प्रक्रिया में निर्माण तथा उपलब्धि विध्वंस, अस्वीकरण और विद्रोह के बाद की स्थितियाँ हैं और यह श्रम तथा संघर्ष झेलना अनिवार्य है। यह आन्तरिक संघर्ष और श्रम झेलना ही सांस्कृतिक संचरण को नया अर्थ देता है, इसमें भी संदेह नहीं।

सांस्कृतिक संचरण के चक्रों से गुज़रने वाला प्रत्येक देश कुछ ऐसे ही प्रतीकों, अभिप्रायों तथा गाथाओं को स्थायी रूप से अपने मूल्यों का वाहक स्वीकार करता है। देश का जन-समाज इनसे घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लेता है, एक प्रकार से ये उसकी प्रवाहमान चेतना के अंश बन जाते हैं। युग-युग की संस्कृतियाँ अपने मूल्यों का बोध जन-जीवन को कराने में इनका आश्रय लेती हैं। इनके प्रयोग में कठिनाई भी होती है। इनके साथ सम्बद्ध मूल्यों की परम्परागत स्थिति से मुक्त होना आसान नहीं है। अनेक बार ये प्रतीक, अभिप्राय अथवा

गाथाएँ किन्हीं प्राचीन मूल्यों से इस प्रकार एकरूप और विजड़ित हो जाते हैं कि उनके माध्यम से नये मूल्यों की अभिव्यक्ति कर पाना बहुत बड़ी प्रतिभा तथा मनोबल का कार्य हो जाता है। परन्तु इसको यदि इस रूप में प्रयुक्त किया जा सके तो फिर इनकी निहित सारी शक्ति नये मूल्य की प्रतिष्ठा की अपनी शक्ति भी बन सकती है। अणु की विस्फोटक शक्ति के समान इसका प्रयोग भविष्य के प्रति आस्थावान और नये मूल्यों की मौलिक सर्जनात्मक शक्तियों के द्वारा ही संभव है।

भारतीय-संस्कृति के संचरण में 'रामायण' का स्थान ऐसा ही रहा है। भारतीय जीवन में राम-कथा उसकी प्रवाहित धारा से जैसे अभिन्न हो चुकी है उसने भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग की ही नहीं, उसके प्रत्येक प्रदेश के इतिहास के सांस्कृतिक संचरण में सहयोग दिया है। इस देश के सभी धर्मों ने इस कथा को अपने मूल्यों का माध्यम स्वीकार किया है। इसी देश में नहीं, वरन् भारत के बाहर के अनेक एशियाई तथा प्रशान्त सागर के देशों ने इसको अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों का समय-समय पर वाहक बनाया है। क्या ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और क्या बौद्ध धर्म सभी ने राम-कथा को अपने आदर्शों तथा मूल्यों के लिए स्वीकार किया है; क्या दक्षिण क्या उत्तर, क्या पश्चिम क्या पूर्व सर्वत्र यह कथा परिव्याप्त है। युग-युग से यह कथा भारतीय संस्कृति के नये मूल्यों की व्याख्या करती आई है और इसके माध्यम से जनता के बीच इन मूल्यों को उपलब्ध करना सहज हो सका है।

यद्यपि आधुनिक युग अपनी दृष्टि और मनोवृत्ति में, अपनी स्थिति तथा संभावना में, मूल्यों तथा प्रतिमानों में पिछले युगों से नितान्त भिन्न लगता है, पर इनके उचित और सहज विकास के लिए ही यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्राचीन के संदर्भ में इनका विकास किया जाय। जनता के जीवन में परिव्याप्त प्राचीन विजड़ित अगतिशील मूल्यों में संघर्षशील गति उत्पन्न करने के लिए इनका सही ज्ञान ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में होना आवश्यक है। किसी भी नये निर्माण के लिए प्राचीन नींवों का ज्ञान होना जरूरी होता है।

'रामायण' को इसी क्रांति तथा निर्माण के लिए एक निहित शक्ति के रूप में प्रयुक्त करने का प्रस्ताव वास्तव में मौलिक और महत्वपूर्ण है। 'रामायण' भारतीय-संस्कृति का एक ऐसा गहरा प्रतीक है, जिसका आधुनिक युग की वैज्ञानिक दृष्टि के उपयुक्त प्रयोग खतरनाक होकर भी भारतीय विशाल जनता की

दृष्टि से बड़ा शक्तिशाली तथा गत्यात्मक है। खतरों के जोखिम से देश की अनन्त शक्ति की संभावनाओं से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता और न इस चुनौती की अवहेलना ही की जा सकती है।

मध्यदेश की संस्कृति में तुलसी और उनकी रामकथा का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज तक उनका रामचरित मानस (रामायण) का वहाँ की जनता के जीवन पर गहरा प्रभाव है। अतः अकेले 'रामचरित मानस' को ही केन्द्रविन्दु बनाकर विभिन्न युगों, देशों तथा क्षेत्रों की रामकथा का परिचय, ऐतिहासिक मूल्यांकन, सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन आदि का प्रयास यदि किया जाय, तो उससे निश्चय ही एक नया वातावरण बन सकेगा; जिसमें 'रामकथा' जनता को एक नया परिप्रेक्ष्य तथा नई दृष्टि देने में बहुत सीमा तक सहायक होगी, और वह भी सूक्ष्म सांस्कृतिक स्तर पर। इस स्तर पर जनता के मानस का विकास तथा रूपान्तरण उसके जीवन को सर्जनात्मकता से गतिशील और आशान्वित करने में समर्थ होगा, ऐसी आशा की जाती है। ●

मानस का प्रभाव



मैं बंगाली हूँ। मैं अपनी बंगाली जाति के लिए इसे दुर्भाग्य समझता हूँ कि तुलसी जैसे महापुरुष हमारे प्रदेश में प्रादुर्भूत नहीं हुए।... तुलसी के चरणों में बैठने का शुभ अवसर मुझे कोई पच्चीस वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था, जब मैंने पहली बार 'रामचरित मानस' का पाठ किया था। मैंने उसे भाषातात्विक दृष्टि से ही पढ़ना शुरू किया था; मेरे पाखण्डी मन पर उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। व्याकरण के सुप्-तिङ, भाषा-तत्व का सूक्ष्म विचार और उच्चारण-तत्व की नुक्ताचीनी आदि शेष हृदय के भावोद्वेग से बह गये; अन्तःकरण भर गया और सूखी आँखें आँसुओं से भीग गयीं। तब से मैं तुलसी को छोड़ नहीं सका। अपने व्यक्तिगत जीवन में मैंने उनको ऊँचे से ऊँचे आसन पर बिठाकर अपने आप को उनका दास ही माना।

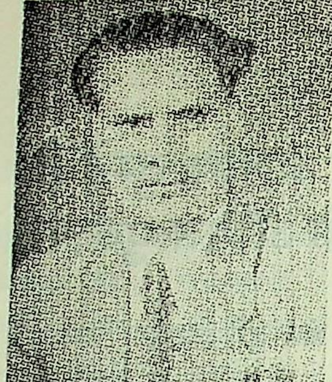
—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या



बारंबार प्रणाम तुम्हें है रामचरित के अमित पुजारी

(महाकवि) डा० हरिवंशराय 'बच्चन'
नई दिल्ली

बारंबार प्रणाम तुम्हें है, रामचरित के अमित पुजारी
उचित यहीं था प्रथम तुम्हारे
चरणों में मैं शीश नवाता,
पर न दिया वह अवसर तुमने
हे भारत के भाग्य-विधाता,
तुम पहले से आने वाले कवियों के प्रति नतमस्तक थे,
आर्य, तुम्हारे आदर का मैं बन पाऊँ कैसे अधिकारी ?
तुमने अपने रामसिया में,
रसिया, सब जग देख लिया था,
कितने नयन विशाल तुम्हारे,
कितना गहिर-गम्भीर हिया था,
जीवन-काल-कर्म, गति-पथ का अंत कहाँ है ? कौन बताये ?
नहीं अभी तक पहुँचा कोई जहाँ नहीं थी पहुँच तुम्हारी !
भला हुआ जो लगन तुम्हारी
दूर लक्ष्य की ओर लगी थी,
पाँव पड़ा करते थे भू पर
आँख गगन के प्रेम पगी थी।
मग में तुमने ठुकरा कर जो छोड दिया उसको अपना कर,
बहुत समय पर्यन्त करेंगे अर्जन कीर्ति-कलम कर धारी।
दो मुझको वरदान, तुम्हारे
काम किसी दिन मैं था आया,
राम-भगत बहुविधि वर्णन कर
जब तुमने सन्तोष न पाया,
तुमने मेरी ओर निहारा और हृदय की ताली पाई।
याद तुम्हें आया, मैं ही वह कामी जिसको नारि पियारी ?
बारंबार प्रणाम तुम्हें है, रामचरित के अमितपुजारी ॥



मानस का महत्व : आधुनिक-युगीन समाज के संदर्भ में

⊙

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल पी-एच० डी०
रीडर : अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विश्व-कवि के स्वर्ण सिंहासन पर अधिष्ठित महाकवियों की कालजयी रचनाएं देशकालातीत होकर भी युग-युग की आवश्यकताओं-समस्याओं का समाधान करती रहती हैं। अतीत-अनागत के सम्पुट में विद्यमान वर्तमान के प्रश्नों का प्रत्युत्तर देते रहने की क्षमता के कारण ही वे रचनाएं महाकाव्यों की कोटि में आती हैं। यदि कोई रचना त्रैकालिक प्रश्नों का समाधान करने की क्षमता नहीं रखती और उससे यदि एक भी काल का वंचन होता है तो वे महाकाव्य की कोटि में नहीं रखी जा सकतीं। भारतीय महाकाव्यों के शास्त्रीय रूप निर्धारण में आचार्यों की दृष्टि इस तथ्य पर सदैव टिकी रही है। भारतीय मनीषा ने महाकाव्य उसे ही स्वीकारा है, जिसमें लोकजीवन के चरम सत्यों की अबाध आराधना रही है। मध्ययुगीन साहित्य और विशेषकर भक्ति तत्व में समाहित होने वाले महाकाव्यों को आज के युगीन संदर्भों में देखने की चेष्टा की जा रही है और यदि वे आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन-धारा की तुला पर खरी नहीं दीखतीं, तो उसे युगातीत या 'आउट आफ डेट' कह कर उपेक्षित कर दिया जाता है। वस्तुतः यह आज के अध्येता का दृष्टि-दोष है, न कि उन महाकाव्यों का अपराध। आज का पाठक सतत अनुशीलनकर्ता किंवा नित्य-स्वाध्यायी नहीं रहा, अन्यथा उसे अपने युग के प्रश्नों का समाधान इन कालजयी रचनाओं में मिल जाता।

तुलसी का रामचरित मानस दिक्कालाद्यनवच्छिन्न रचना है; किन्तु मानसकार के अपने प्रस्थानचतुष्टय १. नाना पुराण, २. निगम, ३. आगम और ४. क्वचिदन्यतोऽपि में पुराणों की चर्चा सबसे प्रथम तथा वेद और शास्त्रों की चर्चा बाद में करने के कारण तुलसी को कतिपय आधुनिक विचारकों द्वारा पुराणपंथी कह दिया गया, पुराणों को प्राथमिकता देना ही संभवतः महाकवि का माना हुआ अपराध है और इसी कारण समाजवादी विचारधारा, मार्क्सवादी मनीषा और मानवतावादी चिन्तनधारा की तथाकथित उदार कक्षा में से वे निष्कासित

कर दिये गये, किन्तु यह अपराध न तो तुलसी का है और न रामचरित मानस का। जैसाकि संकेत दिया जा चुका है कि यह अपराध आज के उस अधकचरे स्वाध्यायी का है, जिसका स्वभाव गौरवमय अतीत से पलायन करने और अभारतीय जीवन धारा में अवगाहन करने का बन गया है। वस्तुतः रामचरित मानस धर्म विशेष, सम्प्रदाय विशेष, जाति विशेष का ग्रंथ नहीं; यह विश्व-साहित्य का चरम मानवतावादी ग्रंथ है, जिसमें विश्व-धर्म समाहित है। अतः आज के उभरते हुए प्रश्नों की छाया में यदि तुलसी-काव्य का अनुशीलन करें तो उसे द्विधा वर्गीकृत किया जा सकता है: १. स्वान्तः-सुखाय और २. लोक-हिताय। यद्यपि उनका स्वान्तः सुखाय भी दूसरा मी लोकहिताय ही है। अतः तुलसी का समूचा साहित्य एक दृष्टि से जग मंगल की आराधना करने के लिए ही है। उनकी 'विनय-पत्रिका' तक, जो उनके आराध्य के दरबार में अत्यन्त निजी चिट्ठी के रूप में पेश की गयी; वह भी आज सर्वतोभावेन लोकहिताय ही सिद्ध हो रही है। तब रामचरित मानस जिसके उद्देश्य की घोषणा स्पष्ट शब्दों में स्वान्तः-सुखाय कर दी गयी है, आज के लोक-जीवन के सन्दर्भ में उसका उद्देश्य कितना मूल्यवान् होगा, यह विचारणीय है।

रघुनाथ गाथा का भाषा में निबन्धन करने वाले तुलसी ने रघुनाथ गाथा का उद्देश्य कोई काल्पनिक मोक्ष अथवा स्वर्ग-सुख अथवा लोकातीत बिहार नहीं माना है; उनकी रघुनाथ गाथा के निबन्धन का उद्देश्य केवल लोक-मंगल का विधान है। इस लोकमंगल के विधान के लिए किसी ऐतिहासिक महापुरुष के आदर्श आचरण और लोकसंग्रहणीय व्यवहार का बिम्ब ग्रहण लोक-बुद्धि को हो सके, इसी मान्यता से तुलसी ने अपने अवतारी राम को महामानव बनाकर उनके आदर्श गुणों को परखा था और उनमें निगूढ़ माधुर्य का रसास्वादन किया था। उसी रसमय आत्मानुभूति के उपरान्त उन्होंने घोषणा की थी:

जगमंगल गुन ग्राम राम के।
दान मुकुति धन धरम धाम के॥

राम के गुण-ग्राम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय के देने वाले तो हैं ही; किन्तु प्रस्तुत अर्द्धाली में आज की अर्थ-प्रधान मार्क्सवादी, समाजवादी और इनसे भी अनेक मानवतावादी विचारधारा का भी संकेत मिल जाता है। आज विश्व के अनेक राष्ट्रव्यापी विविध आन्दोलनों के मूल में समाज की अर्थ-प्रधान चेतना ही प्रखर हो उठी है। उसका शमन तुलसीदास राम गुण-गान के माध्यम

से बतलाते हैं—विचारना है कि उनका मानस राम गुण-गान इस उद्देश्य में कहाँ तक खरा उतरता है।

मानस के चरित नायक वस्तुतः गुणों के आगार हैं। रघुवंश के कुल-गुरु महात्मा वशिष्ठ ने राम के विषय में कहा था:

रीति-नीति परमारथ स्वारथ, कोउ न राम सम जान जथारथ।

यह राम का वह चारित्रिक-प्रमाणपत्र (करेक्टर सर्टीफिकेट) है, जो जगज्जीवन के लिए और लोकनायकत्व के लिए प्राथमिकता के साथ अनिवार्य है। तुलसी के राम में धर्म-नीति, लोक-नीति और राजनीति तीनों ही पुंजीभूत हो गई हैं। वे वेदरीति और लोकरीति के ज्ञाता हैं। परमार्थ और स्वार्थ की सीमाओं के जागरूक प्रहरी हैं, उन्हीं के 'गुण-ग्राम' का चिन्तन और मंथन तुलसी का मानस है। एक ओर उनके राम अवतारी, साकेत-बिहारी और क्षीरशायी अवश्य हैं; किन्तु वे आते हैं इस भूतल पर नर-रूप में ही। 'व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर' को नर रूप अथवा नराकार में देखने की लालसा तुलसी को इसीलिए रही है कि यह संसार उस अखिल ब्रह्माण्ड नायक अथवा भुवनेश्वर की नर-रूप में कल्पना कर सके और उसके शारीरिक और चारित्रिक सौंदर्य में और स्वभावगत शील में निमज्जित हो सके और उसके द्वारा आचरित लोक-व्यवहार को आत्मसात् कर सके।

भगवान को मनुष्य का बाना पहनाकर उसे मानव-चरित का आचरण करने के लिए बाध्य करने वाले तुलसी का लक्ष्य यही था कि जगत् भी वैसा ही शुभाचरण कर सके। अन्यथा "लेट देअर बी लाइट एण्ड देअर वाज़ लाइट" की भाँति किसी अनदेखे अचिन्तित, अतर्कित ईश्वर की महीयसी इच्छा मात्र से भी सब कुछ संचालित करा देने की क्षमता तुलसी में थी और वे ऐसा कर भी देते; परन्तु तब उनका मानव देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों अथवा गोपालराम गहमरी के जासूसी कारनामों से अधिक न रह जाता। किन्तु नहीं, अपने राम को किसी अतीन्द्रिय लोक से इस भूतल पर उतार कर उसको हमारे जैसा ही विविध सुख-दुःखों की अनंत अनुभूतियों का अधिष्ठान बनाकर तुलसी ने अपने मानस को लोकानुभूति के गंभीर सलिल से भर देने की चेष्टा की और यही कारण है कि उनका मानस आज लोक-मानस का कौस्तुभ मणि बन गया है। उनके निराकार योगियों के मानस में रमण करनेवाले राम नराकार हैं, पूर्ण मानव हैं; क्षमा, धर्य और कष्ट सहिष्णुताओं की चरम सीमाओं का स्पर्श

करने के कारण वे पुरुषोत्तम हैं और उनका जीवन-सिद्धान्त केवल लोकाराधन है, अन्य कुछ नहीं। लोकाराधन के लिए वे अपनी प्राणप्रिया सीता का भी परित्याग कर सकते हैं और स्वयं को लोक-परीक्षा की अग्नि में भी डाल सकते हैं। वे जननेता हैं, इसीलिए तुलसी ने अपने मानस के उपक्रम में रावण की उत्पत्ति की कथा इसीलिए विस्तार से दी कि राम-जन्म का उद्देश्य केवल भक्ति का प्रचार नहीं अथवा पुराण-पन्थ का विस्तार नहीं, अपितु :

'बाढ़े खल बहु चोर जुआरा, जे लंपट परधन परदारा।' के अन्तर्गत समाहित राष्ट्र के चोरों-जुआरियों तथा पराये धन और परायी ललनाओं का हरण करने वालों के लिए ही तुलसी के राम का जन्म हुआ है।

साम्राज्य-विस्तारक और पर-स्वतन्त्रता का अपहर्त्ता मण्डलेश्वर रावण जैसे व्यक्ति की आसुरी वृत्ति के विनाश के लिए तुलसी के मानस में लोकनायक राम का अवतरण है। मानस के पूर्व रंग में तुलसी ने रावण का परिचय दिया है :

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोऊ न स्वतंत्र।
मण्डलीक मनि रावन राज करहि निज मंच॥

जनतन्त्र के घोर शत्रु ऐसे रावण का विनाश कर तुलसी ने प्रजातंत्रवादी राम-राज्य की सुखद कल्पना के लिए ही उनके मानस की रचना है। साम्राज्यवादी, यदि कोई अत्याचारी और अनीति पर चलने वाला भले ही कोई ब्राह्मण ही क्यों न हो; तुलसी उसका वधोपाय करा देते हैं। मानस के नायक सम्राट्-पुत्र राम की वन-यात्रा लोकाराधन की विजय-यात्रा है। अपने राज्य त्याग के इस दुर्गम दृष्टान्त की कमनीय कल्पना उस काल के मुगलिया शासन-काल में तुलसी जैसा व्यक्ति ही कर सकता था और उस काल के राज्य-लोलुप भाइयों के गृह-कलह की मलिन छाया में वही ऐसी उदात्त भावना प्रस्तुत कर सकता था।

आज के राजनीतिक दलों के सरमायेदार देश के नेता एवं मुख्यमंत्री क्या रामचरित मानस के इस प्रसंग पर ध्यान देंगे। भारतीय महाकाव्यों के मूल में उच्च आदर्शों को प्रतिष्ठा मुख्यतः जनतांत्रिक अर्थ-प्रणाली पर ही चली है। महाभारत के युद्ध के मूल में राज्य-तन्त्र की विनाशेच्छा और अर्थ का न्यायोचित वितरण ही है। रामायण के मूल में भी साम्राज्यवादी भावना और विषम अर्थ-व्यवस्था का विनाश ही है। इसीलिए चित्रकूट के सात्विक वातावरण में राम ने भरत को जनतंत्र के पालन और सम्यक् अर्थ-वितरण की व्यवस्था का संकेत देते हुए कहा था :

मुखिया मुख सो चाहिये खान पान कहं एक।
पालइ पोसइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥

तुलसी का 'मुखिया' शब्द मार्मिक है, वे भूपति अथवा नरपति शब्द का प्रयोग नहीं करते। उनका 'मुखिया' शब्द गणनायक का संकेत देता है। आज के लोकनायक अथवा राष्ट्राध्यक्ष क्या ऐसे 'मुखिया' अथवा गणनायक हैं? जो बनवासी राम की भाँति स्वयंभनृत रहें अथवा नंदिग्रामवासी भरत की भाँति जौ मात्र खाकर भूमि पर शयन करें और समाज के सभी अंगों और वर्गों का विवेक सहित अर्थात् उनकी योग्यता और क्षमता को पहचानकर उनका पालन-पोषण करें और स्वयं मुख की भाँति सदैव रिक्त रहें। आज की समाजवादी विचार-धारा और मानवतावादी समाज मानवता के पोषण में क्या इतनी सीमा तक जा सका है? क्या मार्क्सवादी अर्थनीति नंदिग्राम के यव-भोजी भरत की अकिंचन अहिंसक अर्थनीति का अनुसरण कर सकी है? आज का नारा 'गरीबी हटाओ' है, किन्तु तुलसी के मानस का नारा है 'अमीरी-न-चाहो।' दोनों में मौलिक अन्तर है। 'गरीबी हटाओ' में वर्गभेद फिर भी बना रहेगा। 'अमीरी न चाहो' में सच्चे मानवतावादी समाज की स्थापना होगी। वैभवशाली समाज में भी 'चंचरीक जिमि चंपक बागा' के अनुसार राष्ट्रनायक निर्लिप्त रह सकेगा।

भारत की राजनीति व्यक्ति निरपेक्ष त्याग-प्रधान रही है। वीर-पूजा के आवेश में उसने जनहित की भावना को कभी तिलांजलि नहीं दी। रामचरित मानस का राष्ट्रनायक 'बिन् पनहीं' वन-वन विचरता है और अयोध्या के गणनायक निर्जीव पादुका को सिंहासन पर बिठाते हैं। लोक-करुणा और त्याग के अभाव में आज का सजीव राष्ट्राध्यक्ष कुर्सी से ढकेल दिया जाता है; अतः लोकनायक के इस पतन से परित्राण तुलसी के 'मानस' में ही है।

जनतन्त्र की भावना यद्यपि दशरथ में भी विद्यमान थी। 'जौ पांचहिं मत लागे नीका' में उनकी जनतांत्रिक भावना का भी संकेत मिल जाता है, किन्तु दशरथ की जनतांत्रिक भावना का सुन्दर पल्लवन आगे चलकर राम के चित्रकूट उपदेश और अयोध्या के सिंहासन पर बैठने पर प्रजा को जो आदेश दिया था; उसमें भारतीय समाजवाद के स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं। इसी प्रकार तुलसी ने वर्णाश्रम व्यवस्था को भी कर्त्तव्य-भावना और धर्म की व्यापक भावना से च्युति न हो, इसीलिए स्वीकार किया है; उनके वर्णाश्रम की स्वीकृति पूजने और पुजवाने की भावना से नहीं। राजगुरु तपस्वी वशिष्ठ पुनीत आचरण

और तपस्वी जीवन के कारण राजमान्य और बन्दनीय होते हुए भी गुह और निषाद जैसी अनुसूचित जातियों से दौड़कर मिलते हैं। जैसे पृथ्वी पर फैले हुए घी को समेट लिया जाता है, उसी प्रकार पैरों में पड़े निषाद को भी बाहुपाश में समेट लेते हैं: 'जनु महि लुठत सनेह समेटा'। तुलसी पर ब्राह्मणवाद या छूआछूत का लांछन लगानेवाले पाठक इस प्रसंग को जरा दृष्टि खोलकर पढ़ेंगे। आज से चार सौ वर्ष पूर्व जनतांत्रिक समाज की छुआछूत समस्या का अप्रत्यक्ष समाधान देकर तुलसी ने राजनीति के अन्तर्निहित रहस्यों का संकेत दिया है और दलित वर्ग की विरोध भावना का शमनोपचार दे दिया है। आज के राष्ट्र की अनेक गोपनीय बातें प्रातःकाल ही आकाशवाणी पर सुना दी जाती हैं परन्तु तुलसी ने अपने मानस में सफल राजतन्त्र का प्रमुख सूत्र दिया है:

'राज धरम सरबसु एतनोई, जिमि मन माँहि मनोरथ गोई।'

सफल राजनीति का रहस्य ही गोपनीयता है। किन्तु इस सिद्धान्त का आजके युग में जितना निर्मम विघटन हुआ है, उतना सम्भवतः पहले कभी नहीं। आज गोपनीयता की शपथ का ढिंढोरा पीटा जाता है, किन्तु वर्तमान राजनीति में गोपनीयता का नितान्त अभाव है। इधर गोपनीयता की शपथ ली गई और उधर आकाशवाणी पर गोपनीयता सुना दी गयी। आज की आकाशवाणी सर्वश्राव्य है, तुलसी की आकाशवाणी नियति-श्राव्य थी। रावण के विनाश की सूचना भूमि को और भूमि पर स्थित देवताओं को तो मिलती है, पर रावण और अन्य असुरों को नहीं।

मानवतावादी तुलसी ने अपने रामचरित मानस में समाज के दलित वर्ग की भरपूर सुध ली है। सात्विकता, शील और सौन्दर्य का दिव्य प्रभाव वे अनिवार्य मानते हैं। पिछड़े और अर्ध-शिक्षित कहे जाने वाले आदिवासियों पर श्रीराम तथा चित्रकूट की उस दिव्य सभा का कैसा सात्विक प्रभाव उन पर पड़ा था कि वे अपने अतिथियों का स्वागत विशाल उदार-भावना के साथ करते हैं। वे अपने प्रिय पाहुनों का स्वागत इन शब्दों में करते हैं:

तुम प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा जोग न भाग हमारे।।

यहाँ तक कि फलों का मूल्य चुकाने पर वे मूल्य भी नहीं लेते:

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दुहाई देहीं।।

उनका तो निष्कपट कथन है:

यह हमार अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई।।

आज की डाकू-समस्या यदि हृदय परिवर्तन के आधार पर संभव है, तो इसमें

आश्चर्य किस बात का ? प्रजावत्सल राम के आचरण का दिव्य प्रभाव ही कुछ वैसा है। तुलसी अपने राम के गुणों पर रीझे ही इसलिए हैं कि अहिल्या, शबरी, गीध, केवट, विभीषण जैसे समाज के तिरस्कृत और उपेक्षित प्राणियों को राम ने उठाया। सरभंग, शबरी, केवट, जाम्बवान, हनुमान जैसे अर्धशिक्षितों एवं उपेक्षितों को उठाया। राम का यह 'पतित पावन' रूप ही तुलसी को मान्य है। तुलसी के राम अपने गुरुदेव वसिष्ठ के लिए जितना आदर हृदय में लिए हैं, उतना ही शबरी के लिए भी। प्रसिद्ध कथा है कि वनवास से लौटने पर श्रीराम का स्वागत-समारोह चार स्थानों पर मुख्य रूप से हुआ। उन चारों स्थानों में से उन्हें कहीं भी शबरी के फलों से अधिक माधुर्य का अनुभव नहीं हुआ। तुलसी कहते हैं :

घर गुर गृह प्रिय सदन सासुरे, भई जब जब पहुनाई।
तब तब कहँ सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई।।

शीलसिंधु, परदुःखकातर राम की स्पष्टवादिता भी तुलसी ने व्यक्त की है। साथ ही छुआछूत समर्थक खानपान के विवेकी ब्राह्मणवादी कहे जाने वाले तुलसी के मानस में हरिजन उद्धार और सर्वोदय भावना के दर्शन भी सुलभ हैं। इसी प्रकार नारी की अनुशासित आर्थिक स्वतन्त्रता के दुष्परिणाम को लंका के विनाश के रूप में प्रस्तुत कर तुलसी ने शूर्पणखा प्रसंग की योजना की है।

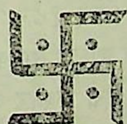
तुलसी के राम सार्वभौम सम्राट होकर भी न तो साम्राज्यवादी हैं और न साम्राज्य-विस्तारक। अपने भाई दाराशिकोहसे भिड़नेवाला साम्राज्य-लोलुप औरंगजेब साम्राज्य-विस्तार की चिन्ता में २५ वर्ष तक दक्षिण में पड़ा रहा। किन्तु तुलसी के मानस के चरितनायक निशिचरवंश विनाशक राम शस्त्र-बल से असुरों का संहार करके विजित लंका का राज्य विभीषण को लौटा कर ११ मास में ही दक्षिण से लौट आये। आर्य-संस्कृति की उदार आदर्श भावना की यह पुनरावृत्ति आज बंगला देश की विजय में पुनः सामने आई है। हमने राष्ट्रों को मित्र बनाया है, मित्रों की रक्षा और सहायता की है तथा मानस के उदार संदेश की युग-युग से चली आती परंपरा को पुनरुज्जीवित किया है।

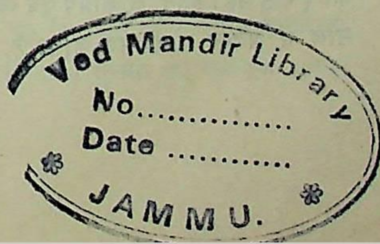
'मानस' के अंतिम प्रसंग राम-राज्याभिषेक में भारत के प्रथम राष्ट्रपति की लोकतंत्रीय पद्धति पर गठित प्रथम संसद का स्वरूप भी अवलोकनीय है। उसकी चरम शालीनता और आज के अनुशासनहीन सदन-त्याग के वैषम्य पर सहज दृष्टि रखी जाय, तो राम की प्रजावत्सलता की गंभीरता का कुछ आभास

हो सकेगा। समस्त देशवासियों, नागरिकों और गणतन्त्र के मुखियाओं को आमन्त्रण देकर राम का प्रथम अभिभाषण है : "जौ अनीति कछु भाखौ भाई। तो मोहिं बरजहु भय बिसराई॥" लोकाधिपति का अपनी जनता को यह अभय-दान और आश्वासन जनतांत्रिक परंपरा की शाश्वत विजय है; जिसकी प्रतिष्ठा तुलसी ने आज से ४०० वर्ष पूर्व कर दी थी। इतना ही नहीं, आत्मानुशासन का संकेत भी उनके राम में मिलता है :

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु तो तुम्हहिं सोहाई॥

तुलसी के राम अनीति नहीं करते। उनका आचार नीति-युक्त है। वे प्रभुता का मद नहीं रखते। इसीलिए प्रजा को सलाह देते हैं कि 'यदि मेरा कहा हुआ अच्छा लगे तो करो'। जन-कल्याण भावना का यह उदात्त उदाहरण तुलसी के मानस को छोड़ अन्यत्र दुर्लभ है। क्या आज का शासक-वर्ग अनीति से सर्वथा दूर रहने की गारंटी दे सकेगा, क्या वह प्रभुता के मद का विसर्जन कर सकेगा? क्या वह जनता को उसके आत्म-विश्वास पर छोड सकेगा? यह तभी संभव है जबकि आज के राष्ट्रनायक, जननायक एवं गणनायक, के स्वयं के आचरण हिमवत् स्वच्छ और अडिग हों। रामराज्य की ऐसी सुखद कल्पना तुलसी के मानस में ही संभव थी। तुलसी सिद्धान्तों के अम्बार की अपेक्षा आचरण की कणिका के ही हामी थे। अतः यदि उन्हें अपने लोक-मंगली और लोक-संग्रही काव्य-सृष्टि में आचरणीय जीवन-दर्शन के दर्शन हुए, तो वे 'राम-गुन-ग्राम' में ही अंतःदर्शन-शास्त्र और आचार-संहिताओं के निर्माण की अपेक्षा आचारवान व्यक्तियों के 'गुणग्राम' का कथन करना अधिक समीचीन समझते हैं; जिससे कि मानव की बिम्बग्राहिका बुद्धि को अधिक सजग संबल मिल सके।





तुलसी : अवमूल्यन या पुनर्मूल्याङ्कन

⊙

प्रो० राजनाथ पाण्डेय
भू० पू० अध्यक्ष : हिन्दी विभाग : त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल

[जब तक इस सौर-मण्डल में हमारी यह धरती अपनी धुरी पर चल रही है तथा जब तक हमारे इस गगन में सूर्य-चन्द्रादि ग्रह-नक्षत्र अपने नियमानुसार डूबते-उतराते जा रहे हैं; तुलसी के व्यक्तित्व का एक उदात्त पुरुषार्थ, उनके कृतित्व में कर्म-परिपाक की प्रखरता का एक स्वर 'जो बोओगे वही काटना पड़ेगा' अनन्तकाल तक मानवता के कानों में गूँजता रहेगा। . . . हिन्दी के वयोवृद्ध ऋषिकल्प साधक एवं सुविख्यात शिक्षाशास्त्री प्रो० राजनाथ पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत है। तुलसी के मूल्यांकन के तत्वग्राही सूक्ष्म मन्थन का सारखण्ड––संपादक]

तुलसी के कृतित्व और व्यक्तित्व को लेकर नाना भाँति की अवमानना पूर्ण चर्चाओं का बाजार इन दिनों गर्म है। ऐसे तो इस कोलाहल के मूल में भी राजनीतिक व्यूह-रचना की झलक मिलती है, और इसी कारण इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, और यह भी एक सचाई है कि तुलसी से संबंधित कटु आलोचनाओं का भी इस कारण स्वागत किया जाना चाहिये कि उत्तर भारत में पिछली कई सदियों से हिन्दी-भाषा-भाषियों के सामाजिक संस्थान के दृढ़ स्तम्भ तुलसी के विषय में विषद अध्ययन एवं एक अधिक विस्तृत दायरे में उनके संबंध में घोर विचार-मंथन अब नितान्त अनिवार्य हो चुका है।

इस संदर्भ में हेनरिक इब्सन (सन् १८२८ से १९०६ ई० तक) का एक उद्‌गार मुझे याद आ रहा है। अपने प्रसिद्ध नाटक (ऐन एनिमी आफ दि पीपुल) में एक पात्र के मुँह से उन्होंने कुछ इस प्रकार कहलाया है :

'प्रत्येक प्रगतिशील और अग्रगामी समाज में सामाजिक आचार-पद्धति का (चाहे वह कितनी लोकप्रिय एवं व्यापक क्यों न हो) एक स्तर पन्द्रह या बीस साल में अवश्य बासी पड़ जाता है, और वह यदि बासी नहीं पड़ा या बासी

पड़ जाने पर ताजा नहीं किया जा सका, तो समझो कि वह समाज जराग्रस्त अतः मरणासन्न हो चुका है।'

यही कारण है कि तुलसीदास के संबंध में अधिकाधिक वाद-विवाद, नोंक-झोंक और विचार-मंथन के पश्चात् प्रत्येक दशक में उनका पुनर्मूल्यांकन हमारी सांस्कृतिक सचेष्टता का ही प्रमाण माना जाना चाहिए। इस महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय कार्य में प्रत्येक व्यक्ति का योग (वह चाहे अभियोग ही हो!) अभिनन्दनीय है।

एक और बात भी है। तुलसी-साहित्य में विशेष गतिशीलता-सम्पन्न महानुभावों का ध्यान जब उन्हें (तुलसी को) नवीन देश-काल के विशद परिवेश में देखने की ओर तत्पर न होगा, तब छिछले जल में बसनेवाले मीन घास-सेवार के निरुवारने में उलझेंगे ही। अधुना तुलसी के बारे में बहुत-सी अनिष्ट आलोचना का एक कारण यह भी है।

इधर तुलसी का जो अवमूल्यन किया जा रहा है, वह सरासर अकारण भी नहीं है। वस्तुतः उसके कुछ अनिवार्य कारण हैं। उन कारणों का विस्तार में विवेचन करें, तो एक सौ एक बातें कहनी पड़ेंगी। जैसे कि रामचरित मानस मूलतः श्रवण हेतु विरचित ग्रंथ है, जिसकी उस युग के समाज के लिए उपयोगिता और अनिवार्यता थी और जिसकी पूर्ण सार्थकता प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार की योजनायें—रामलीला का रंगमंचन, कथा-वाचकों द्वारा मानस की कथाओं का श्रोताओं के बीच वाचन, मंदिरों में रामायण का कीर्तन-मंडलियों द्वारा संकीर्तन आदि-आदि—रची गई थीं। इस बात की कल्पना तो तब तुलसी को भी नहीं ही हो सकती थी कि जिस तरह के आज के ग्रंथ हैं, उस तरह का प्रमुखतः पठन का ग्रंथ कभी 'मानस' भी बनेगा और छापेखानों में मुद्रित हो जन-जन के लिए सुलभ और पठनीय बन जाएगा। या कि जिस युग में जिनके लिए 'रामचरित मानस' का निर्माण हुआ था, वह युग उन लोगों के लिए संघर्षमय अग्रगामिता का युग नहीं रह गया था। अतएव उस युग के उन लोगों की क्षमताएँ सामूहिक रूप में प्रतिरक्षात्मक आयोजनाओं और व्यक्ति रूप में व्यक्तिगत तपश्चर्या और साधना में ही प्रतिफलित हो सकती थीं। किन्तु आज हमारी क्रियाशीलता का मार्ग सर्वथा उन्मुक्त हो जाने से हमारी आज की आकांक्षाएँ सर्वथा भिन्न हैं अथवा यह कि जिस कोटि का आस्थावान या सीमित जानकारी रखनेवाला वह युग था, उसमें तुलसी का एक-एक वाक्य

वेदवाक्य समान मान्य था। किन्तु आज के अन्तश्चेतना और घोर भौतिक साधनों वाले निराशावादी वैज्ञानिक युग में प्रायः आस्था के सभी आधार बदल जाने से मानस के अनेक 'सत्य' आज आसानी से झुठला दिये जा सकते हैं इत्यादि-इत्यादि।

यहाँ अधिक विस्तार में न जाकर संकेत में इतना ही कहना चाहूँगा कि आज का सारा जमाना ही तुलसी और तुलसी-साहित्य के प्रतिकूल जान पड़ता है : **थोरे महुँ जानिहहिं सयाने।**

और तुलसी के अनुकूल पुनर्मूल्यांकन में भी एक सौ एक बातें कही जा सकती हैं; जिनमें कई इतनी ठोस होंगी, जिनके बल पर तुलसी का गौरव अनन्त काल तक अक्षुण्ण रहने की आशा की जा सकती है। जैसे कि आत्मोत्कर्ष के हिमवंत की उच्चतम चोटी 'सगरमाथा' '(माउंट एवरेस्ट) पर पहुँचने में अहं के कण-कण पर मृत्युदायक हजारों-हजार मरण झेलते हुए, अहं के समस्त बोझ को टुकड़े-टुकड़े शव समान मार्ग में फेंक-फेंक कर पूर्ण बेबाक हो उनका उस चोटी पर पहुँच जाना। या कि (और) फिर अपने उस अनमोल आत्मोत्कर्ष के अन-मोल हीरा समान व्यक्तित्व को काँच बना उसे हजारों-हजार कणों में तोड़ उनको अपने युग के लाखों-लाख सुषुप्ति सागर में सोये जड़ नर-कंकालों में लिखे मानस-खंडहरों में फेंक, उन्हें मुक्ता बना स्वयं ही हंस बनकर उनका उन्हें पुनः कंकड़-कंकड़ चुन-चुन, चुग-चुग वह 'क्वचिदन्यतोपि' निर्मित कर डालना; जो ब्रह्माण्ड में पहले कहीं नहीं था। या कि इस जगत-जंजाल की दारुण प्रति-कूलताओं के बावजूद अपनी अनवरत साधना एवं तपश्चर्या के बल पर जीवनांत के समय गहन नैराश्य के अंधकार में भी उनका अपना वह महान व्यक्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखना, और जाते-जाते उसे और अधिक तेजस्विता प्रदान कर सोने में सुगंध डाल जाना, जो कि अपने अकेले में उनकी समस्त वाणी को सत्य का चरणामृत देते रहने और इस प्रकार उसे सदा सशक्त तथा प्राणवान बनाये रखने का पूर्ण सामर्थ्य रखता है।

हमें यहाँ तुलसी के केवल इस एक अंतिम पुरुषार्थ—इस सोने में सुगंध डालने की उनकी कीमियागरी, के ही संबंध में कुछ निवेदन करना है।

प्राचीन रोम-निवासियों में एक परम्परा यह थी कि जब कोई संत या सम्राट मरणासन्न होता, तो उस समय वह एक सूत्र या लघुवाक्य में अपने जीवन की अनुभूतियों का निचोड़ अपने आदेश, संदेश या उपदेश के रूप में

अपने उत्तराधिकारी अथवा अनुयायी भक्तों के लिए लिखित या मौखिक छोड़ जाता था। यह उसका 'वाच वर्ड' (सचेतक शब्द) माना जाता था। उसके उसी 'वाच वर्ड' को (उसमें निहित व्यंजना के आधार को) उसके जीवन की सफलता या असफलता का प्रतीक माना जाता। मरणासन्न क्षणों में जो बोल नहीं पाते थे या कुछ लिखित ही छोड़ नहीं जा सकते थे; उनका समस्त जीवन लक्ष्य-विहीन एवं निरर्थक मान लिया जाता था। जीवन का यह पुरुषार्थ—कर्म-प्रधान मीमांसा दर्शन बहुत ही मनोहारी है। भारतीय जैन साधक भी 'सल्लेखना' द्वारा निज मरण को बाल-मरण या पण्डित-मरण के रूप में करने की अपनी रुचि की अंत समय घोषणा करते हैं। अन्तकाल में राम-नाम उच्चारण की महिमा का बखान सभी सन्तों ने भी किया है, यद्यपि यह कठिन अवश्य होता है। तुलसी ने ठीक ही कहा है :

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त रामु कहि आवतु नाहीं।।

और तुलसी भी अपना 'वाच वर्ड' दे गये थे। उसके आधार पर भी उनके व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण अंश का आकलन होना चाहिये। तुलसी के पहिले गौतम बुद्ध ने भी अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपना 'वाच वर्ड' दिया था, जो उनकी महा-परिनिर्वाण-भूमि कसिया (कुशीनगर) में, स्तूप से संश्लिष्ट मन्दिर में, उनकी धराशायी विशाल प्रस्तर-प्रतिमा के चारों ओर पालि भाषा में उत्कीर्ण है और जिसका सारांश कुछ इस प्रकार है :

"आनन्द ! मैंने जीवन और जगत के मर्म को समझ लिया है। मैं यहाँ से पूर्णतः तुष्ट जा रहा हूँ। आनन्द ! मैं लौटकर अब यहाँ कभी नहीं आऊंगा।"

बुद्ध के समस्त जीवन और साहित्य के प्रमुख तत्व, मोह-परित्याग का उदात्त स्वर उनके इस 'वाच वर्ड' में निहित है।

तुलसी ने जीवन-भर राम के गीत गाये। उन्होंने अहं के साथ भीषण संघर्ष करके उसे परास्त करने में अपनी महावीरता का अतुलित पुरुषार्थ प्रामाणित किया। भक्ति और दैन्य की चरम सीमा पर अपनी मानसिकता को पहुँचाकर राम के द्वारे जन्म-भर मनोरागों में श्वान बनकर पड़े रहने के अपने मनोरथ को उन्होंने अपना परम सौभाग्य माना। आत्मग्लानि और आत्म-निवेदन के उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में अपने अमर गीत गाये। किन्तु अन्त समय मोह-भंग की दारुण हत-बुद्धिता की भी अनुभूति उन्हें होनी थी। उन्हें यह जानना शेष रहा था, जिसे उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षणों जाना भी, कि इस

विश्व-विधान में कोई भी किसी को बख्शने वाला नहीं। कोई किसी को क्षमा करने वाला नहीं। शायद परमात्मा भी नहीं। अतः क्षमा पाने के लिये हमें अपने से ही क्षमा पाने का यानी स्वयं अपने को क्षमा देने का अभ्यास कर लेना चाहिये।

जीवन-भर किसी को सब कुछ समझना, जीवन-भर किसी को अपना सब कुछ मानना और अन्त समय में कबीर के शब्दों में : "कबिरा कुंभ कुँभार के एकै धका दरार"[1]—इस जगत-विधान को सेंवरका भुवा पाकर पंछी सुगना हीरामन के मोह भंग के दारुण सदमे से व्यथित होना; जान पड़ता है, मानव-तन में आकर ग्रहण करने की जीव की अनिवार्य नियति है। कई लोग ऐसे क्षणों में महाग्लानि के महार्णव में तिरोहित ही हो जाते हैं। परन्तु कुछ लोगों में घोर आत्मग्लानि तथा अपनी महाहेयता की प्रतीति के क्षणों में अकस्मात् एक अज्ञात् तथा अलौकिक आत्मबल का स्फुरण हो जाता है, जिससे बल पाकर वे मँझधार में डूबते-डूबते भीतर से पानी की सतह पर उतर आते हैं और फिर धीरे-धीरे तैरते-तैरते तट पर भी आ ही जाते हैं। और तब ऐसों में का कोई तो यह कहता है कि मानव-जीवन में उपलब्धियों के महाउल्लासपूर्ण क्षणों के ही समतुल्य महान् ग्लानि और विषाद के विगलित क्षण भी तब महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जब शोक-मग्न व्यक्ति, शोक-सागर के अन्तस्तल से ऊपर सतह तक आ सके और वहाँ से तैरता-थकता तट पर लग जाये; और तभी तट पर बैठा वहीं से वह कभी इब्सन के स्वर में कहे कि :

'जो सदा ही अकेला खड़ा रह सकें, इस जगत पर, वही सबसे बलवान है !

और कभी वह मौलाना 'हाली' के शब्दों में यह कहे कि :

जहाँ में 'हाली' किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह राज़ है अपनी ज़िन्दगी का, बस इसका चर्चा न कीजियेगा ।।

तुलसी ने भी अपने जीवन की सर्वाधिक गहन नैराश्य की अन्तिम घड़ी में अपने को सर्वथा निराश्रित, परित्यक्त अनुभव करते ही अकर्मण्यता और पौरुष के अपने सच्चिदानन्द स्वरूप की झलक प्राप्त की थी और मरणासन्न उनकी पथराई हुई नैन पुतरियाँ वही रूप सँजोये चिता की अग्नि में तिरोहित हो गई।

---

१. कबीर का दोहा है :
'कबिरा' सोना सन्त जन टूटि जुरैं सौ बार।
दुरजन कुंभ कुँभार के एकै धका दरार।।

गौतम बुद्ध के ही समान तुलसी ने भी अपने जीवन के अन्तिम क्षण में अपना 'वाचवर्ड' दिया था :

बयो सो जानि लुनिये

अर्थात् जो बोया है (बच्चा) ! सोई (वहीं) काटना हैं।

भारत भूमि में ही नहीं समस्त पृथ्वी पर जल-वायु भले ही बदल जाएँ। नैतिकता के सभी मानदण्ड भी भले ही बदल जाएँ, और भले ही मनुष्य और उसकी भाषा तक बदलकर नया मनुष्य और नई भाषा बन जाये; पर जब तक इस सौर-मण्डल में हमारी यह धरती अपनी धुरी पर अपने नियमों में चल रही है, तथा जब तक हमारे इस गगन में सूर्य-चन्द्रादि ग्रह-नक्षत्र अपने नियमानुसार डूबते-उतराते (और कभी-कभी इतराते भी) जा रहे हैं, तुलसी के व्यक्तित्व का यह उदात्त पुरुषार्थ; उनके कृतित्व में कर्म-परिपाक की प्रखरता का यह स्वर 'जो बोओगे वही काटना पड़ेगा! अनन्तकाल तक मानवता के कानों में गूँजता रहेगा। वर्तमान भारत के भक्ति रोग-ग्रस्त समाज के कल्याण की भी यही मकरध्वज-बटी है।

अपने इस अन्तिम उद्‌गार में तुलसी ने हनुमान को, सुजान शिरोमणि राम को तथा कृपानिधान शंकर को सावधान होकर जो सुन लेने के लिये आह्वान् किया है, वह समस्त संसार के हित के लिये उनका उद्‌बोधन है, उनका 'वाच वर्ड' है; जिसकी गूँज प्रलय के पश्चात् अनन्त निद्रा में भी तिरोहित ब्रह्मांड को रह-रहकर स्पंदित कर देने की क्षमता रखती है, और जोह मृत पिण्डों में भी पुनः जीवन-लता के नये बीजों के वपन का आधार बनती है। तुलसी का वह अमर संदेश, उनके जीवन और साहित्य का चार शब्दों में वह निचोड़, निम्नांकित छन्द में पिरोया हुआ है :

कहौं हनुमान सों सुजान राम राय सों,
कृपा निधान संकर सों सावधान सुनिये।
हरख विषाद राग रोष गुन दोष मयी,
बिरची विरंच यह देखियतु दुनिये ॥
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम वेद कहैं साँची मन गुनिये।
तुम तें कहा न होय हा हा सो बूझैये मोहिं,
हौं हूँ रहौं मौन हीं बयो सो जानि लुनिये ॥

भारतीय-वाङ्मय में राम-साहित्य का विकास

⊙

डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, 'राजहंस',

राजनादगांव

[राम-साहित्य की अजस्र धारा ने किस प्रकार वेदों, पुराणों एवं संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशादि प्राचीन भाषाओं के काव्यों को आप्लावित करती हुई हिन्दी-साहित्य को रसलीन किया है? पढ़िये राम-साहित्य के पारदर्शी अध्येता, भावप्रवण कवि एवं मौलिक व्याख्याता डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र (भू० पू० अध्यक्ष : हिन्दी-विभाग : नागपुर विश्वविद्यालय) का इतिहास-परक शोधपूर्ण निबन्ध––सम्पादक]

किसी भी जन-समाज की वास्तविक समृद्धि भौतिक पदार्थों पर नहीं, किन्तु भावों और विचारों की उदारता पर निर्भर करती है। जिस जाति या राष्ट्र का चारित्र्य जितना ऊँचा होगा, जिसके आदर्श जितने उज्ज्वल होंगे, जिस राष्ट्र के जीवन में परिष्कार की रुचि जितनी व्यापक होगी, वह राष्ट्र या समाज उतना ही अमरत्व प्राप्त कर सकता है। भावों और विचारों में उदारता लाने का सबसे बड़ा माध्यम है साहित्य। जीवन-परिष्कार की रुचि देने वाला, आदर्शों की उज्ज्वलता को चटकीले रंगों में उरेहने वाला और अखिल मानव-समाज के चारित्र्य को ऊँचा उठाने वाला सबसे सफल और सबल माध्यम है साहित्य। अक्षरों का संसार निर्मित करने वाला कवि क्षर वस्तुओं का संसार निर्मित करने-वाले विधाता से सवाया ही समझा गया है। विधि के बनाये हुए अकर्मण्य से अकर्मण्य मनुष्य भी कवि का एक संकेत पाकर अद्‌भुत् कर्मठता से सम्पन्न हो गये हैं और उनके हृदयों की निकृष्ट से निकृष्ट भावना भी उस पारस के सम्पर्क में आकर सौ टंच सोने की भाँति जगमगा उठी है। समाज के ऊपर साहित्यकार का जो ऋण है, वह किसी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता।

भारत का सौभाग्य है कि उसे उज्ज्वल साहित्यकारों की एक लम्बी परम्परा मिली है। यह और भी सौभाग्य की बात है कि वह परम्परा एक ऐसे महर्षि से प्रारंभ हुई है, जो अपनी प्रतिभा में, अपनी शक्ति में अपनी सक्रियता

में और अपनी सहृदयता में आज तक अद्वितीय हैं। कविकुल-गुरु कालिदास तक ने कहा है: 'श्लोकत्वमापद्यति यस्य शोकः' अर्थात् जिसका आहत क्रौंच पक्षी के लिये उमड़ा हुआ कारुण्य भी श्लोक के रूप में निकल पड़ा, उस आदि-कवि का क्या कहना!

उन महर्षि वाल्मीकि जी ने अपने आदिकाव्य का नायक चुना मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को और उनके चरित्र का इतनी विशालता और व्यापकता के साथ इतने आकर्षक स्वरों में गायन किया कि देखते ही देखते वह संगीत अकिंचन की कुटिया से लेकर वैभवशाली राजभवनों तक व्यापक हो गया और भारत ही में सीमित न रहकर संसार के दिग्विजय के लिये भी निकल पड़ा। यों तो भगवान राम की पत्नी श्री सीता जी ने अपने निर्वासन-काल में इन्हीं महर्षि के यहाँ आश्रय पाया था और इन्हीं के आश्रम में अपने यमल पुत्र कुश और लव को जन्म दिया था और इन दोनों कुमारों ने ही वाल्मीकिकृत रामायण के प्रथम सस्वर प्रचारक बन कर न केवल जनमत ही सीता जी के पक्ष में बदल दिया था; किन्तु राम और राम के दरबारियों को भी सीता के अनुकूल हो जाने के लिये बाध्य कर दिया था, ऐसी किम्बदन्ती है। किन्तु यह न भी माना जाय, तो भी यह निश्चित है कि 'कुशीलवों' (रामकथा गा-गा कर सुनाने वाले प्रचारकों) की परम्परा महर्षि वाल्मीकि की रामायण-रचना से प्रभावित होकर ही चल पड़ी थी। यह तो ठीक ही है कि भारत का ऐसा कोई प्रदेश नहीं, जहाँ वाल्मीकीय रामायण न पहुँची हो, किन्तु यह भी सोलहो आने ठीक है कि विश्व का ऐसा कोई सभ्य देश भी न होगा, जहाँ मूल अथवा अनुवाद रूप में यह वाल्मीकीय रामायण अब तक न पहुँच पाई हो।

गोस्वामी तुलसीदास जी का कहना है कि रामकथा की परम्परा वेदों के समय से चल रही है। उन्होंने वेदों का बड़ा व्यापक अर्थ लिया है। राम-सम्प्रदाय-सम्बन्धिनी अनेकानेक उपनिषदों को निश्चय ही गोस्वामी जी वेदों के अन्तर्गत मानते हैं, जबकि आधुनिक समीक्षक-गण संहिताओं ही को और विशेषतः ऋक्, यजुः और साम को ही वैदिक साहित्य में प्रधानता देते हैं। इस साहित्य में उन्हें रामकथा कहीं नहीं मिली। रामकथा से सम्बन्धित कुछ नाम (यथा राम, सीता, दशरथ, जनक, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि) अवश्य मिले और ऋग्वेद में एक जगह यह भी मिला कि राम नामक कोई प्रतापी यजमान (राजा) हो चुके हैं, किन्तु दशरथात्मज होकर राम ने जनकतनया से

विवाह किया, फिर वनवासी हुए, जहाँ सीताहरण हुआ और जिसके उद्धार के लिए उन्हें रावण-वध करना पड़ा, इत्यादि बातें वहाँ कहीं नहीं हैं। समीक्षकों की इस घोषणा के बावजूद वर्तमान समय में भी अनेक वेदज्ञ ऐसे हैं, जो वैदिक ऋचाओं का अपने ढंग से अर्थ करके यह सिद्ध करने का दावा करते हैं कि प्रभ-विष्णु रामकथा अपने वर्तमान रूप में भी वेदों में विद्यमान है और वहीं से चलकर उसने सम्पूर्ण भारतीय-वाङमय को प्रभावित किया है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो मानते हैं कि रामकथा गाथा के रूप में बाल्मीकि के पूर्व प्रचलित रही है और गाथा रूप में विद्यमान उसी रामकथा ने बौद्ध जातक तथा जैन पुराण के स्रोतों को भी प्रभावित किया है। परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि महर्षि वाल्मीकि की प्रतिभा का सम्पर्क पाकर वह कथा एकदम मौलिक-सी बन गई है। अत-एव यदि महर्षि वाल्मीकि को ही राम-साहित्य का आदि-प्रवर्तक कहा जाय तो किसी दृष्टि से कोई अनौचित्य न होगा। राम-कथा के बौद्ध और जैन रूप भी वाल्मीकि प्रदत्त रूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं।

रामकथा में कल्पना का अंश कितना है और इतिहास का कितना, यह निश्चित रूप से बता सकना बहुत कठिन है। कई लोगों ने उसे केवल प्रती-कात्मक, केवल कल्पनात्मक माना है। परन्तु संसार में यह देखा गया है कि स्वाभिमानी मानव-समाज अपने आप नहीं बदला करता अर्थात् अपनी वास्तविक कुल-परम्परा का उद्घोष करने में बुरा नहीं मानता, भले ही वह कुल-परम्परा बहुत प्रशस्त न रही हो। घोड़ी चोरे, चोरघड़े, ब्रह्मराक्षस, फराश–खाने वाले, बाघ, भूत आदि के आड़नाम अथवा कुल-नाम हमें अब भी महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में सरलतापूर्वक मिल जाते हैं। छत्तीसगढ़ के गोंड़ों (आदिम प्रजा-तियों) ने इसीलिये तो अब तक यह कहना नहीं छोड़ा है कि वे रावण-वंशी हैं। रामपूजकों के देश में रहकर वे गर्व के साथ मेघनाद की पूजा करते और रावण के यश के गीत गाते हैं। रामवंशियों या रघुवंशियों की संख्या का तो फिर कहना ही क्या है। राम को हुए इतने हज़ार वर्ष हो चुके कि उस समय के भग्नावशेस आदि मिलना असंभव ही-सा है। जिन सामग्रियों के बल पर इति-हास आँका जाता है, उनमें लिखित इतिवृत्त के साथ ही वंशक्रम का भी पर्याप्त स्थान मानना चाहिए। इस दृष्टि से राम-कथा को हम केवल प्रतीकात्मक नहीं मान सकते। जिस चरित्र का ऐतिहासिक आधार नहीं होता, वह कितना भी प्रेरणा-दायक हो, किन्तु उससे अपनी आत्मीयता जीवन्त रूप में उतनी

अच्छी तरह सुदृढ़ हो ही नहीं सकती। चाहे राम प्रभु के अवतार (जगदीश) रहे हों, चाहे भारत के आदर्श नरेश (महीश), किन्तु वे हमारे ऐतिहासिक राष्ट्रीय महापुरुष रहे हैं, इसमें कोई सन्देह न मानना चाहिए। वे सामान्य नहीं, किन्तु अत्यन्त अनुकरणीय महापुरुष रहे हैं। तुलसीदास जी ने कहा है :

जो जगदीश तौ अति भलो, जो महीश तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि रामचरण अनुराग ।।

रामकथा में इतिहास-रूपी सोने के साथ कल्पना-रूपी सोहागे का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण करा दिया गया है कि उसकी दमक सौ गुनी बढ़ गई है। जीवन-चरित्र का कितना भाग मार्मिक रूप से प्रकट करने योग्य है, इसका पूरा विचार करके वाल्मीकि मुनि ने रामायण रची है। परिणामतः वह जन-जन के जीवन की उन्नायिका होकर युगयुग का कण्ठहार हो गई है और साहित्य को सदा के लिए प्रभावित करने की क्षमता रखती है। एक ने राम-रावण युद्ध में सत्य की जय और असत्य की पराजय देखी, दूसरे ने उसकी आड़ में भोगवासना पर संयम का प्रभुत्व देखा। एक ने सीता-हरण में भारत-लक्ष्मी के अपहरण की गाथा पाई, तो दूसरे ने समझा एवं समझाया कि राम अर्थात् रमणीय संस्कृति ही सीतारूपी शान्ति की प्रकृत अधिकारिणी है न कि रावण अर्थात् रुलाने वाली सभ्यता। किसी ने उस कथा में त्याग और अनासक्ति की महिमा आँकी, किसी ने सौहार्द और पौरुष की। परन्तु प्रायः सबने यह अनुभव अवश्य किया कि राग और द्वेष अथवा काम और क्रोध की अपनी मूलभूत प्रवृत्तियों का प्रसार और परिष्कार यदि देखना है, तो रामकथा में देखा जावे। सबने उत्थान और पतन की स्पष्ट झाँकियाँ देखीं और सब ही अनायास यह सोचने को बाध्य हो गये कि जन-मानव को राम के समान व्यवहार करना चाहिए न कि रावण के समान। आदि-कवि का काव्य-कौशल इसी में है कि उसने अपने अक्षरों को इस दिशा में अ-क्षर सामर्थ्यशाली बना दिया है।

आधुनिक समीक्षक वाल्मीकीय राम-कथा को ढाई हजार साल पुरानी बताते हैं। महाभारत उसके बाद लिखा गया। उनके मत से अनेक तथाकथित आर्ष ग्रंथों (उपनिषदों, पुराणों आदि) की रचना भी वाल्मीकीय रामायण के बाद हुई है, ऐसे सब ग्रंथों में रामकथा ने स्वभावतः ही बड़ा रोचक प्रवेश पा लिया और क्रम-क्रम से उसने इतना विस्तार ग्रहण कर लिया कि लोग कह उठे कि वह काव्य नहीं, जिसमें रामकथा न हो; वह पुराण नहीं

जिसमें रामकथा न हो; वह इतिहास नहीं, जिसमें रामकथा न हो और वह संहिता (वेद-वाणी) भी नहीं है, जिसमें रामकथा न हो : 'न तद् हि काव्यं नहि यत्र रामः, न तत् पुराणं नहि यत्र रामः, न चेतिहासः नहि यत्र रामः, न यत्र रामः नहि संहिता सा।' इस प्रकार धार्मिक साहित्य और ललित साहित्य-दोनों ही क्षेत्रों में रामकथा छा गई। रामतापनीयोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, मुक्ति-मुक्तिकोपनिषद्, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण, योगवाशिष्ठ, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुंडि रामायण, सत्योपाख्यान सदृश धार्मिक ग्रंथों में और रघुवंश, भट्टिकाव्य, रामलिंगामृत, प्रतिमा नाटक, महावीर-चरित, उत्तररामचरित, अनर्घ राघव, बालरामायण, हनुमन्नाटक, आश्चर्य चूड़ामणि, प्रसन्न राघव, उन्मत्त राघव प्रभृति ललित साहित्य के ग्रंथों में संस्कृत भाषा से सम्बद्ध होकर राम-कथा राम-साहित्य का विस्तार कर रही है।

संस्कृत-युग के बाद प्राकृत और अपभ्रंश के युगों में भी रामकथा पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। विमलदेव सूरि का पउम चरियं, स्वयंभू देव-कृत पउम चरिउ, पुष्पदन्त का महापुराण, रइधू कृत पद्म-पुराण आदि के नाम इस सम्बन्ध में लिये जा सकते हैं। तदनन्तर प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं में भी रामकथा अथवा रामायण का विपुल साहित्य निर्मित हुआ है। तमिळ भाषा में कंब रामायण का निर्माण ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ। तेलुगु भाषा में रंगनाथ रामायण (द्विपद रामायण) तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में रची गई। मलयालम भाषा में रामचरितम् चौदहवीं शताब्दी में लिखी गई। कन्नड़ भाषा में तोरवे रामायण सोलहवीं शताब्दी में लिखी गई। असमिया भाषा में माधव कंदली द्वारा १४वीं सदी के अन्त में एक रामायण लिखी गई, जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुई। बंगला भाषा में कृत्तिवास ने १५वीं सदी के अन्त में एक रामायण लिखी, जो उनके नाम से प्रसिद्ध हुई। उड़िया भाषा में १५वीं शताब्दी में सारळादास ने और १६वीं शताब्दी के आरम्भ में बळरामदास ने रामायण लिखी, जो उनके नामों से प्रसिद्ध हुई। ये सब रामायणें गोस्वामी तुलसीदास जी के पूर्व की लिखी हुई कही जा सकती हैं। १६वीं शताब्दी के अन्त में श्री एक-नाथ महाराज ने मराठी भाषा में भावार्थ रामायण लिखी। गुजराती भाषा में १९वीं शताब्दी में गिरधर दास ने रामायण लिखी और इसी शताब्दी में मुंशी जगन्नाथ खुश्तर ने उर्दू भाषा में रामायण लिखी। ये तो प्रधान-प्रधान

रामायणें हैं। राम-कथा विषयक अन्य साहित्य ग्रंथों के नाम गिनाये जायँ और विदेशी भाषाओं में भी लिखी हुई रामायणों की नामावली विस्तृत की जाय तथा आदिम जातियों में भी रामकथा के विविध रूपों का विश्लेषण किया जाय, तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही बन जायगा।

इस विशाल राम-साहित्य का प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर न पड़े, यह हो ही नहीं सकता था। हिन्दी-साहित्य के आदि महाकवि चन्द वरदाई ने दशावतार कथा (पृथ्वीराज रासो) के अन्तर्गत रामचर्चा की है। गोस्वामी तुलसीदास जी से कुछ प्रथम महाकवि सूरदास ने अपने 'सूरसागर' में राम-विषयक अनेक पद लिखे हैं। चौदहवीं शताब्दी में गोस्वामी विष्णुदास ने भाषा वाल्मीकि-रामायण लिखी और सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के कवि ईश्वरदास ने राम-जन्म आदि पर रचनाएँ की हैं। गोस्वामी जी के समकालीन स्वामी अग्रदास जी ने राम का अष्टयाम लिखा और उनके शिष्य नाभादास जी ने राम-भक्तों की माला तैयार की। लगभग उसी समय के महाकवि केशवदास जी भी हैं, जिनका ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' अपने काव्य-कौशल में अपने ढंग का अद्वितीय कहा जाता है। पश्चात् सिक्खों के दसवें गुरु गोविंदसिंह जी ने गोविन्द रामायण लिखी। तदनन्तर प्रमुख रामकाव्यों में रसिक विहारी का रामरसायन, बाबा रघुनाथदास का विश्रामसागर, रुद्रप्रतापसिंह का रामखण्ड, महाराजा रघुराज-सिंह का रामस्वयम्बर, रामनाथ ज्योतिषी का श्री रामचन्द्रोदय तथा खड़ीबोली में रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि, अयोध्यासिंह जी उपाध्याय का वैदेही वनवास, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, मेरा लिखा साकेत सन्त (कोसल किशोर एवं रामराज्य) आदि-आदि अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके और अब भी लिखे जा रहे हैं। कैकेयी, ऊर्मिला, आंजनेय सदृश खण्ड-काव्य भी लिखे गये हैं और सीता, शबरी सदृश नाटक भी। अन्य विधाओं की भी अनेकानेक गद्य-पद्यात्मक रचनाएं हुई हैं और रामकथा विषयक समीक्षा साहित्य भी प्रचुर परिमाण में निर्मित हुआ है। अयोध्या की भक्त-मण्डली में स्वामी अग्र-दास जी की परम्परा से रसिक-सम्प्रदाय वाला विशाल हिन्दी राम-साहित्य निर्मित होता चला जा रहा है और रामलीला के अभिनय और प्रदर्शन में सहायक होने वाले जन-साहित्य के रूप में संगीतात्मक राम-साहित्य (उदाहरणार्थ नवलसिंह-कृत आल्हा रामायण, राधेश्याम कथावाचक-कृत राधेश्यामी रामायण आदि) को तथा कथावाचकों को उपयोगिनी सामग्री देने वाले ऊहापोहात्मक

राम-साहित्य की भी हिन्दी-साहित्य में कमी नहीं है। इस समग्र साहित्य ने मिलकर भारतीय आत्मा को राममय बना दिया है। जन्म से मरण तक हिन्दी-भाषी जनता में राम व्याप्त हो चुके हैं। जन्म समय के सोहर गान 'हो रामा' की टेक के बिना पूरे ही नहीं होते और मृत्यु समय का अर्थी-अभियान 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि के साथ ही आगे बढ़ता है।

हिन्दी-साहित्य पर तमिल, तेलुगु आदि दक्षिणी राम-साहित्य का अथवा असम, बंगाल आदि उत्तरी राम-साहित्य का सामूहिक प्रभाव पड़ा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उस पर प्राकृत, अपभ्रंश आदि स्वदेशी रामसाहित्य का अथवा तिब्बती, खोतानी, सिंहली आदि विदेशी राम-साहित्य का या विविध जातियों वाले आदिम प्रजातियों के अलिखित राम-साहित्य का सामूहिक प्रभाव पड़ा हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। वह जैन और बौद्ध प्रभावों से भी मुक्त है। उस पर यदि भरपूर प्रभाव पड़ा है, तो संस्कृत भाषा के राम-साहित्य का और उसमें भी वाल्मीकिय रामायण तथा अध्यात्म रामायण का और किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में रसिक उपासना के लिये सत्योपाख्यान एवं भुशुंडि रामायण सदृश ग्रंथों का। नाना पुराणों, आगमों और निगम से पूरा-पूरा सत्प्रभाव ग्रहण कर गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने अद्वितीय ग्रंथ 'रामचरित मानस' का कुछ इस कुशलता से प्रणयन कर दिया है कि पश्चात्वर्ती हिन्दी-साहित्य को प्रभाव-ग्रहण के लिये संस्कृत-साहित्य या अन्य किसी साहित्य के टटोलने की आवश्यकता ही न रह गई। तुलसीदास जी के बाद का समग्र हिन्दी-साहित्य एकमेव तुलसीदास जी से ही प्रधानतया प्रभावित है। चाहे व्यास गद्दियाँ हों, चाहे रामलीलाएँ हों, चाहे राममंदिर हों, चाहे रामकथा-विषयक अनुसंधानशालाएं हों, हर कहीं तुलसीदास जी का ही बोलबाला मिलेगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने केवल 'रामचरित मानस' ही नहीं लिखा, किन्तु अन्य कई ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनमें रामकथा विषयक प्रमुख काव्य हैं कवितावली तथा गीतावली रामायण। यों तो उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं को अपनी रचनाओं से प्रभावित किया है, किन्तु उनका प्रबन्धात्मक 'मानस' ही सर्वाधिक प्रभावशाली ग्रंथ सिद्ध हुआ है, जिसने न केवल साहित्य के, किन्तु मानव-जीवन के अनेक क्षेत्रों को अपने स्पर्श से समृद्ध किया है। वह काव्य का अद्वितीय ग्रंथ तो है ही, साथ ही भक्ति-शास्त्र और नीति-शास्त्र का भी वह एक अद्वितीय ग्रंथ है। वह वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म रामायण दोनों से

प्रभावित है, परन्तु फिर भी उसमें गोस्वामी जी के मौलिक चिन्तन और उनकी मौलिक कल्पनाओं के पर्याप्त दर्शन होते हैं। वह अध्यात्म रामायण की भाँति राम को परब्रह्म मानकर चलता है, परन्तु वह ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को महत्त्व देता और मोक्ष की अपेक्षा सेव्य-सेवक भाव पर विशेष बल देता है। अध्यात्म रामायण शिव-पार्वती-सम्वाद तक सीमित है, जो केवल ज्ञानघाट का संवाद है। मानस में काग-भुशुंडि-गरुड़ वाला भक्तिघाट भी है और याज्ञवल्क्य-भरद्वाज वाला कर्मघाट अथवा व्यवहारघाट भी है। मानव की कथा केवल आध्यात्मिक (तात्त्विक) स्तर को ही नहीं, किन्तु आधिदैविक (भावनात्मक) स्तर की और आधिभौतिक (ऐतिहासिक अथवा व्यावहारिक) स्तर की भी है। अध्यात्म रामायणकार ने कथा-प्रबन्ध वाल्मीकीय रामायण से ही लिया है। मानसकार ने उस कथा के चयन में न केवल 'व्यास-समास' पद्धति ही अपनाई है, किन्तु 'स्वमति' अनुरूप उसमें आवश्यक फेरफार भी कर दिया है। वाल्मीकीय रामायण का लक्ष्य रहा है केवल एक महामानव का चित्रण, जबकि मानस का लक्ष्य रहा एक अभीष्ट इष्टदेव का प्रदान - ऐसा इष्टदेव जो एक ओर आदर्श मानव है, तो दूसरी ओर परात्पर परब्रह्म भी है। वाल्मीकि ने राम का इतिहास लिखा, अतएव मानवीय दुर्बलताओं की छोटी-मोटी घटनाएँ भी ज्यों की त्यों रहने दीं। तुलसीदास जी ने रामता का दिग्दर्शन कराया, अतएव आदर्श की रक्षा के दृष्टिकोण से कहीं-कहीं इतिहास का भी परिमार्जन कर दिया है। रामकथा के जनक के नाते उन्होंने आदि-कवि की वन्दना अवश्य की, परन्तु बड़े ही काव्य-कौशल के साथ यह बताने में भी न चूके कि महर्षि की कृति में यदि कोमलत्व और दोषराहित्य है, तो कहीं-कहीं खरत्व और दूषणत्व भी झलक मार रहा है। क्यों न हो, आखिर खरदूषण की कथा भी तो है उसमें :

बन्दहुँ मुनि-पद-कंजु, रामायन जिन निरमयउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष-रहित दूषण-सहित ॥

इस इतिहास-परिमार्जन का तत्त्व समझाने के लिये दोनों ग्रंथों से दो चार स्थलों की तुलना कर देना अप्रासंगिक न होगा।

(१) वाल्मीकि के दशरथ राम से कहते हैं :

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तत्त्वदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥

अर्थात् जबतक भरत बाहर हैं, तब तक हे राम! आपका अभिषेक झटपट

कर डाला जाय। भाव यह कि भरत यहाँ रहे, तो संभव है कि अपने हक की माँग कर बैठें। और मजा यह कि राम भी मौन रह कर अपनी सम्मति सूचित कर देते हैं: 'मौनं सम्मति लक्षणं!'

तुलसीदास के दशरथ अभिषेक की घोषणा गुरु की आज्ञा से करते हैं न कि भरत की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर : 'प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू।' अपने अभिषेक की बात सुनकर सप्रेम पछताते हुए सोचने लगते हैं : 'विमल वंस यह अनुचित एकू, बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।'

(२) वाल्मीकि की कौशल्या राम से कहती हैं :

त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।
किं पुनः प्रोषिते तात, ध्रुवं मरणमेव हि॥

× × ×

यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तथा च।
न त्वानुजानामिन मां विहाय, सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥

अर्थात् 'राम! तुम्हारे रहते (इस सौत के कारण) मेरा निरादर हुआ करता था, अब तुम वन की ओर चल दोगे, तो मेरा तो मरण ही हो जायगा। तुम्हारे पिता ने यदि बन जाने की आज्ञा दी, तो मैं तुम्हारी माता होने के कारण कोई कम दर्जा तो रखती नहीं, अतएव मैं आज्ञा देती हूँ कि मुझ दुखियारी को यहाँ छोड़कर तुम जंगल बिलकुल न जाओ।'

तुलसीदास जी की कौशल्या कहती हैं :

जौं केवल पितु आयसु ताता, तौं जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना, तौं कानन सत अवध समाना॥

इन वाक्यों में सौतिया-डाह की गंध तक नहीं है, अपितु यह भी स्पष्ट है कि कौशल्या जी माता का पूरा दर्जा कैकेयी को दिला रही हैं।

(३) वाल्मीकि के लक्ष्मण राम-वनगमन की वार्ता सुनकर राम से विक्षुब्ध होकर कहते हैं :

यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः।
तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम्॥
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या सन्तुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसंगं बध्यतां बध्यतामपि॥

'हे राम! राजाज्ञा की यह वनगमन-विषयक वार्ता प्रजावर्ग तक फैलने के

पहले ही राज्य को हड़प लो। मैं पूरी मदद करूँगा। और यदि हम लोगों का बाप कैकेयी की शह से कुछ गड़बड़ करना चाहे, तो उसको शत्रु समझ कर निष्ठुरता के साथ उसे मार डालो, मार डालो।'

तुलसीदास के लक्ष्मण से जब राम द्वारा कहा जाता है कि :

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू।
सब कहं परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू।
नतरु तात होइहिं बड़ दोषू॥

तब लक्ष्मण जी यही कहते हैं :

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला, मंदर मेरु कि लेंहिं मराला।
गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू, कहउँ सुभाउ नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई, प्रीति-प्रतीति निगम निज गाई।
मोरे सबहिं एक तुम्ह स्वामी, दीनबन्धु उर-अन्तरजामी॥

(४) वाल्मीकि के राम सीता जी से कहते हैं :

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषाः न सहन्ते पर स्तवं।
तस्मान्नते गुणाः कथ्याः भरतस्याग्रतो मम॥

अर्थात् 'भरत के सामने मेरे गुणों की चर्चा न करना, क्योंकि समृद्धि पाकर लोग दूसरों की प्रशंसा नहीं सुन सकते।' मतलब यह कि भरत को भी राज-मद होगा ही। भक्त भरत के हृदय की कितनी कच्ची पहिचान है यह।

गोस्वामी जी के राम डंके की चोट से कहते हैं :

भरतहिं होय न राजमद विधि-हरिहर-पद पाय।
कबहुं कि काँजी-सीकरनि, छीरसिन्धु बिलगाय॥

स्पष्ट है कि आदर्श की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास के ही राम, दशरथ, कौशल्या और लक्ष्मण भारतीय मानस में पूरी तरह रम सके हैं, न कि वाल्मीकि के।

तीन और उदाहरण देखिये।

(५) गंगा पार करते समय सकुशल लौटने की मनौती मनाती हुई सीता जी कहती हैं :

सुरा घट सहस्रेण मांसभूतोदकेन च।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि, पुरी पुनरागता॥

अर्थात् 'हे देवी गंगा, हम लोग अपनी पुरी में सकुशल लौट आवें, तो आपको हजार घड़े शराब और बढ़िया शोरवा चढ़ायेंगी।'

वियोगी भरत के पास जब हनुमान जी रामागमन का शुभ संवाद लाते हैं, तब भरत जी हनुमान जी को पुरस्कार-स्वरूप सजी-धजी सोलह कन्यायें पत्नी बनाने के लिए देने का वादा कर देते हैं:

सकुण्डलाः शुभाचाराः भार्याः कन्यास्तु षोडशे।

गोस्वामी जी के रामचरित मानस में इन बातों की कहीं गन्ध तक नहीं है।

(६) कथा भाग का एक मोटा-सा प्रकरण है सीताहरण। गोस्वामी जी के समान भक्त-भावुक यह कैसे सह सकता था कि प्रभु की अर्धांगिनी आदि-शक्ति का कोई अपहरण कर ले जाय। अतएव मानस में सीता का नहीं, किन्तु माया सीता का हरण कराया गया और वह भी तब, जब प्रभु ने 'ललित नरलीला' के उद्देश्य से स्वतः सीता जी को ही एक माया-सीता निर्मित करके अग्नि में कुछ काल निवास करने का आदेश दे रखा था।

(७) दूसरा उदाहरण परशुराम सम्वाद का देखा जाय। वाल्मीकि के अनुसार परशुराम जी तब मिले, जब विवाहोपरान्त राम के साथ सब लोग अयोध्या लौट रहे थे। गोस्वामी जी के अनुसार परशुराम जी तब पहुँचे, जब धनुषभंग के अनन्तर स्वयम्बर-स्थल पर ही दुष्ट राजागण विद्रोह करने की बात सोच रहे थे। मनोविज्ञान के औचित्य और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से परशुराम सम्वाद वहीं होना उपयुक्त था, जहाँ तुलसीदास जी ने कराया। राम का इतिहास भले ही कुछ भिन्न रहा हो, परन्तु रामता का इतिहास इसी क्रम की माँग कर रहा था। लोकप्रेरक काव्यों में इतिहास तो केवल कुछ मोटी-मोटी बातें ही देता है। शेष की पूर्ति तो कवि-कल्पना ही किया करती है। उसे भी अनैतिहासिक कैसे कहा जाय। कल्पना के अनुसार ही तो कल्प-कल्प के विधान हुआ करते हैं। अतएव एक कल्प की कल्पना के दूसरे कल्प का इतिहास बन सकने में कोई बाधा माननी ही न चाहिए।

वाल्मीकि जी ने अपने रामायण ग्रंथ के प्रभाव से संसार को एक अत्यन्त आकर्षक महापुरुष और एक अत्यन्त श्लाघ्य परिवार दिया। तुलसीदास जी ने अपने मानस ग्रंथ के प्रभाव से उस आकर्षक महापुरुष को जन-जन का इष्टदेव और उस श्लाघ्य परिवार को अत्यन्त आदर्श, किन्तु साथ ही जन-जन के लिये अत्यन्त आत्मीयतायुक्त बना दिया। उनके राम ने केवल कुटियों से राज-

महल तक आबालवृद्ध-वनिता सब में रम गये, किन्तु आगे आने वाले कवियों की प्रतिभा के प्रबल प्रेरणा-स्रोत भी हुए। जिन लोगों ने राम-कथा का साहित्य रचने के हेतु कलम उठाई, वे राम के लोक-रंजक रूप पर नहीं, किन्तु लोक-रक्षक रूप पर ही विशेष आकृष्ट हुए। यह तुलसीदास जी की महिमा है कि राम और कृष्ण का एकत्व स्थापित होते हुए भी राम का मंगलमय रूप हिन्दी-साहित्य में मर्यादावादी बनकर ही चमका है और रसिक-सम्प्रदाय तक की राम-शाखा में परकीया भाव को कहीं गुंजाइश तक नहीं मिलने पाई है। आचारवाद और समन्वयवाद उनकी विशिष्ट देनों में से हैं।

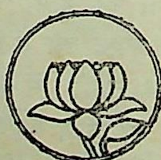
तुलसीदास जी के पश्चात् का समय हिन्दी राम-साहित्य गोस्वामी तुलसीदास जी से ही प्रभावित हुआ हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। वाल्मीकीय रामायण के कई शब्दानुवाद, भावानुवाद आदि हुए हैं और अध्यात्म रामायण के भी। इसी प्रकार योगवाशिष्ठ, हनुमन्नाटक आदि ग्रंथों के भी भावानुवाद हुए हैं। निराला जी रचित ओजस्वी 'राम की शक्ति-पूजा' का स्रोत बँगला कृत्तिवास रामायण है। अन्य कई कथानकों के भी अलग-अलग स्रोत हैं। अब तो लेखकों की नई-नई प्रवृत्तियाँ भी जाग उठी हैं। रामकथा के अति-मानवीय पक्षों को हटाकर उसे एकदम मानवी भूमिका प्रदान करना नवीन लेखकों का ध्येय-सा ही हो गया है। दबे हुए चरित्रों को उभारना और दोषपूर्ण चरित्रों के उज्ज्वल पक्ष को बड़े चटकीले रंगों से चित्रित कर देना भी समय की माँग के अनुकूल लगने लगा है। इसीलिये तो जहाँ एक ओर उर्मिला और कैकेयी पर काव्य लिखे गये, वहाँ दूसरी ओर रावण पर नाटक, महाकाव्य और बड़े-बड़े उपन्यास लिख डाले गये हैं।

यों तो भारतीय-परम्परा में एक से एक आदर्श महापुरुष होते आये हैं, परन्तु उन सब में सूर्य और चन्द्र की भाँति राम और कृष्ण ही विशेष रूप से जगमगा रहे हैं।

इन दोनों को केन्द्र बनाकर भारत का अस्सी प्रतिशत साहित्य रचा गया है। किन्तु दोनों के जीवन की समीक्षा की जाय, तो हमें कृष्ण की ऐकान्तिकता और राम की सामूहिकता के दर्शन स्पष्ट रूप में मिल जाते हैं। राम की रमणीयता और कृष्ण का आकर्षण उनके नामों में ही सिद्ध है। शक्ति, शील और सौन्दर्य दोनों में भरपूर था। फिर भी कृष्ण वैयक्तिक साधकों के आराध्य रहे, क्योंकि वैयक्तिकता उनके जीवन का ही क्रम रही और राम सामाजिक साधकों

के आराध्य रहे, क्योंकि सामाजिकता उनके जीवन की चर्चा रही। कृष्ण इस जगत में अकेले आये और अकेले ही चले गये। राम बन्धुओं को लेकर आये और अयोध्या के कीट-पतंगों, पशु-पक्षियों, सबको लेकर स्वधाम गये। कृष्ण ने लीला-पुरुषोत्तम बनकर 'चोर जार शिखामणि' की उपाधि प्राप्त की, राम ने मर्यादा पुरुषोत्तम बनकर उस रामराज्य की स्थापना की, जो समाज-व्यवस्था का युगयुगीन आदर्श है। कृष्ण हैं वंशीधर, जो कह सकते हैं कि हम भले, हमारी वंशी भली। राम हैं धनुर्धर, जिन्हें देख कर लोग कह सकते हैं : 'आपत्तियों का विनाश हो और सज्जनों का संरक्षण हो :' 'आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्, लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।' कृष्ण-साहित्य ने हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि की, उसने मधुर-मधुर पदों की लड़ियाँ लगा दीं; राम-साहित्य ने हिन्दी-साहित्य की ऊर्जस्वलता की श्रीवृद्धि की, उसने मुद मंगलमय प्रबन्धों की लड़ियाँ लगा दी हैं। कला के लिए कला देखनी हो, तो कृष्ण-साहित्य देखिये और जीवन के लिए कला देखनी हो, तो राम-साहित्य देखिये।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य पर राम-साहित्य का प्रभाव अनेक प्रकार से पड़ा है। केवल धर्म और दर्शन के क्षेत्र में, किन्तु समाज-नीति और राजनीति के क्षेत्र में जो भी उदारता है, चाहे वह रामकथा के संदर्भ में व्यक्त की गई हो, चाहे अन्य किसी कथा अथवा मुक्तक रचना ही के सन्दर्भ में, उसमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राम-साहित्य ही अपना प्रभाव दिखा रहा है, ऐसा मान लेना किसी प्रकार अतिशयोक्तिपूर्ण न कहा जायगा।



रामचरित मानस की भूमिका

⊙

आचार्य पं० श्री सीताराम चतुर्वेदी
काशी

[काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा संस्कृत एवं हिन्दी के अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों के प्रणेता आचार्य पं० श्री सीताराम चतुर्वेदी (जो सम्प्रति 'तुलसी-ग्रन्थावली' नामक विशाल ग्रन्थ के प्रणयन में संलग्न हैं) ने अपने गहन अध्ययन एवं अनुभव से 'मानस' का परीक्षण कर—किम्, कथम्, केन, कस्मै—अर्थात् मानस क्या है, इसकी रचना क्यों की गयी, किसने की और किसके लिए की—इस अनुबन्ध चतुष्टय का वैदुष्यपूर्ण विवेचन किया है—सम्पादक]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भारतीय महाकाव्यों की परम्परा से एक पग आगे बढ़कर मंगलाचरण में सरस्वती, गणेश, भवानी, शंकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, सीता, राम, ब्राह्मण, सुजन-समाज और सन्त-समाज के साथ-साथ निश्छल भाव से उन खलजनों की भी वन्दना की है जो बिन काज दाहिने-बायें बने रहते हैं। इसके पश्चात अपना स्वाभाविक दैन्य प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा—'कवि न होउं नहिं वचन प्रवीनू, सकल कला सब विद्या हीनू।'... किन्तु तथ्य यह है कि काव्य का कोई अंग ऐसा नहीं था, जिसका पूर्ण मर्म वह न जानते रहे हों। मानस के बहुत-से दोहों और चौपाइयों में मात्राओं की कमी या वृद्धि और गतिभंग जो मिलता है, यह सब प्रतिलिपिकारों और तथाकथित संशोधकों की कृपा है; जिन्होंने मनमाने ढंग से पाठ बिगाड़ डाला, शब्द इधर से उधर कर डाले, चौपाइयाँ बदल डालीं, प्रसंग बढ़ा दिए और जो उन्हें ठीक जँचा वह पाठ बना डाला। गोस्वामी जी के हाथ की लिखी कोई प्रति न मिलने के कारण उनका इष्ट पाठ ढूँढ़ पा सकना अब बहुत कठिन हो गया है।

उन्होंने श्रेष्ठ काव्य की कसौटी बताते हुए मानस के आरम्भ में ही कहा है:

सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वैर बिसराइ रिपु, सो सुनि करहिं बखान॥

कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई।।

इसलिये जो लोग पांडित्य छाँटने के लिए या श्रोताओं का मनोरंजन करने के लिए मानस की चौपाइयों के अनेक असंगत और अनर्गल अर्थ लगाकर पैसा कमाते हैं, उन ज्ञान-पुण्य वाणिजों (ज्ञान या नाम वेचनेवाले बनियों) को यह प्रसिद्ध उक्ति स्मरण रखनी चाहिए :

यः साध्वर्थं परित्यज्य करोत्यर्थ-विपर्ययः ।
स वक्ता निरयं याति श्रोतृंश्च निरयं नयेत् ।।

जो वक्ता या कथावाचक किसी ग्रंथ के ठीक और सीधे अर्थ को छोड़कर अंड-बंड अर्थ करता है; वह तो नरक में जाता ही है, वह अपने साथ श्रोताओं को भी नरक में घसीट ले जाता है।

गोस्वामी जी ने :

ब्रह्म राम तें नाम बड़, बरदायक बरदानि ।
रामायन सतकोटि महँ, लिय महेस जिय जानि ।।

कहकर भी, राम-कथा क्यों गाई, इसका समाधान ढूँढना कठिन नहीं है। 'रामनाम कलि अभिमतदाता' कह कर भी उन्होंने रामकथा कहना इसलिये श्रेयस्कर समझा, क्योंकि :

बुध विश्राम सकल जन-रंजिनि ।
रामकथा कलि-कलुष विभंजिनि ।।

उन्होंने रामावतार के कारण–भूत नारदमोह भानुप्रताप तथा स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की कथा भी दी है, जो महाकाव्य की रचना-परिपाटी से मेल नहीं खाती। किन्तु वे तो राम को अवतार सिद्ध करना चाहते थे, इसलिये इन कथाओं का सन्निवेश करना उनकी दृष्टि से आवश्यक हो गया था। इस प्रकार यह महाकाव्य अन्य सब महाकाव्यों की रचना-पद्धति से पूर्णतः भिन्न है।

मानस का अनुबन्ध-चतुष्टय

महाकाव्य के अनुबन्ध-चतुष्टय के अनुसार भी मानस का परीक्षण करते समय यह विचार करना आवश्यक है : 'किम्, कथं, केन, कस्मै'—अर्थात् मानस क्या है, इसकी रचना क्यों की गई (विशेषतः भाषा में क्यों की गई), इसकी रचना किसने की और किसके लिए की ?

मानस क्या है ?

रामचरित मानस महाकाव्य होने के साथ-साथ नाटक भी है, क्योंकि इसके अनुसार ही भारत में स्थान-स्थान पर रामलीलाएँ खेली जाती हैं; जिनमें अत्यन्त निष्ठा के साथ मानस में दिये हुए संवादों के अनुसार ही संवाद कहलाये जाते हैं। मानस का पाठ (विशेषतः सुंदरकांड का) स्तोत्र के समान भी किया जाता है। भागवत के समान मानस की कथा भी बैठाई जाती है और 'दीन दयाल बिरद संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी' और 'मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी' का संपुट लगाकर अखंड नवाह्न या मासिक पाठ भी किया जाता है। धन-प्राप्ति के लिए किष्किन्धाकांड का और कामना-सिद्धि के लिए सुन्दर कांड का पाठ किया जाता है। यह पूरा महाकाव्य गेय भी है; जिसे ढोल, मजीरे और हारमोनियम के साथ लोग गाते भी हैं। इतना ही नहीं, निम्नांकित चौपाई को लोग कामना-सिद्धि के लिए मन्त्र के समान भी जपते हैं :

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की।।
ताके जुगपद कमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं।।

इसके दोहे और सूक्तियों का प्रयोग नीति-वचनों के समान किया जाता है और उसमें भारतीय दार्शनिक तत्वों का विस्तृत विवेचन भी है, जिसमें सभी मतों की विशेषता और महत्ता बताकर भक्तिमार्ग की सरलता का प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से यह मानस महाकाव्य भी है, नाटक भी है, स्तोत्र भी है, गेय काव्य भी है, नीतिग्रन्थ-स्मृतियों के समान धर्मशास्त्र भी है और दार्शनिक विवेचन से युक्त होने के कारण दर्शन भी है। राजेश्वर ने काव्य-मीमांसा में सम्पूर्ण वाङमय को काव्य और शास्त्र नामक दो भागों में विभक्त किया है। किन्तु रामचरित मानस की विशेषता यह है कि यह काव्य भी है, शास्त्र भी है और इनसे भी अधिक है। इस दृष्टि से यह संसार का सबसे अद्‌भुत महाग्रन्थ है, जैसा न पहले कभी विश्व भर में रचा गया और न आगे रचे जाने की संभावना है। इसके संबंध में यही कहा जा सकता है : यह क्या नहीं है? न भूतो न भविष्यति।

मानस क्यों ?

दूसरा प्रमुख प्रश्न यह है कि वाल्मीकीय रामायण जैसे अभूतपूर्व रामगुण-गाथा-ग्रन्थ के होते हुए भी रामचरित मानस की रचना क्यों की गई? और

वह भी भाषा में क्यों की गई? स्वयं गोस्वामी जी ने मानस के आरम्भ में कहा है:

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

अनेक पुराण, वेद और शास्त्रों से सम्मत जो कुछ भी रामायण (वाल्मीकीय, अध्यात्म तथा अन्य रामायणों) में कहा गया है, वह सब तथा कुछ अन्य ग्रन्थों से भी सामग्री लेकर अपने अन्तःकरण के सुख के लिए तुलसी ने रघुनाथ की गाथा को भाषा में निबद्ध करके अत्यन्त सुन्दर प्रस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस प्रकार यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें मेरी कोई मौलिकता नहीं है, मैंने तो केवल भाषा में पद्य-संपादन मात्र किया है। उनकी मौलिकता तथा कथा-प्रबन्ध-विचित्र बनाई ही है और वह मौलिकता निःसन्देह अद्भुत है।

मानस के अन्त में भी इसी को दुहराते हुए उन्होंने कहा है—स्वान्तस्तमः शान्तये।

'अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करने के लिये मैंने भाषा में मानस की रचना की है।' उनकी निष्ठा इस बात से भी स्पष्ट है कि उन्होंने अन्त में यह भी कह दिया:

मो सम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिसम भवभीर॥
कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

किन्तु उनके 'स्वान्तः' का अर्थ केवल तुलसी का ही अन्तःकरण नहीं, वरन् विश्वान्तःकरण ही समझना चाहिए।

भाषा में निबद्ध करने का कारण बताते हुए उन्होंने कहा है:

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

वे तो संस्कृत के भी प्रखर पंडित थे, तब उन्हें भाषा-निबद्ध करके आत्मप्रबोध की आवश्यकता क्यों पड़ गई? वास्तव में यह उनकी विनयभावना ही थी; क्योंकि उन्होंने अन्त में भी यही कहा:

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं,
मायामोहभवपहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

जो मनुष्य भक्ति के साथ इस पवित्र, सदा कल्याण-कर, ज्ञान-भक्तिप्रद, माया-मोह का मल दूर करनेवाले, विमल प्रेम के जल से भरे हुये रामचरित मानस में अवगाहन करेंगे; वे संसार-रूपी सूर्य की प्रखर किरणों से नहीं जल पावेंगे। तात्पर्य यह है कि उन्होंने अपने अन्तःकरण के सुख के लिये, अपने अन्तःकरण के तम की शान्ति के लिये तथा आत्मबोध के लिये तो इसकी रचना की ही, साथ ही सांसारिक लोगों को 'संसार के क्लेशों से जलने से बचाने' के लिये भी इसकी रचना की।

भाषा में निबद्ध करने का दूसरा कारण यह है कि संस्कृत में सर्वसाधारण की गति नहीं थी, केवल कथा-वाचकों के द्वारा ही जनता को कभी-कभी रामकथा मिल पाती थी। इसीलिए उन्होंने ऐसी सरल, लोक-भाषा, ग्राम्य गिरा में इसकी रचना कर दी कि राम-कथा सबके लिये सुलभ हो जाय और सब लोग स्वयं घर बैठे रामकथा का आनन्द ले सकें। उसका कारण भी उन्होंने बता दिया :

स्याम सुरभि-पय, बिसद अति, गुनद, करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य, सियराम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

गौ काली भले ही हो, पर उसका दूध बड़ा स्वच्छ और गुणकारी होता है; इसीलिए सब लोग काली गौ का दूध बड़े चाव से पीते हैं। इसी प्रकार सीताराम का यश भी देशी भाषा में लिखा मिल जाय तो सुजान लोग भी बड़े प्रेम से उसे कहते और सुनते हैं।

उन्होंने अन्यत्र कहा है :

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहियतु साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कमाच॥

देशी भाषा हो या संस्कृत हो, उससे कुछ नहो होता। प्रेम सच्चा होना चाहिए। जहाँ कम्बल से काम निकलने वाला हो, वहाँ रेशमी वस्त्र लेकर क्या किया जाय?

मानस की रचना किसने की?

तीसरा प्रश्न यह है कि मानस का रचयिता कौन है? इस सम्बन्ध में उन्होंने मानस के अन्त में स्पष्ट कहा है :

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्नोतु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।

भगवान् शंकर ने राम के चरण-कमलों में निरन्तर भक्ति प्राप्त करने के लिये जिस दुर्गम रामायण की रचना की थी, उसी को तुलसीदास ने रामायण से पूर्ण होने के कारण अपने अन्तःकरण के अन्धकार को शान्त करने के लिये भाषा में रामचरित मानस के नाम से रच दिया है। इस नाम के सम्बन्ध में भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है:

रचि महेस निज मानस राखा। सुसमउ पाइ सिवासन भाखा।।
रामचरित-मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन।।
ताते रामचरित-मानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर।।

इससे स्पष्ट है कि तुलसी ने जो रामचरित मानस रचा है, इसके मूलकर्ता साक्षात् शंकर हैं। उन्होंने इसकी रचना करके मानस में रख लिया था, जिसे समय-समय पर पार्वती जी के प्रश्नों के उत्तर में वे उन्हें सुनाते रहते (या जिसे सुसमय (ठीक अवसर) पाकर उन्होंने पार्वती जी को सुना डाला था)। इसलिए तुलसी ने इसका नाम रामचरित मानस ही ग्रहण कर लिया। यह मूल शंभु-रामायण या उमा-शंभु-संवाद कौन-सा है? उसका कोई परिचय तो कवि ने दिया नहीं; किन्तु इतना अवश्य कह दिया है कि:

कीन्ह प्रश्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी।।
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध बिचित्र बनाई।।
जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करैं सुनि कोई।।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी।।

तात्पर्य यह है कि पार्वती जी ने शिवजी से जो प्रश्न किये, उनके जो उत्तर शिवजी ने दिये और जिस रामचरित को तुलसी ने अपने गुरु से सूकरखेत में सुना था; उसे ही विचित्र कथा-प्रबन्ध के रूप में सजाकर तुलसी ने महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। अतः, मानस के मूलकर्ता शिव ही हैं, गोस्वामी जी केवल इसे भाषा में सजाकर उतारने वाले मात्र हैं।

इतना ही नहीं, गोस्वामी जी ने सभी रामायणों को छानकर जहाँ से उन्हें जो प्रसंग, जो वर्णन, जो उक्ति, जो घटना, जो भाव प्रिय प्रतीत हुआ; वह

सब उन्होंने अपने रामचरित मानस में यथास्थान सजाकर ला रक्खा, यही रामचरित मानस की विशेषता है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि इसमें एक विशेष कल्प की रामकथा है, किन्तु यह बात नहीं है। इसमें 'कथा-विचित्र-प्रबन्ध बनाई' रामकथा लिखी गई है, जो तुलसी को बड़ी प्रिय लगती चली गई।

मानस किसके लिये ?

चौथा प्रश्न यह है कि मानस की रचना किसके लिये की गई ? उन्होंने काव्य का प्रयोजन ही यह बताया है कि उससे सबका हित होना चाहिए :

कीरति भनिति भूति भलि सोई ।

सुरसरि सम सब कर हित होई ॥

काव्य के फलादेश के रूप में भी उन्होंने यही कहा है :

जे एहि कथहिं सनेह-समेता । कहिहहिं, सुनिहहिं, समुझि सचेता ॥

होइहहिं रामचरित-अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥

यद्यपि मूलतः तो उन्होंने अपने सुख और आत्मप्रबोध के लिये ही इसकी रचना की थी, तथापि सत्पुरुष का लक्षण यही है कि जो वह अपने लिये चाहता हो; वही दूसरों के लिये भी चाहे :

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ।

जो अपने लिये चाहो, वही दूसरों के लिये भी चाहो। इसीलिये रामचरित मानस आज सारे विश्व के लिये हितकारी सिद्ध हो रहा है।

जादू वह, जो सिर पर चढ़कर बोले। आज विश्व में चारों ओर बिना प्रचार किये तुलसी और उनके रामचरित मानस का सम्मान विश्व-कवि और महाकाव्य के रूप में हो रहा है। नाभादास जी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही कहा था :

कलिकुटिल-जीव-निस्तार-हेतु, बालमीकि तुलसी भयौ ।





आधुनिक सन्दर्भ में मानस की उपयोगिता

श्री जनार्दनदत्त शुक्ल, आई० सी० एस०

अध्यक्ष : राजस्व परिषद्, उत्तरप्रदेश - प्रस्तुतकर्ता : श्री बाबूलाल गर्ग, एम० ए०

[रामचरितमानस के सूर्योदयी सन्देश को ले कर घर-घर अलख जगाने में क्रियाशील, भारतीय-संस्कृति के जागरूक प्रहरी और उत्तर प्रदेश राजस्व परिषद् के अध्यक्ष श्री जनार्दनदत्त शुक्ल, आई० सी० एस० के भाषण का सारांश, जो १२ नवम्बर, १९७१ को श्री जयदेव वैष्णव संस्कृत कालेज, करवी (चित्रकूट धाम) में मानस चतुश्शती समारोह के अवसर पर अध्यक्ष पद से दिया गया था—सम्पादक]

सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास की अमरकृति 'रामचरित मानस' की चतुर्थ-शताब्दी मनायी जा रही है। वैसे व्यक्तियों की शताब्दियाँ तो बराबर मनायी जाती रही हैं, पर किसी ग्रन्थ विशेष की कभी शताब्दी मनाई गयी हो, ऐसा सुनने में नहीं आता। 'रामचरित मानस' संसार का प्रथम ग्रन्थ है, जिसकी इस प्रकार शताब्दी मनाकर उसे गौरवान्वित किया गया हो। यह मानस-चतुश्शती समारोह न केवल राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा है, वरन विश्वस्तर पर सम्पन्न होने का भी इसे सौभाग्य प्राप्त है।

ऐसे अवसरों पर, जबकि किसी का, चाहे वह चेतन हो या अचेतन, इस प्रकार वृहत्सम्मान किया जाता है, तो यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है कि आखिर उसमें कौन-सी ऐसी विशिष्टता है और उसमें लोकोपयोगिता की दृष्टि से कौन-से ऐसे लोकोत्तर गुण हैं; जिससे उसका ऐसा सम्मान किया जा रहा है। वही प्रश्न आज मानसचतुश्शती योजना के सम्मुख भी है कि आखिर तुलसी के 'रामचरित मानस' ग्रन्थ की उपयोगिता क्या है? उत्तर स्पष्ट है। ग्रन्थ के निर्माण के प्रारम्भ में ही तुलसी ने स्वयं घोषणा की है कि काव्य वही अच्छा होता है जो सुरसरि के समान सबका कल्याण करने वाला होता है—'कीरति भनिति भूति भलि सोई' सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥ भाव यह कि तुलसी ने 'मानस' की रचना 'सर्वजनहिताय' की है। हमारे शास्त्रों में 'बहुजन सुखाय

बहुजन हिताय' को बड़ा महत्व दिया जाता है। आज की जनतान्त्रिक शासन-पद्धति का तो यह सिद्धान्त मेरुदण्ड ही है। पर तुलसी ने इसे 'वहुजन हिताय' नहीं कहा। इसमें विषमता रहती है। 'अल्पजन हिताय' का कोई स्थान नहीं रहता। इसलिए ऐसी रचना, जो 'वहुजन हिताय' मात्र हो, एकपक्षीय होती है, एकांगी होती है, अतएव अपूर्ण होती है। पर तुलसी बहुजनों के ही हितकामी नहीं थे; वह तो सभी के, जीवमात्र के कल्याण-कामी थे। इसलिए उन्होंने ऐसे ग्रन्थ की रचना की, जो गंगा के समान सभी के लिए मंगलदायक हो। अतः ऐसे महाग्रन्थ की उपयोगिता निर्विवाद है। इसीलिए समसामयिक युगबोध के परि-प्रेक्ष्य में महान् जनवादी कवि तुलसी के इस महाग्रन्थ की आज सर्वाधिक उपयोगिता है, अपेक्षा है। यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए। सबका हित करने वाला काव्य वही होगा, जो सब की भाषा में हो, यानी लोकभाषा में हो। तुलसी की भाषा जन-जन की भाषा है। ग्रामवधूटियों का ही प्रकरण ले लीजिए। मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई और काव्यग्रन्थ है, जिसमें जनभाषा का इतना शक्तिशाली रूप हो, इतनी प्रखरता हो, इतना प्रवाह हो और इतनी शक्ति हो, सजीवता हो। ग्रामवधूटियों के उत्तर में सीता जी भगवान राम का, अपने पति का, परिचय किस प्रकार दे रही हैं, तुलसी की ही भाषा में सुनिये :

बहुरि बदन विधु अञ्चल ढांकी। प्रिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खञ्जन मञ्जु तिरीछे नैननि। निजपति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि ।।
भई मुदित सब ग्राम-वधूटी। रंकनि राय रासि जनु लूटी ।।

दूसरी बात तुलसी के काव्य में जो सर्वोपरि है, वह है उनका सामाजिक पक्ष। सामाजिक पक्ष को मर्यादाओं की संजीवनी से जितना सशक्त एवं प्राणवन्त तुलसी ने बनाया है, उसका अल्पांश भी अन्य कवि नहीं कर सके। उन्होंने मर्यादाओं की स्थापना की, जो समाज के लिये सबसे उपयोगी तत्व है। उन्होंने ऐसे रामराज्य की कल्पना उनकी सामाजिकता का ही प्रतिफल है। उन्होंने ऐसे समाज की परिकल्पना जनता के समक्ष रखी, जिसमें विषमता का लेश न हो, विरोध-प्रतिद्वन्द्विता का नाम न हो—'बयरु न करु काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई। यहाँ पर एक बात विचारशील है। बहुत से लोग कह देते हैं कि तुलसी के विचारों में आध्यात्मिकता अधिक है और भौतिकता की उपेक्षा है। यह लोकवादी के लिए चिन्तनीय है। पर वास्तव में यदि मानस का ठीक

तरह से अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि आध्यात्मिकता की परिधि में भी तुलसी का दृष्टिकोण बराबर भौतिकवादी रहा। तुलसी की एक अर्द्धाली है : नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं—अर्थात् दरिद्रता-निर्धनता के समान संसार में कोई दुख नहीं है। इसमें कितना महान् भौतिकवादी दृष्टिकोण अन्तर्निहित है ? अतः यह कह देना कि तुलसी के काव्य में भौतिकवादी दृष्टि का अभाव है और वह केवल आध्यात्मिक-विचारों का ही प्रतिनिधित्व करता है, नितान्त भ्रामक है। उन्होंने महात्मा बुद्ध की तरह 'मोक्ष' मात्र का ही प्रतिपादन नहीं किया, वरन अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन चारों पदार्थों को जीवन के लिए उपयोगी बताया है।

तुलसी की रचनाओं में 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की मान्यता का जोरदार प्रतिपादन किया गया है। किसी भी राष्ट्र, समाज या व्यक्ति के अस्तित्व के संरक्षण में शक्ति का प्रमुख स्थान होता है। इसलिए तुलसी के राम शक्ति के मूर्त प्रतीक हैं। वह सर्वदा धनुष बाण-धारण किये रहते हैं। तुलसी एक क्षण के लिए भी अपने राम को धनुप-वाण के बिना नहीं देखना चाहते। वह उपासना में भी, ध्यान में भी, ऐसे ही राम के स्वरूप को हृदय में धारण करना चाहते हैं; जो धनुष-बाण लिये हुए हों। तुलसी की अभ्यर्थना है, इच्छा है और आत्म निवेदन है—'बसहु राम शर चाप धर'। तुलसी भगवान कृष्ण के दर्शन उस रूप में नहीं करना चाहते, जिस रूप में मुरली के साथ हमेशा लास्य-मुद्रा में कृष्ण जी रहा करते थे। तुलसी की तो टेक है कि 'तुलसी मस्तक जब नवै, धनुष-बाण लेव हाथ।' कारण क्या है, धनुप-वाण के प्रति तुलसी के इतने बड़े लगाव का ? आध्यात्मिक साधना के लिए घर-द्वार छोडकर, भभूति लगाकर भटकने वाले संत के संघर्ष तथा युद्ध के प्रतीक धनुप-वाण की इस आग्रहशीलता का औचित्य क्या है? धनुष-बाण शक्ति का प्रतीक है। शक्ति की प्रधानता ही जर्जर हिन्दू-समाज में आत्मविश्वास भर कर उसे टूटने से बचा सकती थी। इसीलिए आध्यात्मिक सन्त ने शक्ति के महत्व को स्वीकारा और अपने आदर्श पुरुष राम को बराबर धनुष-बाणधारी देखना चाहा। यही कारण है कि तुलसी के राम ने बनवास जाते समय अपनी सारी चीजें तो छोड़ दीं, पर धनुपबाण नहीं छोड़ा? धनुष-वाण उनकी शक्ति जो थी। शक्ति-विहीन मानव का भी भला कोई अस्तित्व होता है? राम ने जीवन में एक बार धनुषवाण त्यागा था, भरत-मिलाप के समय—'कहुँ धनु कहुँ निषंग कहुँ तीरा।' और वह प्रेम-रसोद्रेक पर-निर्वृत्ति

लोकोत्तर आनन्द का क्षण था, जब धनुष-बाण तो क्या प्राणी को अपनी देह की, अपने अस्तित्व की ही सुधि नहीं रह जाती।

and मानस में समन्वयवाद का अनुपम प्रतिपादन हुआ है। आज जबकि विघटनकारी तत्वों में वृद्धि हो रही है, समन्वयवाद की बड़ी आवश्यकता है। तुलसी ने अपने जीवनकाल में समाज के विभिन्न स्तरों में समन्वय लाकर समाज का महान उपकार किया। उन्होंने सभी धर्मों, सभी पन्थों तथा सभी सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित कर उन्हें मधुर सम्बन्धों में जोड़ दिया। यदि तुलसी ने अपने समय में शैव, शाक्त तथा वैष्णव आदि सम्प्रदायों में समन्वय किया तो क्या हम उनके कार्य से उत्प्रेरित होकर देश तथा संसार के विभिन्न धर्मों में समन्वय लाने में समर्थ नहीं हो सकते? हमें इसके लिए तुलसी के अमरग्रन्थ 'रामचरित मानस' का व्यापक प्रचार करना चाहिए, निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। जब रामायण को अन्य मतावलम्बी पढ़ेंगे तो वे तुलसी की बात से अवश्य प्रभावित होंगे। तुलसी ने जो बात कही है, वह काव्य के माध्यम से कही है। उनका उपदेश आदेशात्मक नहीं है। वेदों की तरह न उन्होंने कोई आदेश दिया और न धर्मशास्त्र-पुराणों की तरह उपदेश ही। उन्होंने काव्यादि के माध्यम से 'कान्ता सम्मित' उपदेश दिया। हमारे मनीषियों ने तीन प्रकार की उपदेश शैलियां बताई हैं—प्रभुसम्मित-उपदेश, सुहृत-सम्मित-उपदेश तथा कान्तासम्मित-उपदेश। पहला उपदेश वेदादिकों में मिलता है, दूसरा धर्मशास्त्रों में और तीसरा काव्यादिकों में। तुलसी ने अपनी बात कहने के लिए काव्य का सहारा लिया। कान्ता-पत्नी की भाँति काव्य पहले व्यक्ति का हृदय परिष्कार करता है, उसे रसमय बनाकर शुद्ध, निर्मल तथा संवेदनशील बना देता है और तब फिर अपनी बात कहता है। इस प्रकार कही गयी बात का प्रभाव स्थायी होता है। तुलसी ने उसी प्रभावकारी शैली को अपनाया है। इससे 'मानस' का प्रभाव सर्वव्यापी होगा, केवल प्रयास की आवश्यकता है।

तुलसी ने हमें राम जैसा उदात्त आदर्श चरित प्रदान किया। विश्व के किसी इतिहास, किसी मिथालौजी अथवा किसी साहित्य में राम ऐसा महान् उदात्त तथा प्रभावशाली चरित वाला व्यक्ति उपलब्ध नहीं। राम शील, विनय, सुजनता तथा सौम्यता का मूर्तिमान पुरुष है। श्रीनगर में मुझे एक जैन मुनि मिले। उन्होंने कहा : मैं 'रामचरित' लिखने जा रहा हूँ। राम में विशेषता है कि उन्होंने दुख को भी सुख में लिया। 'रामकथा' अकेले राम की कथा भर नहीं।

उसमें भारत की सारी संस्कृति का समावेश हुआ है। भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को तैयार करने में 'रामकथा' का प्रमुख हाथ है। राम के अनेक गुणों में एक यह विशिष्ट गुण है कि वह व्यक्ति की भावनाओं का भरपूर आदर करते हैं। जब कोई उनसे कुछ कहता है तो वह पहले उसकी बात का समर्थन कर उसके हृदय को जीत लेते हैं, फिर बाद में अपनी बात कहते हैं जिसका असर सुनने वालों पर अमिट रूप से पड़ता है। राम के इस विनम्र तथा सुशील स्वभाव के परिचयात्मक उदाहरण रामायण में भरे पड़े हैं। केवट कहता है—नाथ, बिना पाँव धोये नाव में न चढ़ाऊँगा। मेरी नाव आपकी चरणधूलि से उड़ जायगी। राम कहते हैं—'सोइ करहु जेहि नाव न जाई।' और 'वेगि आनि जल पाँय पखारू। होत विलम्ब उतारहु पारू।' यह राम के स्वभाव की विशेषता है।

सीता जी हठ करती हैं कि मैं भी बन चलूँगी। राम स्त्री का कितना सम्मान करते हैं। इन शब्दों से साफ प्रकट होता है—'हंसगमनि ! तुम नहिं वन जोगू, सुनि अपजस मोहिं दैहहिं लोगू।' यही नहीं स्फटिक शिला में राम ने अपने हाथों सीता का श्रृंगार किया था। स्त्री के प्रति राम की उच्च भावना का यह प्रतीक है।

चित्रकूट में भरत के आगमन को सुनकर लक्ष्मण आगबबूला हो जाते हैं और कहते हैं : भरत राजपद पाकर बौरा गया है, आज मैं उसे पूरी सीख दूंगा। लक्ष्मण को अतिशय क्रुद्ध देखकर राम पहले लक्ष्मण की ही बात का समर्थन करते 'हैं—कही तात तुम नीति सुहाई, सबते कठिन राजमद भाई।' लेकिन भाई 'सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा। व्यवहार क्षेत्र में राम के स्वभाव की यह अप्रतिम शैली थी।

तुलसी के मानस की एक सबसे बड़ी विशेषता है कि वह शक्ति का समर्थन करती हुई 'चरित्र' पर विशेष बल देती है। चरित्र के बिना शक्ति भयंकर होती है। इसलिए आज देश को चरित्र की, नैतिकता की बेहद जरूरत है। लोग कहते हैं कि आज देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार की बड़ी आवश्यकता है। मैं कहता हूँ शिक्षा शक्ति है; अत: शक्ति के साथ यदि नैतिकता का सामन्जस्य नहीं होता, वह चरित्र से संयमित नहीं की जाती, तो शक्ति भयावह परिणाम-वाही बन जायगी। रावण में विद्या थी, शिक्षा थी; अतएव वह शक्ति का भण्डार था, पर उसमें एक चीज़ नहीं थी और वह थी नैतिकता, चरित्र की भास्वरता।

इसीलिए रावण रावण था। तुलसी के मानस में चरित्र सुधारने की जो प्रेरणा मिल सकेगी वह अन्य जगहों से नहीं। इसलिए चरित्र-निर्माण के लिए मानस का मनन आवश्यक है। चरित्र शाश्वत वस्तु है, वह देश, काल, समाज, धर्म तथा सम्प्रदाय की संकुचित सीमा से परे है। इसलिए विश्व समाज के चरित्र निर्माण की उपयोगिता की दृष्टि से 'मानस' का योगदान सर्वोपरि रहेगा, बशर्ते इस दिशा में हम कुछ करने के इच्छुक हों। तुलसी ने सारी समस्याओं का मंथन कर अपनी संस्कृति से प्रेरणा लेकर मानस का निर्माण किया है और इसके माध्यम से समाज का मार्ग निर्देशन किया है। तुलसी की इसी भावना का प्रचार-प्रसार करना 'मानस-चतुश्शती-आयोजन' का लक्ष्य है।

मानस चतुश्शती के सन्दर्भ में पहला काम है 'रामचरित मानस' का प्रचार। इस अनुपम ग्रन्थ को घर-घर, जन-जन तक पहुँचा देना है। प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्च कक्षा के महाविद्यालयों के छात्रों को मानस के अध्ययन के लिए प्रेरित करना है। सामूहिक पाठ, अभिनय, गोष्ठियों, सभाओं, सम्मेलनों आदि के जरिये जनजीवन में तुलसी की पैठ कराना है। इसी उद्देश्य को लेकर सरकार ने आदेश प्रसारित किया है कि तुलसी को राष्ट्रीय कवि के रूप में मानकर चतुश्शताब्दी मनायी जाय।

एक बात और बड़ी आवश्यक है। मानस का प्रचार-प्रसार देश की दलित जातियों में कीजिये। राम के यहाँ कोई अछूत नहीं है। शबरी का प्रसंग पढ़ें, विभीषण की कथा समझें और देखें कि राम ने गीध तक का तर्पण किया है। मानस में शूद्र विरोधी भावनाओं का भ्रामक प्रचार किया गया है। उसे शूद्र तथा स्त्री विरोधी काव्य कहा गया है। यह मिथ्या एवं गलत प्रचार कुछ शरारती व्यक्तियों ने किया है। आप लोग मानस के तत्व को शूद्रों और स्त्रियों को समझाइये। ऊपर से विरोधी दिखनेवाली बातें प्रायः सभी रावणादि खलनायकों के मुख से कही गयी हैं, उन्हें तुलसी की बात मान लेना भूल है। आजकल कुछ नारियाँ तुलसी से इसलिए नाराज़ हैं कि उन्हें तुलसी में नारी-विरोधी भावना नज़र आ रही है। यह कहना भ्रम है। नारी के प्रति तुलसी की भावनायें बड़ी ही सम्मानपूर्ण तथा संवेदनशील हैं। नारी के लिए आँसू बहाने वाले तुलसी की इस चौपाई को देखो—**कत विधि रची नारि जग माहीं, पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।** राम ने बालि की भर्त्सना करते हुए कहा—**मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना, नारि सिखावन सुनेसि न काना।** यह नारी के

प्रति पूज्य भावना नहीं है तो क्या है? और यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो नारी जाति के लिए जितना काम तुलसी ने किया है; उतना किसी अन्य ने नहीं। जिस समय राजाओं के हरमों में हजारों नारियाँ रहती थीं, तुलसी ने राम के माध्यम से 'एक पत्नी-व्रत' का आदर्श उपस्थित किया। तुलसी ने तो राक्षसों की नारियों तक की निन्दा नहीं की। आवश्यकता है इस बात को समझने की।

अन्त में मुझे आप लोगों से यही बात कहनी है कि आप लोग चित्रकूट के निवासी हो, जहाँ भगवान राम बारह वर्ष तक रहे हैं। चित्रकूट का महत्व अयोध्या से अधिक है। यह स्थान राम की निवास-भूमि है, यह निश्चित है। वर्तमान अयोध्या यही है, जहाँ राम पैदा हुए—यह सन्दिग्ध भी हो सकती है? क्योंकि अयोध्या नगरी है, कालखण्ड के प्रवाह में नगरियां बदल भी सकती हैं; पर चित्रकूट का यह विन्ध्य पर्वत अपरिवर्तनीय है। इसी चित्रकूट से प्रेरणा लेकर तुलसी ने 'रामचरित मानस' की रचना की है। अतः आप लोग तुलसी को प्रज्ज्वलित करें। यही मेरा निवेदन है और यही मानस चतुश्शती का सन्देश है।

●



सीता ओ सीता

⊙

श्री काजी नजरुल इस्लाम

(बँगला देश के विद्रोही राष्ट्रकवि)

हिन्दी रूपान्तरकार : डा० रमानाथ त्रिपाठी, डी० लिट्०, नई दिल्ली

मूल बँगला	हिन्दी रूपान्तर
कोन से सुदूर अशोक कानने	किस सुदूर अशोक कानन में-
वन्दिनी तुमि सीता !	वन्दिनी तुम सीता।
आर कतकाल ज्वलिवे-	और कबतक जलेगी-
आमार बुके चिन्ता।	मेरे वक्ष में विरह की चिन्ता।
सीता-सीता !	सीता-सीता !
विरहे तोमार अरण्यचारी	तुम्हारे विरह में अरण्यचारी-
काँदे रघुवीर वल्कलधारी।	क्रन्दन करता रघुवीर वल्कलधारी
झरा चमेलीर अश्रु झराये	झरी चमेली के अश्रु गिराकर
झुरिछे वन-दुहिता।	रो रही वन-दुहिता।
सीता-सीता !	सीता-सीता !
तोमार आमार एइ असीम-	तुम्हारा मेरा यह असीम
विरह निया	विरह लेकर
कत आदि कबि	कितने आदि कवि
कत रामायण रचिबे	कितनी रामायणें रचेंगे
के जाने प्रिया।	कौन जाने प्रिया।
वेदनार सुरसागर तीरे	वेदना के सुरसागर तीर पर
दयिता आमार एस एस फिरे।	दयिता मेरी आओ आओ लौटकर।
आवार आँधार हृदि-अयोध्या	फिर अँधेरी हृदय-अयोध्या
हबे दीपान्विता।	होगी दीपान्विता।
सीता-सीता !	सीता-सीता !

सोवियत रंगमञ्च पर रामायण

⊙

श्री गेन्नादी पेचनिकोव

प्रसिद्ध रूसी अभिनेता

[मानवीय पक्षों में नैतिकता के धरातल पर बड़ी ही मधुरता एवं प्रभविष्णुता के साथ उजागर करने वाली रामायण आज भारत की ही नहीं, विश्व के अनेक देशों की चिन्तन-सामग्री बन गयी है—यहाँ सुदूरवर्ती महान देश रूस के जन-जीवन में रामायण की लोकप्रियता की एक अन्तरंग तस्वीर प्रस्तुत करते हैं प्रसिद्ध रूसी अभिनेता श्री गेन्नादी पेचनिकोव, जो पिछले दस वर्षों से सोवियत रंगमंच पर रामायण पर आधारित नाटक में राम का अभिनय कर रहे हैं। प्रस्तुत सामग्री हमें सोवियत दूतावास तथा 'धर्मयुग' के सौजन्य से उपलब्ध हो सकी है—सम्पादक]

सोवियत रंगमंच पर पिछले दस वर्षों से रामायण को मंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले दस वर्षों में जब-जब रामायण का मञ्चीकरण किया गया, तब-तब हाल दर्शकों से खचा-खच भरा रहा। इसके अलावा रामायण का प्रदर्शन टेलीविजन पर भी हुआ है और इसे रेडियो से भी अनेकानेक बार प्रसारित किया गया है।

हमारे दर्शकों में अधिकांश किशोर और किशोरियाँ हैं। परन्तु वयस्क दर्शक भी इस नाटक को बड़े चाव से देखते हैं। इन दर्शकों में देश के कई ख्यातिनामा लेखक, मंत्रिगण, संगीतकार और बड़े-बड़े कलाकार भी हैं।

मुझे रामायण का एक भी प्रदर्शन याद नहीं, जिसमें हमारे भारतीय मित्र शामिल न हुए हों। लेकिन इनमें से एक दिन ऐसा भी है, जिसे हम सभी कलाकार बड़ी श्रद्धा से याद रखते हैं। सितम्बर १९६१ के उस दिन श्री जवाहरलाल नेहरू हमारे थियेटर में पधारे थे। तब वे एक अल्पकालीन यात्रा पर मास्को आये हुए थे। समय की कमी के बावजूद उन्होंने रंगशाला (थियेटर) में आने के लिए भी वक्त निकाल ही लिया। मध्यान्तर के समय मंच पर आकर उन्होंने अभिनेताओं से बातचीत की और उनके काम की तारीफ भी की।

रामायण नाटक के प्रदर्शन को दस वर्ष पूरे हो चुके हैं। आजकल हम इस नाटक की दसवीं जयन्ती (दशाब्दी) मना रहे हैं। इस मौके पर हम बड़ी कृतज्ञता के साथ उन लोगों को याद कर रहे हैं, जिन्होंने इस नाटक की तैयारी में हमें भरपूर सहायता प्रदान की। मेरा तात्पर्य मास्को-स्थित (तत्कालीन) भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन और उनकी पत्नी से है। वे वस्तुतः हमारी टोली के सदस्य बन गये थे। जब हम भारतीय कपड़े पहनते हैं और जब हमारे भारतीय मित्र हमारे पहनने के तरीके को सही बताते हैं, जब वे हमारे नाटक के नायकों एवं अन्य अभिनेताओं के भाव-प्रदर्शन की प्रशंसा करते हैं और कविता की भावना में हमारी पैठ की तारीफ करते हैं तो हम उनके सुखद शब्दों को श्री मेनन की ओर मोड़ देते हैं। वे वस्तुतः सही अर्थों में हमारी कम्पनी के एक सदस्य थे।



रूस में अभिनीत रामायण में राम (गेन्नादी पेचनिकोव और सीता मार्गेरिता कुप्रियानोवा)

मुझे वह दिन याद है जब भारत विद्याविद् सुश्री गुसेवा (रामायण के लिए नेहरू पुरस्कार विजेत्री) पहले-पहल रामायण नाटक लेकर आई थीं,

हम इस नाटक के मञ्चीकरण की समस्याओं से घबरा गये थे। प्राचीन भारत की इस पौराणिक गाथा की मदद से बीसवीं सदी के मनुष्यों में हम कौन-से विचार और भावनाओं को उद्वेलित करना चाहते हैं? दो-तीन घण्टे के कार्यक्रम में इतनी अधिक सामग्री का समावेश किस प्रकार कर सकते हैं? यूरोपीय रंगमंच पर प्रस्तुत करने में भारतीय काव्य का यह रत्न कहीं विकृत तो नहीं हो जायेगा? इनके अलावा हमें उद्वेलित करने वाली और भी कई समस्यायें थीं। हमने इन्हें हल करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया। परन्तु यह कहना दर्शकों के हाथ था कि हम अपने प्रयत्नों में सफल हुए या नहीं!

दर्शक अपनी बात कह चुके हैं। पहली घण्टी की आवाज गूँजने के साथ ही हमें दर्शकों की साँसों का, उनके साथ सम्पर्क का एहसास होने लगता है। जब दर्शक सीता को, रावण की बातें सुनाकर लक्ष्मण द्वारा खींची रेखा को पार करते देखते हैं, तो 'मत जाओ, मत जाओ' की पुकार लगाने लगते हैं।

रामायण के नायक राम-का मानववाद, उनका सौन्दर्य और उनकी ईमानदारी, अपने देश के प्रति उनका प्रेम, उनकी जनसेवा तथा जनता की स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता की रक्षा और बुराई के विरुद्ध संघर्ष की उनकी आकांक्षा—इन सब बातों से सिर्फ सोवियत-दर्शकों के ही हृदयों में नहीं; बल्कि अभिनय करने वाले कलाकारों के अन्तस में भी आवेगपूर्ण प्रतिक्रिया होती है। यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कि इस नाटक को प्रस्तुत करने वालों में भारत के प्रति दिलचस्पी ही नहीं जगी, वरन, भारत ने इन्हें भावोद्वेलित भी किया है। यह कोई संयोग नहीं कि रामायण-नाटक में भाग लेने वाले कलाकार—वी० मेलकोव्स्काया, जी० स्तेपानोवा, एम० लुकाशेविच और के० कोरेनेवा—भारतीय महिलाओं के बारे में आयोजित एक अखिल संघीय प्रतियोगिता के पुरस्कार-विजेता भी बन गये हैं। सोवियत संघ में भारत के राजदूत श्री डी० पी० धर ने उन्हें ताजमहल की एक नई प्रतिकृति भेंट की। आजकल यह हमारी रंगशाला के केन्द्रीय कक्ष (हॉल) को सुशोभित कर रही है।

भारत के विशिष्ट उत्सवों के दिनों में रामायण को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हुए हमें दस साल हो चुके हैं। महात्मा गान्धी की सौवीं जन्मतिथि के मौके पर नाटक के निम्नांकित शब्द हमारे रंगमंच पर गूंजे थे :

'इस पृथ्वी के रत्न सुदूर भारत में, आबाल-वृद्ध—सभी राम नाम के गीत अभी तक गाते हैं। धरती पर न्याय, शान्ति का राज्य, तभी तो राम राज्य कहलाता है।

एशिया के जन-जीवन में रामकथा का प्रभावी स्पर्श

⊙

डॉ० लोकेशचन्द्र, डी० लिट०

डाइरेक्टर : इण्टरनेशनल एकादमी ऑफ इण्डियन कल्चर, नयी दिल्ली

[काम-मोहित क्रौञ्च-दम्पती के वध पर शोकाहत और विह्वल वाल्मीकि की गिरा से श्लोक-निर्झर निकल कर आदि-काव्य रामायण में परिगत हो उठा और वह एशिया के उत्तरतम हिमाच्छादित साइ-बेरिया से लेकर इण्डोनेशिया की शस्यश्यामला भूमि तक किस प्रकार मानव का अन्तर्गीत बन उसकी अन्तरात्मा को आनन्द लहरी से आप्लावित कर रहा है, उसका ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं—विश्व-विश्रुत भाषा-पण्डित स्व० आचार्य रघुवीर के सुपुत्र डॉ० लोकेशचन्द्र, जिन्होंने मध्य एशिया के जन-जीवन को बड़ी ही निकटता से देखा-परखा है—सम्पादक]

पिछले सितम्बर १९७१ में इंडोनेशिया के शिक्षा-मन्त्रालय के संस्कृति-विभाग ने प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव और संगोष्टी का आयोजन किया। एशिया के सांस्कृतिक विकास और आदान-प्रदान में इस महोत्सव का विशेष महत्व था। पहली बार शासकीय स्तर पर एशिया के विभिन्न देशों से एकत्रित विद्वानों, विचारकों, कलाकारों, शिल्पकारों ने, अर्थात् संस्कृति-पुरुषों ने एशिया के सुदीर्घ ऐतिहासिक काल में रामचरित का क्या योगदान रहा, इसने एशिया के मानव के जीवन को किस-किस रूप में सम्पन्न और आत्मप्रवण किया, किस भाँति एशिया के समाज में यह एकता की कड़ी बनी—आदि विभिन्न विषयों पर मनन किया। रामायण भविष्य में एशिया की संस्कृति को नई सृजनशीलता कैसे प्रदान कर सकती है, इस पर भी विचार किया गया।

साहित्यिक गरिमा और आध्यात्मिक विराटता के कारण रामचरित ने एशिया में विशेष विकास पाया। कथावाचकों के मनमोहक आख्यानों में, सार्वजनिक प्रवचनों में (जैसे कि इंडोनेशिया के बबहासाआन में), शास्त्रीय नृत्य-नाटकों, रंगमंच और छायानाटकों में, शिलाशिल्पों में, काष्ठ-तक्षण में,

पटचित्रों मे, गद्य और पद्य की सृजनशील कृतियों में एशिया की प्रत्येक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में रामायण समाई हुई है। यह सदा सामाजिक विधाओं की गतिशीलता और उनसे परे समाजातीत चेतनाओं की सरणी रही है। मर्यादाओं और लीलाओं की पूर्ण संगमनी रामकथा एशिया के हृदयोन्दलों को हिलोरती हुई इस शती में नए चैतन्य की अग्रणी साधना बनने जा रही है। हम सब इंडोनेशिया के राज्यशासन और जनता के प्रति आभारी हैं कि उन्होंने यह पुण्य उपक्रम किया। इसके लिए इंडोनेशिया के राष्ट्रपति महामहिम श्री सुहार्तो, वहाँ के शिक्षा-मन्त्री, संस्कृति-अध्यक्ष डा० इडा बागुस मन्त्र और पूर्वी जावा के राज्यपाल श्री मोहम्मद नूर, जिन्होंने रामायण-महोत्सव को पूर्णतः सफल बनाने के लिए नई सड़कें, नया रंगमंच और श्रोतामण्डप तथा नए भोजावास बनवाए—इन सब को हमारा पुनः-पुनः अभिनन्दन।

सन् २५१ में ही रामायण का चीनी भाषा में काङ्सङ्हवी ने अनुवाद किया। यह भारत से बाहर की भाषा में प्रथम रूपान्तर होने के कारण महत्वपूर्ण है। सन् ४७२ में चीनी भाषा में एक दूसरा अनुवाद हुआ, जो केकय ने लुप्त संस्कृत कृति 'दशरथ-निदान' से किया था। इस प्रकार चीन में यह परम्परा सतत बनी रही। १६वीं शती में चीनी उपन्यास-परम्परा में 'बानर' नाम से सुविख्यात उपन्यास लिखा गया; जिसमें हनुमान जी द्वारा सीता जी की खोज का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। हनुमान जी का चरित्र चीन की लोककथाओं में सुव्याप्त रहा और इसने लोकसंस्कृति को वरेण्यता दी और चीनी ऐहिक साहित्य में हनुमान जी के विश्वभ्रमण की अमिट छाप पड़ी।

छठी शताब्दी में सिंहली नरेश एवं कवि कुमारदास ने जानकीहरण काव्य की रचना की। कुमारदास सिंहल के राजा कुमारधातुसेन थे, जिनका राज्यकाल ५१७-५२६ ई० सन् है। यह श्री लंका में रचित प्राचीनतम ज्ञात संस्कृत ग्रन्थ है। १२वीं शती में एक अज्ञातनामा लेखक ने स्थानीय सिंहली भाषा में इसका शब्दानुवाद किया। सिंहली भाषा की अनेक रचनाओं में इसकी साहित्यिक महिमा का उल्लेख है। हमारी वर्तमान शती में रामायण का सिंहली अनुवाद सी० डान बैस्टियन ने किया, जिसका आधुनिक सिंहली उपन्यास-साहित्य पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा। आधुनिक सिंहली नाटक-लेखक जान डी० सिल्वा ने रामायण का रूपान्तर करके श्रीलंका में रामायण की सुव्याप्त कर दिया है। रामायण के आदर्श श्रीलंका के धरोहर बन गए हैं और सीता जी

के शुचिगुणों की महिमा श्रीलंका के सामाजिक आदर्श हैं जैसे कि वर्तमान इंडोनेशिया में। जावा, बाली आदि द्वीपों में सीता जी की अग्निपरीक्षा-कालीन अम्लान और स्नेहाप्लावित मुखमुद्रा नारी का उच्चतम प्रकटीकरण है। वह उनके उदात्त 'देवी' गुण की परम अभिव्यक्ति है। चाहे चित्रालेखन हो, मूर्तिकल्पन हो, अभिनय-भंगिमा हो, चाहे पाषाण-तक्षण हो, प्रत्येक माध्यम में इंडोनेशियाई साधक ने सीताजी की मुखमुद्रा के निरूपण में अपना कौशल दिखाने का स्वप्न सँजोया है।

सातवीं शती में, कम्बुजदेश में सर्वत्र रामायण के उद्धरण पाए जाते हैं जिनसे पता चलता है कि रामकथा कम्बुज जीवन का अभिन्न प्रतीक बन चुकी है। विशाल स्मारकों में तक्षित रामायण के शिल्प कम्बुज की ऐतिहासिक घटनाओं के महत्व को सप्राण करते थे। कम्बुजवासियों के लिए रामायण के नाम अथवा उपाख्यान का उल्लेख-मात्र वर्तमान की सार्थकता को सिद्ध कर देता, किसी सामाजिक समाधान की सान्वयता को अधिकृत करता। बायोन मन्दिर की बाह्य-भित्तियों पर महाराजा जयवर्मन राम के अवतार हैं जो रावण-रूपी चाम-नरेश को पराजित करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। सप्तम जयवर्मन के उपरान्त रामायण कम्बुज जीवन का अभिन्न अंग बन गई––अभिनय होने लगे, भित्ति-चित्रों के रूप में आलेखन होने लगा, कथावाचकों ने गाँव-गाँव घूमकर प्रचार किया और राजभवनों के अभिनय इसके सत्यं-शिवं से झंकृत हो उठे। यह कम्बुज देश के मानस की भव्यतम लीला बन उठी। यहाँ पर यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि आंकोर के विशाल वैष्णव मन्दिर में उत्कीर्ण रामायण जावा के कवि योगीश्वर-विरचित 'रामायण काकाविन्' के अधिक समीप है। दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण को प्रसारित करने में इंडोनेशिया का विशेष योगदान रहा है। यह ऐतिहासिक नियति ही है कि इंडोनेशिया में रामायण को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्रदान करने का फिर से उपक्रम किया है। इस महोत्सव और संगोष्ठी के लक्ष्यों की चर्चा करते हुए पूर्वी जावा के राज्यपाल महामहिम श्री मोहम्मद नूर ने कहा है कि "यह सहयोग, सद्भावना और शान्ति स्थापित करेगी. . .पारस्परिक ,सद्भावना एवं मैत्री के लिए अनुकूल भूमिका संपन्न करेगी।"

नवीं शती में रामायण इंडोनेशिया के भव्य शिवालय 'चंडी लोरो जोङ्राङ्' अथवा 'चंडी प्राम्बानान्' में उत्कीर्ण की गई। यह कवि योगीश्वर-विरचित

रामायण काकाविन् से कुछ-कुछ भिन्न है, जिससे यह सिद्ध होता है कि नवीं शती तक इंडोनेशिया में रामायण की अनेक शाखाएँ थीं। सन् १३७९ के पानातारान् मन्दिर में भी रामायण बाह्य-भित्तियों पर उत्कीर्ण है—इसकी कला स्थानीय वासाड् शैली की है। इसमें पूरी रामायण चित्रित नहीं है, अपितु वे अंश ही हैं जिनमें हनुमानजी का महत्व है, विशेषतः वानरयुद्ध का विस्तृत निरूपण है। इससे पता चलता है कि इंडोनेशिया में १४वीं शती में रामायण के कुछ दृश्य अतिलोकप्रिय हो चुके थे और इसलिए रामलीलाओं में उनके अभिनय का प्राधान्य था, जैसाकि वर्तमान इंडोनेशिया में।

नवीं शताब्दी के अन्त में मध्य एशिया से भी पूर्वी ईरानी भाषा खोतनी में रामायण का सार मिला है। इससे पता चलता है कि ईरानी जातियों में भी रामचरित का प्रचलन था।

१८वीं शती से दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की अभिनय-कलाओं में रामायण का प्रमुख स्थान बन गया। रामायण 'शिवं' के साथ-साथ 'सुन्दर' भी विकिरण करने लगी। लावदेश में वहाँ के राजा फ्रा चाओ अनुरुत (अनिरुद्ध) ने पुराने मन्दिर वाट्-सि-फुम् के ऊपर नया मन्दिर वाट् माई बनवाया और इसमें रामायण की कथा का चित्रांकन भी करवाया। इसी काल के लगभग वाट् फ्रा केओ नामक मन्दिर का निर्माण हुआ। लावदेश में पहली बार सम्पूर्ण रामायण इस मन्दिर में चित्रित की गई। आज भी लाव अभिनय में रामायण का प्राधान्य है। लावदेश की राजधानी व्येन्त्यान् में 'नाट्यशाला' है, जहाँ रामायण के संगीत और नृत्य की नियमित शिक्षा होती है। "जब राजकुमारी दारा (तारा), नरेश सावाड्वात्थाना की पुत्री, का विवाह सम्पन्न हुआ; तब ल्वाड् प्रबाड् के राजदरबार में रामायण का पूर्ण राजकीय वैभव में अभिनय हुआ था"—श्रीमती कमला रत्नम्, (भारत के लावदेश-स्थित राजदूत श्री पेरल रत्नम् जी की धर्मपत्नी)। लावदेश के वर्तमान नरेश अपनी भाषा में नई रामायण की रचना कर रहे हैं। वाट् फ्रा केओ मन्दिर में लावभाषा की रामायण की पूर्ण पोथी है, जो ८०० ताडपत्रों पर लिखी हुई है। इसकी दूसरी प्रति वाट् सिसाकेत् मन्दिर में सुरक्षित है। लावदेश में रामायण के दो रूप हैं—पहिला "फा लाक् फा लाम्" (प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम) और दूसरा "फोम्माचाक्" (ब्रह्मचक्र)। यद्यपि लाव-संस्कृति और जीवन में इनका विशिष्ट महत्व है, तथापि अभी तक ये दोनों अप्रकाशित हैं। लाव के रामायण अभिनय का चलचित्रण भी नहीं

किया गया। आचार्य रघुवीर जी ने सन् १९६० ई० में दोनों के हिंदी संक्षेप प्रकाशित किए थे।

थाई देश में रामायण का रूपान्तर (रामक्येन्) अर्थात् रामकीर्ति के नाम से प्रख्यात है। यह खोन् अर्थात् मुखौटा-नृत्य में, नाङ् अर्थात् छायानाटक में, मनुष्य-अभिनय में और काव्यों के रूप में उपलब्ध है। काव्य थाई नरेशों ने स्वयं रचे हैं; क्योंकि वे इस धरा पर राम के प्रतिनिधि हैं और जिसके उपलक्ष्य में राज्याभिषेक के समय उन्हें 'राम' की उपाधि से शोभित किया जाता है। वर्तमान थाई नरेश अपने राजवंश में नवें (९) होने के कारण 'राम नवम' हैं। थाई नरेश राम प्रथम का काव्य पूर्णतम है, परन्तु राम द्वितीय का काव्य मंच पर अभिनय की दृष्टि से अधिक उपयोगी है। आज भी थाईदेश में राज्य शासन की ओर से रामायण का अभिनय होता रहता है। इसकी शिक्षा देने-का दायित्व सिल्पाकोन् (शुद्ध-संस्कृत-शिल्पकरण) पर, अर्थात् शिक्षा मन्त्रालय के ललितकला (शिल्प) विभाग पर है। सिल्पाकोन् रामलीला में दोनों राम प्रथम और द्वितीय के काव्यों का प्रयोग करता है, परन्तु यथोचित परिवर्तन कर लेते हैं। राम षष्ठ का काव्य और भी अधिक पढ़ा जाता है और अभिनय किया जाता है। इसमें नरेश ने वाल्मीकि रामायण से भी अपनी परम्परा को संवर्धित किया। राजमहिम राजपुत्र धानिनिवात् जैसे थाई विद्वानों का मत है कि उनकी रामक्येन्-परम्परा इंडोनेशिया के श्री विजय साम्राज्य से उद्भूत है। नाङ् अर्थात् छायानाटक भी थाईदेश में इंडोनेशिया से मलय-प्रायद्वीप होता हुआ पहुँचा। नरेश बोरेमा त्रैलोकनाथ द्वारा सन् १४५८ में प्रसारित राज-नियम में नाङ् का चर्मपुत्तलिकाओं से छायानाटक के अभिनय का उल्लेख मिलता है।

मलयेशिया में १४००-१५०० के बीच 'हिकायत स्री राम' की रचना हुई। तब से यह रामायण की छायालीलाओं का आधार रहा है। छायानाटक के दो रूप हैं—वायाङ् स्याम और वायाङ् जावा। देशों के नामों से अभिहित होने पर भी इन दोनों में स्पष्ट विशेषताएँ हैं, जो इनको विशिष्ट विभिन्न मलय स्वरूप प्रदान करती हैं। इंडोनेशिया की कला से साम्य है और इंडोनेशियाई पारिभाषिक शब्द भी प्रयोग किए जाते हैं—पाएंङ्, वामाङ्, दालाङ् आदि। मलयेशिया में रामायण के विभिन्न स्थानीय रूपान्तर हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह वहाँ की लोकपरम्परा में अभिन्न रूप से लोकप्रिय हो चुकी थी। मलयेशिया

में आज भी सूत्रधार जो दालाङ् कहलाता है, एक वर्ष में २००-३०० बार अभिनय करता है। मनोरंजन-मात्र न होकर इसका धार्मिक महत्व भी है। यह इस बात से स्पष्ट है कि छायानाटक के प्रारम्भ करने से पहिले पूजा की जाती है, और सुख-सौमनस्य एवं कल्याण मंगल के लिए देवताओं का आह्वान किया जाता है। डा० अमीन स्वोनी ने, जिन्होंने मलयेशिया की रामायण पर शोधप्रबन्ध लिखकर लन्दन विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त की है, लेखक से कहा : "रामायण का छायानाटक मलयेशिया के निवासी के लिए एक प्रेरणा है, आङिन है अर्थात् प्राणवान चैतन्य है; जिसमें प्रदर्शक और उसका दर्शक श्रोता वाद्यवृन्दों की स्वरलहरी में ओतप्रोत होकर रामायण के पात्रविशेष से अपना तादात्म्य स्थापित करता है और अलौकिक अनुभूति प्राप्त करता है। वह कभी-कभी परा-अनुभूति में विलीन हो समाधिस्थ हो जाता है।"

बर्मा में भी रामायण का प्रसार शताब्दियों से रहा है। बर्मा-नरेश क्यान्ज़ित्था (सन् १०८४-१११२) को रामायण से विशेष अनुराग था और उन्होंने अपने को राम का वंशज कहा है। बर्मा में रामायण का आधुनिक अभिनय १७६७ में प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष बर्मा ने थाईदेश पर विजय पाई और साथ में यामाप्वे (यामा राम) अर्थात् राम-लीला भी। पहिले रामलीला का अभिनय २१ रात तक चलता था; परन्तु आजकल यह केवल १२ रात में ही समाप्त हो जाता।

राम-कथा का प्रचार उत्तर के दूरतम प्रदेश साइबेरिया तक हुआ। यहाँ रामायण तिब्बत द्वारा होती हुई पहुँची। तुनह्वाङ् की गुहाओं से ७-९वीं शती की दो तिब्बती पांडुलिपियाँ मिली हैं, जिनमें रामायण की दो शाखाएँ हैं। १५वीं शती में शाङ्गुङ्पा छोग्ड्क्यई-पाल ने तिब्बती भाषा में छन्दोबद्ध रामायण लिखी। काव्यादर्श और सुभाषित रत्ननिधि की तिब्बती टीकाओं में भी रामायण उपलब्ध है। तिब्बत से रामचरित मोंगोल देश पहुँचा और वहाँ से हिमाच्छादित साइबेरिया में। मोंगोल देश से पश्चिम की ओर बढ़ते हुए मोंगोल-समुदायों के साथ-साथ रामायण रूस-वर्ती वोलगा नदी के तट पर फैली, जहाँ आजकल हालिमग गणराज्य है। हालिमग जाति में लोककथा के रूप में यह फैलती गई। हालिमग भाषा की रामायण की एक हस्तलिपि सी० एफ० गोल्स्टुन्स्की नामक विद्वान के पत्रों में सुरक्षित है। ये पत्र सोवियत-संघ के विज्ञान-विहार की साइबेरिया शाखा, उलानुदे नगर में सुरक्षित हैं।

उलान्वातर् के विद्वान् प्रो० दाम्दिन् सुरेन् आजकल मास्को और लेनिनग्राद विश्वविद्यालयों में रामायण के मोंगोलभाषीय साहित्यिक और लोक रूपों का इतिहास लिख रहे हैं।

काममोहित क्रौंचदम्पती के वध पर शोकाहत और विह्वल वाल्मीकि की गिरा से श्लोक-निर्झर निकल कर आदि-काव्य रामायण में परिणत हो उठा, और वह एशिया के उत्तरतम हिमाच्छादित साइबेरिया से लेकर इण्डोनेशिया की शस्यश्यामला भूमि तक मानव की अन्तर्गीत बन उसकी अन्तरात्मा को आनन्दलहरी से आप्लावित करता है।

इस राम-ध्वनि को और राम-लीला को फिर से झंकृत करने के लिए इंडोनेशिया ने रामायण महोत्सव का आयोजन किया। उसके धातु और काष्ठ-मय वाद्यों के गुंजित स्वरों में उनके रामायण काकाविन् की स्वरकम्पना सुनाई दी, जो इन्डोनेशिया के कविवर योगीश्वर ने ९वीं शती में रची थी कि परार्थ हो और भुवन में सुख हो उठे—"परार्थ गुमवे सुखनिके भुवन" (योगीश्वर के शब्दों में)। योगीश्वर की आत्मा इंडोनेशिया में जाग उठी—विश्व को जगाने के लिए। धूमिल ज्योति में, वेषों की चकमक में, मुकुटों की मंजुल सुकुमारता में, हृदयगामी स्वरलहरी में विलीन, विश्व ने रामचरित के सत्यं शिवं सुन्दरं का साक्षात्कार इंडोनेशिया में किया। और अब वाल्मीकि तथा तुलसी की भूमि में सन् १९७४ में होने वाले विश्व रामायण महोत्सव की बाट जोहती है।

●





भारत के राम थाईलैण्ड में

⊙

श्री लल्लनप्रसाद व्यास, एम. ए.

[प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार] सम्पादक : आलोक भारती, नयी दिल्ली

[मध्यपूर्व एशिया की संस्कृति के निकटस्थ द्रष्टा-लेखक एवं लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रकार श्री लल्लनप्रसाद व्यास ने यहाँ बड़ी ही गवेषणा तथा रोचकता के साथ प्रतिपादित किया है कि भारत के राम ने ही नहीं, रामकथा ने भी दिग्विजय की है और मानव की श्रेष्ठतम जीवन-गाथा के रूप में यह दिग्विजय कितनी शाश्वत, कितनी सार्वभौम है, इसका साक्षी विश्व के अनेक देशों में से एक देश थाईलैण्ड भी है; जिसने भारत की इस सांस्कृतिक धरोहर को अपनी काव्य-कथाओं, प्रतिमाओं तथा नृत्य-नाटकों में अत्यन्त निष्ठा के साथ आज तक सँजो रखा है—संपा०]

भारत के भगवान राम ने केवल अपने देश को ही नहीं, विश्व के सभी भागों को प्रेरित और प्रभावित किया। इसीलिए रामकथा निःसन्देह विश्व की सबसे अधिक सशक्त और प्रभावी कथा बन गयी है और जिसका अनुमान इसकी अद्वितीय लोकप्रियता और विश्व व्यापी प्रचलन से लगाया जा सकता है। भारत के सन्त कवियों ने राम को भगवान और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया, इसलिए जिन देशों में राम का यह स्वरूप गया है; वहाँ तो वे आज भी उनके आराध्य देव माने जाते हैं। उनका यह आराध्यरूप मुख्यतः कुछ विगत शताब्दियों में प्रवासी भारतीयों के माध्यम से गया, जो मारिशस और फिजी जैसे देशों में आज भी सुरक्षित है। इन देशों से भी अतिरिक्त सुरक्षित है विश्व के उन अधिकांश देशों में जहाँ प्रवासी भारतीय कुछ न कुछ मात्रा में विद्यमान हैं। राम की उपासना की यह धारा अभी कुछ हाल की शताब्दियों की है।

इसके विपरीत रामकथा हजार दो हजार ही नहीं, शायद उससे भी पहले गयी सुदूर देशों में और उन्हें ले गये भारत के संस्कृति-निष्ठ व्यापारी, राज परिवारों के लोग तथा वे विदेशी यात्री और विद्वान जो ज्ञान-प्राप्ति की अभिलाषा में समय-समय पर भारत की यात्रा पर आते थे। इस धारा के साथ जो

रामकथा विदेशों में गयी, वह वहाँ के साहित्य में समा गयी और कालान्तर में राम मात्र एक चरित्र नायक रह गये। बाल्मीकि रामायण के स्रोत में से निकली यह धारा गयी तो सभी दिशाओं में, किन्तु आज भी अपने प्रवहमान रूप में विद्यमान है केवल पूर्वी-एशिया में। काल-परिवर्तन के साथ-साथ इन देशों ने रामकथा में अनेक स्थानीय रंग भर लिए। ये रंग उनके बिल्कुल अपने हैं और कभी-कभी मूलरूप से बिल्कुल भिन्न हैं। इन स्थानीय रंगों का प्रभाव इतना अधिक हुआ कि दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ देश तो यह मानने लगे कि राम उनके देश में ही पैदा हुये थे और उनके जीवन की घटनायें उन्हीं के यहाँ घटित हुई। ऐसे लोक-विश्वास का आधार यह बना कि इन देशों में स्थानों, नदियों, पहाड़ों आदि के नाम वही पड़ गये, जो रामकथा में वर्णित हैं; जैसे अयोध्या, सरयू, आदि।

इन दो धाराओं के अतिरिक्त भी राम सम्बन्धी एक और धारा भी बही थी, जो शायद बहुत काल व्यतीत होने पर सूख गयी। इस धारा के देश मिस्र आदि माने जा सकते हैं, जहाँ के इतिहास में राजवंश (रैमसेस)का होना उस धारा के अस्तित्व का स्मरण कराती है। इसके अतिरिक्त भी इन देशों के साहित्य में प्राप्त रामकथा से मिलती-जुलती कथाएँ भी कुछ न कुछ उस अस्तित्व का भान कराती हैं।

तो फिजी, मारिशस, ग्वाना, त्रिनिडाड, सूरीनाम आदि देशों में जहाँ भारत के प्रवासी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं, वहाँ तो राम का लगभग वही स्वरूप सुरक्षित है, जो भारत में है; किन्तु महत्व की बात तो है एशिया के उन देशों में जहां के लोगों ने राम को इतनी अभिन्नता के साथ स्वीकार कर लिया कि राम उनके ही अपने हो गये। इन देशों में रामकथा पर उनकी अपनी जीवन प्रणाली, चिन्तन और मान्यताओं का प्रभाव है। इन देशों में कहीं-कहीं की रामकथा को पढ़कर भारत की उस धर्म-परायण जनता को ठेस पहुँच सकती है; जो राम को युगों से भगवान या मर्यादा पुरुषोत्तम मानती चली आ रही है किन्तु स्थिति को पूरी तरह से समझने के बाद यह तथ्य समझ में आ जाएगा कि राम पर जितना अधिकार भारत को है, उससे किसी प्रकार भी कम उन देशो का नहीं है, क्योंकि एक मुख्य तत्व है निष्ठा का और वह दोनों ओर समान है। एक की निष्ठा राम के प्रति भगवान की है तो दूसरे की एक चरित्र नायक के रूप में।

ऐसा ही एक देश है थाईलैण्ड, जो यद्यपि बौद्ध देश है, किन्तु साथ ही राम का भक्त भी। थाईवासियों के रामायण का ज्ञान का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि एक बार एक व्यक्ति ने एक छोटे-से बालक से प्रश्न किया कि जब सीता इतने समय तक रावण की लंका में रही तो वह चाहते हुए भी उन्हें अपनी पत्नी क्यों नहीं बना सका; तो उसने उत्तर दिया कि सीता के शरीर से एक ऐसी अग्निज्वाला निकलती थी, जिससे कि अगर राम के अतिरिक्त उन्हें कोई छूता तो वह जल जाता। एक साधारण बालक का यह रामायण ज्ञान यह सिद्ध करता है कि थाई जीवन में राम और रामायण की लोकप्रियता की जड़ें कितनी गहरी हैं।

थाई-रामायण का नाम है रामकियेन अर्थात् रामकीर्ति। यहाँ की रामायण का कथानक मूलतः वाल्मीकीय रामायण से ही लिया गया है और समय-समय पर अनेक रामायण यहाँ लिखी भी जा चुकी हैं। किन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् १८०७ में नरेश राम प्रथम ने लिखी। इसी नरेश की वंश-परम्परा आज भी थाईलैंड में चली आ रही है और आज के नरेश भूमिबल, अतुल तेज भी अपने नाम के साथ राम लगाते हैं। थाई रामायण के कथानक का मूल भारतीय होने के बावजूद इसे अपने देश के गुण और विशेषताओं से युक्त बना लिया गया है। ऐसा कि प्रत्येक थाईवासी यही समझता है कि राम उनके देश में ही हुए और रामायण की घटनायें उनके ही देश में ही घटित हुईं।

और प्रमाण भी ले लीजिए। थाईलैंड में अयोध्या नामक नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं, लोपपुरी (लवपुरी) भी है। बैंकांक के एक प्रसिद्ध मन्दिर की दीवारों पर रामकियेन की घटनायें चित्रित हैं। यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में राम की अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। भवन के बाहर भी राम की मूर्ति है।

थाईलैंड के जीवन में भारतीय-संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं—इतनी गहरी कि आज सदियों के बाद भी वह पूर्णतः सुरक्षित और अप्रभावित है। यहाँ की विभिन्न कलाओं—नृत्य, नाटक और संगीत पर यह प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। इन कलाओं का शास्त्रीय पक्ष शतप्रतिशत भारतीय है और सबसे अधिक हर्ष और सन्तोष की बात तो यह है कि इस शास्त्रीय पक्ष का पालन, जितनी निष्ठा के साथ थाईलैण्ड में होता है, उतना शायद भारत

में भी विभिन्न भागों में नहीं होता। यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं कि हमारी प्राचीन परम्पराओं और आदर्शों को हमसे कहीं अधिक थाईवासियों ने जतन से सँजो कर रखा है और इसके लिए उन्हें गर्व भी है।

भारत की भाँति थाईलैण्ड में भी नाट्य-शास्त्र के प्रवर्त्तक या आदि गुरु भरत मुनि ही माने जाते हैं, अतएव उनकी विधिवत् पूजा के बिना नाट्य-शास्त्र की शिक्षा किसी विद्यार्थी को नहीं दी जाती। नाटक, नृत्य और संगीत विद्यालयों में प्रतिवर्ष विशेष समारोह आयोजित किये जाते हैं, जिनमें सर्वप्रथम गुरु की पूजा होती है। बैंकाक में मैं स्वयं एक ऐसे प्रमुख विद्यालय में गया और वहाँ की सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति पर तत्सम्बन्धी प्राचीन भारतीय प्रभाव के दर्शन किये।

इस विद्यालय में भी उक्त समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है, गुरु के दिन बृहस्पतिवार को ही। इस समारोह के पूर्व विद्यालय के अध्यापक-गण संगीत के कुछ सुर और नृत्य की कुछ मुद्राएँ नहीं सिखा सकते। इसके पीछे यह विश्वास है कि उक्त विधि-विधान के निर्वाह किये बिना अभ्यास कराने पर अध्यापकों और शिक्षार्थियों दोनों का अनिष्ट होता है, अतएव यहाँ वह पूर्णतः वर्जित है।

समारोह में नृत्य और नाटकों के अभिनेता-गण एक वेदी पर भरत मुनि की मूर्ति रखते हैं, साथ ही पूजा की सामग्री मूर्ति के सामने रखते हैं। संगीत के शिक्षार्थी भरत मुनि के स्थान पर नारद मुनि की मूर्ति रखते हैं। इसके बाद वयोवृद्ध अध्यापकगण श्वेत वस्त्र धारण करके समारोह का विधि-वत संचालन तथा पूजन कराते हैं। उस समय नृत्य शाखा के पुराने शिक्षार्थी एक विशेष प्रकार का नृत्य करते हैं, जिसमें वे अपने हाथ में भोग सामग्री का पात्र लिए रहते हैं। इसके बाद सबसे वयोवृद्ध अध्यापक मन्त्रोच्चारण से आदि गुरु तथा अन्य गुरुओं की दैवी शक्तियों का आह्वान करता है। उस समय वाद्य-यन्त्रों में भी निमन्त्रणसूचक धुनें निकाली जाती हैं।

इसके बाद नाटक और संगीत के दो वयोवृद्ध अध्यापक-गण शिक्षार्थियों पर पवित्र जल छिड़कते हैं। शिक्षार्थी नतमस्तक होते हैं। इस समारोह के बाद ही शिक्षण प्रारम्भ होता है।

थाईलैण्ड के शास्त्रीय नृत्यों में रामकथा के प्रसंग भरे पड़े हैं। यद्यपि कुछ प्रसंग भारत में ज्ञात तत्सम्बन्धी कथा प्रसंगों से कुछ भिन्न हैं, क्योंकि नृत्यों के ये प्रसंग थाईलैण्ड की रामायण 'रामकियेन' से लिये गये हैं। 'रामकियेन'

रामायण से कुछ भिन्न है। यद्यपि 'रामकियेन' के राम का चरित्र उतना ही महान्, श्रेष्ठ और अपराजेय है, जितना कि रामायण के राम का।

थाई नृत्यों में रामकथा के जो प्रसंग आते हैं, उनमें थोकसन (दसकन्ध अर्थात् रावण) का चुई-चाई नृत्य, नकली थोकसन का चुई-चाई नृत्य, वेन्य-काई का चुई-चाई नृत्य, राम द्वारा स्नान, राम की समुद्र-पार यात्रा आदि उल्ले-खनीय हैं।

थोकसन का चुई-चाई नृत्य उस समय की मुद्रा है, जब रावण सीता से मिलने वाटिका में जाता है। इस नृत्य में शब्दों के बजाय मुद्राओं पर ही जोर दिया जाता है, लेकिन बाद में वह एक गीत भी गाता है।

नकली थोकसन का नृत्य उस समय से सम्बन्धित है, जब हनुमान जी अपना स्वरूप बदलकर 'थोकसन' की पत्नी 'मोनथो' अर्थात् मन्दोदरी को भ्रमित करने जाते हैं। इस नृत्य-मुद्रा में यद्यपि हनुमान जी ने बन्दर का स्वरूप त्याग दिया है, फिर भी वे अपने स्वभाव से मजबूर हो जाते हैं तथा बन्दरों की अनेक मुद्राओं का प्रदर्शन करते हैं। इस नृत्य से दर्शकों का बड़ा मनोरंजन होता है।

वेन्यकाई का नृत्य भारत की रामकथा से भिन्न एक कल्पना पर आधारित है। 'रामकियेन' में वेन्यकाई, फीफेक (विभीषण) की लड़की है, जो राम को धोखा देने के लिए उस समय भेजी जाती है, जब राम लंका पर चढ़ाई करते हैं। इसमें वेन्यकाई सीता का रूप धारण करके जाती है और अपना मृत शरीर बनाकर राम के शिविर के आगे नदी में अपने को प्रवाहित करती है; ताकि राम सीता को मृत समझ कर वापस चले जायें। यह नृत्य भी बड़ा कुतूहलपूर्ण माना जाता है।

राम का स्नान सम्बन्धी नृत्य उस समय से सम्बन्धित है, जब राम अपने भाई लाक (लक्ष्मण), वानर नरेश सुक्रिय (सुग्रीव), रीछ नरेश चोमचुफन (जामवन्त) आदि के साथ लंका के सामने इस पार समुद्र में स्नान करने जाते हैं। उसी के पूर्व फीफेक (विभीषण) राम की शरण में जाता है, जो लंका का बहुत बडा ज्योतिषी और रावण का भाई है। यह नृत्य मधुर संगीत से युक्त है और दर्शक इसमें बड़ी रुचि लेते हैं।

राम की सेना द्वारा समुद्र पार करने से सम्बन्धित यह नृत्य-नाटक थाई नृत्य-कला का एक उत्कृष्ट नमूना माना जाता है, जो विभिन्न कलात्मक अभि-

व्यक्तियों के कारण एक ऐसे रंग-बिरंगे गुलदस्ते के समान है, जिसमें विभिन्न रंग-बिरंगे फूल लगे हुए हैं। इसमें राम अपनी वानरों, रीछों और मानव की सेना के साथ समुद्र पार करते हैं। इस नृत्य की विशेषता यह है कि इन विभिन्न मुद्राओं के प्रदर्शन के लिए बड़ा कठिन अभ्यास करना पड़ता है। यह नृत्य-नाटक भी संगीत प्रधान है।

रामकथा के और भी कई प्रसंग नृत्य और नृत्य-नाटकों के माध्यम से प्रदर्शित किए जाते हैं। रामकथा के अतिरिक्त हिन्दू-धर्मकथाओं के कुछ अन्य प्रसंग भी इन नृत्यों के माध्यम से प्रदर्शित किए जाते हैं। जिसमें से दो हिरण्य-कसिपु (हिरण्यकश्यप) का वध और केनेस (गणेश) की सूंड पर प्रहार मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

थाई धर्म-कथाओं में नोरसिंह (नरसिंह) नराई (विष्णु या नारायण) के अवतार माने जाते हैं; जिन्होंने हिरण्यकश्यप का वध किया था। सम्बन्धित कथा लगभग वही है। इस नृत्य में नरसिंह की मुद्राएँ विशेष रूप से दर्शनीय होती हैं, जो शेर की भाँति छलाँग लगाते और दहाड़ते हैं।

थाईलैण्ड में केनेस (गणेश) कला के देवता हैं, जिनका मुख हाथी के समान है। वैवर्त पुराण पर आधारित उक्त नृत्य-कथा में यह प्रदर्शित किया गया है कि फ्रा इसुवन (शिव) और फ्रा उमा (पार्वती) के शयन कक्ष के बाहर केनेस (गणेश) पहरा दे रहे हैं। तभी फ्रा इसुवन के मित्र परशुराम उनसे मिलने आते हैं। केनेस उन्हें अन्दर नहीं जाने देते। फलस्वरूप वे कुल्हाड़ी से केनेस की सूंड़ काट देते हैं। इस नृत्य में अभिनय के साथ-साथ सज्जा का भी बड़ा महत्व है।

इस प्रकार रामकथा तथा अन्य धर्म-कथाओं के नृत्य थाईलैण्ड की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर है, जो यद्यपि मूलतः भारत की है; किन्तु अब तो हमारे लिए भी प्रेरक और अनुकरणीय बन गयी है।





इण्डोनेशिया में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-महोत्सव

डॉ० लोकेशचन्द्र, डी० लिट्०

हिन्दी रूपान्तरकार श्री गुरुचरणलाल, एडवोकेट, करवी (चित्रकूटधाम)

[विगत सितम्बर (१९७१) मास में इण्डोनेशिया में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व का प्रथम 'रामायण-महोत्सव' सम्पन्न हुआ, जिसमें इण्डोनेशिया के अतिरिक्त बरमा, लंका, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, मलयेशिया, सिंगापुर, फिलीपाइन्स तथा भारत की सांस्कृतिक-मंडलियाँ सम्मिलित हुईं—महोत्सव का आँखों देखा विवरण हमें डॉ० लोकेशचन्द्र जी (डाइरेक्टर : इण्टरनेशनल एकादमी आफ इण्डियन कल्चर) नयी दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुआ है, जिन्होंने स्वयं इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया था। मूल विवरण अंग्रेजी में प्राप्त होने के कारण रूपान्तरित कर यहाँ हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं—करवी के सार्वजनिक-जीवन के सर्वस्व श्री गुरुचरणलाल, एडवोकेट, एम० काम०, एल-एल० बी—सम्पादक]

विगत सितम्बर के महीने में पूर्वी जावा के पण्डान नामक स्थान में 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सवका आयोजन करके इण्डोनेशिया ने ऐतिहासिक उपलब्धि प्राप्त की। यह छोटा-सा पण्डान ग्राम, जिसने शताब्दियों तक मजापहित साम्राज्य का यशोगान किया है ; दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की सांस्कृतिक चुनौतियों को स्वीकार करके फिर से जाग्रत हुआ। इण्डोनेशिया की सरकार ने इस विशाल सांस्कृतिक आयोजन के लिए इस गाँव में एक विशेष पण्डाल (मंच) का निर्माण कराया था। इसका नामकरण 'तामनचन्द्र विल्वतिक्त' अर्थात् 'विल्वतिक्त का देदीप्यमान उद्यान' सार्थक था। विल्वतिक्त उस मजापहित वंश के प्राचीन-कवि थे, जो इण्डोनेशियाई इतिहास के स्वर्ण-युग का प्रतिनिधित्व करता है और राज्य सीमाओं के विस्तार तथा उदात्त सांस्कृतिक उत्फुल्लता (विकास) का प्रतीक है। पण्डाल के विशाल मंच पर ३०० कलाकार सुगमता से अपना प्रदर्शन कर सकते थे।

मंच की पृष्ठभूमि भव्य 'पेनानगुगन' पर्वत था, जो आज भी पूर्वी जावा निवासियों के लिए एक पवित्र पर्वत है और जिसकी ढलान पर ८१ देवालय बने हुए हैं। प्राचीन इण्डोनेशियाई ग्रन्थ 'तन्तुपंगलरेन' के अनुसार यह जावा का आठ शिखरों वाला मेरु-पर्वत है। इसकी छटा निराली है। इसकी चोटी नीचे की चार मामूली चोटियों से घिरी हुई है और ऐसे ही चार शिखर इसके तल भाग को भी ढके हुए हैं। इण्डोनेशिया के ग्रन्थ के अनुसार यह सुमेरु-पर्वत देवताओं द्वारा भारत से जावा लाया गया है। चूँकि, इतने वड़े पर्वत को बाँध (Package) कर ले जाना देवताओं के लिए एक समस्या थी, इसलिए जल-यात्रा के दौरान मार्ग में इसके कुछ खण्ड टूट गये हैं और अन्ततोगत्वा सुमेरुपर्वत का केवल शिखर भर जावा पहुँचा, जो आज 'पेनानगुगन' के नाम से प्रसिद्ध है। सुमेरु में अमृत का वास है। इसलिए पेनानगुगन के सभी जल-स्रोत अमृतमय हैं। दसवीं शताब्दी का जलतुण्ड जलाशय पेनानगुगन पर्वत पर ही है, जिसके जल का जीवनदाता प्रवाह पार्श्ववर्ती भूमि एवं धान के खेतों को हरा-भरा बनाता है। यहीं इण्डोनेशिया के एक महान् राजा उदयन का 'अस्थि अवशेष' भी सुरक्षित है, जिसकी तुलना जातक कथाओं में पाण्डवों के अन्तिम वंशज उदयन से की जाती है।

जिस स्थल पर रामायण-महोत्सव और संगोष्ठी आयोजन किये गये थे, उसके सांस्कृतिक महत्व का दिग्दर्शन कराने के लिए उपर्युक्त विषयान्तर प्रस्तुत किया गया है। इण्डोनेशिया के महामहिम सुहार्तो ने समारोह का उद्घाटन करने के लिए जकार्ता से पण्डान पधारने का कष्ट किया। पूर्वी जावा के राज्यपाल महामहिम श्री मुहम्मद नूर सारी व्यवस्था की देखभाल के लिए हर समय स्वयं उपस्थित रहे। उन्हें गर्व था कि यूनेस्को की सहायता से इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सम्मेलन का आयोजन इण्डोनेशिया की संस्कृति विशेषकर, जावा की अन्तरात्मा के सुन्दरतम अभिव्यक्ति-स्वरूप रामायण-नृत्याभिनय की मनोहारी विद्या के केन्द्रविन्दु पूर्वी जावा में हो रहा था; जिसका आयोजन निकटतम सहयोग, एकता तथा शान्ति को बढ़ाने और पारस्परिक सामञ्जस्य एवं मैत्रीभाव के अनुकूल वातावरण को उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया था।

इण्डोनेशिया के डाक-तार विभाग ने विश्व के समस्त भागों से आगत सम्मानित विद्वानों और कलाकारों के स्वागत में दो आकर्षक डाक-टिकत

प्रचलित करके रामायण के उस दृश्य का अंकन किया, जिसमें राम ने स्वर्ण-मृग के छद्मवेषी मारीच का वध किया है। वे इण्डोनेशिया की कलात्मक विद्या को विशेष अभिव्यञ्जना के साथ प्रकट करते थे।

रामायण-महोत्सव ३१ अगस्त (१९७१ ई०) से मध्य सितम्बर तक चला। आतिथेय देश इण्डोनेशिया के अलावा उसमें बरमा, श्रीलंका, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, मलयेशिया, सिंगापुर, फिलीपाइन, यूनेस्को और भारत ने भाग लिया। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में पाँच विद्वान और दो—रंगश्री लघु बैलेदल एवं पी० एस० बी० नाट्यसंगम—अभिनय मण्डलियाँ थीं। रंगश्री मंडली ने पूर्वी भारत के छाऊ-नृत्यों पर आधारित बैले-नृत्य-शैली का और संगमदल ने भारत के दक्षिणी भागों में प्रचलित 'कथकलि' नृत्य का आकर्षक प्रदर्शन प्रस्तुत किया। साथ ही साथ, नवीन भावनाओं की उत्प्रेरणा के साथ भारतीय मण्डलियों ने पण्डान के अपार दर्शकजन समूह के समक्ष भारत की लोक और शास्त्रीय पद्धतियों की गहनतम सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रस्तुत किया। अपने कार्यक्रम के शानदार प्रदर्शनों में अभ्यस्त जावा के दर्शक भारतीय मण्डलियों की नवीनता, दक्षता तथा प्रसिद्ध कथाओं के भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण से अत्यन्त प्रभावित हुए। रंगश्री मण्डली ने अपने चिरअनुभव की पूर्णता के साथ रामायणी-कथाओं की नवीन पद्धति से प्रस्तुत किया। इण्डोनेशिया के मित्र इन पद्धतियों की नवीन सम्भावनाओं से उत्प्रेरित होकर विद्यालयों के बालकों में सांस्कृतिक मूल्य प्रदान करने की सुदृढ़ शृंखला के रूप में तुरंत स्वीकार कर उठे।

इण्डोनेशिया ने पश्चिमी जावा, जोग्याकार्ता, सोलो तथा बाली की अपनी-अपनी शास्त्रीय विशिष्टताओं के बावजूद, रामायण के प्रदर्शनों की विभिन्न शैलियाँ प्रस्तुत कीं। जबकि अधिकांश प्रदर्शन पेनानगुगन पर्वत की नैसर्गिक छटा तथा शीतल वातावरण में सम्पन्न हुए, वहाँ की मण्डलियों ने लो जांग-रंग के प्रसिद्ध शिव मंदिर वाले प्राम्बनन में भी कार्यक्रम प्रस्तुत किये। पलाऊ देवता की राजधानी, देनपासर अथवा बाली का स्वर्गद्वीप दूसरा कार्यस्थल रहा। अन्त में सभी कलाकार निर्णायक प्रदर्शन हेतु प्रसिद्ध कलाकेन्द्र तामन इस्माइल मरजुकी पहुँचे। इण्डोनेशिया, बरमा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, मलयेशिया तथा भारत की अभिनय मण्डलियों ने एक ही प्रदर्श्य विषय को विविध रूपों में प्रस्तुत किया।

महोत्सव के अतिरिक्त रामायण की परम्परा वाले विभिन्न दक्षिणी-पूर्व एशियाई देशों तथा जापान, योरोप और संयुक्त राज्य के विद्वानों ने दो संगोष्ठियों

में दक्षिण-पूर्व एशिया की परम्परागत कला और संस्कृति के ज्ञान के प्रसार पर प्रकाश डाला। शिक्षा एवं संस्कृति मंत्री माननीय श्री मुशुरी ने कहा : अपनी सांस्कृतिक एवं कलात्मक पूँजी के संरक्षण के प्रयत्नों और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के मध्य सांस्कृतिक-सहयोग को बढ़ाने में हमें एक दूसरे के सांस्कृतिक-ज्ञान की कमी का अनुभव हुआ है। सम-सांस्कृतिक ढाँचे वाले एशियाई राष्ट्रों के बीच सहयोग के सुदृढ़ आधार के निर्माण के लिए हम उत्सुक हैं। हम परम्परागत कला एवं संस्कृति के ज्ञानसम्वर्द्धन हेतु घनिष्ठ सहयोग के आकांक्षी हैं। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में महान उपलब्धियों और आधुनिक संचार प्रणालियों की अधिकाधिक प्रगतियों को प्रसार की महान सम्भावनायें पैदा करने में प्रयुक्त करना चाहिए। क्योंकि विकास का लक्ष्य राष्ट्रीय संस्कृति पर आधारित आधुनिकीकरण ही है।

दोनों संगोष्ठियों के पूर्णाधिवेशन में दक्षिण-पूर्व एशिया की परम्परागत संस्कृतियों के प्रसार एवं संरक्षण के लिए एक केन्द्र की स्थापना का, विशेषकर रामायण को इसके विभिन्न शास्त्रीय एवं लोक कविताओं में विकसित करने के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

इस पूर्णाधिवेशन में हमने सम्मेलन में भाग लेने वाले समस्त देशों को सन् १९७४ ई० में भारत में सम्पन्न होने वाले द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-महोत्सव तथा संगोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। यह महोत्सव गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रणीत हिन्दी रामायण के ४०० वर्ष पूरे होने पर मानसचतुश्शती के राष्ट्रीय-महोत्सव के अवसर पर सम्पन्न होगा। इण्डोनेशिया के सांस्कृतिक महासंचालक तथा इस अधिवेशन के अध्यक्ष प्रो० मंत्र ने इस विचार का ज़ोरदार स्वागत किया और पूर्ण सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि मजापहित की भूमि इण्डोनेशिया में आयोजित यह सांस्कृतिक कार्यक्रम भारत में फलीभूत होगा।

जबकि हमारा देश आधुनिकता के दूरगामी परिवर्तनों की ओर अग्रसर है और वे अनेक विधाओं के माध्यम से जिनमें परम्परा की सशक्त भावात्मक भूमिका सन्निहित है, रचनात्मक दृष्टिकोण के लिए स्फूर्ति एवं क्षमता प्रकट करते हैं। इण्डोनेशिया के इस समागम ने परम्परा की निधियों का उद्घाटन करने में एक आलोक प्रस्तुत किया है, जिससे नये रूपों तथा नये मूल्यों का आविर्भाव सम्भव हो सकेगा।

●



देव करो स्वीकार सप्रेम प्रणाम हमारा

⊙

डॉ० मोहन अवस्थी एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग : प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

तुम अवतरित हुए भूपर मध्याह्न सूर्य-सम,
जग की घोर तमिस्रा अपनी मौत मर गई।
तुमने खोली आँख जगा मृतकों में जीवन,
युग-युग से सूनी हिन्दी की गोद भर गई।

हर्षित होकर उठी भारती की वर वीणा,
आज युगों के बाद उसे निज राग मिल गया।
अलंकार भूषित होने के लिए चल पड़े,
कविता-कामिनि को निज अमर सुहाग मिल गया।

काँप रही थी भारत की सांस्कृतिक नाव जब,
तुम उसके उद्धार-हेतु पतवार हो गये।
बसे हमारे मानस में तुम निराकार बन,
डूब तुम्हारे 'मानस' में हम पार हो गये।

सुन पुकार संतप्त तृषाकुल उर की कातर,
इस साहित्य-गगन के तुम घनश्याम बन गये।
'राम चरित' बस गया तुम्हारा धाम-धाम में,
घट-घट के भीतर रम कर तुम राम बन गये।

राम-लखन-सीता की चरित त्रिवेणी लाकर,
तुमने मरुस्थल को भी सरस प्रयाग कर दिया,
राग छोड़ कर बने विरागी, लेकिन तुमने-
अपने अमर राग में सरस विराग भर दिया।

एक बार पथ दिखलाया तुमने जो, उस पर,
बढ़ते रहे सदा हम लेकर नाम तुम्हारा।
एक बार अभ्यास कराया था तुमने, पर,
लाखों रावण मार चुका है राम तुम्हारा।

चरण गहे तुमने उस प्रभु के जिसने जाकर,
वन्य प्राणियों को जीना-मरना सिखलाया।
स्वयं कष्ट सह कष्ट निवारे जिसने जन के,
घृणा पाप से की, पापी को गले लगाया।

रत्नावली न मोह सकी फिर क्या दें तुमको,
और स्वयं है 'मानस' पूर्ण प्रकाम तुम्हारा।
हे निष्काम निरीह, किन्तु हों जहाँ कहीं भी,
देव करो स्वीकार सप्रेम प्रणाम हमारा।

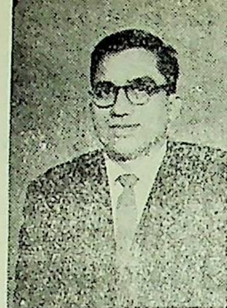
●

तुलसी के जीवन पर फिल्म का निर्माण

⊙

हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री अमृतलाल नागर महाकवि तुलसीदास के व्यापक जीवन को लेकर ऐसी सामग्री तैयार कर रहे हैं, जिसको 'फिल्म' रूप देने की संभावनाओं पर पूरा-पूरा विचार किया जा चुका है। इसमें तुलसीदास का भक्त स्वरूप तो होगा ही, साथ ही उनके महान व्यक्तित्व से जुड़े उन पक्षों को भी उजागर किया जायगा, जो अबतक प्रायः नगण्य रहे हैं। तत्कालीन भारत के आध्यात्मिक मानस को तुलसी के व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से उभारना ही नागर जी का उद्देश्य है।

सन् १९७४ या '७५ में जब मानस चतुश्शती मनाई जायगी, तब यह फिल्म उसी अवसर पर प्रदर्शित की जायगी।



क्या रावण के दस सिर थे ?

डॉ० न. वी. राजगोपालन, एम. ए., पी-एच.डी.
रीडर तथा अध्यक्ष : भाषा विज्ञान विभाग : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

[सृष्टि के आरम्भ से अब तक रामकथा काल खण्ड की न जाने कितनी अनन्त दूरी पार कर चुकी है और अपनी इस सुदीर्घ यात्रा में देश-काल की विभिन्न संस्कृतियों-परिवेशों का संगमन करती हुई, उसने चेतना के ही नहीं, चेतनावाही वाङ्मय के शब्दार्थ के भी अनेकानेक रूप ग्रहण कर लिए हैं। देश-काल-सापेक्ष्य शब्दार्थ-विपर्यय की खोज में प्रस्तुत है एक तमिल-भाषी, किन्तु हिन्दी के ख्यातिनामा भाषा-विज्ञानी विद्वान् का एक शोध-लेख, जिसमें रावण के लोक-प्रसिद्ध दस सिरों की वस्तुस्थिति पर गवेषणात्मक प्रकाश डाला गया है—सम्पादक]

हमारे प्राचीन पुराणों के कुछ पात्र बहुत ही विचित्र लगते हैं और आज के वैज्ञानिक युग में उनके संबंध में अविश्वास उत्पन्न होता है। रावण ऐसा ही पात्र है। कहा जाता है कि रावण के दस सिर थे। रामायण के श्रद्धालु पाठक इस पर सन्देह नहीं करते; क्योंकि तुलसीदास ने या वाल्मीकि ने ऐसा लिखा है तो ऐसा ही रहा होगा। मगर किसी कम श्रद्धालु बुद्धिवादी के लिए सन्देह अवश्य उत्पन्न होता है।

एक शरीर पर दस सिर। किस क्रम से वे रहे होंगे? रामलीला में जो रावण की प्रतिमा रखी जाती है, उसमें देखा गया है कि कभी बीच के सिर के दायीं ओर पाँच सिर और बायीं ओर चार सिर रखे जाते हैं; तो कभी बायीं ओर पाँच सिर और दायीं ओर चार! यानी तुलसी या वाल्मीकि ने यह नहीं लिखा है कि किस ओर कितने सिर थे?

एक गर्दन पर दस सिर कैसे लगे रहे होंगे? वह गर्दन भी बहुत बड़ी रही होगी? लेकिन दसशिरा ही नहीं; रावण को 'दस कण्ठ', 'दशग्रीव' और 'दशकन्धर' भी कहा जाता है। कण्ठ, ग्रीव, कन्धर, शब्दों पर ध्यान देना है। यदि कण्ठ या ग्रीव भी दस रहे हों, तो वह दृश्य ऐसा होगा; जैसे एक पेड़ के तने पर चारों ओर दस शाखायें उठी हों।

रामायण के प्रथम कवि महर्षि वाल्मीकि हैं। अतः इस सम्बन्ध में उनकी रचना ही द्रष्टव्य है। तुलसी आदि बाद के कवियों ने तो, ऐसा लगता है कि, इस पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा और 'दशकन्धर' कहकर आगे बढ़ गये। रामायण में 'दशरथ' शब्द भी है। उसका अर्थ व्याख्याताओं ने बताया है, 'दसों दिशाओं में जिसका रथ अप्रतिहत रूप में चलता है, यानी अत्यन्त पराक्रमी।' 'दशरथ' का यह अर्थ नहीं कि उसके दस रथ थे। दस ही क्यों? वे चक्रवर्ती थे और उनके पास सहस्रों रथ रहे होंगे। इसी प्रकार क्या 'दसग्रीव' या 'दशकण्ठ' का भी अर्थ नहीं बताया जा सकता? यानी दसों दिशाओं में जिसका सिर ऊँचा हो, अत्यन्त पराक्रमी आदि? 'दशकंठ' का असली नाम 'रावण' है। जिसकी व्याख्या स्वयं वाल्मीकि ने यों की है: रावणो लोकरावणः अर्थात (रावयति) 'तीनों लोकों को रुलाने वाला'। रावणः शत्रु रावणः अर्थात् 'पराक्रम से शत्रुओं को रुलानेवाला।' यह निर्विवाद है कि संस्कृत भाषा ने भी अन्य भाषाओं के अनेक शब्दों को आत्मसात कर लिया है। ग्रीक, चीनी आदि भाषाओं से आये शब्द कालिदास की भाषा में भी ढूँढ़ निकाले गये हैं। वराहमिहिर के ग्रन्थ में ग्रीक भाषा के अनेक शब्द प्रयुक्त हैं, जो बाद में जाकर संस्कृत के अपने हो गये।

भारत में रामायण के रचना-काल में और उससे पूर्व ही अनेक भाषाएँ प्रचलित थीं। रामायण के वानर, राक्षस, मनुष्य आदि की भिन्न-भिन्न भाषाएँ रही होंगी। वास्तव में वानर आदि नाम उस युग में भारत में निवास करने वाली भिन्न-भिन्न जातियों के नाम हैं। उन जातियों के भाषाओं के शब्द भी संस्कृत में आ गये हों, इसमें आश्चर्य नहीं है। स्वयं रामायण में प्रयुक्त गोदावरी (नदी का नाम) संस्कृत का शब्द नहीं है। तेलुगु के प्रसिद्ध भाषाविद् डा० गि० सीतापति ने मध्यप्रदेश की 'सवर' नामक अर्द्ध सभ्य आरण्यक जाति की भाषा का अध्ययन करके लिखा है कि 'गोदा' शवर भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'विशाल' और 'वरी' का अर्थ 'नदी' है। पर भाषा के शब्दों को संस्कृत में लेते समय उनका 'संस्कृतीकरण' कर दिया गया है, जैसे 'शेक्सपियर' को 'शक्रप्रिय', 'अलैक्जेन्डर' को 'अलक्षेन्द्र'। रामायण के अनेक पात्रों के नाम अन्य भाषाओं के शब्द या उनके स्वछन्द अनुवाद हैं। 'दसग्रीवा', 'शूर्पणखा', 'कुम्भकर्ण', 'सुग्रीव' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन शब्द रूपों की व्याख्या बाद में अनेक प्रकार से कर दी गयी और मूल भाषा का अर्थ भुला दिया गया।

दशग्रीव की उत्पत्ति कहाँ से हुई ?

दक्षिण भारत की एक आटविक जाति 'कुई' कहलाती है। उसकी बोली 'कुई' द्रविड़-परिवार के अन्तर्गत है। इस जाति और बोली के सम्बन्ध में एक विद्वान ने कुछ रोचक बातें बतायी हैं (देखिए : पी० टी० श्री अय्यंगार की 'हिस्टरी आफ द तमिल्स') :

'कुई' लोगों के गाँवों में प्रवेश मार्ग पर एक लम्बी गोलाकार शिला रहती है, जिसे वे लोग 'निसन-पेण्णु' कहते हैं। यह ग्रामरक्षिका देवी का प्रतीक है। उन लोगों का विश्वास है कि यदि कोई इस 'देवी' की हानि कर दे तो ग्राम की भी हानि होगी। लंका नगर की रक्षा करने वाली लंकिणी और हनुमान का प्रसंग ऐसा ही है। कुई लोग युद्ध में जाते समय सिंह, बाघ, हाथी, बराह आदि जानवरों के चेहरे लगा लेते थे। आजकल कुछ विशेष उत्सवों के अवसर पर ऐसे चेहरे लगाकर नाचते हैं। रावण की सेना में राक्षस ऐसे ही आये थे।

यश्चैव नानाविध घोल रूपैः,
व्याघोष्ट्र नागेन्द्र मृगाश्ववक्रैः।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्रनेत्रैः
सोऽसौ सुराणा मपि दर्पहन्ता ॥

(रामायण, युद्ध सर्ग ५९, श्लोक २४)

(जो नानाविध घोर रूपवाले बाघ, ऊँट, हाथी, हरिण और घोड़े के चेहरे लगाये हुए और खुले नेत्रोंवाले भूतों से घिरा हुआ है, वही देवताओं का भी गर्व मिटानेवाला रावण है।)

'दशग्रीव' और 'दशास्य' का रहस्य भी कुई बोली के परिशीलन से खुल जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि वाल्मीकि ने 'दशग्रीव' और 'दशास्य' शब्द का ही प्रयोग किया है; अन्य शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। वास्तव में 'दशग्रीव' शब्द का गलत अर्थ करने के कारण बाद के कवियों ने 'दशकण्ठ', 'दशकन्धर' आदि शब्दों का प्रयोग कर दिया है।

सीतायाः वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान्॥

(रामायण, अरण्य सर्ग ४८, श्लोक २)

इसी प्रकार 'राक्षसेन्द्र प्रतापवान' का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है। रावण का प्रतापवान होना 'लोकरावणः', 'शत्रुरावणः', आदि शब्दों से भी प्रकट होता है।

कुई भाषा का शब्द है 'दशगीव' ('दशग्रीव' नहीं), जिसका अर्थ होता है पीड़ा देनेवाला। 'रावण' शब्द इसका संस्कृत-अनुवाद है। 'गीव' प्रत्ययवाले कुछ और शब्द ये हैं:—

वेप — गीव = मारनेवाला, गिरानेवाला

ओब — गीव = लेनेवाला

वण्डी — गीव = धोखा देनेवाला

'दश' का अर्थ होता है 'पीड़ा'। इसी से बना एक दूसरा शब्द 'कुई' बोली में 'दशअसि' है। 'असि' प्रत्यय व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के अन्त में लगता है। 'दस-असि' का अर्थ है 'पीड़क'। संस्कृत में 'दशगीव' दसग्रीव बना और 'दशासि' दशास्य बना।

वाल्मीकि ने कहीं रावण के दस शिर होना नहीं कहा है। यह अर्थ 'दशग्रीव' का नया अर्थ निकालने का परिमाण है। अतएव रावण के दस सिर नहीं थे।

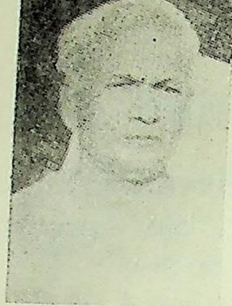
●

शतबार नमन

⊙

भावों के जननायक तुलसी, तुमको है शतबार नमन ।
अखिल विश्व में लगी अगिन को मानस-जल से किया शमन ॥
संकट-ग्रस्त हुई जब संसृति, गूँजा स्वर तेरी वाणी का ।
सूर्योदयी प्रकाश घरों पर हुआ व्याप्त भव-कल्याणी का ॥
तेरे सत्कर्मों से कविवर, नये लोक का हुआ सृजन ।
भावों के जन-नायक तुलसी, तुमको है शतबार नमन ॥

—प्रयाग नारायण अग्रवाल



तुलसी-साहित्य में सामाजिक विद्रोह की भावना

डॉ० शम्भुनाथ सिंह, एम० ए०, डी० लिट्०
रीडर - हिन्दी विभाग : काशी विद्यापीठ, काशी

[आलोचकों की मान्यता है कि तुलसीदास जी समन्वयवादी कवि हैं, किन्तु तुलसी-साहित्य के अन्तरावलोकन से पता चलता है कि वह समन्वय के नहीं, मुख्यतः विद्रोह के कवि हैं, जो दुहरे व्यक्तित्व को समेटे हिन्दी काव्य क्षेत्र में उतरे थे। उनका एक व्यक्तित्व तो विद्रोही था और दूसरा रूढ़िवादी...। हिन्दी-साहित्य के मूर्धन्य कवि, आलोचक तथा साहित्यकार डॉ० शम्भुनाथ सिंह द्वारा यहाँ प्रस्तुत है तुलसी की काव्य-साधना का एक सर्वथा नया रूप--सम्पादक।]

तुलसी-साहित्य के आलोचकों ने गोस्वामी तुलसीदास को समन्वय का कवि कहा है और यह सिद्ध करने का अथक प्रयास किया है कि धर्म, दर्शन, उपासना, काव्य और भाषा इन सभी क्षेत्रों में तुलसीदास ने पारस्परिक विरोधों का शमन करके एक समन्वित मार्ग निर्दिष्ट किया है। वाह्यतः यह बात सही मालूम पड़ती है; किन्तु तुलसी-साहित्य के अन्तर में प्रवेश करके देखने पर पता चलता है कि तुलसीदास समन्वय के नहीं, अन्तर्विरोध के कवि हैं। उनमें रूढ़िधर्मिता और विद्रोह की प्रवृत्तियाँ साथ-साथ वर्तमान हैं। रूढ़िवादी यथास्थिति बनाये रखना चाहता है; किन्तु विद्रोही आमूल-चूल परिवर्तन में विश्वास करता है। इस संबंध में मेरा यह विनम्र मत है कि तुलसीदास का व्यक्तित्व दुहरा था। उनका एक व्यक्तित्व तो विद्रोही था और दूसरा रूढ़िवादी। इन दोनों के बीच समन्वय संभव नहीं है और इसी कारण तुलसी के उन दोनों व्यक्तित्व में समन्वय नहीं हो सकता है। उनके समस्त साहित्य में ये दोनों व्यक्तित्व अलग-अलग उभरे दिखाई पड़ते हैं। उनका विद्रोही व्यक्तित्व उनकी भक्ति, साधना एवं सामाजिक परिकल्पना में तथा रूढ़िवादी व्यक्तित्व उनकी सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं में दिखाई पड़ता है। एक ओर तो वे यह मत व्यक्त करते हैं कि कलि-

युग में निर्गुण ब्रह्म के अवतार दशरथ पुत्र राम की भक्ति ही लौकिक श्रेष्ठता और कुलीनता का आधार है। और संत चाहे वह जन्मना किसी भी जाति, कुल या वर्ण का क्यों न हो, पूज्य है तथा मात्र वही राम के प्रेम तथा भव-सागर से मुक्ति का अधिकारी है। दूसरी ओर वे बराबर वेद और ब्राह्मण की श्रेष्ठता सिद्ध करने तथा वेद, श्रुति-पुराण, आगम, दर्शनादि को आप्त प्रमाण मानकर उनमें निष्ठा रखने का उपदेश देते हैं। यहाँ यह देखना अभिप्रेत है कि उनके इन दोनों व्यक्तित्वों में मुख्यता किसकी है?

व्यक्तित्व के निर्माण के दो प्रमुख कारण होते हैं—प्रतिभा और संस्कार। संस्कारों का निर्माण सामाजिक परिवेश, शिक्षा-दीक्षा और शास्त्राभ्यास से होता है, किन्तु प्रतिभा नैसर्गिक शक्ति है। संस्कार परम्परागत संस्कृति और युगीन सामाजिक चेतना के अनुवर्ती होते हैं, किन्तु प्रतिभा इन सबका अतिक्रमण करने वाली होती है। महान पुरुषों, क्रान्तदर्शी कवियों, क्रांतिकारी राष्ट्र-नायकों और तत्वद्रष्टा दार्शनिकों में नैसर्गिक प्रतिभा इतनी प्रबल होती है कि वे सदैव अर्जित संस्कारों के वशीभूत बन कर नहीं रह पाते। इसी कारण वे परम्परागत रूढ़ियों, घिसेपिटे मार्गों और विवेकहीन संस्कारों को छोड़ कर अपनी प्रातिभ शक्ति से नवीन मार्गों का अन्वेषण एवं प्रदर्शन करते हैं। उनके द्वारा नवनिर्मित मार्ग नवीन युगों के प्रवर्तक और भावी पीढ़ियों के लिए दिशा-निर्देशक होते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि प्रतिभा अर्जित संस्कारों को अतिक्रमित करने वाली भी होती है। वस्तुतः ऐसी ही प्रतिभा को क्रांतिदर्शी प्रतिभा कहते हैं। प्रतिभा का एक रूप ऐसा भी होता है, जो परम्परागत मार्गों के भीतर ही चमत्कार प्रदर्शन करती अथवा विभिन्न मार्गों का समीकरण और समन्वय उपस्थित करती हैं। इस तरह प्रतिभा की तीन कोटियाँ होती हैं : १. बद्ध प्रतिभा, २. समन्वय कारिणी प्रतिभा और ३. उन्मुक्त प्रतिभा। संस्कृत कवियों में वाल्मीकि और कालिदास की प्रतिभा स्वच्छ या उन्मुक्त है। इसी कारण वे क्रांतदर्शी कवि माने जाते हैं, किन्तु भारवि, माघ और श्री हर्ष की प्रतिभा बद्ध है। उन्होंने परम्परागत साहित्यिक और धार्मिक रूढ़ियों तथा विश्वासों की सीमा के अन्तर्गत ही अपनी कला का चमत्कार प्रदर्शित किया है।

हिन्दी-कवियों में कबीर कीं प्रतिभा जितनी उन्मुक्त और क्रान्तदर्शी है, उतनी अन्य किसी प्राचीन हिन्दी कवि की नहीं है। केशव और बिहारी की प्रतिभा बद्ध-प्रतिभा है; सूर, जायसी, मीरा और घनआनन्द में समन्वयकारिणी

प्रतिभा के दर्शन होते हैं। किन्तु तुलसीदास के साहित्य में एक विचित्र बात यह दिखलायी पड़ती है कि उसमें स्वच्छन्द प्रतिभा की अभिव्यक्ति तो बहुत अधिक मिलती है, पर साथ ही उसमें संस्कार-जन्य रूढ़िगत विश्वासों और आचारों के प्रति अत्यधिक मोह भी है। क्रांतदर्शी कवि और विचारक ऐसे विश्वासों और आचारों को कभी भी स्वीकार नहीं करते। इस कारण हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी का व्यक्तित्व दुहरा है। उनका एक व्यक्तित्व उनकी क्रांतदर्शी स्वच्छन्द प्रतिभा की देन है और दूसरा दीक्षा गम्य सामाजिक संस्कारों से निर्मित हुआ है। इन दोनों के बीच होने वाले संघर्ष को कवि ने जानबूझ कर गोपन ही रहने दिया है। परिणामस्वरूप तुलसी-साहित्य के पाठकों के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वे कवि को क्या मानें, रूढ़िवादी, समन्वयवादी अथवा विद्रोही। अधिकांश आलोचक उन्हें समन्वयवादी कवि कहते हैं तो कुछ ऐसे भी हैं जो उनको रूढ़िवादी, पुराणपन्थी और प्रतिक्रियावादी तक कह डालते हैं। किन्तु तुलसी में विद्रोह की प्रवृत्ति है या नहीं, इस प्रश्न पर बहुत कम लोगों ने विचार किया है, जबकि वास्तविकता यह है कि तुलसी-साहित्य में सबसे प्रमुख प्रवृत्ति विद्रोह की ही है।

विद्रोह का अर्थ होता है कि उन सभी परम्परागत मान्यताओं, मार्गों, आचारों और शैलियों का विरोध और त्याग जो वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अनुपयोगी और खोखली हो गयी हैं। इन्हीं को रूढ़ि कहा जाता है। ये रूढ़ियाँ न केवल अनुपयोगी होती हैं, बल्कि प्रायः घोर अन्याय और अनाचार का कारण भी बनती हैं। अतः क्रांतदर्शी या विद्रोही कवि, विचारक, दार्शनिक, धर्मोपदेशक और राजनीतिज्ञ उन रूढ़ियों पर आघात करते, उनके समर्थकों से संघर्ष करते और वर्तमानकालीन व्यक्ति और समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर नवीन आचार-विचारों, मार्गों और शैलियों का आविष्कार करते हैं। देखना यह है कि तुलसीदास ने भाषा, साहित्य, दर्शन, समाजनीति और राजनीति के क्षेत्र में किस सीमा तक परंपरागत रूढ़ियों को स्वीकार किया है तथा किस रूप में उनका विरोध और नवीन विचारों एवं मार्गों की उद्भावना की है। इसके लिए तुलसीदास के समकालीन समाज के जीवन पर एक दृष्टि डालनी होगी।

तुलसीदास का युग राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। अकबर की सहिष्णुतावादी, उदार धार्मिक नीति तथा प्रशस्त शासन-प्रबन्ध के कारण देश धनधान्य से परिपूर्ण था, किन्तु निम्न

वर्गीय हिन्दू-समाज पूर्ववत् विपन्न, दलित और अशरण था। इस्लाम के प्रबल राजनीतिक और धार्मिक दबाव के कारण हिन्दू-धर्म अपनी सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक कठोर रूढ़ियों का आश्रित हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप निम्न-वर्गीय हिन्दू समाज में उच्च वर्ग के प्रति घोर असन्तोष और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इस काल में व्यापारिक उन्नति और नागरिक जीवन के विकास के कारण एक नवीन मध्य वर्ग का उदय हुआ था जिसमें अधिकतर तथा, कथित निम्नवर्गीय हिन्दू जातियों के लोग थे। उन लोगों पर नाथ सम्प्रदाय के योगियों, निर्गुण मतावलम्वी सन्तों एवं मुसलमान सूफियों का प्रभाव अधिक था। उच्च वर्गीय हिन्दू समाज विभिन्न साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों के छोटे-छोटे घेरों में विभक्त था। निष्कर्ष यह कि हिन्दू-समाज विघटन की स्थिति में था। उसके सामने कोई ऐसा आदर्श नहीं था, जिसका अवलम्बन लेकर वह एकता के सूत्र में आवद्ध होता। उच्च वर्गीय हिन्दू-समाज वेद और ब्राह्मण की श्रेष्ठता में विश्वास करने वाला, वर्णभेद से ग्रस्त, बहुदेवोपासना में रत और अंध-विश्वास और पाखण्ड में आकण्ठ निमग्न था। हिन्दू जाति की रक्षा के ऐतिहासिक दायित्व का भार ग्रहण करने वाला न कोई सम्प्रदाय था, न कोई व्यक्ति। ऐसे समाज के विघटनकारी तत्वों को पहिचान कर उनका विरोध तथा उन्मूलन करना किसी क्रांतदर्शी विद्रोही व्यक्ति का ही काम था। प्रायः सौ वर्ष पूर्व कबीर, नानक और रामानन्द ने इस दिशा में कार्य किया था। इनमें से रामानन्द ही ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने समाज में उच्च और निम्न दोनों वर्गों को ध्यान में रखकर अपने संप्रदाय का संगठन किया। कबीर का विद्रोह इतना तीखा और कठोर था कि वह उच्च वर्ण वाले हिन्दुओं के गले के नीचे नहीं उतर सकता था। नानक का विद्रोह भी परंपरागत शास्त्रों से पूर्णतः विरहित हो जाने के कारण सार्वदेशिक रूप नहीं धारण कर सका, वह देश के एक कोने में ही सिमट कर रह गया। अतः हिन्दू-समाज को एक ऐसे क्रांतिकारी महापुरुष की प्रतीक्षा थी, जिसकी वाणी सार्वभौम और सार्वदेशिक प्रभाव रखने वाली तथा समाज की गति को नयी दिशा में मोड़ने वाली होती।'

इस ऐतिहासिक दायित्व का वहन करने के लिए निसर्ग ने तुलसी की महती प्रतिभा को प्रादुर्भूत किया। तुलसी ने किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की, शिष्य-परंपरा नहीं चलायी, दर्शन या धर्म के सिद्धान्त-ग्रंथ नहीं लिखे। उन्होंने साहित्य के ऋजु रसात्मक मार्ग का अवलम्बन किया। काव्य को भी उन्होंने

काव्यशास्त्र से अनुप्रेरित होकर नहीं अपनाया, बल्कि अपनी नवीन सामाजिक दृष्टि को प्रचारित करने के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में ही अपनाया। इसी कारण उन्हें अपने को कवि कहने में संकोच होता है। वेदों में कवि को ऋषि, मनीषी, परिभू और स्वयंभू कहा गया है; अर्थात् वह तत्वद्रष्टा, स्वतः प्रेरित और स्वयं में पूर्ण होता है। तत्व-दर्शन एवं सामाजिक दर्शन ही वैदिक दृष्टि से कवि का अभिप्रेत होता है, काव्य का रसात्मक एवं कलात्मक पक्ष उसके लिए माध्यम मात्र होता है। तुलसी ऐसे ही तत्व-चिंतक और समाज-द्रष्टा कवि हैं। इस माने में वे वाल्मीकि और व्यास के समान और समकक्ष हैं। कबीर की दृष्टि भी ऐसी ही थी; किन्तु उसमें वह व्यापकता और उदारता नहीं है, जो तुलसी की काव्य-दृष्टि में है। विद्रोह की भावना दोनों ही में प्रबल है, दोनों ही पारमार्थिक सत्ता के अन्वेषी तथा उसके प्रति आस्थावान हैं, दोनों ने ही अपने-अपने ढंग से नवीन सामाजिक चेतना उत्पन्न की है। किन्तु इतना होने पर भी तुलसी के साहित्य में जो सार्वदेशिकता, सर्वजनीनता और संपूर्णता है, वह कबीर-साहित्य में नहीं है।

किन्तु कबीर के साहित्य में जिस तरह का खुला और सीधा सामाजिक विद्रोह दिखलाई पड़ता है, वैसा तुलसी-साहित्य में नहीं है। तुलसी का विद्रोह तर्कों पर नहीं, भावना पर आधृत है। कबीर समाज की बुराइयों के लिए धर्म के ठेकेदार ब्राह्मण, पण्डों, पुरोहितों और मुल्लाओं को दोषी ठहराते हैं, सामाजिक पाखण्डपूर्ण आचारों जैसे तीर्थ यात्रा, मूर्तिपूजा, पशु-बलि, साम्प्रदायिक वेश-भूषा आदि के लिए समाज के लोगों पर सीधी चोट करते हैं। किन्तु तुलसीदास इन सबके लिए कलियुग को दोषी ठहराते हैं। उनका मत है कि कलियुग के प्रभाव से हिन्दू-समाज भ्रष्ट हो गया है, धर्म और सद्ग्रंथ लुप्त हो गये हैं, वर्णाश्रम-धर्म मिट गया है, लोग वेद-विरोधी हो गये हैं, ब्राह्मण वेद को बेचने वाले और राजा प्रजा को खाने वाले हो गये हैं। यहाँ तक कि समस्त धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और मानवीय मर्यादाएँ व्यतिक्रमित हो गयी हैं।

सामाजिक भ्रष्टाचार की ओर संकेत करके वे लिखते हैं :

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहँ संत कहई सब कोई॥
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना॥

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी सो विरागी॥
जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं॥
जे अपकारी चार तिन्हकर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुं॥

इस प्रकार तुलसीदास ने उन समस्त सामाजिक एवं नैतिक भ्रष्टाचारों का विरोध किया है जो उनके समय में हिन्दू-समाज में प्रचलित थे। यहाँ प्रश्न यह होता है कि इन भ्रष्टाचारों का उन्मूलन करके वे किस प्रकार के सामाजिक और नैतिक आचारों की प्रतिष्ठा करना चाहते थे? क्या हिन्दू-धर्मशास्त्रों में जो सामाजिक आचार बताये गये हैं, वे उन्हीं को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते हैं या उनकी जगह पर किन्हीं नवीन आचारों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस संबंध में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि वे घड़ी की सुई को पीछे लौटाने के पक्षपाती नहीं हैं। ऐसा संभव भी नहीं था, क्योंकि उनके अनुसार कलियुग में सतयुग या त्रेतायुग को वापस नहीं लाया जा सकता था। उन्होंने एक ओर तो त्रेतायुग में रामराज्य के अन्तर्गत प्रचलित सात्विक, सामाजिक आचारों का विशद वर्णन किया है, दूसरी ओर अपने समय अर्थात् कलियुग के आचारों को भी विस्तार से दिखाया है, और साथ ही यह भी कहा है कि रामराज्य को वापस लाना असम्भव है। ऐसी स्थिति में उन्होंने जिस आदर्श सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना की है, उसे हम "भक्ति राज्य" कह सकते हैं। वे 'कलिराज्य' की जगह 'भक्ति राज्य' की स्थापना चाहते हैं।

●



सोह न बसन बिना बरनारी

⊙

श्री देवदत्त शास्त्री

सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

['रामचरित मानस' के बाल काण्ड में एक चौपाई है—विधु बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी ।। जिसका सामान्यतया लोग यह अर्थ करते आ रहे हैं कि 'चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सजी-सँवरी होने पर भी वस्त्र के बिना (नग्न) शोभा नहीं देती है।' किन्तु इधर इस चौपाई के अर्थ पर विद्वानों ने सूक्ष्म विचार किया है। रामकथा के विश्व-विश्रुत विद्वान् डा० कामिल बुल्के ने सर्वप्रथम उक्त सामान्य अर्थ पर विचार करते हुए कहा है कि 'बिना बसन' का अर्थ 'नग्न' किया जाना अशोभन तथा आपत्ति-जनक है; क्योंकि तुलसी जैसे मर्यादा-पालक भक्त-कवि कभी ऐसा संकेत शब्दों से भी नहीं कर सकते। और तब भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ तथा उसके तात्विक अर्थ की खोज-बीन शुरू हुई।

भारतीय मनीषा के प्रकाण्ड विद्वान् डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' : २ मार्च, १९५८ के अंक में उक्त प्रश्न को रखा, जिस पर अगले अंकों में कुछ विद्वानों के उत्तर पढ़ने को मिले थे। उनमें से किसी ने 'बसन' का अर्थ रहना, किसी ने सुहाग सिन्दूर और किसी ने उसका अर्थ पति किया था। हिन्दी के विख्यात कवि डा० हरिवंश राय 'बच्चन' के अनुसार उक्त चौपाई में 'वस' का अर्थ है बसना, सुव्यवस्थित होना—सुस्थिर होना और 'बर' यहाँ क्रिया है विशेषण नहीं। 'वर' का जो अवधी में 'बर' उच्चारण किया जायगा, वह होगा बरा हुआ—बरण किया हुआ—ब्याहा हुआ। आगे नारी है तो अर्थ होगा बरी हुई—ब्याही हुई। अतः अब चौपाई का अर्थ इस प्रकार हुआ : सब भांति सँवारी—वस्त्रालंकार से विभूषित विधु बदनी भले ही हो पर वह सोहेगी नहीं; शोभित वह थोड़ी देर के लिए हो भी ले,

पर वह बसेगी नहीं—सुव्यवस्थित नहीं होगी, जब तक वह बरी न हो, पलिणीता न हो।

और फिर के सब बाद डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जिस अर्थ का प्रतिपादन किया वह यह था : 'गोसाईं जी व्यंजना से भी नग्न स्त्री की कल्पना नहीं कर सकते। इस शंका में कुछ सार है। अतः 'बसना' का अर्थ वस्त्र न हो कर 'पति' होना चाहिए। अतएव चौपाई का अर्थ होगा—चन्द्रमुखी और सब भाँति अलंकृत स्त्री भी बिना पति के शोभा नहीं पाती।' इस अर्थ की पुष्टि में डॉ० अग्रवाल ने 'मानस' की कुछ अन्य चौपाइयों तथा वाल्मीकि रामायण के कुछ श्लोकों को भी उद्धृत किया। उनके अनुसार 'वस् स्नेहाच्छादपहरणेषु' धातु से प्रेम करने में अर्थ में 'वसन' शब्द की उत्पत्ति हुई है।

रसवन्ती : जनवरी, १९६३ में महाराष्ट्र के विद्वान् लेखक प्रो० प्रभुदास भोपटकर ने उक्त चौपाई का विस्तृत विश्लेषण-विवेचन करते हुए तुलसी की इस उक्ति में मनुष्य की शोभा को ले कर तीन पक्ष उपस्थित किए है। उनके अनुसार 'विधु-बदनी' निसर्ग सुषमा (सत्यं) का प्रतीक हैं। 'सब भाँति सँवारी' अलंकरण-प्रसाधन-जन्य-कृत्रिम सुषमा (सुन्दरं) का प्रतीक है और 'वसन' आवरण रूप नैतिकता, वरेण्यता तथा मांगलिकता का प्रतीक है। इस प्रकार भाव यह कि सत्यं एवं सौन्दर्य तभी तक शोभन (ग्राह्य) हैं, जब तक वे मंगलकारी हैं।

और इसी प्रसंग में यहां प्रस्तुत है—प्रयाग के प्रसिद्ध चिन्तनशील लेखक एवं यशस्वी पत्रकार श्री देवदत्त शास्त्री का एक गवेषणापूर्ण लेख, जिसमें गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर (चित्रकूत) में बोली जाने वाली भाषा की मूल प्रकृति के परिवेश में 'वसन' शब्द के एक नवीन अर्थ का परिचय दिया गया है—सम्पादक]

सर जार्ज ग्रियर्सन के भाषा-सर्वे पर परिष्कार और परिवर्द्धन की अपेक्षा का अनुभव मैं कर रहा हूँ। हिन्दी-भाषी राज्यों की उपभाषाओं का भाषा-शास्त्रीय एवं लोकाश्रयी अध्ययन करने की आवश्यकता इस समय है और यह काम अब

भी होने लगा है, किन्तु अवधी भाषा का जो निर्धारित क्षेत्र परंपरागत चला आ रहा है, उस पर अभी विशेषज्ञों का ध्यान नहीं गया है।

यह भी परम्परा चली आ रही है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा में की है। कुछ लोग गोस्वामी जी की भाषा में अवधी, व्रज, भोजपुरी भाषाओं का सम्मिश्रण मानते हैं। यह सही है कि गोस्वामी जी ने मानस की रचना अयोध्या और काशी में रह कर की है, किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उनकी मातृभाषा उनके जीवन और साहित्य से सूत्रशाटक न्याय स्थापित किए हुए है। तुलसीदास जी की रचनाओं का अध्ययन तभी समुचित और सार्थक हो सकता है, जब राजापुर, चित्रकूट (जि० बाँदा), अयोध्या और काशी की बोलियों के अर्थ, तात्विक विकास एवं इन बोलियों के शब्द-संयम का पूर्ण बोध हो। तुलसीदास जी की रचनाओं की भाषा पूर्वी पान्चाल, बुन्देलखंड; बघेलखण्ड, अवध और काशी की परिधि में न्यस्त है। मैंने भोजपुरी क्षेत्र के स्थान पर यहाँ काशी का उल्लेख जानबूझ कर किया है, मेरी मान्यता है कि काशी की अपनी निजी बोली भी उसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व्यक्तित्व के अनुरूप मौलिक है। बलिया और सारन जिले के उत्तरी क्षेत्रों की बोली भोजपुरी नहीं, बल्कि बज्जिका भाषा है; जो मुजफ्फरपुर जिले में बोली जाती है।

इन बोलियों के वास्तविक अध्ययन के बिना रामचरित मानस का वास्तविक अर्थ करना मेरी समझ में संभव नहीं है। मानस की सैकड़ों चौपाइयों को महज इसीलिए तोड़ा-मरोड़ा गया है कि उनमें पूर्वी पान्चाली, बघेलखण्डी के कुछ ऐसे अज्ञात शब्द हैं, जिन्हें अवधी भाषा में ढूंढ़ा नहीं जा सकता। मानस की जितनी टीकाएँ अब तक मुझे देखने को मिली हैं, उनमें प्रायः ऐसी ही अर्थ-विषयक भ्रान्तियाँ हैं। जो तुलसी-साहित्य-कोष बने, उन टीकाओं पर आधारित होने के कारण निर्भ्रान्त नहीं कहे जा सकते। यहाँ पर मैं केवल एक ऐसी चौपाई प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसका एक शब्द अर्थ भ्रान्ति के चक्र में पड़कर अपना अस्तित्व खो बैठा है। मानस की अर्धाली है :

विधु बदनी सब भाँति सँवारी ।
सोह न बसन बिना बरनारी ।।

इस अर्धाली का अर्थ टीकाकारों ने इस प्रकार किया है :

'जैसे चन्द्रमा के समान मुखवाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती।'

यहाँ पर 'विधुवदनी', 'सब भाँति संवारी' और 'वरनारी'—इन तीन शब्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। गठन, गढ़न, रूप, रंग, वय और लावण्य जिस स्त्री में होता है, वह वरनारी कही जाती है। चन्द्रमा के समान देदीप्यमान मुख, कपोलों पर चन्द्रलाँछन से साम्य रखने वाले काले तिल, कजरारे नयन नारी को सुघर बनाते हैं। वस्त्र और अलंकार नारी के स्वाभाविक सौन्दर्य को आकर्षक बनाने के साधन हैं: रूप, वय और लावण्य से युक्त वस्त्रालंकार विभूषिता नारी दर्शक के चित्त को तरल और सरल बना देने की क्षमता रखती है। सुंदरता वही है, जो बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर दर्शक को मंत्र-मुग्ध बना दे।

तुलसीदास जी का कहना है कि नारी रूप, लावण्य युक्त हो, चन्द्रमुखी हो, सभी प्रकार के शृंगार से सुसज्जित हो; किन्तु यदि वह बसन रहित हो तो सुशोभित नहीं होती। तुलसीदास जी का 'बसन' शब्द से तात्पर्य कमर की 'करधनी' से रहा है, किन्तु मानस के टीकाकारों ने उसे वस्त्र समझ लिया और यह नहीं सोचा कि 'सब भाँति सँवारी' कहने मात्र से वस्त्र और अलंकार से सुसज्जित नारी का बोध होता है न कि नग्न नारी का।

व्यावहारिक दृष्टि से यह सर्वथा असंगत है कि सुघर स्त्री आभूषण से सजने के बाद वस्त्र रहित कैसे रह सकती है। 'बसन' शब्द का अर्थ 'वस्त्र' परंपरागत मान लिया गया और किसी ने इसके अर्थ तत्व पर विचार नहीं किया, इस परंपरा को सर्वप्रथम तोड़ा है, हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित मानक हिन्दी कोश के संपादक ने। उन्होंने 'बसन' शब्द का अर्थ पति किया है।

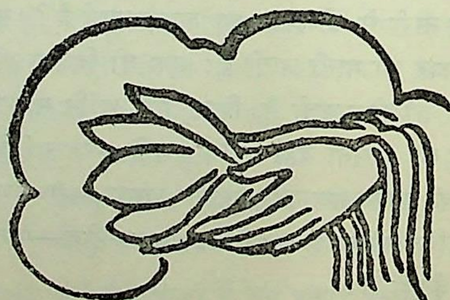
इस नवीन अर्थ का स्वागत है, किन्तु एक संप्रश्न उपस्थित होता है कि पति-विहीन सजी-सँवरी नारी से कोशकार का क्या तात्पर्य है? सामान्यतया पति-विहीन नारी दो प्रकार की मानी जाती हैं: एक तो विधवा और दूसरी वेश्या। विधवा विधु बदनी तो हो सकती है, किन्तु सब भाँति सँवारी नहीं। इसलिए पतिविहीन विधवा की कल्पना यहाँ उचित नहीं। रह गई वेश्या, तो यह सर्व विदित है कि उसकी शोभा-सजावट, उसका शृंगार, आकर्षण ही तो लोगों को आकृष्ट और प्रभावित करता है। इसलिए बसन-हीन—पति-विहीन अर्थ की संगति यहाँ नहीं बैठती है।

'बसन' शब्द का अर्थ वस्त्र या पति किये जाने का मुख्य कारण तुलसीदास जी की जन्मभूमि तथा उसके आसपास के क्षेत्र की बोली से अपरिचित होना

ही जान पड़ता है। 'बसन' शब्द की जोड़ का एक शब्द 'बसनी' भी पूर्वी पांचाली भाषा में प्रचलित है; जो बांदा, फतेहपुर, रीवा और पश्चिमी इलाहाबाद जिलों में व्यवहृत होता है। बसनी कपड़े की बनती है, उसमें रुपए (सिक्के) भरकर कमर में बाँध लिया जाता है।

'बसन' शब्द शुद्ध संस्कृत भाषा का है। बस् धातु से ल्यट प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। बसन––'कर धनी' भारतीय नारी का पुरातन आभूषण है। वैदिक-काल से लेकर अब तक इसका प्रचलन अविच्छिन्न चला आ रहा है। अजन्ता, एलोरा के नारी चित्र, प्राचीन मृण्मयी प्रस्तरमयी नारी-मूर्तियों के आकर्षण का केन्द्र कमर की करधनी ही है। तुलसीदास जी का आशय यही रहा है कि विधुबदनी सब भाँति सँवारी नारी यदि बसन––करधनी-रहित हो तो वह सुशोभित नहीं होती, क्योंकि गले का हार वक्ष की ही शोभा बढ़ाता है, किन्तु करधनी शरीर के मध्य भाग को घेर कर स्त्री को चतुर्दिक सुन्दर बना देती है।

●



'वाल्मीकि' रामायण पर आधारित सीता के पूर्वजन्म की एक मार्मिक गाथा

सीता का पूर्वजन्म

⊙

श्री बाबूलाल गर्ग एम० ए०

[भारतीय मनीषा आत्मा की अमरता पर विश्वास करती है और इसी परिप्रेक्ष्य में वह अपने गहन चिन्तन-अन्वेषण के आधार पर पूर्व-जन्म के सिद्धान्त की स्वीकृति प्रदान करती है। पर आज के बुद्धिवादी के विज्ञान ग्रस्त अहं ने इसे नितान्त कपोल कल्पित कह कर अस्वीकार कर दिया था। किन्तु इधर पूर्वजन्म तत्वविदों एवं परामनोविज्ञान शास्त्रियों के नवीनतम अनुसंधानों से यह पक्ष धीरे-धीरे पुनः उजागर होता जा रहा है कि पुनर्जन्म एक वास्तविकता है। सुना है—जयपुर विश्वविद्यालय का परामनोविज्ञान विभाग वैज्ञानिक रीति से पुनर्जन्म की समस्याओं के व्यावहारिक पक्ष का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करने में संलग्न है और अब तक विश्व भर की लगभग २०० घटनायें प्रकाश में आई हैं जो पूर्वजन्म का सिद्धान्त मानने को विवश करती हैं। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत 'कहानी' अपनी अहमियत रखती है और सीता के सन्दर्भ में नारी के साहस, त्याग एवं मर कर भी अनाचार का प्रतिकार करने की उस की इच्छा शक्ति का मार्मिक उद्घाटन करती है—संपादक]

नागराज हिमान्चल की उपत्यका। सामने गगनचुम्बी हिम-शिखरों का विराट वैभव, नीचे भगवती भागीरथी का तरल द्रुतप्रवाह। वह सागर की ओर दौड़ी चली जा रही थी। अनन्त में समा जाने के लिए। हिमकणों से स्नात पवन के पावन मृदुल झोंके जाह्नवी की जलराशि को उद्वेलित कर देवदारु की शाखाओं पर अठखेलियाँ कर रहे थे। मयूरी की कलित काकली और पिक की पंचम रागिनी मिलकर माधुर्य के अनिर्वचनीय रस की सृष्टि-सी कर रही थी; और प्रफुल्ल वल्लरी निकुंजों पर भ्रमर-दल का सुरीला गुंजार वनखण्ड को बना रहा था सरस, सजीव तथा संगीतमय।

वन-प्रान्त के मध्य भाग में स्वर्गीय महाराज कुशध्वज की सुपुत्री वेदवती भगवान विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा के समक्ष आँखें बन्द किये धीरे-धीरे कुछ

गुनगुना रही थी और कमल कुसुम की पंखुरियों के सदृश कोमल तथा कमलनाल की तरह पतली उसकी उंगलियाँ थिरक रही थीं वीणा के तार-तार पर।

वीणा की श्रोत्रपेय सुरीली एवं मीठी झनकार पर्वतराज का शिखरमालाओं को पार कर शून्य में विलीन हो रही थीं और वेदवती निमीलिताक्षी हो ध्यान में अनन्त दिव्य पुरुष के अनिर्वचनीय रूप सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लोकोत्तर आनन्दराशि में डूबी जा रही थीं, खोई जा रही थी। सामने काष्ठ की शंजुल पीठिका पर आराध्य भगवान विष्णु की दिव्य प्रतिमा विराजमान थी, पास में धूप, दीप, चन्दन, पुष्प तथा शंख, घण्टी, आचमनी आदि सपर्या का सम्भार और पत्र-पुटकों में नैवेद्य के निमित्त मधुर सुधोपम वन्यफलों के ढेर लगे थे।

समीप की एक लता कुंज की ओर से राक्षसराज लंकेश्वर रावण उस अनिन्द्य सुन्दरी की रूप सुधा का पान कर स्वयं को धन्य समझ रहा था। वन कन्या की निसर्ग सुषमा पर रीझ कर वह उस रूपराशि में खो गया, अभिभूत हो गया। उसे देखकर उसके अन्तराल में विचित्र द्वन्द्वभाव उठ खड़ा हुआ। गहन कान्तार में एकाकी सौन्दर्य की मूर्तिमती यह रमणी कौन है? क्या यह कोई मुनि-कन्या है ? पर मानुषी में ऐसा आकर्षण ऐसी तेजोदीप्ति तथा ऐसी वर्चस्विता सम्भव नहीं ? तो निस्संदेह यह कोई देवकन्या है? काफी देर तक वह उस ओर अपलक देखता मन्त्रमुग्ध-सा स्तब्ध खड़ा रहा, फिर कुछ सोचकर उसके चरण उस लावण्यनिधि की ओर चल पड़े।

ध्यान में निमग्न वेदवती के पास पहुँच कर लंकेश रावण ने कहा : 'शिरीष पुष्प से भी मृदु देह स्वर्णलता को इतना कष्ट देने का कारण क्या है, तपस्वि बाले ! षोडशवर्षीया किशोरी के लिए यह कठिन व्रतानुष्ठान उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। वार्धक्य के लिए विहित यह तुम्हारा आचरण इस अप्रतिम लावण्य के प्रति महा अन्याय है, साथ ही विधाता के रचना-कौशल का अपमान भी है।'

मेघ-गम्भीर स्वर की रौद्र प्रतिध्वनि वेदवती के कर्णरन्ध्रों में गूँज गयी। उसका ध्यान टूट गया और वीणा पर थिरकती हुई उँगलियों की गति भी मन्द पड़ गयी। आँखें खोलकर उसने देखा विशालकाय दशमुख कज्जलाद्रि के समान सामने खड़ा है। वह काँप गयी और भयत्रस्त हो बैठी रही—शान्त, संज्ञाहीन ! कुछ उत्तर न दे सकी, ठगी-सी देखती रही अपलक।

कुछ और समीप जाकर रावण ने पुनः प्रश्न किया : 'हिंस्रजन्तुओं से संकुल इस भयावह्नी अटवी में तपश्चर्या का यह अनुष्ठान करने वाली बाले !

तुम कौन हो ? क्या मैं जान सकता हूँ कि किस स्नेहशून्य अविवेकी जड़ पिता की उपेक्षित सन्तान हो, जिसने यौवन की देहली पर पाँव रखते ही तुम्हें संसार के निःशेष सुखों से वंचित कर इस कठिन कण्टकाकीर्ण पथ का पथिक बनने की अनुमति दे रखी है ?' जिज्ञासा भरी दृष्टि से रावण वेदवती के मुख की ओर देखने लगा।

वेदवती सँभली, उठ कर खड़ी हुई और भूमि पर एक तरफ मृगचर्म बिछाती हुई बोली : 'स्वागत है, अतिथिदेव ! आसन पर विराज जाइये ! आपके प्रश्नों का का उत्तर दूँ, इसके पूर्व क्या मैं यह पूछ सकती हूँ कि आप कौन हैं और आपका आगमन कहाँ से हुआ है ?'

रावण बोला : 'देवविजयी रावण का नाम सुना होगा, वनदेवि ! वह कालजयी लंकाधिपति रावण मैं ही हूँ। कैलाशपति भगवान शंकर की अर्चना कर स्वदेश लौट रहा था कि तुम्हारी वीणा की मुधुर रागिनी सुनाई पड़ गयी और फिर कुतूहलवश यहाँ आ पहुँचा। सुखभोग की इस मधु मयी अवस्था में तुम्हें तपस्विनी के वेष में देख कर दुख हो रहा है।'

रावण का नाम सुनकर वेदवती काँप गयी। अनाचारी असुर की उपस्थिति से उसका मन अनिष्ट की आशंका से भर गया। फिर भी भावों को दबा कर प्रकृतिस्थ होती हुई बोली : 'महर्षि पुलस्त्य के पौत्र लंकाधिपति प्रतापी रावण का नाम कौन नहीं जानता, महाराज ! आसन को सुशोभित करें और फिर सुनें मेरे जीवन की करुणाभरी गाथा।'

रावण बैठ गया और वेदवती फौरन कुटी में जाकर अतिथिभूत रावण के स्वागतार्थ वन्य-फल-पुष्पादि लेकर तत्क्षण लौट आई। फिर रावण का जातीय प्रथानुसार शास्त्रविहित स्वागत-सत्कार करके बोली : 'मैं देवगुरु वृहस्पति के आत्मज ब्रह्मर्षि कुशध्वज की एकमात्र कन्या हूँ। मेरे पिता समस्त विद्याओं में पारंगत, चारों वेदों के ज्ञाता और वुद्धितत्व में अपने पिता वृहस्पति के ही समान थे। नित्य वेदाभ्यासी उस महामना की मैं वाङमयी सम्भूत पुत्री हूँ। इसीलिए पितृदेव ने मेरा नामधेय भी वेदवती रखा है।' इतना कह कर वह चुप हो गयी।

रावण की उत्कंठा बढ़ी, उसने पूछा : 'भद्रे ! क्या ब्रह्मर्षि कुशध्वज ने ही तुम्हें इस घोर तपश्चरण में नियोजित किया है ?'

वेदवती एक गहरा निश्वास खींचती हुई बोली : 'नहीं, भद्र ! इसकी पृष्ठभूमि में एक लम्बा इतिहास छिपा हुआ है। करुणा का मर्मान्तिक इतिवृत्त।'

वनकन्या की अक्षिशुक्तियों से दो मोती लुढ़क पड़े और अनवद्य कपोलों की अरुणिमा को कलुषित बनाते हुए उसके दग्ध हृदय पर जा गिरे : "हाँ, तो मैं अपने पिता की एकमात्र कन्या थी। पिता की छत्रछाया में मेरा बाल्यकाल बीता—बड़ा ही सुखद तथा शान्तिमय। इधर प्रकृतिदेवी की भी मुझ पर अपरिमेय कृपा रही। उसने मुझे प्रदान किया उत्तम स्वास्थ्य और नीरोग काया। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मेरे अंगों का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया। मैं बता नहीं सकती कि मुझ में कौन-सी विशेषता थी, जो मेरे रूप और गुणों की चर्चा धीरे-धीरे फैल गयी निखिल ब्रह्माण्ड में। देव, यक्ष, दानव, गन्धर्व—सभी मुझे देखने को उत्सुक हुए। वे बारी-बारी से मेरे पिता के पास आये और मुझे देखते ही मेरे साथ अपना विवाह करने के लिए मेरे पिता से विनीत याचना करने लगे। पर मेरे पिता भगवान विष्णु को जामाता के रूप में देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने सभी के विवाह-प्रस्तावों को ठुकरा दिया। इसे मेरे रूप के याचक सहन न कर सके और एक दिन दैत्यराज शम्भु ने शयनावस्था में मेरे पिता का अन्त कर दिया। पतिवियोग की असह्य वेदना से विह्वल होकर मेरी माता भी उन्हीं की अनुगामिनी बन गयीं—मुझे छोड़ के असहाय, केवल नियति के भरोसे पर। और मैं· · ·मैं रात्रि में किसी प्रकार अपने को छिपाती-बचाती हुई यहाँ चली आई और अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा को साकार बनाने के लिए भगवान विष्णु की आराधना में रत हो गयी।' वह आगे कुछ न कह सकी, अतीत की स्मृति ने उसे विचलित कर दिया।

वेदवती की करुण गाथा उस कठोर हृदय राक्षस की परुषवृत्तियों को कोमल बनाने में किंचिन्मात्र भी सफल न हुई। वह सहज भाव से बोला : 'यह तो निरी अज्ञानता है, अबोध बाले! स्वर्गगामी पिता के अनस्तित्व को सन्तुष्ट करने की भावुकता में पड़ कर पिता की भूल की पुनरावृत्ति समीचीन नहीं है।'

'इसमें भूल की क्या बात है, राक्षस राज! त्रैलोक्याधिपति भगवान विष्णु की आराधना एवं उनके वरण में भी भूल?'

'भूल ही नहीं, मूर्खता है, आत्मवंचना है, ब्राह्मणसुन्दरी!' कह कर रावण जोर से खिलखिला कर हँस पड़ा। राक्षसराज के उस अट्टहास से दिशायें गूँज उठीं, जंगल काँप गया।

'क्या कहा, सृष्टिपालक भगवान विष्णु की आराधना आत्मवंचना है?

अपने कलुषित विचारों का उद्रेक कर मुझे भी पाप का भागी न बनाओ, राक्षस-राज !' वेदवती की भौंहें तन गयीं और रोष की ईषत् अरुणिमा दौड़ गयी उसके युगल कपोलों पर।

'कमल की कमनीयता और मृगछौनों की चितवन की निरीहता को जीतने वाले इन सुन्दर अपांगों में रोषज्वाल की यह अद्‌भुत सृष्टि कैसी, तन्वंगि ! भुजग-शायी पक्षिवाहन, लवणसिन्धुवासी तथा सर्वथा गुणहीन उस विष्णु का वरण करने के लिए इस कंचन देहलता को सुखाना कौन-सी बुद्धिमानी है ? मुझे तरस आता है तुम्हारी इस अदूरदर्शिता पर। बैठो पुष्पक यान में और चलो मेरे साथ स्वर्ग की महानगरी लंकापुरी को। मैं तुम्हें अपनी महारानी बनाऊँगा। देव, यक्ष, गन्धर्व-आदि की असंख्य कुमारियाँ तुम्हारी चरणदासियाँ रहेंगी, ब्रह्मादि देवगण तुम्हारे पुण्यचरणों की नित्य वन्दना करेंगे और नन्दन-विहारी सुरराज अपनी पत्नी शची के साथ प्रतिक्षण नाचता रहेगा तुम्हारे केवल संकेत मात्र पर।' वेदवती के प्रति समवेदना प्रकट करते हुए रावण ने कहा। उसके आग्नेय नेत्रों से कामवासना के स्फुलिंग झर रहे थे।

वेदवती का नारीत्व जाग गया। आर्यरक्त की तेजोमयी ऊष्मा नस-नस में दौड़ गयी, बोली : 'ऐसी कुत्सित भावना को हृदय में स्थान देने के लिए धिक्कार है, पापाधम ! जगद्वन्द्य भगवान विष्णु के प्रति इतना अनादर भाव !' वेदवती के युगल-अधरों में अभूतपूर्व स्पन्दन उत्पन्न हो गया और उसके नेत्रों से क्रोध के अंगारे बरसने लगे।

'अपनी छवि के अनन्य भक्त पर वाणी की ऐसी तीखी छुरी चलाना उचित नहीं है, मुग्धे ! इसे तुम अपना सौभाग्य समझो, जो अनगिनत देवकन्याओं से सेवित विश्वविजयी रावण तुम्हारे रूप का भिखारी बना तुमसे आज प्रणय की याचना माँग रहा है।' कुछ क्रुद्ध होकर रावण ने कहा। उसका स्वर कर्कश हो गया।

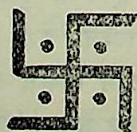
वेदवती सिंहिनी की भाँति गरज उठी, बोली : 'हट दूर हो यहाँ से, अरे नारकीय कीड़े ! ब्रह्मण्य पुलस्त्य ऋषि के कुल के कलंक ! एक पवित्र आर्य-कन्या का अपमान करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? क्रोधातिरेक से उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आगे बोल न निकल सके।

राक्षसराज रावण का अहं गरज उठा : 'एक क्षुद्र रमणी का इतना दुस्साहस !' उसने अपने दुर्धर्ष करों से उस निरीह तपस्वि कन्या का केशकलाप पकड़ लिया और बलपूर्वक उसे पुष्पक-यान में बैठाना चाहा।

वेदवती ने सोचा : 'द्वन्द्वयुद्ध में आततायी नरपिशाच का मुकाबला करना नारी के वश का नहीं और भय, आतंक एवं पाशविक शक्ति से उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर देना नारी जाति के अस्तित्व के प्रति सबसे भयंकर तथा घिनौना अपराध है। इसलिए प्राणों का मोह रहते इस दुष्ट अत्याचारी से नारी के मान, मर्यादा एवं शील का संरक्षण सम्भव नहीं—यह सोचकर उसने झटपट उठाई एक तीखी करवाल और अपने मर्मस्थल में प्रहार करती हुई चीखी : 'अरे दुरात्मन् ! जिस देह पर आसक्त होकर तुमने एक कन्या का अपमान करने की कुधारणा बनाई है, उसे तेरे सामने ही इसी क्षण समाप्त किये देती हूँ। देख, आर्यावर्त की नारी पाशविक शक्ति के समक्ष कभी घुटने नहीं टेक सकती। वह आततायी से जिस प्रकार अपने मन की पवित्रता की रक्षा करने में समर्थ है उसी प्रकार शरीर की पवित्रता बनाये रखने के लिए विवशता के क्षणों में उसके त्याग का साहस भी रखती है। याद रख नीच ! भारतीय नारी को प्राप्त करने का साधन धन, ऐश्वर्य तथा पशुबल नहीं, वरन प्रेम की पवित्रता है। और यह भी जान ले, पिशाच ! भारतीय मनीषा आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म पर आस्था रखती है। इसलिए यह मेरी संतृप्त आत्मा तेरे इस जघन्य अपराध को कभी भूल न सकेगी; कभी क्षमा न करेगी। मैं अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए शीघ्र ही पुनः जन्म लूँगी और तेरी सोने की लंका को धूल में मिला दूँगी, और तेरा सर्वनाश करके अपनी आत्मा को शान्त करूँगी।' कहते-कहते वेदवती आनन्द निद्रा की गोद में सो गयी।

× × ×

और यही वेदवती, कालान्तर में दूसरा जन्म लेकर, विदेहराज जनक की पुत्री सीता बन रावण के महासंहार का कारण बनी।





तुलसी : सांस्कृतिक गरिमा के साहित्यकार

⊙

डॉ० जगदीश गुप्त, एम० ए०, डी० फिल्०
रीडर हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

[हिन्दी के बहुचर्चित प्रतिष्ठित कवि तथा नयी कविता के यशस्वी सर्जक एवं व्याख्याता साहित्यकार डॉ० जगदीश गुप्त की मान्यता के अनुसार तुलसी की प्रवृत्ति पौराणिक जीवन-बोध से प्रगाढ़ रूप से बँधी होने के कारण भले ही किसी को विलग दिखाई देती हो, पर उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के सम्पूर्ण सांस्कृतिक वैभव को आत्मसात् कर के जिस प्रकार उसे लोकभाषा के माध्यम से सर्व जन-सुलभ बना दिया, वह असाधारण ही नहीं आश्चर्यजनक भी है--सम्पादक।]

हिन्दी-साहित्य एवं भारतीय लोक-जीवन में तुलसी प्रतिमानों के प्रतिमान होकर प्रतिष्ठित हैं। खरे-खोटे, भले-बुरे, सही-गलत तथा ऊँच-नीच का बोध जिस मानसिक धरातल से होता है, तुलसी उसके परिचायक न होकर शताब्दियों से उसके निर्माता रहे हैं। उत्तर भारत के व्यक्ति-मन और लोक-मानस दोनों पर तुलसी की सिद्ध वाणी की अमिट छाप है। इतनी आस्थापूर्ण प्रगाढ़ जन-सम्पृक्ति तथा सांस्कृतिक गरिमा शायद ही संसार के किसी साहित्यकार को प्राप्त हुई हो।

आधुनिक युग अपने नये मूल्य-बोध एवं मानव-केन्द्रित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के द्वारा पूर्व-प्रतिष्ठित सिद्धान्तों, व्यक्तियों तथा कृतियों इत्यादि सभी की मान्यता पर गहरे प्रश्न-चिह्न अंकित करता है और नये सिरे से उन्हें जाँचने-परखने तथा पहचानने की उत्कट अभिलाषा रखता है। पुनर्मूल्यांकन का जो व्यापक दौर इधर तीव्रता से चल रहा है, वह आधुनिकता की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। तुलसी को पुनर्मूल्यांकित न किया जाय यह कैसे संभव है? इधर कई प्रयत्न इस दिशा में किए गए हैं, जो उल्लेखनीय हैं।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने 'तुलसी आधुनिक वातायन से' (१९६७) लिख कर घोषित रूप से ऐसा ही प्रयत्न किया है। उनकी धारणा है कि 'तुलसी को आधुनिक

गवाक्ष से देखने-सुनने-समझने का मतलब है अपने भारत की बहुसंख्यक जनता के परम्परागत आदर्शों एवं जीवन-मूल्यों की ठोस चुनौतियों का अध्ययन !' परिचित-अपरिचित अनेक पारिभाषिक शब्दों का घटाटोप खड़ा कर के उन्होंने अपनी बात कहने का भरसक प्रयत्न किया है, पर समस्या सुलझने के स्थान पर और भी उलझ गयी है। 'तुलसी की महानता की कुंजी' के उन्होंने दो 'करण' माने हैं—१. मिथकीयकरण तथा २. ग्राम्यीकरण। बाद में 'ऐतिहासिक-बोध का आयत्तीकरण' इसमें और जुड़ता दिखायी देता है, यद्यपि उसकी गणना नहीं की गयी है। ऐसे ही न जाने कितने करण-उपकरण जोड़ कर तुलसी को समझने की कम और समझाने की अधिक चेष्टा की गयी है। 'हिन्दी की नयी बौद्धिकतावादी परम्परा को' अर्पित इस रचना में मुहावरे, विचारपद्धति तथा दृष्टिकोण की नवीनता तो है और कुछ अधुनातन कसौटियाँ भी लगायी गयी हैं; पर लेखक ज्ञान-प्रदर्शन एवं नाटकीय शैली से इतना ग्रस्त है कि उसका विवेचन उतना प्रभावशाली नहीं हो पाया है जितना उसे अभीष्ट था। इसमें वास्तविकता कम और दिखावटीपन ज्यादा है। फिर भी नयी दिशा की ओर नये ढंग से इंगित करने के कारण यह पुस्तक द्रष्टव्य अवश्य है। सौन्दर्य बोध वाली छठी गोष्ठी विशेष रूप से। यों पहली गोष्ठी में ही जो अतिवादी धारणा लेखक ने बना ली कि मध्यकाल का सारा साहित्य 'समाज की दरिद्रता को ही आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करता है' तथा 'सारांश में इहलौकिक विषमता पारलौकिक खुशहाली में भटक गयी' उससे वह अन्त तक अपना पीछा नहीं छुड़ा सका।

डॉ० युगेश्वर की पुस्तक 'तुलसीदास आज के संदर्भ में' उनके तुलसी विषयक स्फुट लेखों का संग्रह मात्र है। वह पूर्वोक्त कृति की तरह कोई व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत नहीं करता तथापि उसमें कही गयी कुछ बातें साधार और नये दृष्टिकोण की परिचायक, अवश्य हैं। यथा—'गोस्वामी जी का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी न हो कर प्रामाण्यवादी, परम्परावादी, व्यवस्थावादी, शास्त्र-सम्मतिवादी और मर्यादावादी है।··· गोस्वामी जी का दृष्टिकोण आज तो क्या तब भी क्रान्तिकारी नहीं रहा होगा··· किन्तु कुल मिला कर वे वर्ण व्यवस्था, स्त्री और शूद्र सम्बन्धी अधिकारिक हिन्दू दृष्टि ही रखते थे। राज्य-व्यवस्था और सम्पत्ति सम्बन्धी उनके विचारों में आदर्शवादिता हो सकती है, किन्तु क्रान्तिकारिता नहीं। क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के लिए विद्रोह पहली शर्त है। गोस्वामी जी विद्रोही नहीं थे।' यह और ऐसे सारे कथन यह मान कर चले हैं कि आधुनिक युग की प्रमुखतम पहचान

'क्रान्ति' और 'विद्रोह' है, चाहे वह सामाजिक चिन्तन में हो चाहे साहित्य के मूल्यांकन में। कुछ दूर तक यह बात ठीक भी है। परन्तु ऐसा विपुल प्राचीन साहित्य है, जिसमें तुलसी जितनी सामाजिक चेतना भी नहीं है; क्या उस सबको इस आधुनिक दृष्टिकोण से पदच्युत किया जा सकता है। वाल्मीकि, कालिदास आदि से ले कर सूर और जायसी तक विद्रोह एवं क्रान्तिकारिता को ही कसौटी बना कर निर्णय करना बहुत कठिन होगा। वस्तुतः उनका विशद जीवनानुभव, व्यापक कल्याण-कामना तथा अद्वितीय कल्पनाशीलता एवं रचना शक्ति आधुनिक मूल्यांकन के क्रम में भी उपेक्षणीय नहीं है। आत्माभिव्यक्ति और व्यक्तित्व की प्रामाणिकता को भी आधार मानना ही होगा। क्रान्ति की कसौटी पहले-पहल प्रगतिशीलों ने लगायी और उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से बाहर ले जाने के लिए कतई तैयार नहीं हुए; फलतः वह भी भटक गए। लोहियाजी भी बहुत कुछ उनसे प्रभावित रहे तथा लोहियावादी भी वसा ही सोचते हैं। साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र मान कर चलना कहाँ तक सही है, यह प्रश्न आधुनिक साहित्यिक चिंतन की एक प्रमुख समस्या बन गया है। सरलीकरण इसका समाधान नहीं है। तुलसी की लोकोन्मुखता तथा लोक-ग्राह्यता का कारण भारतीय जनमानस के आन्तरिक स्वभाव में खोजना होगा। भारतीय जन कितना विद्रोही रहा है या हो गया है, यह सोचना होगा। क्या उसकी सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति विद्रोह से ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है। 'सत्यमेव जयते' का चुनाव राष्ट्रीय मानस का परिचायक है। जिस कवि ने जितनी गहराई और व्यापकता से जीवन-सत्य का साक्षात्कार किया तथा जितनी निर्भीकता, प्रौढ़ता एवं शक्तिमत्ता से उसकी अभिव्यक्ति की, वह उतना ही सम्मान्य हुआ। आज भी हम इसे भुला नहीं सकते। तुलसी के इस पक्ष को अनेक विशेषज्ञों ने अपने-अपने ढंग से महत्त्व प्रदान किया है। जो सुपरिचित लोग हैं उनका उल्लेख क्या करूँ। एक अपरिचित या अल्प-परिचित लेखक श्री देवेन्द्र सिंह की कृति 'तुलसी का अन्तर्जगत्' का नाम अवश्य लेना चाहूँगा। उन्होंने अपने प्रारंभिक विश्लेषण में गहरी पकड़ दिखायी है, जो तुलसी के वास्तविक अन्तः संघर्ष का परिचय देती है।

अब कुछ अपनी बात कहूँ। मानव मात्र के बहुविध दुःख के प्रति तुलसी की सहानुभूति उनके परम्परावाद, ब्राह्मणवाद, नारी-निंदा आदि आधुनिकता विरोधी स्वरों से कहीं ऊपर प्रतिष्ठित है। वे मूलतः व्यवस्था प्रिय, अतिशय संवेदनशील, सदाशयी, आदर्शवादी तथा अपने आराध्य के प्रति अनन्य भाव से समर्पित कवि थे;

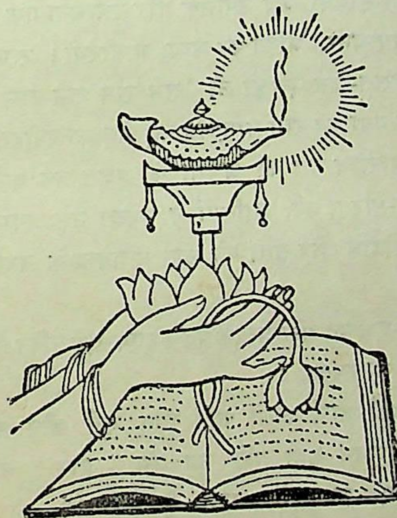
जिन्होंने समस्त जीवन्त मूल्यों की श्रेष्ठता के पुंजीभूत प्रतीक 'राम' को जन्म से ही अपनी वाणी में सिद्ध कर लिया था। भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के सम्पूर्ण सांस्कृतिक वैभव को आत्मसात् कर के जिस प्रकार उन्होंने उसे लोकभाषा के माध्यम से सर्वजन सुलभ बना दिया; वह असाधारण ही नहीं, आश्चर्यजनक भी है। उनकी काव्य प्रतिभा निरन्तर सक्रिय तथा बहुमुखी थी और साहित्यिक रचना को वे अपनी 'लेखनी प्रधान' रुचि के साथ जितना दायित्वपूर्ण, गंभीर एवं उदात्त कर्म मानते थे, उतना शायद ही आज कोई मानता दिखाई दे। सब में छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए समझौते की प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में साफ़ दिखाई देती है। एक व्यक्तित्व सम्पन्न रचनाकार के रूप में तुलसी आगामी युग में कभी भी किसी भी कवि के लिए प्रेरक सिद्ध हो सकते हैं। मैंने तो उनसे सदा ही प्रेरणा पायी है। उनके अनुभूत सत्यों को अपने जीवनानुभव से प्रामाणिक पाया है और पग-पग पर नत शिर होता रहा हूँ। आधुनिक युग के सर्वमान्य विद्रोही कवि निराला का मस्तक जिस कवि के आगे सब से अधिक झुका, वह तुलसीदास ही हैं। यदि तुलसी की काव्य-भूमि तत्त्वतः क्रान्ति विरोधी होती तो निराला कभी भी उन्हें—'शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य' न कहते। यह दूसरी बात है कि प्रतिक्रियावादी तथा संकीर्ण सामाजिक दृष्टि वाले व्यक्ति भी उनके काव्य से अपने मतानुकूल वाक्य निकाल लेते हैं और उन्हें वैसा ही सिद्ध करने लगते हैं। वस्तुतः यह भी उनके गौरव का ही परिचायक है; क्योंकि जो कवि अनुकूल-प्रतिकूल सभी पक्षों को ले कर एक महान् भूमिका में काव्य रचना करता है, वह सभी पक्षों को आत्मसात् करता ही है। यह उसकी कमजोरी नहीं, शक्ति है। फिर भी उनकी प्रवृत्ति पौराणिक जीवन-बोध से प्रगाढ़ रूप से बँधी होने के कारण हमें विलग दिखायी देती है और हम उनकी बहुत-सी बातों से अपने को असहमत पाते हैं। यह असहमति उनके कृतित्व को को नकारने का कारण नहीं बनना चाहिए, ऐसा मैं अनुभव करता रहा हूँ। वे अपनी विशेषता में जिये तो हम अपनी विशेषता को क्यों खोयें ?

'दिनमान' में 'तुलसी के तेवर की तलाश' नाम से कुछ दिन पहले एक बातचीत छपी थी। उसमें हमारे मनमौजी उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने बड़े मार्के की बात कही थी कि 'तुलसी के साथ जो कुछ भारतीय मानस में जुड़ा हुआ है, वह तो लेखक के हाथ मुफ्त ही आ जाता है।' लेखक यानी आधुनिक लेखक। मतलब यह कि तुलसी-साहित्य आज भी कुछ देता ही है, छीनता नहीं है। हाँ, नागर जी ने आगे

ज़रूर एक जुमला ऐसा कहा है, जो मुझे कुछ ज़्यादा लगता है और वह यह कि 'इस देश ने गाँधी को मार डाला, मैं तुलसी को मरने नहीं दूँगा।' कहाँ तो वे तुलसी की प्राणदायिनी लोक-चेतना से अपने को प्राणवान् बना रहे थे, कहाँ सहसा इतने बलशाली हो गये कि तुलसी की जीवन-रक्षा के लिए तत्पर हो गए। यह मुद्रा भावुकता पूर्ण और नाटकीय है। आज का लेखक काल से अपनी कीर्ति की रक्षा कर ले, यही बहुत है। वह तुलसी की कालजयी वाणी के विनष्ट हो जाने की आशंका करते हुए उसे जिलाये रखने का दम भरे तो इसे उसका तुलसी के प्रति मोहजनित दम्भ ही कहना होगा।

व्यापक जीवन-सत्य के गहन साक्षात्कार और निजी दृष्टि-कोण से उसकी निर्भीक तथा विशद कलात्मक अभिव्यक्ति की दिशा में तुलसी एक ऐसा सीमा-चिह्न बन गए हैं, जो आगे आने वाले आलोचकों हेतु ही नहीं, कलाकारों के लिए भी कसौटी और प्रेरणा का काम करेगा; इसमें संदेह नहीं।

●



रामचरित मानस

विनय-पत्रिका और तुलसी की भक्ति-भावना

⊙

श्री हरिशंकर शर्मा

अतिरिक्त शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश

[जब सच्चा तथा एकनिष्ठ साधक (भक्त) साध्य (भगवान) से तादात्म्य प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है, तो चिन्तन के क्षणों में उसकी आत्माभिव्यक्ति अनायास ही मुखर हो उठती है। तुलसी की 'विनय-पत्रिका' उनकी इसी भाव-भूमा का प्रामाणिक दस्तावेज है, जिसके कुछ अंशों का भावात्मक उद्‌घाटन कर रहे हैं—पं० श्री हरिशंकर शर्मा, तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् एवं अतिरिक्त शिक्षा-निदेशक, उत्तर प्रदेश—सम्पादक]

जब साधक बन गया साधना, जब उपासक और उपासना एक हो गये तो प्रस्फुटित हुई प्रेम को पावन पयस्वनी, भक्ति की भव्य भागीरथी। रामबोला का रोम-रोम राममय हो गया। रात-दिन एक ही लौ 'राम राम राम राम राम, रटु राम राम जपु जीहा' और बन गया वह राम नाम नव नेह मेह का पपीहा, तो एक-एक अक्षर मुखरित हो उठा आराध्य देव की अर्चना के अक्षत बन कर। साहित्यकारों ने उसे संज्ञा दी काव्य-सरिता की, ज्ञानियों ने समझा उसे अगम्य ज्ञान-गंगा, दार्शनिकों ने दिव्य दर्शनोदधि और संतों को लगा राघवेन्द्र के चरणों में उस आराधक का अन्तिम अर्घ्य।

विनय का एक-एक पद और प्रत्येक पद की एक-एक पंक्ति में सुना जा सकता है तुलसी के हृदय का स्पंदन :

कहाँ जाऊँ कासौ कहों कौन सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंग हीन की।।

विनय के एक-एक शब्द में व्याप्त है उस संत की अनिर्वचनीय व्यथा और उसकी करुण कथा :

दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघो अथाइ।
नाम ले भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ।।

विनय का एक-एक अक्षर सुरभित है उस संत के आत्मसमर्पण के पुन्य प्रसूनों से, सुवासित है उसके आत्म-निवेदन के नैवेद्य से। वात्सल्य, विनय और विरक्ति से विरचित यह पावन त्रिवेणी प्लावित है राघवेन्द्र के पुनीत पादाम्बु से, पुष्पित है राम के पादारबिन्दु से, प्रवहमान है प्रीति और प्रतीति के पावन पयोनिधि की ओर। अवगाहन करें :

भरोसो जाहि दूसरो सौ करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्याण परो।।
करम उपासन ग्यान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोरि ते सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो।।
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहूँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो।।
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरौ।
अपनो भलो राम नामहि ते तुलसिहि समुझि परो।।

विनय के पदों में प्रतिष्ठित है तुलसी के प्रेम की पार्थिव प्रतिमा। सत्य, शिवत्व और सौन्दर्य से प्लावित यह पत्रिका पूर्ण चित्र है तुलसी के जीवन के आदि, मध्य और अवसान का, यदि उस भक्ति शिरोमणि के समग्र रूप में दर्शन करने हों तो पाठक पलटें उसकी इस पत्रिका के पन्ने :

जेहि गुन ते बस होहु रीझि कर सो मोहिं सब बिसर्यो।
तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजे रहन पर्यो।।

तुलसी ने क्या खोया और क्या पाया, यदि यह जानना हो तो पढ़ें उसकी यह प्रतिज्ञा और उसका प्रायश्चित्त, उसकी स्वीकारोक्ति और उसका संकल्प :

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
पायेउ नाम चारु चिन्तामणि उर करते न खसैहौं।।
जासो सब नातो फुरे ता सो न करो पहचानि।
ताते कछु समझ्यो नहीं कहा लाभ कह हानि।।

और जब समझा तैंने अपने राम को और अपने आप को तो तुझे लगा कि :

कबहुँ न कोउ रघुबीर सो नेह निबाहन हो।
करि बोल्यो अब करतु है करिबे हित मीत अपार।

कौन जान पाता तुलसी तेरी इस मानसिक व्यथा को, इस अविचल स्नेह को, तेरी इस खीझ को, तेरे जीवन की इस अन्तिम खोज को, तेरे नैराश्य को और तेरे उस आश्रयदाता को, यदि तू न बताता कि :

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न गयो।
हा हा करि दीनता, कही द्वार द्वार बार बार परो न छार मुह बायो॥
साँच कहो नीच कौन सी जो न मोहि लोभ लघु हो निर्लज्ज नचायो।
मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन सरन तकि आयो॥

धन्य है तेरी निश्चल निष्ठा, तेरी अव्यभिचारिणी आस्था; जिस-जिस देवता के दरबार में तू गया, तैंने याचना की, राजा राजेन्द्र राजीव लोचन राम की, लोक मंगलकारी भक्ति की :

सिद्ध सदन गज बदन बिनायक,
कृपा सिन्धु सुन्दर सब लायक,
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता,

× × ×

सम्पूर्ण मंगलों के दाता से तैंने क्या माँगा :

बसहि राम सिय मानस मोरे।
माँगत तुलसिदास कर जोरे॥

और फिर इसके बाद से तो तू जो माँगता, मिल जाता वह तो :

औढर दानि द्रवत पुनि थोरे।
सकत न देखि दीन पर जोरे॥

किन्तु तुलसीदास तैंने भीख माँगी भगवान राम की अनपाइनी अनुकम्पा की :

बिमल भगति लघुपति को पावे।
तुलसिदास जाचक जस गावे॥

तुलसीदास तेरी अनन्यता अनुकरणीय है, अभिवंदनीय है। तू भिखारी है, तेरे राम दानी हैं; तू पतित है, तेरे राम पतित पावन हैं; तू अनाथ है, तेरे राम दीनानाथ हैं; तू आर्त है और तेरे राम आरत हर हैं। कौन जान पाता कि राम तेरे तात, मातु, गुरु, सखा सभी तो हैं। इस बात का उल्लेख कि "तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै" यदि तू अपनी पत्रिका में न करता तो तेरे जीवन की एक-एक अधूरी तसवीर हमारे सम्मुख आती? मानस तो राम की कहानी है, किन्तु सच यह है कि विनय तेरी अपनी राम कहानी है। तेरा क्या स्वरूप था,

क्या नाम था, क्या व्यवसाय था : यह एक रहस्य बना रहता, यदि तू न बताता कि :

राम के गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम ।
काम यहै, नाम द्वै हो कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूँगा, नीकै राखे आगेहूँ को वेद भाखै।
भला ह्वै है तेरो ताते आनन्द लहत हौं।
लोग कहैं पोंच सौ न सोच न संकोच मेरे।
व्याह न बरेखो जाति पाति न चहत हौं।

तेरी जाति-पाँति नाम-रूप हो भी क्या सकते थे; तू तो राममय हो गया था, राम का हो गया था :

तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु तुलसीदास मेरो।

तुझे आशंका थी कि कहीं तेरे अपनाने पर राम के विरुद्ध वाद दायर न हो जाय, प्रत्यावेदन न हो जाय, किन्तु तू तो राम की बाँह था, राम का विलोचन था, अतः यदि संसार आलोचना करता, उपहास करता, राम को आरोपित भी करता तो 'टूटी बाँह और फूटे विलोचन' को कोई काट कर तो नहीं फेंक देता, गले से लगाते हैं; बाँधते हैं, चिकित्सा करते हैं :

जग हंसिहे मेरे संग्रहे कत इहि डर डरिये।
टूट्यो बाँह गरे परै फूटहु विलोचन पीर होत हित करिये।

कितनी विदग्धता है तेरी वाणी में, कितनी आकुलता है तेरे आचरण में, कितनी चुभन है तेरी इस चिट्ठी में, कितनी चिंता है तुझे अपने आराध्य देव के अपयश की; निम्न पद उसका प्रमाण है :

पनु करिहौं हठि आज ते राम द्वार पर्यो हौं
तू मेरो यह बिन कहे उठि हौं न जनम
भरि प्रभु की सौं करि निवार्यों हौं।।

राम बड़े असमंजस में पड़ गये होंगे तेरी इस हठधर्मी से कि आज जब तक राम यह न कह दें कि तुलसी तू मेरा है, आप देहली नहीं छोड़ेंगे। राम का आज घिराव है, तुलसी ने तरकीब बताई कि यदि सबको सुना कर नहीं कहना चाहते हो तो मन में कह लो कि तुलसी मेरा है :

प्रगट कहत जो सकुचिये अपराध भर्यो हौं।
तो मन में अपनाइये तुलसी ही कृपा करि कलि विलोकि हहर्यो है।

राम को यह कैसे स्वीकार होता ? वह तो चाहते थे भरे दरबार में तुलसी को अपनाना, किया भी यही, दरबार आयोजित हुआ, सब भाई, जनकात्मजा, मारुत सुत, मंत्रीगण, अयोध्या वासी, सभी को बुलाया; आज तुलसी की अर्जी पेश होगी। दरबार में बड़ी चहल-पहल थी, आवेदक भी एक कोने में खड़े थे। पुकार हुई। मारुत सुत ने मन से, भरत ने भावना से, लक्ष्मण ने वाणी से आवेदन पत्र का समर्थन किया। पत्रिका पढ़ी गई। पूछा—"क्या चाहता है तुलसी ?" उत्तर मिला—"तू मेरो, यह बिन कहे उठि हौं न जनम भरि।" राम ने अपनी बाईं ओर देखा। सीता कुछ सकुचाई फिर मुस्करायी, पाती पढ़ी। इतने में सम्पूर्ण सभा बोल उठी :

कलिकालहु नाथ नाम सो परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है।

राम तुम्हारी तो यह दुर्बलता है :

रघुबर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई।
यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीन दयालु दीन तुलसी की काहू न सुरति कराई।

जगज्जननी ने याद दिलाई, राघवेन्द्र मुस्कराये, अंक में ले लिया मानस के प्रणेता को, विनय के विपन्न विधायक को, राम को रामत्व प्रदान करने वाले रामबोला को ओर पत्रिका पर सही की :

बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लई है।
कृपा गरीब निवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥

वही विनय-पत्रिका बन गई उपासना, आराधना और अर्चना। इसकी एक-एक पंक्ति मोती है, मणि है, मनका है, माला है और है महामंत्र तथा कलियुग में भवसागर से पार होने का एक मात्र यंत्र। इसका एक-एक पद पूजा है, पुष्प है, प्रीति है, भक्ति है। निर्बल का बल और संबल निस्सबल का, तुलसी की पत्रिका अशक्त की शक्ति है।

⊙



'मानस' को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' घोषित किया जाय

⊙

आचार्य श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

[हिन्दी एवं संस्कृत के निष्णात-विद्वान् आचार्य श्रीरञ्जन सूरिदेव का सुझाव है कि राष्ट्रभाषा में, राष्ट्र-कवि द्वारा, राष्ट्र के लिए लिखित 'रामचरित मानस' को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' घोषित किया जाय, क्योंकि रामायण में भारतीय जनता की आत्मा स्पन्दित होती है-भारतीय नागरिकों का प्रत्येक वर्ग उसमें अपने हृदय की धड़कन महसूस करता है और साथ ही वह अपनी राष्ट्रीय चेतना का अमृत-निष्पन्दी झंकार भी सुनता है—सम्पादक]

मैंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पाक्षिक प्रकाशन 'राष्ट्रभाषा-संदेश' के १ जनवरी, १९७० के अंक में आगामी मानस चतुःशती-समारोह-पर्व पर भारत सरकार से 'रामचरित मानस' को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' घोषित करने का अनुरोध करते हुए निवेदन किया था कि भारत सरकार की ओर से रामचरित मानस को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' तो घोषित किया ही जाय, साथ ही श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि को सार्वजनिक छुट्टी का दिन भी माना जाय। इसके अतिरिक्त; संसद-सदन तथा विधान सभा भवनों में गोस्वामी तुलसीदास की तसवीर लगाने की भी व्यवस्था की जाय। कहना न होगा कि मानस में भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का सही चित्र प्रतिविम्बित हुआ है एवं यह अखिल विश्व में सभी सम्प्रदायों के लोगों द्वारा समान आदर-भाव से पढ़ा जाता है। भारत के घर-घर में तो यह कुल-देवता की तरह पूजित-वन्दित है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय वेश, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पक्षी और राष्ट्रीय पशु तक की घोषणा की है, तो यह आवश्यक है कि राष्ट्रभाषा में राष्ट्र-कवि द्वारा राष्ट्र के लिए लिखित 'रामचरित मानस' को राष्ट्रीय ग्रन्थ के रूप में घोषित किया जाय। 'रामचरित मानस' के राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित होने पर श्रावण शुक्ला सप्तमी को राष्ट्रीय ग्रन्थ के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास के सम्मान में सार्वजनिक अवकाश की तिथि घोषित करना अनिवार्य

होगा। संसद-सदन में जब रवीन्द्रनाथ टैगोर की तसवीर लगाई जाती है, तब गोस्वामी तुलसीदास की तसवीर को लगाने का औचित्य कहीं अधिक है। क्योंकि तुलसीदास ने भारत को रामराज्य की परिकल्पना ही नहीं दी, अपितु व्यावहारिक कर्त्तव्य के आचरण द्वारा उसकी प्राप्ति का भी उपाय बतलाया। सच पूछिए तो आज राष्ट्रोद्धार का मूल मन्त्र देने वाला 'रामचरित मानस' से इतर कोई ग्रंथ बहुत खोजने पर भी नहीं मिलेगा।

सन् १९७४ ई० में आयोजित होने वाले मानस चतुश्शती समारोह के परिप्रेक्ष्य में हमें मानस के व्यावहारिक अंगीकरण के सम्बन्ध में विविध कार्य सम्पादित करने का संकल्प लेना है। मानस की राष्ट्रोपयोगिता की प्रशंसा बहुमुख-चर्चित सत्य है। सन् १९६९ ई० के १५ नवम्बर को हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग, के प्रांगण में मानस यज्ञ समिति के तत्वावधान में आयोजित मानस यज्ञ सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रसिद्ध सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने कहा था कि 'यह मानव-शरीर कर्म करने के लिए ही बना है। एक क्षण भी हम बिना कर्म किये रह नहीं सकते। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसमें धर्म की भावना प्रधान है। उसे धर्म के अनुरूप आचरण और कर्म करना चाहिए।' रामचरित मानस से हमें यही शिक्षा मिलती है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० रामकुमार वर्मा ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा था कि 'हमारे साहित्य में तुलसीदास के लिए जो भी लिखा गया है, वह उनकी साधना को देखते हुए अपर्याप्त है। इस समय जागरण की बेला है। हम सब को अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए।'

वर्मा जी के कथन के परिवेश में सही मानिए, तो हिन्दी का विकासात्मक अध्ययन सर्वांगीण दृष्टि से अभी तक नहीं हुआ है। हम असर्वांगीणता की बात इसलिए करते हैं कि हिन्दी के विकास के क्रम में अब तक खास-खास मुद्दों पर ही अधिक अध्ययन-अनुचिन्तन होता रहा है, किन्तु हिन्दी के क्रमिक विकास के संदर्भ में अनेक ऐसे उपेक्षित पक्ष भी हैं, जिनके अनुशीलन-गवेषण से हिन्दी के क्रम-विकास का अध्ययन अधिकाधिक व्यापक और प्रामाणिक तथा बहुत दूर तक सर्वांगता के साहित्य से समृद्ध बनेगा। उदाहरण के लिए, हम हिन्दी के विकास में रामायण के कथावाचकों की देन को ले सकते हैं। सचमुच, इस दिशा में रामायण के कथावाचकों का योगदान विस्मरणीय नहीं है। एक रामायण को ही यदि हिन्दी से निकाल दिया जाय, तो हिन्दी कंगाल हो जाय। हिन्दी को

रामायण पर सहज सातिशय गर्व है। समग्र राष्ट्र की आत्मा या सांस्कृतिक चेतना का हिन्दी के माध्यम से प्रतिनिधित्व करनेवाला एकमात्र काव्यग्रन्थ रामायण ही है। आज भी हिन्दी के अनेक ऐसे कूटस्थ विद्वान हैं, जिन्होंने रामायण-कथा के वाचक के रूप में अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया और वे आगे चलकर हिन्दी-साहित्य के अग्रदूत के रूप में राष्ट्रीय-भावना के सन्देश-वाहक बने।

सर्वविदित है कि रामायण के कथावाचक अथवा मानस-व्यास की बड़ी लम्बी परम्परा भारत में मिलती है। इस परम्परा में अनेक ऐसे कथावाचक हुए और हैं, जिन्होंने न केवल व्याख्यान या प्रवचन ही किया, अपितु हिन्दी में रचनात्मक पद्धति अपनाकर जहाँ एक ओर हिन्दी के भण्डार को समृद्ध किया, वहीं दूसरी ओर एक नई दिशा का संकेतक होकर हिन्दी के विकास में एक नये परिच्छेद की सर्जना की है।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने उक्त उद्घाटन-भाषण को आगे बढ़ाते हुए ठीक ही कहा था कि 'रामचरित मानस का प्रचार एक रंक की झोपड़ी से एक श्रेष्ठ पाठक तक है। रामायण की एक-एक चौपाई मनन करने के लायक है। इसमें सामाजिक संगठन तथा परिवार संगठन की अनुपम झाँकी देखने को मिलती है। धर्म की संरक्षा के लिए जिस महान ग्रंथ की रचना हुई है, वह 'रामचरित मानस' ही है। जिस राष्ट्रीय संकट की स्थिति में इस ग्रंथ की रचना राम को नायक बनाकर हुई थी, हमें उसी सन्दर्भ में उसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए।'

निश्चय ही, रामायण में भारतीय जनता की आत्मा स्पन्दित होती है। भारतीय नागरिकों का प्रत्येक वर्ग उसमें अपने हृदय की धड़कन महसूस करता है और अपनी राष्ट्रीय चेतना का अमृत-निस्पंदी झंकार सुनता है। इसलिए, आधुनिक यांत्रिक युग में भी रामायण-कथा के श्रोताओं में सहजता का अभाव नहीं है और उनके हृदयों में मानस-व्यास के प्रति आदर की भावना यथावत् अक्षुण्ण है। कहना न होगा कि यह सहज आदरणीयता समग्र रूप से हिन्दी के प्रति ही आदर का प्रकटीकरण है। इसलिए, हिन्दी को जन-जन के मन तक पहुँचाने वाले मानस-व्यास सही मानी में हिन्दी के एकान्त सेवक हैं, जिनकी सेवाओं का हिन्दी के विकासात्मक अध्ययन में मूल्यांकन न किया जाना चतुश्शती-समारोह के कार्यक्रमों को अधूरा ही माना जायगा।

उक्त मानस-यज्ञ-सम्मेलन में 'भारत' के सम्पादक श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव ने चतुश्शती-समारोह के आयोजनों की चर्चा करते हुए बड़ी उपयुक्त बात कही थी कि 'हमें गोस्वामी तुलसीदास के तथा उनकी रामायण-रचना के चार सौ वर्ष पूरे होने के समय बड़े आयोजन करने हैं। ये आयोजन न केवल देशव्यापी, बल्कि विश्वव्यापी होने चाहिए। तुलसीदास की रामायण में मानवतावाद तथा विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रतिपादन हुआ है। यह हमारे देश के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व के लिए अनुपम है। अतः, इस ग्रन्थ की गरिमा के अनुकूल ही आयोजन होना चाहिए।'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के सहायक मंत्री तथा 'राष्ट्रभाषा-सन्देश' के सम्पादक पं० रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री ने गोस्वामी जी के सन्देश को हर जगह पहुँचाने की लक्ष्यसिद्धि का संकल्प प्रस्तुत करते हुए अपने वक्तव्य में कहा कि 'रामचरित मानस भाषा, संस्कृति, परम्परा, दर्शन, धर्म तथा इतिहास का समलंकृत महाकोष है। यह महाकाव्य भारतीय एकता का प्रतीक है और राष्ट्रभाषा हिन्दी का अमूल्यरत्न है।'

इसी क्रम में मानस यज्ञ-समिति द्वारा एक गोष्ठी भी आयोजित हुई थी, जिसमें नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी के प्रधानमंत्री पं० सुधाकर पांडेय ने सभा की मानसचतुश्शती सम्बन्धी योजनाओं का विवरण देते हुए कहा था कि किसी ग्रन्थ की शती का आयोजन विश्व में अभूतपूर्व है और इसे पूर्ण निष्ठा तथा गरिमा के साथ सम्पन्न किया जाना चाहिए। व्यक्ति की नहीं, उसके कृतित्व की पूजा ही आज के समाजवादी युग में समीचीन है।' इस अवसर पर एक बहुत मार्के की बात कही थी श्री श्रीकृष्णदास जी ने कि 'रामकथा का अभिनय और मन्थन देश में ही नहीं, दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में प्रसारित है।' रामकथा के लोकधर्मी मंच-परम्परा के अनुकरण और उन्नयन की आवश्यकता की बात भी उन्होंने इसीलिए रखी कि आज जनता पर सीधा और सशक्त प्रभाव डालनेवाला माध्यम रामकथा ही है।

इस गोष्ठी में नई कविता के पुरोधा तथा चित्रकला के मर्मचिन्तक डा० जगदीश गुप्त, साथ ही प्रसिद्ध कोशकार डा० हरदेव बाहरी एवं कबीर-साहित्य के मनीषी डा० पारसनाथ तिवारी ने कई रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये, जिनसे हिन्दी के विकासात्मक अध्ययन के संदर्भ में रामचरित मानस की उपयोगिता एवं उससे होनेवाली राष्ट्रीय समृद्धि की चर्चा उल्लेख्य है। डा० गुप्त ने कहा कि

'मानस चतुश्शती-समारोह के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा गम्भीरता रखनी चाहिए। हमें इस आयोजन को आनन्दोत्सव के रूप में न व्यतीत कर, स्थायी महत्व के कुछ कार्य करने हैं। रामकाव्य की चित्र, मूर्ति आदि कलाओं में सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, उसके संग्रह-सम्पादन की बड़ी आवश्यकता है। एतदर्थ शोधपीठ और संग्रहालय स्थापित किए जायं। कलाओं की रामकथा की अभिव्यक्ति भारत तक सीमित नहीं, निकटवर्ती देशों तक विस्तृत है।' डा० बाहरी ने रामकथा सम्बन्धी अव्यवस्थित सामग्री को व्यवस्थित करने पर बल दिया था और मानस का अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में बहुभाषिज्ञ भारतीय विद्वानों द्वारा ही सम्पन्न कराने की महत्वपूर्ण बात कही थी। डा० तिवारी ने तुलसी के मानसेतर ग्रंथों के वैज्ञानिक पाठ-सम्पादन की दिशा में विद्वानों के प्रयत्न-शील होने की चर्चा की थी। इस प्रकार प्रत्येक हिन्दीसेवी शैक्षणिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान प्रस्तुत समारोह को अपने-अपने ढंग से मनाने का कार्यक्रम बनायेगा, तो समारोह की बौद्धिक व्यापकता अधिक आकर्षक एवं महत्वपूर्ण होगी, इसमें सन्देह नहीं।

किन्तु इन साहित्यिक आयोजनों में भारतवर्ष के विश्वविद्यालय यदि अधिक दिलचस्पी लेंगे, तो डा० गुप्त के शब्दों में स्थायी महत्व के कुछ उल्लेख्य एवं प्रशंस्य सारस्वत कार्य हो सकेंगे। विश्वविद्यालयीय क्षेत्र के शोधक या सामान्य अनुसन्धित्सु भी 'हिन्दी के विकास में मानस-कथावाचकों का योगदान' विषय पर, कथावाचकों से साक्षात्कार के आधार पर, यदि शोध-अनुसन्धान करें, तो निश्चय ही अनेक ऐसी परतें उभरेंगी, जिससे हिन्दी के विकासात्मक अध्ययन को पर्याप्त सम्बल मिलेगा। यदि मानस-प्रेमी विद्या-संस्थान या साहित्य-प्रतिष्ठान भाव और भाषा के मर्मज्ञ मानस-व्यास के वैदुष्यपूर्ण प्रवचनों को ध्वन्यंकित कर, उनसे नैबन्धिक तथ्यों को चुनकर पुस्तकाकार प्रदान करें, तो वे हिन्दी की बहुमूल्य निधि सिद्ध हों।

अभी तो श्रावण शुक्ला सप्तमी के परिपार्श्व में तुलसी पक्ष और तुलसी सप्ताह का आयोजन चल रहा है। मेरा विनम्र सुझाव है कि इसे मानस-पक्ष या मानस-सप्ताह के रूप में मनाया जाय, जिसमें मानस का विभिन्न दृष्टि-कोणों से अध्ययन हो, विशेषकर उसके राष्ट्रीय तथ्यों को समस्त भारतवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। आज तक मानस को साम्प्रदायिक ग्रन्थ की संज्ञा देकर उसकी महत्ता को सीमित रखा गया है, फलतः सरकार भी उस

ओर सन्दिग्धात्मा बनी हुई है। किन्तु राम-राज्य के परिकल्पक राष्ट्रपिता बापू ने जब रामायण को देशोद्धार का अद्वितीय मन्त्र मान लिया, तब इसमें सन्देह की गुंजायश ही नहीं रह जाती। राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक इस मानस-महाकाव्य की राष्ट्रीय स्तर पर जब तक पूजा नहीं होगी, तब तक इस सद्ग्रन्थ का सच्चा सम्मान नहीं होगा। तो, भारतीय जनता, समाज, समाज के शुभानुध्यायी विद्वान् एवं साहित्यिक नेताओं तथा संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे 'रामचरित मानस' को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' के रूप में स्वीकृति देने के निमित्त सरकार को भारत के जन-जन के मन्तव्य से अवगत कराएँ। साथ ही, प्रत्येक घर में तुलसी की रामायण की एक प्रति और तुलसी का प्रामाणिक चित्र पहुँचवाने की व्यवस्था करें।

ध्यान रखना है कि गणतन्त्र में सरकार से जनता बड़ी होती है। पहले जनता को मानस की राष्ट्रीय गरिमा के प्रति श्रद्धावनत होना है। सरकार तो समय पर स्वयं झुक जायगी।

●

निराश होने का कोई कारण नहीं है। आज भी तुलसी भारतीय जन-मानस पर छाये हुए हैं। आज भी मानस की लाखों प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं और घर-घर में रामचरित मानस का पाठ होता है। उस समय जब भारतीय संस्कृति निराशा में आकण्ठ मग्न थी, तुलसी ने राम नाम से उसे बचा लिया; तो आज रामचरित मानस के रहते हमें कोई गिरा नहीं सकता।

—रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री
सहायक मंत्री हि० सा० स०, प्रयाग



तुलसी : एक कहानी की मनोरंजक कथावस्तु में

⊙

डॉ० विवेकीराय, पी-एच० डी०
प्राध्यापक : डिग्री कालेज, गाजीपुर

[गोस्वामी तुलसीदास किस कदर भारतीय जन-जीवन से घुल-मिल गये हैं और उनके 'रामचरित मानस' की अर्धालियाँ किस प्रकार भारतीय-जनता के दैनंदिन व्यवहार एवं बोलचाल का अंग बन गयी हैं; प्रस्तुत कहानी के माध्यम से उपस्थित करने का प्रशस्य प्रयास किया है युवा पीढ़ी के निष्ठावान लेखक एवं ललित-निबन्धकार डॉ० विवेकी राय एम० ए०, पी-एच० डी० ने ?—सम्पादक]

'नर वानरहिं संग कहु कैसे ?'

दारोगा जी ने आते ही लाटा बाबा से पूछ लिया। उनका तात्पर्य यह था कि बिहारी से लाटा बाबा का सम्बन्ध शोभनीय नहीं। बिहारी नाजायज़ गाँजा रखने के जुर्म में फँस गया है और उसने अपने को निर्दोष साबित करने के लिए लाटा बाबा का नाम गवाह के रूप में दिया है।

लाटा बाबा ने चट सलामी दागते हुए दारोगा जी को उत्तर दिया :

'हरि इच्छा भावी बलवाना।'

'कुशल तो है ?' दारोगा जी ने फिर पूछा।

'हमरे कुशल तुम्हारेहि दाया।' लाटा बाबा ने कहा।

'आप बिहारी जैसे फितरती के चक्कर में कैसे पड़ गये ? वह पक्का खिलाड़ी गुइयां है। समझे कि नहीं ?'

'हुजूर, बिहारी हमारा मित्र है। रामायण में लिखा है कि 'जे न मित्र दुख होंहि दुखारी, तिनहिं बिलोकत पातक भारी।'

'सो आप दोस्ती के कारण गवाही करेंगे ? आपकी गवाही झूठी होगी। समझे कि नहीं ? यह जुर्म है।'

'परवरदिगार ! झूठ का तो जमाना ही है। जो सच कहा जाय उसे भी लोग झूठ समझते हैं। कलिकाल का यही धर्म है। 'झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ

भोजन झूठ चवेना।' मगर मैं आप से सच कहूँगा, उस वेचारे गरीब को फाँस कर क्यों बरबाद करियेगा? सेवा में शक्ति भर वह हाजिर रहेगा।'

'देखो चौधरी, मैं झूठ किसी को नहीं फाँसता। समझे कि नहीं? हम सोचते हैं कि सभी इंसान एक ही भगवान की संतान हैं। जो जैसा करेगा, वैसा फल पायेगा। हमको कानून जरूर देखना है, परन्तु हम गरीब और निर्दोष का ख्याल रखते हैं। समझे कि नहीं?'

'तुम बिन अस व्रत को निरबाहा?' लाटा बाबा उल्लसित होकर बोले।

'· · · मगर मुलजिम को भी चाहिये कि कायदे से पेश आये। खाली हाथ जोड़कर हुजूर-हुजूर कहने से काम नहीं चलता। समझे कि नहीं? मैं तो ज़रा तरह दे गया, नहीं तो 'कम्प्लीट इन्क्वारी' शुरू करने पर हर देवकुटी पर पूजा चढ़ाना पड़े। समझे कि नहीं? केश बहुत सीरियस है।' दारोगाजी ने एक सिगरेट जलाई।

'हुजूर! खूब समझता हूँ। 'कारज सकल भरत कर हाथा।'' वेचारा गरीब आदमी है। अदावत के कारण फँसा दिया गया है। खाने को ठिकाना नहीं। वह उन लोगों में से है जिनके लिए लिखा गय। है—'जीवन शव सम चौदह प्रानी।' बाबू की बनिहारी करता है।'

'देखो भाई, दुनिया में मुझे बनिहार-मजदूरों से बहुत चिढ़ है। इनकी 'सर्किल' में जैसी 'डिसआनेस्टी' है, वैसी और कहीं नहीं मिलती। समझे कि नहीं? आप नौकर मजदूर रखें काम करने के लिए, सो वह काम तो कुछ करेगा नहीं, अलबत्ते ऐसी कोशिश ज़रूर करेगा कि आपके घर की सारी चीज़ हड़प ले! आपकी आँखें जहाँ गफलत में पड़ीं कि हलवाह आपका हल-जुआ अपने घर रख देगा। वह हर उपाय लगायेगा कि खेत का एक-एक दाना उसके घर चला जाय। मैंने तो अभी अपने खेत नहीं देखे हैं, परन्तु बड़े होने पर 'आई केम टु नो' कि खेती जैसी चुहेडबाज़ी और कहीं नहीं होती। समझे कि नहीं? इसीलिए इनका पेट नहीं भरता।'

'समझा सरकार! लिखा है—'करम प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा।' देश में सुराज हुआ, परन्तु इनकी गुलामी की वेड़ी नहीं कटी। सबसे बड़ा दुःख तो यही इनके लिलार में टाँकी मार दिया गया है। 'पराधीन सुख सपनेहु नाहीं।' सरकार! देश में रामराज्य अभी देर से आयेगा।' लाटा बाबा ने बात को एक दूसरी ओर घुमाया।

'तुम राम-राज के फेर में हो उधर देश में रावणराज का कुचक्र चलाया जा रहा है। समझे कि नहीं? चीनी-अमेरिकी गठबन्धन हमारे लिए कम खतरनाक नहीं। उधर पाकिस्तान भी अपनी गन्दी हरकतों से बाज नहीं आ रहा।'

'तो सरकार! 'इहाँ कुम्हड़ बतिया कोई नाहीं।' चीन भी अच्छा सबक पा जायेगा और अमेरिका को भी नसीहत मिल जायगी। रहा पाकिस्तान, सो यदि बँगला देश की घटनाओं से भी उसकी आँखें नहीं खुलीं, तो वह दिन दूर नहीं, जब बँगला देश की घटनाओं की पुनरावृत्ति शीघ्र ही पश्चिमी पाकिस्तान में भी हो सकती है। 'जेहि सायक मारा मैं बाली, तेहि सर हतौं मूढ़ कह काली।'

इसी समय एक सिपाही जलपान लेकर आया। मैली-फटी धोती और वैसे ही फटे गमछे से शरीर किसी प्रकार ढके ठिगने कद का निर्जीव-सा चौकीदार भी पीछे-पीछे आया। उसे देखते ही दारोगा जी बरस पड़े :

'वह बिहारी हरामी का पिल्ला कहाँ चला गया था? अभी चमड़ी उधेड़ कर भूसा न भरवा दूँ तो दारोगा नहीं। समझे कि नहीं? · · ·यह क्या लाये? अच्छा, हलुआ है? देखो, पूरा देवी जी के चौरा की मूड़ी की तरह गोल-गोल बनाकर ला पटका · · ·इधर के बुन्देलखण्डी लोग पूरे बैल हैं, एकदम सत्तू खोर! नास्ता करना तो ये जानते ही नहीं! समझे कि नहीं? . . .चौधरी, इस इलाके में खासतौर पर हम घबरा जाते हैं। एकदम हजीब लोग रहते हैं। समझे कि नहीं?' हलुआ चखते हुए दारोगाजी ने कहा।

'वही हाल है सरकार, जैसे चित्रकूट के कोल-भीलों ने रामचन्द्र जी से कहा था—'यह हमार अति बड़ि सेवकाई, लेहिं न बासन बसन चुराई।' क्या किया जाय सरकार—'पाप करत निसि बासर जाहीं, नहिं कटि-पट नहिं पेट अघाहीं।' लाटा बाबा ने कहा।

'नहीं, हम तुमसे यह कह रहे थे कि जितना ही पश्चिम-उत्तर चले जाइये, खाने-पीने में 'डिऐंसी' मिलेगी। समझे कि नहीं? यहाँ तुम्हारे गाँव में तो मालूम होता है कि कोई आदमी ही नहीं है?' दारोगाजी ने कहा।

'हाँ सरकार! 'इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा'? गाँव-गँवई है। जानवर रहते हैं। आदमी तो शहरों में रहते हैं। वहीं मंत्री लोग रहते हैं। एम० एल० ए० लोग भी वहीं रहते हैं। वोटिंग खतम होने पर सीधे मुँह बात नहीं करते। सच है—'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।' वे ही सरकार हैं। जो चाहें करते

हैं। 'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई, भावइ मनहिं करहु तुम सोई।' जनता की तकदीर खराब है—'लिखत सुधाकर लिखिगा राहू।' वोट आता है तो चमचमाती कार और बगुला की पाँख की तरह धोती देखकर हम लोग भूल जाते हैं। बड़े-बड़े लोग खुशामद करते हैं। हे भगवान्! 'जानि न जाइ निशाचर माया' और 'ऊंच निवास नीच करतूती।' लेकिन हाँ, दारोगाजी! कहे देता हूँ कि एक दिन जरूर जनता चेतेगी, तब 'उबरे अंत न होइ निबाहू।'

'अरे चौधरी! तुम तो पूरा बकता है। मैं कहता हूँ, सुनो! 'मूँदहु आँख कतहु कुछ नाहीं।' समझे कि नहीं?··· जरा उस खरगोश के बच्चे बिहारी को समझा दो। मगर वह अब तक आया नहीं?'

'क्या समझा दूँ? वह साला चोर हो गया और आप हैं दारोगा! तो आप ही समझाइये। 'खग जानै खग ही की भाषा।' मेरी तो राय है कि इसे डाँट-फटकार छोड़ दीजिये। 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।'

'हम स्कूल-मास्टर नहीं है, दारोगा हैं। चौधरी, समझे कि नहीं? हलुए का नाश्ता खतम करते हुए दारोगा जी बोले।

'तो सरकार क्या करियेगा, मार डालिये, बाँध दीजिये—'होइहैं सोइ जो राम रचि राखा' अधिक क्या कहा जाय।'

दारोगा जी लघुशंका के लिए उसी समय उठे और एक ओर चले गये तो लाटा बाबा ने चौकीदार से पूछा :

'कहो, क्या समझाने का मामला है?'

'पचास रुपये मांग रहे हैं।'

'तो इतना तो वह पचास जनम में भी नहीं दे सकता।'

और फिर दारोगा जी के लौट आने पर लाटा बाबा ने कहा :

'सरकार बाँगला देश के शरणार्थियों का रेला देख कर शरणार्थी-सहायता के लिए हम लाटा बाबा जैसे गजटेड गँजेड़ी ने गाँजा छोड़ दिया और मैं समझता था कि थानेदार लोग भी पूजा-पाठ लेना बन्द कर दिये होंगे। पर कह नहीं सकता कि 'मतिभ्रम मोर कि आन विशेषा।'

'ओह! तो तुम क्या समझते हो कि मैं हराम का पैसा लेता हूँ। मेरे घर बीसों बीघा खेत है। पचासों प्राणी जीते हैं, पलते हैं। समझे कि नहीं? दो लड़के एम० ए० फाइनल में हैं। एक एम० बी० बी० एस० कर रहा है।

चार लड़कियों की शादी कर चुका। मकान बनवाया। कहाँ से आया? हराम का पैसा कहाँ रमता है? देखो चौधरी! मैं रोज नहा-धोकर भगवान का दस मिनट भजन करता हूँ। तुलसी की रामायण का पाठ करता हूँ। समझे कि नहीं? सारा काम भगवान के हुक्म से करता हूँ। बिना उसकी मरजी के एक पत्ता भी नहीं डोलता। वह चींटी को आहार देता है और वही हाथी का पेट भरता है। उसी की कृपा से—'मूक होइ वाचाल पंगु चढ़हि गिरिवर गहन।' हर इंसान को सब्र के साथ अपनी ड्यूटी पूरी करनी चाहिए। समझे कि नहीं? झूठ, फरेब, दगा, जालसाजी और बेईमानी का नतीजा तुरन्त भोगना पड़ता है। समझे कि नहीं!'

'समझा: 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे।' लाटा बाबा ने मुस्कराकर कहा।

'क्या मतलब?'

'मतलब कि यदि आपकी जेब में पचास रुपया चला जाय तो बिहारी का ग्रह टल जाय?'

'अगर टल जाय तो खुशकिस्मती समझो, चौधरी···।'

इतने में तीन-चार सिपाही दौड़े आये, चिल्लाये—'सरकार! मुलजिम फरार हो गया। सारी मेहनत बेकार गयी।'

'देखो चौधरी! उसका पता लगाओ। तुमको गवाह कर चुका है। कहीं तुम न फँस जाओ।' लाटा बाबा की ओर मुखातिब होकर दारोगा जी बोले।

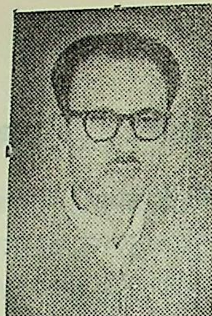
'मैं, सुनिए थानेदार साहब! मैं चला: 'इहाँ न लागइ राउर माया।' लाटा बाबा गजटेड रईश है। पचास रुपया? आप जानते हैं बिहारी जैसे आदमी को एक रुपया कितना काम करने पर आजकल मिलता है? तीन दिन तक दिनभर कड़ी धूप में खुरपी लेकर किसी बाबू के खेत में निराई करते हैं तो कहीं एक रुपये के दर्शन होते हैं और उस पर कितने दाँत लगे रहते हैं, 'तेउ पावत सन्देह?'

लाटा बाबा उठकर चल दिये।

'सुनिये···सुनिये···!' सिपाही चिल्ला उठे।

'तजहु आस निज-निज गृह जाहू।' तुलसी की चौपाई का उच्चारण करते हुए लाटा बाबा ने हाथ डुलाया। लोग ताकते रह गये।

●



रामकथा : आज की समझ

डॉ० युगेश्वर पाण्डेय, एम० ए०, पी-एच० डी०
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

[युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि लेखक एवं रामायण के आस्थाशील अध्येता डॉ० युगेश्वर पाण्डेय के अनुसार संत कवि गोस्वामी तुलसीदास का मूल उद्देश्य जनता को प्रबोधित करना था; इसीलिए उन्होंने रामचरित मानस को जनता की 'भाषा' में लिखा और रामकथा को आज के सन्दर्भ में निरूपित करते हुए इस ढंग से प्रस्तुत किया, जिससे उनका 'मानस' आध्यात्मिक आराधना का ग्रन्थमात्र न रह कर समाज के विविध पक्षों को समुन्नत एवं पुष्ट करने का एक आचार-संहिता ग्रन्थ बन गया है—सम्पादक]।

तुलसीदास का मूल उद्देश्य जनता को प्रबोधित करना था। इसीलिए संस्कृत के स्थान पर 'भासा' में उन्होंने मानस लिखा।

संस्किरित है कूप जल, भाषा बहता नीर। और जरूरत इस बात की थी कि जो कूप जल हो चुका था, जो बंध चुका था, जिसका विकास नहीं हो रहा था, जिससे जनता का प्रबोधन नहीं हो रहा था; उसे जनता के लिए खोला जाय। जनता को प्रवुद्ध किया जाय, प्रबोधन किया जाय; तब तुलसीदास ने प्रतिज्ञा की 'भाषा बद्ध करब मैं सोई' और दूसरी जो महत्वपूर्ण चीज है 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।' माने जिससे मेरे मन को प्रबोध हो मेरा मन—आप सब का मन। जिससे जनता का प्रबोधन हो, जिसे जनता समझ सके; ऐसी भाषा में मैं रामचरित का निर्माण करूँगा। यह उनकी प्रतिज्ञा है। आवश्यकता इस बात की है कि रामचरित मानस का इस ढंग से प्रचार किया जाय, इस ढंग से प्रसार किया जाय, जैसे एक युग में संस्कृत में बंद हो जाने के कारण रामचरित मानस जनता के लिए प्रबोधनहीन हो गया था। उसी प्रकार से आज भी कुछ ऐसी स्थिति बन गई है कि रामचरित मानस को जनता में नये आधार पर प्रबोधन करने की जरूरत है। अब मैं आपको

दूसरी बात कहूँगा। तुलसीदास ने रामचरित मानस को समझने की शर्तें हमारे सामने रखी हैं। दो बातें जिनमें नहीं होगी, उन्हें रामचरित मानस समझने में दिक्कत होगी। क्या क्या 'प्रभु-पद प्रीति न सामुझि नीकी' दो शर्त। पहली शर्त है 'प्रभु पद प्रीति'; प्रभु के पैरों में प्रीति होनी चाहिए और दूसरी शर्त है कि खाली सिर हिला-हिला कर भक्ति-प्रदर्शन से काम नहीं चलेगा। समझदारी भी अच्छी होनी चाहिए, प्रबोधन भी बढ़िया होना चाहिए। ये दो शर्तें तुलसीदास ने हमारे सामने मानस को समझने के लिए रक्खी है। मेरा ख्याल है पूरे रामचरित मानस की येही दो शर्तें हैं। ये और महत्वपूर्ण भी हैं। क्या है? तुलसीदास राम को क्या समझते हैं? रामचरित को वे लिखते क्यों हैं? क्या संकट था तुलसीदास के जमाने में, जिसके लिए उन्होंने रामचरित मानस लिखा? लोगों में आमतौर से तुलसीदास के बारे में यह धारणा है कि हिन्दू-मुसलमान के जो झगड़े थे, उसमें हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए यानी आत्मरक्षा के लिए रामचरित मानस लिखा गया। वास्तविकता इससे कुछ भिन्न है। देखिए, यदि मानस केवल आत्मरक्षा के लिए ही लिखा गया होता तो बात कुछ दूसरे ही ढंग से कही गई होती। जो मूल संकट था उस युग का और जो संकट आज का भी है, वह है चरित का पतन; और इसीलिए राम का ऐसा चरित और व्यक्तित्व हमारे सामने तुलसीदास जी ने रक्खा है जिस चरित को देख कर हम अपने चरित का निर्माण कर सकें। क्यों? क्योंकि जो बड़े लोग करते हैं वैसा ही चरित जनता का होता है। वैसा ही आचरण जनता करती है। तो राम एक तरफ तो हमारे सामने अपना आदर्श चरित उपस्थित करते हैं और दूसरी ओर राम चरित की जो कथा है, वह समस्त भारतीय साहित्य और संस्कृति को खोलने की कुंजी है। इसमें बहुत-सी बातें हैं, लेकिन मैं एक बात ही कहूँगा। वह कुंजी है कर्मयोग का सिद्धान्त। काम करो किन्तु फल के प्रति आसक्ति न रक्खो। फल के प्रति स्पृहा न रक्खो। गीता भी यह कहती हैं, उसमें यह बार-बार कहा गया था; लेकिन जो कनिष्ठ भक्त हैं, वे गीता को उस समय समझ नहीं रहे थे। तुलसीदास ने हमारे सामने एक ऐसा आदर्श चरित रखा जिस चरित को देख कर हम अपने चरित का निर्माण कर सकें। बड़े संक्षेप में उस चरित्र की बात आपके सामने रखूँगा। राम चरित यह है कि राम जो कुछ भी करते हैं, उसका जो नतीजा निकलेगा; उस नतीजे से वे कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाना चाहते और इसीलिये जब वह काम करते हैं तो निर्विकार भाव से करते हैं। एक उदाहरण आपके सामने हैं। राम जनकपुर में बैठे हैं, स्वयंवर हो रहा है, जनक जी ने एक अजीब बात कह

दी : 'वीर विहीन मही मैं जानी ।' कितनी भयंकर बात है ? जब कोई देश या राष्ट्र वीरों से हीन हो जाय, सब कायर हो जायं, कमजोर ही कमजोर हो जायं । कितनी खराब स्थिति है उस देश की ? लक्ष्मण को गुस्सा आया । स्वाभाविक था । न केवल उनके गुस्से का कारण यह था कि उनका और उनके बड़े भाई का अपमान हुआ था; उन्हें इस बात का भी दुख था कि जनक चिंतित हैं । चिंतित होने की कोई बात नहीं। धरती अभी वीरों से हीन नहीं हुई है। इस बात के लिए लक्ष्मण को गुस्सा आया। लेकिन राम बैठे हुए थे। क्यों बैठे हुए हैं ? क्योंकि जो फल मिलने वाला है, जो नतीजा निकलने वाला है उसके प्रति राम उदासीन हैं। अगर जनता चाहेगी तो मैं जनता का काम करूँगा और जनता का काम भी तब करूँगा, जब जनता का जो प्रतिनिधि है, वह बोले और आज्ञा दे कि यह काम तुम करो। जनता का प्रतिनिधि कौन है, गुरु। गुरु जी की आज्ञा होती है : 'उठउ राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।' क्यों उठो ? गुरु जी भी कितने समझदार हैं, कितने आदर्श गुरु हैं। जनता के कितने प्रतिनिधि हैं। राम को धनुष तोड़ने के लिए कहते हैं। क्यों ? इसलिए नहीं कि तुम सीता से विवाह करो, वह तो उसका नतीजा निकलेगा ही। इसकी बात छोड़िए, जब कोई अच्छा कार्य हम करेंगे तो उसका नतीजा कोई निकलेगा ही, फल मिलेगा ही । नहीं 'मेटहु तात जनक परितापा।' जनक का जो दर्द, पश्चात्ताप और दुख है; यह कि धरती वीरों से हीन हो गई है। इस पश्चात्ताप जनित दुख को मिटाने के लिए तुम धनुष को तोड़ो। और तब राम उठते हैं। और चूँकि राम का कोई निजी स्वार्थ नहीं है, राम का अपना कोई लाभ इसके द्वारा होने वाला नहीं है; अतः नतीजा यह हुआ कि जो धनुष बड़े-बड़े महारथियों से डिगा नहीं था, जिस धनुष को बड़े-बड़े महारथी हिला नहीं सके थे; वह धनुष राम के छूते ही टूट गया। क्यों टूट गया ? क्योंकि राम की शक्ति जो है वह जनता की शक्ति है, लोक-शक्ति है। लोक-शक्ति में बड़ा बल होता है। लोग कहते हैं कि हनुमान राम की शक्ति से ही सब कुछ करते हैं। और राम (मेरी दृष्टि में) लोक की शक्ति से करते हैं।

इस दृष्टि से आप राम के चरित को देखें। अब दूसरा उदाहरण देखिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम को राज मिलता है। राम शांत हैं। दूसरे दिन मालूम हुआ राम को कि वन जाना है। राम फिर भी शांत हैं। राज्य मिलने की उन्हें जरा भी प्रसन्नता नहीं हुई और वन जाने का भी, देखिए एकदम उलटा, उन्हें कोई दुख नहीं हुआ। तो ऐसे वे राम हैं। अब आप पूछेंगे कि भाई, राम जब वन

गए तो राम को दुख क्यों नहीं हुआ ? आचार्य लोग इसके अनेक कारण बताते हैं। मेरे दिमाग में सीधा कारण है इसका कि राम लोक प्रतिनिधि जो थे। जिस देश की जनता बिलकुल गरीब हो, झोपड़ियों में रहती हो, जंगलों में रहती हो; उस देश का अगर प्रतिनिधि तुमको बनना है तो बड़े-बड़े होटलों के सुसज्जित कमरों में और शानदार भवनों में रह कर तुम जनता के प्रतिनिधि नहीं बन सकते। अब इस बात को अगर आप देखना चाहें तो आधुनिक जो राम हुए हैं, उनके चरित में देखिए। गांधी जी का बैरिस्टर वाला रूप देखिए और फिर वह रूप देखिए जिसमें वे दो गज की धोती और उस पर एक अगोंछा डाले हुए लाठी लिए घूम रहे हैं। बैरिस्टर थे वे, पैसा कमा कर आनन्द कर सकते थे। लेकिन नहीं जानबूझ कर उस पुरानी वेश भूषा को छोड़ा उन्होंने और हिन्दुस्तान का किसान-मजदूर जैसे रहता है, वैसे रहने की कोशिश की। राम के वन जाने के जो अनेक उद्देश्य हो सकते हैं और जिनकी आम चर्चा होती है, उनमें मेरी दृष्टि में एक बड़ा उद्देश्य यह भी है कि अगर जनता का राज करना है तो जनता के समान रहो, जनता के बीच में रहो और जनता के लिए रहो। यह नहीं कि जनता तो पहने दो गज की धोती और उसका प्रतिनिधि पहने टेरीलीन और टेरीकाट के शानदार सूट। ऐसा आदमी जनता का प्रतिनिधि नहीं हो सकता ? तब राम ने क्या किया ? ज्योंही घर से चले कि वनवासी जो कपड़े पहनते थे, वैसे ही कपड़े पहन लिए। और वनवासी जिन झोंपड़ियों में रहते थे, (हिन्दुस्तान झोपड़ों का देश है) उन्हीं झोंपड़ों में रहने लगे। (इन्हीं तृण फूस छप्पर से ढके ढुलमुल गँवारू झोंपड़ों में ही हमारा देश बसता है।—अज्ञेय) वे चाहते तो राजा दशरथ से कह सकते थे कि महाराज ! हमारे लिए एक भवन बनवा दीजिए तब हम जंगल में रहेंगे। भवन में भी रहते, जंगल में भी रहते और प्रतिज्ञा भी पूरी होती। यह सब राम ने नहीं किया। आखिर कोई कारण तो होगा। क्या जंगल में भवन नहीं बन सकता था ? क्या जंगल में भवन नहीं होते ? नहीं, राम को यह सब करना ही नहीं था। राम तो लोक के प्रतिनिधि हैं।लोक जैसा करता है, लोक जैसा है, वैसा ही वे बनना चाहते हैं और चौदह बरस जो आदमी जनता में रह कर जनता जैसा आचरण कर ले; वह आदमी जनता का वास्तविक प्रतिनिधि होगा। आज ठीक उल्टा हो रहा है।

आदमी जनता का प्रतिनिधि रोज रहता है। कहीं एम०एल० ए०, एम० पी० या मंत्री बन गया, तब तो पाँच बरस के लिए वह राजा का आदमी

हो जाता है। राम राजा के आदमी होकर भी जनता के आदमी हैं। और यह जो राम का चरित्र है; राजा होकर के जनता का आदमी बनना, अमीर होकर गरीब का जीवन बिताना, और ऐश्वर्यवान होकर भी सामान्य आदमी का जीवन बिताना, यही तो सच्चा प्रतिनिधित्व है। फल क्या निकला, आप देखें। राम जंगल जाते हैं; जंगल के रहने वाले गरीब निषाद, भील सब दौड़े चले आ रहे हैं कि आज हमारा प्रतिनिधि चला आ रहा है। राम उनसे गले मिलते हैं, कहीं हिचक है ? याद रखिए, जब राम गले मिले तो ब्राह्मणों में जो श्रेष्ठ ब्राह्मण था, गुरु वशिष्ठ को गले मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती है। नहीं तो भला कोई ब्राह्मण निषाद से गले मिलेगा ? ऐसा भी कभी हो सकता है। लेकिन चूँकि राम ने एक ऐसा मार्ग प्रस्तुत कर दिया था कि सारी दुनिया उसी रास्ते पर चली जा रही है और मेरा ख्याल है कि राम का जो यह चरित्र है, वह हमारे आज के शासकों के लिए, दूसरे जन प्रतिनिधियों के लिए बड़ा ही अनुकरणीय है।

अब मैं आपको दूसरी बात कहूंगा। ऊपर मैंने यह कहा कि तुलसीदास ने राम भक्ति के कुछ आधार बनाए हैं और तुलसी के राम को मैं राष्ट्र के रूप में देखता हूँ। राम क्या हैं ? तुलसीदास राम को समझते हैं कि यह जो सारा विश्व है, वही राम है : 'सिया राम मय सब जग जानी।' सारा संसार सीताराममय है। संसार सीता-राम से अलग कुछ नहीं है। मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि यह जो राष्ट्र है, वह राम का पर्याय है। मैं आधुनिक संदर्भ से रामचरित को जोड़ रहा हूँ। अब कोई आदमी अगर सच्चा देशभक्त बनना चाहता है तब उसे जानना चाहिए कि भक्ति की विशेषतायें क्या हैं ? भक्ति कैसे प्राप्त होती है ? पहली चीज 'राम कृपा बिन सुन खगराई, जानि न जाय राम प्रभुताई।' राम की कृपा के लिए पहली चीज क्या है ? राम कृपा। राम की प्रभुता जानने के लिए क्या चाहिए ? राम की कृपा। अब आप देखिए आप इस देश में रहते हैं। इस देश की कृपा, इस राष्ट्र की कृपा न हो, यह राष्ट्र आपको रोज भूखों मारता रहे, खाना ही न दे, जेल में बन्द करता रहे। तो राष्ट्र की कृपा जिस आदमी को नहीं मिलेगी; वह आदमी देश भक्त बनेगा क्या ? तो जैसे राम की कृपा के द्वारा राम की प्रभुताई जानी जाती है; उसी तरह जब राष्ट्र की कृपा होगी, राष्ट्र के शासन की कृपा होगी, तब हम सही माने में देश भक्त बन सकेंगे। तब हम समझेंगे यह देश मेरा है। यह देश हमारा है। आज का संकट है लोग यह कहते हैं कि यह शासन तो अंग्रेजों से भी बुरा शासन है। क्यों ? क्योंकि इस शासन ने, जो शासन की कृपा है, राष्ट्र की कृपा है,

नहीं दी। सुख-सुविधायें नहीं दीं; तो राष्ट्र का जो गौरव है, राष्ट्र की जो प्रभुता है, वह नहीं जान पाए लोग, यानी जनता नहीं जान पायी। अतः पहली चीज है राष्ट्र की कृपा और राष्ट्र की प्रभुता जानना :

राम कृपा बिनु सुनु खगराई।
जानि न जाय राम प्रभुताई।।

और जब तक राष्ट्र की कृपा न मिले, तब तक राष्ट्र की प्रभुता न जाने, और जब तक प्रभुता न जाने तब क्या होगा :

जाने बिन न होय परतीती।

जिस चीज को आप जानते नहीं, उसके प्रति आपका विश्वास नहीं हो सकता : 'जाने बिन न होय परतीती। बिन परतीति होय नहिं प्रीती।' अतः जब प्रतीती नहीं है, राष्ट्र के प्रति विश्वास नहीं है, राष्ट्र नायक जो जीता रहा है, उसके चरित्र में आपको संदेह है, आपको उसके प्रति विश्वास नहीं है और यदि कहीं यह विश्वास हो गया कि हम त्याग कर के क्या करेंगे, जब हमारे शासक ही खा जायेंगे यानी किसी प्रकार का अविश्वास अपने शासकों में है तो शासक में अविश्वास का मतलब है, अपने राष्ट्र में अविश्वास। अपने देश में अविश्वास। नतीजा क्या होगा ? नतीजा होगा जब आपको विश्वास नहीं है, प्रतीती नहीं है, तब आपको राष्ट्र के प्रति 'प्रीती' नहीं होगी। तात्पर्य यह कि राष्ट्र भक्ति का वही क्रम है, जो क्रम कि राम भक्ति का है। राम और राष्ट्र की तरह राम भक्त भी राष्ट्र-भक्ति का पर्याय है। जो आदमी सच्चा राम भक्त होगा, वह आदमी सच्चा देश भक्त भी होगा। क्योंकि दोनों एक चीज हैं।

अब मैं राम के वन जाने का दूसरा उद्देश्य बताता हूँ। आज जो दुनिया है उस दुनिया की राजनीति की एक समस्या और सिद्धान्त यह है कि किसी के भीतरी मामले में दखल न दो। इसे कहते हैं अहस्तक्षेप का सिद्धान्त। बड़ा ही क्रूर सिद्धान्त है। मतलब यह हुआ इस सिद्धान्त का कि आप भारतवर्ष में जो कुछ भी करें दूसरा कोई देश उसमें कुछ भी न बोले और दूसरे देश में जो कुछ भी हो, आप कुछ न बोलें। अगर ऐसा होगा तो यह जो विश्व बंधुत्व की बात आप कहते हैं, यह कैसे चलेगी। पड़ोसी का कार्य यह नहीं होता। यदि हमारा पड़ोसी गलत काम कर रहा है तो हम जाकर कहेंगे कि तुम गलत काम करते हो। देखिए कि यह अहस्तक्षेप का जो सिद्धान्त है, इसको राम नहीं मानते। राम वन जाते हैं तो परिस्थितियां ऐसी आती हैं कि जब वह दूसरे के राज्य में हस्तक्षेप करते हैं। एक स्थिति तो तब

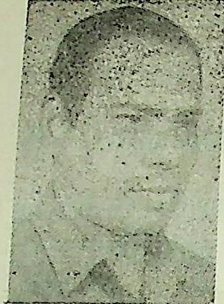
आती है, जब सुग्रीव आकर उनसे कहता है कि महाराज ! मैं इतना सताया गया हूँ कि मेरा भाई मुझे अपने घर में रहने ही नहीं देता है और मैं ऐसी जगह आ गया हूँ, जहाँ बालि शाप वश आ ही नहीं सकता। राम बालि को मारते हैं और सुग्रीव को राजा बना देते हैं। यह क्या हुआ, यदि एक आदमी पर दूसरे राज्य में अन्याय हो रहा है तो दूसरे राज्य का धर्म है कि वह उस आदमी की रक्षा करे। ठीक ऐसी ही बात है लंका के लिए भी। यह ठीक था कि राम की पत्नी सीता जी को रावण चुरा ले गया था। लेकिन यदि सीता जी को रावण चुरा नहीं ले गया होता तो भी क्या रावण का जो अत्याचार था सज्जनों पर, उसे राम बर्दाश्त करते ? याद रखिए, हर काम का कोई न कोई बहाना अवश्य होता है। अतएव महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि राम की पत्नी को रावण ले गया था, इसलिए राम ने रावण को मारा; बल्कि महत्वपूर्ण बात यह है कि राम रावण के अत्याचार से वहाँ की जनता को मुक्त करना चाहते थे। अर्थात् राम आजकल का जो अहस्तक्षेप का सिद्धान्त है उसको नहीं मानते थे। और इसीलिए उन्होंने रावण को मारा और विभीषण को राजगद्दी दी।

एक और सिद्धान्त है आज की राजनीति का। आज की राजनीति यह कहती है कि जब किसी को मारो तब उसके राज पर अपना कब्जा कर लो। राम का यह चरित्र नहीं है। अगर राम बालि को और रावण को मारने के बाद अपने किसी मैनेजर, गुमाश्ते, या भाई को बालि का राज्य या लंका का राज्य दिए होते; तब राम न तो इतने बड़े होते, और न मानस लिखा गया होता और न उनका चरित्र हमारे लिए आदर्श चरित्र ही होता। राम जो काम करते हैं वह निःस्पृह भाव से करते हैं। राम ने राज्य का जो अधिकारी या उत्तराधिकारी था, उसको यथावत राज्य सौंपा और केवल सौंपा ही नहीं; कहा भी कि भाई ! नीति से, न्याय से, धर्म से राज करना और यह कह कर तथा राज्य सौंप करके वहाँ से चले गए।

आज के जो राज नेता हैं या आज के जो व्यक्ति हैं, उनके लिए यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि वह रामचरित मानस से इस बात को सीखें कि दूसरों का दुख दूर करना, यह तो हमारा परम कर्तव्य है; लेकिन उस दुख को दूर करने में जो लाभ हो उसे हम न लें बल्कि उसका जो सही अधिकारी, उत्तराधिकारी हो उसी को वह मिले। यह राम के चरित्र की ही विशेषता है।

अब मैं एक अन्य बात की ओर ध्यान दिलाऊँगा जो हमारे देश की दृष्टि से बहुत महत्व की है। आपने देखा होगा पिछली बार जब चीन का हमला अपने देश पर हुआ तो लोगों ने कहा कि चीनी तो ७० करोड़ हैं और हम ५० ही करोड़ हैं।

उसके पास बड़े हथियार हैं आदि। रूस भी उसका सहायक है। क्या होगा? लेकिन मैं आपको बताऊं कि जब राम रावण की लड़ाई शुरू हुई तब विभीषण जो अभी नौ सिखुआ था, राम की शक्ति में उसके मन में भी यह संदेह हुआ कि 'रावण रथी विरथ रघुबीरा' देखि विभीषण भएहु अधीरा।' चिंतित हुआ कि कहीं ऐसा न हो, मेरी तो दुर्गति होगी ही; जिनको बुला कर लाया हूँ उनके लिए भी संकट उपस्थित हो जायगा। क्योंकि रावण के पास रथ है और राम जो हैं सो रथहीन हैं। बार-बार ध्यान रखिएगा लड़ाई में एक पक्ष बराबर होता है जो अस्त्र-शस्त्र पर ध्यान देता है वह शारीरिक या भौतिक शक्ति पर ध्यान देता है। यह रथ, ये सिपाही, ये बन्दूक, गोले, बारूद ये सब भौतिक शक्तियाँ हैं। और भौतिक शक्तियाँ नहीं लड़ती। तुलसीदास कहते हैं, राम कहते हैं और आज के गांधी कहते हैं कि शरीर नहीं लड़ता; लड़ती है आत्मा। मन को दृढ़ करो, आत्मिक शक्ति को जगाओ और आत्मिक शक्ति को जगाओगे तो सत्तर करोड़ नहीं सत्तर अरब पर तुम विजयी बन सकते हो। लेकिन यदि तुम में आत्मिक बल नहीं है तो बन्दूक हाथ में रहेगी और गोली छूटेगी नहीं। राम क्या कहते हैं, राम का उत्तर ध्यान में रखें तो आप समझ जाएँगे कि लड़ाई कैसे लड़ी जाती है, लड़ाई क्या चीज लड़ती है। राम ने कहा वत्स घबराओ नहीं, राम लड़ेगा। किस चीज से लड़ेगा : 'सौरज, धीरज तेहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।' मैं प्रथम अंश को छोड़ देता हूँ। राम के इस वाक्य का जो दूसरा अंश है उसी की बात बताऊँगा। राम की जो पताका होगी वह क्या होगी? पताका का मतलब है कीर्ति, यश। राम का यश किस बात का होगा। पताका जो ऊपर लहराए, जिसे दूर से ही लोग देख लें कि यह राम की पताका है। गांधी जी की पताका क्या है? सत्य और अहिंसा। गांधी जी की पताका तिरंगा नहीं है। तिरंगा तो किसी की भी पताका हो सकती है। गांधी जी की पताका है सत्य और अहिंसा। यहाँ सत्य, शील। उन्होंने विभीषण से कहा घबराओ नहीं अपने आचरण पर, अपनी सच्चाई पर, अपने शील पर दृढ़ रहो हम विजयी होंगे ही। लड़ता कौन है, युद्ध कौन करता है, वह है सत्य और शील। वे राम की पताकाएँ हैं। राम के यश का आधार क्या है, लड़ने की जो चीज है सत्य और शील वही राम की पताका थी। तो राम का जो यह आदर्श है सत्य और शील का, यह हमारे लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण आदर्श है। इन आदर्शों के द्वारा ही हम अपने चरित्र का निर्माण कर सकते हैं।



तुलसीदास के प्रति : दो श्रद्धाञ्जलि-कविताएँ

⊙

डॉ० महेन्द्र भटनागर एम० ए० पी-एच० डी०

अध्यक्ष : हिन्दी तथा शोध-विभाग : शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर

ओ महाकवि !
गा गये तुम गीत जीवन के मरण के,
भाव-पूरक, मुक्त मन के
सत्य, शिव, सौन्दर्य-वाहक
गीत जो अभिनव अमर
धरती-गगन के !
हैं अपार्थिव और पार्थिव
लोक के परलोक के !
साहस, प्रगति, नव चेतना,
नव भावना, नव कल्पना
आराधना के गीत !
जिनमें गूंजता है प्राणमय संगीत–
मानव हो न किंचित देखकर तू
काल के निर्दय भयंकर रूप से भयभीत,
निश्चय मनुजता की लिखी है जीत !
ओ अमर साधक !
नई अनुभूतियों के देव,
तुमने जीर्ण संस्कृति का किया उद्धार,
श्रद्धा से झुकाता शीश यह संसार !

छा रहा था भय
कि जब मानव भटकता था अंधेरे में,
विवशता के कठिन आतंक-घेरे में,
धुआँ चहुँ ओर झूठे धर्म का
जब घिर रहा था व्योम में,

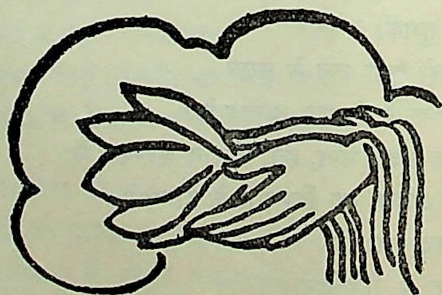
ओ' वास्तविकता जा छिपी थी
चक्र, कुण्डल, मंत्र, नाड़ी की
विविध निस्सार माया में,
भ्रमित था जग सकल
उलझी अनोखी रीतियों में,
तब उठे तुम
और तुमने थाह ले ली
पूर्ण 'मानस' भाव के बहते समुन्दर की !
किया विद्रोह अविचल
बन गया जो त्रस्त, पीड़ित, नत
मनुजता का सबल सम्बल !

⊙

महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच, हम गा नहीं सकते !
अँधेरा छा रहा था जब कि तुम आये,
किन्तु
वह सारा धुँआ छल का
बिखर कर उड़ गया
ज्यों ही तुम्हारे स्वर
गगन में मुक्त मँडराये !
कि तुमको देखकर
लाखों दुखी जन के नयन
सुख-वारि से भर डबडबाये !
और उजड़े भग्न, हत, वीरान घर-घर में
नई आशा, नए विश्वास के दीपक
विपद् कर भंग
फिर से टिमटिमाये !
तुम्हारी ज्योति के सम्मुख
तिमिर-पट छा नहीं सकते !

महाकवि तुम, तुम्हारे गीत
सच, हम गा नहीं सकते !

धरा पाकर तुम्हें जब मुसकरायी थी
बड़े उत्साह से प्रति प्राण में
नव चेतना आकर समायी थी,
तुम उसी जन-भावना के बन गये वाहक !
अमर हे संत !
संस्कृति के विधायक !
हम तुम्हारी थाह जीवन में
कभी भी पा नहीं सकते !
महाकवि तुम, तुम्हारे गीत
सच, हम गा नहीं सकते !



'मानस' में काव्य-शास्त्रीय शब्दावली का अनुशीलन

⊙

डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी, पी-एच० डी०

प्राध्यापक : हिन्दी विभाग : पं० जवाहरलाल डिग्री कालेज, बाँदा

[तुलसी की अमर कृति 'रामचरित मानस' ने काव्य के अन्तरंग पक्ष--भाव तथा रस के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं, उसके बहिरंग-पक्ष--कला की दृष्टि से भी विश्व के अप्रतिम प्रबन्ध-काव्य की ख्याति अर्जित की है।...यहाँ बाँदा डिग्री कालेज के विद्वान् प्राध्यापक आचार्य डॉक्टर कृष्णदत्त अवस्थी ने तुलसी की काव्यशास्त्रीय शब्दावली का शोधपरक विवेचन प्रस्तुत किया है।—सम्पादक]

हिन्दी-साहित्य का मूर्धन्य महाकाव्य 'रामचरित मानस' काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट ग्रन्थ सिद्ध होता है। वैसे तो कालिदास जैसे कवि-कुल चूड़ामणि ने भी अपने को मन्द, कवियशः प्रार्थी तथा उपहासास्पद[1] लिख-कर दैन्य प्रकाशन अथवा अहं परिहार की पद्धति अपनाई है, किन्तु क्या ऐसा करने से उनके कवित्व में कुछ न्यूनता आई है? इसी प्रकार मानस के रचयिता कविवर तुलसी ने भी विविध प्रकार से अपनी अल्पज्ञता का उल्लेख किया है।[2] जिसे हम उक्त कवि-परम्परा का पालनमात्र ही कह सकते हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि तुलसीदास जी काव्यशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे, जैसा कि उनकी विविध रचनाओ के सुचारु अनुशीलन से ज्ञात होता है। 'रामचरित मानस' में तो उन्हीं के द्वारा उल्लिखित या प्रयुक्त काव्यशास्त्रीय शब्दावली भी उनके विशिष्ट काव्यशास्त्रीय ज्ञान की परिचायिका है। प्रस्तुत निबन्ध में इसी विषय का विश्लेषण किया जा रहा है।

---

१. मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।

—रघुवंश, १ सर्ग

२. कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।

—राम० मानस : बाल०, दो० ९ (११ चौ०)

'मानस' के प्रारम्भ में ही तुलसी ने वर्णों, अर्थों, रसों, छन्दों और कल्याणों के विधायक वाणी विनायक की वन्दना की है :

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥

—मानस : बाल०, १ श्लोक

उक्त श्लोक में कवि ने सर्वप्रथम वर्णों की महत्ता स्वीकार की है। वैसे तो वर्ण या अक्षर का अस्तित्व पृथक् है और शब्द का अस्तित्व पृथक् है, क्योंकि सार्थक वर्णसमुदाय 'शब्द' या 'पद' कहलाता है, किन्तु कोशानुसार 'शब्द' का पर्यायवाची शब्द 'अक्षर' (वर्ण) भी माना गया है :

शब्दोऽक्षरयशोगीर्व्योमवाक्ये खे श्रवणेध्वनौ ।

अर्थात् 'शब्द' अक्षर, यश, वाणी, व्योम, वाक्य, शून्य, श्रवण और ध्वनि, इन अर्थों में युक्त होता है। काव्य में सार्थक शब्दों का ही योग होता है। यह अत्यन्त विवादास्पद विषय है कि 'शब्द' का प्राधान्य है अथवा 'अर्थ' का। व्यवहार-दृष्टि से तो 'शब्द' का ही उच्चारण प्रथम होता है, तदनु उसका 'अर्थ' अभिव्यक्त होता है, किन्तु 'नागेश' जैसे नव्यव्याकरणशास्त्रियों ने 'अर्थ' की बौद्धिक सत्ता भी स्वीकार की है।[1] इस बौद्धार्थ का तिपादन 'पाणिनिशिक्षा' के निम्नलिखित श्लोकों से भी होता है :

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनोयुक्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्यमारुतः ।
वर्णान् जनयते . . . ॥

अर्थात् आत्मा बुद्धि की सहायता से अर्थों को प्राप्त करके मन को विवक्षा से युक्त करती है और मन 'कायाग्नि' अर्थात् पित्त को ठोकर देता है। इस प्रकार पित्त, वायु को प्रेरित करता है और वह प्रेरित वायु बढ़ कर 'मूर्धा' में टकराता है, तदनु मुख में आकर वर्णों को जन्म देता है।

यह तो हुई 'वैखरीवाणी' की बात, किन्तु वस्तुतः वर्ण या अक्षर तो अजन्मा माना गया है। 'वृणोत्यर्थम्, इति वर्णः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार वर्ण मुख्य है, क्योंकि वह अर्थ का वर्णन करता है और "न क्षीयते न क्षरति इति वा अक्षरम्"

---

१. वैयाकरण लघुसिद्धान्त मंजूषा : बौद्धार्थ प्रकरण - (आचार्य नागेश) ।

(निरुक्त) इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'अक्षर' अविनाशी माना गया है। 'माण्डूक्योपनिषद्' के अनुसार "ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म" के रूप में ओंकार को ही अक्षर ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तो एक शब्द के यथार्थ ज्ञान एवं उसके सुष्ठु प्रयोग को लोक और परलोक में भी कामयुक् माना है।[१] महाकवि कालिदास ने इस विवाद से बचने के लिए वाणी और अर्थ दोनों को संयुक्त माना है।[२] कविवर तुलसी ने भी इस प्रकार कालिदास की उक्ति के अनुसार किया है :

गिरा अर्थ जलबीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बरनौं सीताराम पद, जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न॥

—मानस : बा०, १८ दो०

शब्द और अर्थ की इस अभिन्नता को प्रायः सभी आचार्य स्वीकार करते हैं, किन्तु जहाँ कहीं दोनों के नाम लेने का प्रश्न आता है, वहाँ वर्ण या 'शब्द' प्रथम आता है, तदनु, 'अर्थ' का नाम आता है। यथा :

"सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे"

अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्बन्ध 'सिद्ध' (नित्य) है। लौकिक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं—लोक में कहा जाता है कि 'पिता-पुत्र का सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ होता है।' यहाँ दो सम्बन्धियों में भी प्रमुखता 'पिता' की सिद्ध होती है, सम्भवतः इसी कारण 'पिता' शब्द का प्रयोग पूर्व और 'पुत्र' शब्द का प्रयोग पर होता है। इसी प्रकार 'शब्द' और 'अर्थ' के विषय में भी समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ—'शब्दार्थ' शब्द का तो प्रयोग होता है, पर कहीं पर 'अर्थ-शब्द' का प्रयोग नहीं होता। काव्य की विभिन्न परिभाषाओं में भी 'शब्द' को ही प्राथमिकता दी गई है। आचार्य भामह (षष्ठशतक) ने "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" इस परिभाषा में 'शब्द' को प्रथम स्थान दिया है। (काव्यालंकार-१) पाश्चात्य साहित्य-समीक्षकों ने भी अपनी परिभाषाओं में 'शब्द' (words) को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।[३]

---

१. **एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।**
—महाभाष्य, १ श्लोक, १

२. **वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। —रघुवंश सर्ग १, श्लोक १**

३. Poetry is the best words in best order.

स्फोटनिरूपण की दृष्टि से भी वर्ण, पद अथवा वाक्य को ही प्राथमिकता दी गई है। यथा :

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।

—'भर्तृहरि (वाक्यपदीय)

अर्थात् पद में वर्ण नहीं होते, वर्णों में अवयव नहीं होते, वाक्य को छोड़कर पदों का कोई विशेष महत्व नहीं है।

'स्फोट' शब्द की भी यह व्याख्या 'स्फुटत्यर्थ अस्मात्, इति स्फोट:' यह सिद्ध करती है कि जिससे (शब्द से) अर्थ स्फुटित हो, उसी का नाम स्फोट है।

इस प्रकार काव्य के क्षेत्र में अर्थ की महत्ता तो है, किन्तु उसका मूल तो 'शब्द' ही है। अर्थ की अभिव्यक्ति तो शब्द के ही माध्यम से होती है, इसी हेतु शब्द शक्तियों की कल्पना की गई है। कहना न होगा कि कविवर तुलसी शब्द की इस महत्ता से पूर्ण परिचित थे, इसी कारण उन्होंने सर्वप्रथम काव्य के उपकरणों में 'वर्ण' को स्थान दिया है, तदनु 'अर्थ' को।

शब्दों के माध्यम से अर्थाभिव्यक्ति के साथ ही 'रस-निष्पत्ति' का क्रम आता है। सम्भवतः इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में 'रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।'[1] मानसकार ने भी वर्ण और अर्थ के पश्चात् 'रस' को क्रमशः स्थान दिया है। जहाँ तक रसाभिव्यक्ति का प्रश्न है, वह 'गद्य रचना' अथवा 'पद्य रचना' दोनों में हो सकती है, किन्तु छन्दोबद्ध रचना हृदय का स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता रखती है, अतः काव्य में छन्द की महत्ता स्वीकार्य है। छन्द की परिभाषा इस प्रकार समझी जा सकती है :

"छन्द वह बैखरी ध्वनि है, जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंगभंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यञ्जना कर सके।" (डॉ० पुत्तूलाल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दयोजना; पृ० २१)। इस परिभाषा के अन्तर्गत सभी प्रकार के प्राचीन एवं नवीन छन्द आ जाते हैं।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'रस' के अनन्तर तुलसी ने 'मानस' के उक्त प्रथम श्लोक में 'छन्द' को स्थान क्यों दिया। उत्तर स्पष्ट है कि

---

१. **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।' —साहित्यदर्पण।**

तुलसीदास इस तथ्य से पूर्ण परिचित थे कि छन्दोहीन रचना भी काव्य-कोटि में आती है। क्या वाणभट्ट की कादम्बरी (गद्य-काव्य) एक विश्वविश्रुत काव्य नहीं है? अस्तु; काव्य में 'छन्द' का गौण स्थान समझकर ही तुलसी ने 'छन्द' का उल्लेख 'रस' के अन्त में किया है।

'रामचरित मानस' में तुलसी ने 'कवित्त' और 'भनिति' इन दो शब्दों को 'काव्य' अर्थ में प्रयुक्त किया है।[1] इन पर सूक्ष्म विचार करने पर कवि के काव्य-शास्त्रीय अध्ययन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कवित्त' शब्द संस्कृत के 'कवित्व' शब्द का ही तद्भव रूप है। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में 'कवित्व' का बीज 'प्रतिभा' को बतलाया है, जिसे जन्मान्तर से आगत संस्कार विशेष कहते हैं। इसके अभाव में काव्य-निष्पत्ति नहीं होती और होती भी है, तो हास्यास्पद होती है।[2] इस प्रकार तुलसी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए अपने को प्रातिभ कवि कहने में संकोच करते हैं। सम्भवतः इसी धारणा से उन्होंने लिखा है:

भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।।

—मानस : बा०, ९ दो०, ४ चौ०

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तुलसी 'कवित्त' शब्द के काव्यशास्त्रीय अर्थ से सुपरिचित थे। 'भनिति' शब्द भी संस्कृत के 'भणिति' शब्द का उद्भव-रूप है। वक्रोक्तिकार आचार्य कुन्तक के 'वक्रोक्तिजीवित' नामक ग्रन्थ में 'वक्रोक्ति' की परिभाषा में 'भणिति' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है:

वक्रोक्ति...वैदग्ध्यभंगी भणितिः।

---

१. निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होइ अथवा अति फीका।।

—मानस : बाल० ८, दो०, ११ चौ०

जे पर भनिति सुनत हरषाहीं।
ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं।।

—वही, बाल० ८-१२

२. कवित्व बीजं प्रतिभानम्। **—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति १, ३, १६**
(कवित्वस्य बीजं कवित्वबीजम्। जन्मान्तरागत संस्कारविशेषः कश्चित्। यस्माद् बिना काव्यं न निष्पद्यते, निष्पन्नंव हास्यायतनं स्यात्।)

यहाँ कविकर्मकौशल से युक्त चमत्कारपूर्ण उक्ति को 'वक्रोक्ति' की संज्ञा दी गई है। मेरे विचार से तुलसी का 'भनिति' शब्द कुन्तक के उक्त ग्रन्थ से अनुप्राणित प्रतीत होता है। तात्पर्य यह कि तुलसी ने 'भनिति' का अर्थ कविकर्म-कौशल की क्रान्ति से युक्त रचना के रूप में लिया है। उपर्युक्त 'कवित्त' और 'भनिति' शब्दों के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि तुलसी आचार्य 'वामन' तथा आचार्य 'कुन्तक' की काव्यशास्त्रीय रचनाओं से सुपरिचित थे।

तुलसी ने उत्तम कवि के लिए निम्नलिखित विशेषतायें आवश्यक मानी हैं[१] : (१) जन्मजात कवि होना, (२) वचन पटुता, (३) कलात्मक ज्ञान, (४) बहुविद्याज्ञान, (५) शब्दकोश, (६) अर्थभेद, (७) अलंकारज्ञान, (८) छन्दकौशल, (९) विविध भावों तथा रसों का परिज्ञान, (१०) काव्य दोषों का ज्ञान और (११) काव्य गुणों का ज्ञान। काव्य में भावपक्ष की प्रधानता मानी जाय अथवा कलापक्ष की, इस विषय में तुलसी ने रस की प्रधानता का संकेत किया है,[२] जिससे भावपक्ष का प्राधान्य स्पष्ट है।

तुलसी ने काव्य के सत्यं, शिवं, सुन्दरम् इन तत्वों में से 'शिवम्, की विशेष प्रतिष्ठा की है। वे काव्य को 'सर्वजनहिताय' और 'साधु समाज सम्मान्य' मानते थे। यथा :

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रम वादि बालकवि करहीं।।
कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

—बाल० १४, ८-९ चौ०

---

१. कवि न होउ नहिं वचन प्रवीनू।
सकल कला सब विद्याहीनू।।
आखर अरथ अलंकृति नाना।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।।
भावभेद रसभेद अपारा।
कवित दोष गुन विविध प्रकारा।। —बाल०, दो० ९-८-१० चौ०

२. जदपि कवित रस एकउ नाहीं।
राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।। —बा०, १०-७ चौ०

कविता में 'सरलता' का महत्त्व प्राक् एवं पाश्चात्य समीक्षकों ने भी स्वीकार किया है। तुलसी ने भी कविता की सरलता पर बल दिया है, जिसमें वर्ण्य-विषय की श्रेष्ठता अनिवार्य मानी है और ये विशेषतायें तभी आ सकती हैं, जब निर्मल काव्य प्रतिमा हो।[1] आचार्य मम्मट ने काव्य हेतु परिगणन कराते समय इसी 'प्रतिभा' को 'शक्ति' नाम दिया है।[2] इसी प्रकार तुलसी 'ध्वनि' से भी सुपरिचित थे। मानस में उन्होंने स्पष्ट रूप से ध्वनि के अस्तित्व का उल्लेख किया है :

धुनि अवरेव कवित गुन जाती।

—मानस, बाल०, ३७ दो०, ८ चौ०

निष्कर्ष यह कि महाकवि तुलसी काव्यशास्त्र के गूढ़तम रहस्यों से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने 'मानस' में प्रसंगवश काव्य-शास्त्रीय शब्दावली का जो प्रयोग किया है, वह तो उनकी काव्यशास्त्रज्ञता का प्रमाण है ही; इसके अतिरिक्त 'मानस' में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के शतशः उदाहरण भी विद्यमान हैं, जो उन्हें काव्यशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् सिद्ध करते हैं।



---

१. **सरल कवित कीरति विमल।**
सोइ आदरहिं सुजान॥ —मानस, बाल०, १४ दो० (क)
सो न होइ बिनु विमल मति०। —वही, १४ (ख)

२. **शक्ति निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।**
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतु स्तदुद्भवे॥
—काव्य प्रकाश, उ० १, श्लोक ३

राम-चरित्र : आक्षेप और समाधान—एक गोष्ठी-चर्चा

⊙

डॉ० उमापति राय चन्देल, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक : दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के पौराणिक एवं महाकाव्यगत चरित्र पर किये जाने वाले आक्षेपों की सार्वजनिक चर्चा क्या इसलिए न की जाय कि श्रद्धालु सामान्य जनता के मन में भी शंका का कीट घुस जाएगा, जो धार्मिक और नैतिक मूल्यों के प्रति अनुदिन बढ़ती अनास्था को और भी बढ़ा देगा ?

यह प्रश्न उपस्थित हुआ गत २४ अक्तूबर, १९७१ को दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कालेज के गोष्ठी-कक्ष में 'मानस' चतुःशती प्रचार-परिषद दिल्ली की ओर से 'रामचरित्र : आक्षेप और समाधान' विषय पर आयोजित प्रबुद्ध जनों की एक संगोष्ठी में। नगर निगम के कार्यकारी पार्षद डा० रामलाल वर्मा और प्रसिद्ध रामायणी कपीन्द्र जी ने यह विचार व्यक्त किया था कि राम-चरित्र के सम्बन्ध में जो प्रवाद प्रचलित हैं और नयी रोशनी के लोगों द्वारा कुतर्क किये जा रहे हैं, उनका समाधान करते फिरने से जन-साधारण का उन राम के प्रति जो भारतीय संस्कृति के आदर्श पुरुष हैं—बल्कि बहुतों की दृष्टि में भगवान् के अवतार—विश्वास डगमगा जाएगा और यह वर्तमान अनास्थावादी युग में समाज-विघटन का एक कारण ही बनेगा। अतः तर्क करते हुए श्रद्धा को टूटने न देने का ध्यान रखना आवश्यक है।

परन्तु, इस शंका का समाधान किया संगोष्ठी के अध्यक्ष स्वामी परमानन्द सरस्वती ने यह कहकर कि प्रचार-साधनों से सम्पन्न बहुत-से नास्तिक बौद्धिक जनों द्वारा आक्षेप-प्रहार धड़ाधड़ हो रहे हैं और उनकी चोट से सामान्य जन के विश्वासों की दीवार पहले ही चरमरा उठी है; इसलिए आवश्यक हो उठा है कि आक्षेपों का उत्तर दिया जाय और इसे मति-भ्रम फैलाने की चेष्टा नहीं, भ्रम मिटाने का प्रयास समझा जाय।

संगोष्ठी की विषय-चर्चा का प्रवर्तन किया दिल्ली विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर सान्ध्य-संस्थान के हिन्दी-प्रवक्ता एवं 'मानस' चतुःशती प्रचार परिषद्

के अध्यक्ष डॉ० रमानाथ त्रिपाठी ने। उन्होंने कहा कि कैसी विडम्बना है कि इंडोनेशिया जैसे मुस्लिम देश में रामायण-मेला का आयोजन किया जाता है, थाइलैण्ड जैसे बौद्ध-देश के घर-घर में राम-कथा का प्रचार है, किन्तु भारत में राम-कथा के विभिन्न प्रसंगों को लेकर राम के चरित्र पर आक्षेप किये जाते हैं! डॉ० त्रिपाठी ने कुछ कथा-प्रसंगों का संकेत किया, जिनको लेकर राम को कठघरे में खड़ा करने की कोशिश की जाती है। उन्होंने ये प्रसंग बताये : सीता की अग्नि-परीक्षा, गर्भिणी सीता को बनवास, ताड़का-वध, बालि-वध, शूर्पणखा के नाक-कान काटना, शम्बूक-वध इत्यादि।

स्वामी परमानन्द सरस्वती ने संक्षेप में एक-एक कर इन आक्षेपों का समाधान करते हुए कहा : राम ने मारीच की तरह ताड़का को भी शत योजन तक न फेंक कर, उसका वध इसलिए किया; क्योंकि उसमें सुधार की सम्भावना नहीं दिखायी दी और राम को लगा कि वह आततायी की कोटि में पहुँच गयी है। समाज ने आततायी को दण्ड देना अनुचित नहीं कहा है, राम का यह कार्य केवल इसीलिए निन्दनीय नहीं है कि ताड़का स्त्री थी, ताड़का राक्षसी थी और थी उपद्रवी। बालि-वध का औचित्य भी इसीलिए है, क्योंकि बालि को अपने बल का अत्यंताभिमान हो गया था और वह उचित-अनुचित का विवेक खो बैठा था। राम ने उसे न अपने समान माना और न शूरवीर ही, पशु-तुल्य माना और उसका बध कर दिया। यह कहना भी गलत है कि राम ने बालि-सुग्रीव या रावण-विभीषण के भ्रातृ-द्रोह को उकसाया और बढ़ाया।

स्वामी जी ने कहा कि राम के चरित्र पर जिन ग्रंथों के आधार पर आक्षेप किया जाता हो, उसका समाधान भी उन्हीं ग्रन्थों में से ढूँढ़ा जाना चाहिए— और समाधान उनमें से अवश्य मिलेगा।

शूर्पणखा के नाक-कान काटने वाली बात को लेकर लोग आक्षेप करते हैं कि राम ने झूठ बोला और **लक्ष्मण** को अविवाहित बताया। असल में, राम ने यह विनोद में कहा था, जैसे कि लक्ष्मण ने विनोद में ही शूर्पणखा से कहा था कि राम 'कोसलपुर राजा' हैं—ध्वनि यह कि वे चाहें तो एकाधिक स्त्रियों से विवाह कर सकते हैं। विनोद में मिथ्या-भाषण को चारित्रिक दोष स्वीकार करना मानव मनोविज्ञान की अवहेलना है और नैतिकता को जड़ धारणा बना देना है।

शम्बूक एक शूद्र ऋषि था और राम-राज्य में तप कर रहा था। एक

ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु के लिए उसके तप को दोषी माना गया और राम ने उसका वध कर दिया; क्या यह उनका शूद्र-द्रोह नहीं ? इस आक्षेप का उत्तर देते हुए स्वामी परमानन्द जी ने कहा कि समष्टि की हित-रक्षा के लिए व्यक्ति को 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' का पालन करना चाहिए। राम के युग में शूद्र का धर्म माना गया था समाज-सेवा, सेवा ही उसका तप था। शम्बूक ने चूंकि अपना कर्त्तव्य छोड़ा, इसीलिए राम ने लोकधर्म-संस्थापन के लिए उसका वध कर दिया। यह उनका शूद्र-द्रोह नहीं था। उन्होंने कर्त्तव्य का पालन न करनेवाले ब्राह्मण रावण का भी तो वध किया था।

सीता की अग्नि-परीक्षा के पूर्व राम ने सीता के प्रति कुछ कठोर शब्द कहे थे और उन्हें शिविका पर से उतरकर पैदल चिता-स्थल तक आने की आज्ञा दी थी।

स्वामी जी ने बताया कि शिविका पर से तो राम ने इसलिए उतर जाने को कहा कि भालू-वानर सीता के दर्शनों के लिए उचक रहे थे, उन्हें कष्ट हो रहा था। जहाँ तक कठोर शब्द कहने का आक्षेप्र है, वह परिस्थितिजन्य है। वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि जैसे ही विभीषण ने राम को सूचना दी कि सीता आ गयीं, वैसे ही राम के हृदय में पहले रोष उत्पन्न हुआ, फिर हर्ष और फिर दैन्य। रोष इसलिए कि सीता की नासमझी के कारण उन्हें युद्ध जैसे क्रूर कार्य में रत होना पड़ा। लेकिन जब उन्होंने बिचारा कि अबला सीता रावण का प्रतिरोध करती कैसे, और वन आने का उसका दुराग्रह भी पातिव्रत-प्रेरित था, तब उनका रोष हर्ष में बदल गया। यह हर्ष सीता के प्रति राम के प्रेम का सूचक है। लेकिन दैन्यभाव क्यों उत्पन्न हुआ ? सीता के द्वारा उठाये गये कष्टों का स्मरण कर। अग्निदेव के प्रकट होने पर राम ने जो कहा उससे उनके कठोर वचन का समाधान मिल जाता है। अग्निदेव ने राम से कहा कि यह वैदेही मन, वचन और ध्यान से भी पापिष्ठा नहीं है, परम शुद्ध और निष्पाप है, तुम इसे ग्रहण करो। इस पर राम ने कहा था : "विशुद्ध भावा निष्पापा मैथिली जनकात्मजा।" आत्मवान व्यक्ति जैसे अपनी कीर्ति को नहीं त्यागता, वैसे ही यह सीता भी त्याज्य नहीं। राम ने सीता से कठोर वचन इसलिए कहे, ताकि सीता उत्तेजित होकर अग्नि-परीक्षा के लिए प्रस्तुत हो जायँ, जिससे राम लोकप्रत्यय करा सकें कि सीता पवित्र हैं, अग्निदेव भी साक्षी हैं उस पावित्र्य के।

सीता-निर्वसान-प्रसंग के सम्बन्ध में स्वामी परमानंद सरस्वती ने कहा कि सीता के चरित्र पर धोबी ने जो कीचड़ उछाला, उसकी चर्चा 'रामचरित मानस' में नहीं है, पद्मपुराण में है। तुलसीदास ने 'मानस' में कहा है : 'नीति प्रीति स्वारथ परमारथ, कोउ न राम सम जान जथारथ।' सीता-निर्वासन से नीति, प्रीति, स्वार्थ, परमार्थ कैसे सिद्ध हुए। इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा कि राम चाहते थे कि जिसे वे प्रेम करते हैं, उसे सारा संसार अनपवाद रूप से आदर का पात्र माने। सीता गर्भवती थीं, यदि जन-समाज में यह धारणा शेष थी कि सीता कुलटा हैं, तो क्या राम इक्ष्वाकुकुल के भावी उत्तराधिकारी को जारजपुत्र कहे जाने का अवसर देते? पुत्र-जन्म से पूर्व यह सिद्ध हो जाना चाहिए था कि सीता पवित्र हैं। गर्भावस्था में स्त्री के जैसे आचार-विचार होते हैं और जैसा उसके चतुर्दिक का वातावरण होता है, उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। यही कारण है कि राम ने सीता को राह-घाट में न छुड़वा कर, वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में भिजवाया। उन्होंने सीता को वसिष्ठ या विश्वामित्र मुनि के आश्रम में क्यों नहीं भेजा? क्योंकि इन दोनों मुनियों का राम से सीधा सम्पर्क था, उनकी राजसभा में आना-जाना था, पर वाल्मीकि मुनि के साथ ऐसी बात नहीं थी। वाल्मीकि यदि यह कह देते कि सीता सर्वभावेन पवित्र हैं, तो जनता को उनके प्रमाण पर निर्विकल्प विश्वास हो जाता। वाल्मीकि रामायण तो राम का चरित्र है भी नहीं, वह तो 'सीतायाः महत् चरित' है। सीता को त्याग कर राम तीन दिन तक रोते रहे, क्या यह उनके सीता-प्रेम का सूचक नहीं? राम को कठोर आचरण करना पड़ा सीता की पवित्रता को प्रतिष्ठापित करने के उद्देश्य से। यह उनकी नीति थी। स्वार्थ था यह कि उनके पुत्र वाल्मीकि के द्वारा शास्त्र और शस्त्र की शिक्षा पाकर प्रवीण बनें, और परमार्थ था यह कि सीता को वनवास भेज देने के बाद ही राम आत्म-स्वरूप-चिंतन में निरत हो सके। एक प्रकार से सीता का विवासन स्वधाम-गमन की लीला थी।

रामायणी कपीन्द्र जी ने अपने प्रवचन में 'रामचरित मानस' के शिव-पार्वती संवाद का यह अंश उद्धृत किया : "राम अतर्क बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहु भवानी" और कहा कि राम के चरित्र पर हमें आस्था लानी चाहिए, आक्षेप नहीं करना चाहिए। आर्ष कथनों पर सन्देह करना उचित नहीं है। उन्होंने बताया कि पुराणों में कहा गया है कि राम ने अपनी आयु के

बारह हजार वर्ष भोग चुकने के बाद अपने पिता दशरथ की आयु के अवशिष्ट पाँच सौ वर्ष भी भोगे। सीता का निर्वासन राम ने अपनी आयु-सीमा की समाप्ति पर किया, भला पिता की आयु भोगते हुए वे सीता के साथ गार्हस्थ्य जीवन कैसे बिताते? पत्नीव्रती राम ने सीता का विवासन कर उनका यश बढ़ाया ही, घटाया नहीं।

संगोष्ठी में श्री ललनप्रसाद व्यास ने, जिन्हें 'दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत का गैर सरकारी 'सांस्कृतिक दूत' कहा गया है, अपने भ्रमण, अनुभव और अध्ययन के आधार पर बताया कि दक्षिण-पूर्व एशिया के लोग राम को अपना आदर्श पुरुष मानते हैं, उनके चरित्र के आक्षेपों पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। चाहे वे मुस्लिम हों या बौद्ध, राम-कथा उनके जीवन का अंग बन गयी है। व्यास जी ने कहा कि राम को पहले हम मानव मानें। मानव अपूर्ण है, अतः राम के चरित्र में भी अपूर्णता है। इसके बावजूद आज राम-कथा विश्व की सबसे अधिक प्रभावी कथा बन गयी है, इसमें अधिक छिद्रोन्वेषण की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने बताया कि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में प्रचलित राम-कथाओं और भारत में प्रचलित राम-कथाओं में काफी अंतर है। दोनों जगहों की कथाओं में अंतर जीवन-दर्शन के अंतर का परिणाम है। राम-कथा हमारी एक समान सांस्कृतिक थाती है, जिसके सहारे हमें दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ अपने संपर्क बढ़ाने चाहिए।

संगोष्ठी में विचार-चर्चा बहुत रोचक और सफल रही। प्रारम्भ में परिषद् के मंत्री डॉ० उमापति राय चन्देल ने संस्था के गत दो वर्षों का कार्य-विवरण और भावी कार्यक्रम प्रस्तुत किया। श्री सुन्दरलाल कथूरिया ने गोष्ठी का संयोजन किया। डॉ० रमाकांत शुक्ल, श्री सुरेशचन्द्र शर्मा ने भी चर्चा में भाग लिया। गोष्ठी में सुप्रसिद्ध शास्त्रज्ञ माधवाचार्य जी, डॉ० रामदरश मिश्र, श्री प्रेमचन्द गुप्त, डॉ० लक्ष्मीनारायण पाठक, डॉ० विजय बहादुर अवस्थी, श्री लक्ष्मीचंद, श्री दीपचंद, श्री रामशरण गौड़, श्री रणवीर सिंह, श्री रामप्रसाद कौशिक, डॉ० जगदीश कुमार, डॉ० रामेश्वर दयालु मिश्र, श्री रवीन्द्रनाथ, श्री अशोक कौशिक, श्री महावीर कौशिक, श्री नवल किशोर शास्त्री, श्रीमती मधु खत्री, श्री विजयलक्ष्मी, श्री चेतराम जैन, श्री हरस्वरूप गुप्त तथा अनेक प्रबुद्ध साहित्यकार एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता उपस्थित थे।

●



ओ पिता तुलसी !

श्री उमाकान्त मालवीय

युवा पीढ़ी के मुक्त चिन्ताशील कवि : इलाहाबाद

वेणु को तज
कोदण्ड शर धारण करने को
विवश कर दिया
गोपीरमण प्रभु को
ओ पिता तुलसी ! तुमने
तब नवाया माथ।
"तुलसी मस्तक तब नवै,
जब धनुष बाण लेव हाथ।"
की टेक जयी हुई।
यह तुम्हारे
विरासत विस्मृत वारिस
चरण पलोटते चारण
इनसे कहो
विवश कर दें क्लीव नायक को
उठा लेने को
निखिल टंकारता कोदण्ड विशिख कराल
काँप जाये काल !





गोस्वामी जी, क्या सचमुच रावण परास्त हो गया ?

⊙

श्री रा० भ० निगम

लेखक, आलोचक तथा पत्रकार : बाँदा

[राम सत् का रावण असत् का—राम सदाचार का रावण अनाचार का—राम देवत्व का रावण दानवत्व का प्रतीक है; ऐसा विचारवान सोचता है। पर आज की दुनिया में किसका बोलबाला है ? असत् का, अनाचार का और दानवत्व का ? तब कैसे कहा जाय कि राम ने रावण का वध कर दिया ? जनपद के मुक्त चिन्तक एवं प्रखर आलोचक प्रिंसिपल श्री रा० भ० निगम द्वारा पत्रात्मक शैली में आज के सन्दर्भ में समाज की आन्तरिक स्थिति का एक मार्मिक चित्रांकन। —सम्पादक।]

सेवा में,

बाँदा

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज, गोलोक, सुरधाम,

परम पूज्य गोस्वामी जी,

रामचरित मानस में आपने लिखा है कि लंका के रण-प्रांगण में लंकेश रावण राम के प्रचंड बाणों के प्रहार से खेत रहा। तत्पश्चात् मंदोदरी के आँसुओं से सिक्त मार्ग से उस कालजयी योद्धा रावण का शव स्मशान घाट ले जाया गया। चंदन चिता निर्मित की गयी। उसका शव उसपर लिटाया गया। अग्नि प्रदीप्त की गई। कुछ क्षण पूर्व तक समस्त संसार के लिए आतंक का स्रोत रावण अग्नि की लोहित लपटों में भस्म हो गया। उसके साथ ही साथ रावण का अहम्-युग विदा हुआ, राम का वयम्-युग आ गया।

किन्तु क्या यह सब सत्य है ?

काल-क्रम से त्रेता के उदर से द्वापर का जन्म हुआ। प्रेम, त्याग एवं सहि-ष्णुता का स्थान वासना, लोभ तथा प्रतिशोध ने लिया। श्रेष्ठ मानव का उत्पा-

दन करने वाली अमूल्य कोख ही दरक गई—वह कोख जिसे कुटुम्ब कहते हैं। राम के युग में विशाल अयोध्या साम्राज्य भी जिस विस्फोटक लोभ को जन्म नहीं दे सका था, कृष्ण के युग में इन्द्रप्रस्थ एवं हस्तिनापुर के अपेक्षाकृत छोटे-से-छोटे राज्य तक उस अनर्थकारी लोभ को जन्म देने में समर्थ हो गए। फलतः इतना भीषण विस्फोट हुआ कुरुक्षेत्र में, महाभारत के रूप में कि भारतीय कुटुम्ब, जिसकी शिराओं में राम, लक्ष्मण, भरत, सीता तथा हनुमान के जीवन का त्याग, बलिदान, प्रेम, निष्ठा एवं श्रद्धा की अनंत धाराएँ प्रवहमान थीं, पकी हुई फूट की तरह बिथर गयीं। भाई भाई का रक्त पीने लगा, पति पत्नी तक को जुएँ के दाँव में लगाने लगा, पुत्र पिता के आदेशों को अपनी वासनाओं के संकेत पर रौंदने लगा। कुछ दिन बाद द्वापर के उदर से कलियुग का जन्म हुआ और केवल शताब्दियों से ही नहीं, बल्कि सहस्राब्दियों से देशी-विदेशी नस्लों, जातियों, संस्कृतियों, तथा सभ्यताओं के आक्रमणों को सहज ही झेल ले जाने वाला समाज भी दरकने लगा—उसमें निरंतर फैलने वाली दरारें दीखने लगीं। फलतः वह अहमन्यता, घृणा एवं द्वेष के असह्य प्रहार से टूट कर उसी खंडहर में गिर पड़ा, जहाँ द्वापर का छिन्न-भिन्न कुटुम्ब राख में सना पड़ा था तथा त्रेता का धूल-धूसरित व्यक्ति इधर-उधर ढुलक रहा था।

महाकवि ! यह संभव है कि रावण के तथाकथित पराभव के पश्चात् यत्किंचित काल के लिए महाराज राम के महान् व्यक्तित्व की छाया में काल-सरिता का प्रवाह उलट गया हो। मनुष्य अकाल मृत्यु, व्याधि, निर्धनता, अज्ञान एवं कुरूपता से मुक्त हो गया हो, बल्कि प्रकृति एवं नियति का नियन्ता भी बन गया हो। हो सकता है रावण के रूप में जो युग-अहन्ता विस्फुटित हुआ था, राम के वयन्ता से पराभूत-सा हो गया हो। किन्तु क्या यह कोई स्थायी पराभव था ? यदि यह स्थायी पराभव होता तो धर्म के त्रिचरणधारी त्रेता के उदर से धर्म के मात्र द्वि-चरणधर द्वापर का जन्म क्यों हो जाता ? धर्म के चतुष्चरण धर स्वतः सतयुग ही क्यों न अवतीर्ण हो गया होता ? त्रेता और द्वापर में कितना अन्तर है ? यदि कहीं त्रेता के खलनायक रावण ने द्वापर में जन्म लिया होता, जब उत्तर भारत पर दुर्योधन का निरंकुश शासन था, तो क्या आश्चर्य लोग रावण को आदर्श पुरुष मान लेते ! रावण ने शत्रु-पत्नी का केवल अपहरण किया था, किन्तु दुर्योधन तो शत्रु-पत्नी को भरी सभा में नंगी करने तक में नहीं हिचका था। ऐसा प्रतीत होता है त्रेता के राम ने द्वापर में कृष्ण बन पुनः काल के प्रवाह को उलटने का अध्यवसाय

किया—उस प्रवाह को, जो मानवता के मूलतत्व प्रेम, त्याग एवं सहिष्णुता को ध्वस्त करने में संलग्न था। किन्तु क्या वे इस बार भी सफल हुए? हो सकता है यमुना के तटों पर जहाँ कृष्ण की वंशी निरंतर गूँजती रहती थी, वहाँ से यत्किंचित दूर काल के रथ के चक्के अकस्मात रुक गए हों और वहीं कहीं दुर्योधन की बर्बर अहन्ता के नगाड़े बजते रहे हों। किन्तु क्या यह व्यापक एवं स्थायी प्रभाव था? कृष्ण की वंशी मौन हुई। काल के रथ के चक्के गड़गड़ाते हुए आगे बढ़े। उन्होंने उन सलोनी कुंजों को भी कुचल डाला, जिनमें दशाब्दियों प्रेम के पुष्प झरते रहे थे। और अन्ततः वह अभागा दिन भी आ धमका, जब महाराज काल के दिव्य रथ के अविराम चक्र कलियुग के पंकिल तल पर आ उतरे।

बाबा तुलसी! एक बार कामदेव ने महादेव पर पंच बाणों से आक्रमण करने का साहस किया था। महादेव ने तृतीय नेत्र उन्मीलित कर कामदेव को भस्म कर दिया था। तत्पश्चात् काम-पत्नी रति ने विलाप कर समस्त नभ को अपने आर्तक्रन्दन से हिला दिया था। तभी महादेव का हृदय भी हिल उठा था और उन्होंने ऊषा के केशरिया रंग में रँगी करुणा को ओष्ठों में लेकर विलपती रति को वरदान दिया था, "रति, धैर्य धारण कर। मैं तेरे पति को पुनः जीवित करता हूँ। वह युग-युगान्तर जीवित रहेगा, किन्तु सशरीर नहीं बल्कि अशरीर।" राम पर भी काम-दूत रावण ने आक्रमण किया था। उसने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया। भयानक युद्ध हुआ। लंकेश रणभूमि में खेत रहा। मृतक की पत्नी मंदोदरी विलाप करती हुई राम के समक्ष आ उपस्थित हुई। उसके क्रन्दन से भी आकाश हिल उठा। राम त्रैलोक्य के स्वामी सही, किन्तु हैं तो महादेव के शिष्य ही। प्रतीत होता है उनका भी हृदय हिल उठा और उन्होंने रावण को अमरत्व प्रदान कर दिया। यदि कहीं ऐसा न होता तो त्रेता का सशरीर रावण जो केवल लंका साम्राज्य पर शासन करता था, आज अशरीर समग्र विश्व पर शासन कैसे कर रहा होता? संत कवि! आपने तो स्वतः स्वीकार किया है न —राम के जीवन के आदर्श थे : न्याय ही शक्ति है, शक्ति न्याय नहीं; विषय भोग जीवन के लिए है, जीवन विषय भोग के लिए नहीं। जबकि रावण के जीवन के आदर्श थे : शक्ति ही न्याय है, न्याय शक्ति नहीं; जीवन विषय भोग के लिए है, विषय भोग जीवन के लिए नहीं। यदि उपर्युक्त स्वीकृति एक वास्तविकता है तो उक्त आदर्शों के मुकुर में आज के युग के हृदय का प्रतिबिम्ब जब हम देखते हैं तो असंख्य नर-नारियों, बाल-वृद्धों, तरुणों, पौर्वात्यों-पाश्चात्यों के हृदयों में

हम किसको संचरण करते हुए देखते हैं। राम को अथवा रावण को? इन असंख्य हृदयों में किसका उद्घोष हम सुनते हैं। राम का अथवा रावण का? न्याय ही शक्ति है अथवा शक्ति ही न्याय है? विषय भोग जीवन के लिए है या जीवन है विषय भोग के लिए? किसका उद्घोष सुनते हैं आप - राम का अथवा रावण का?

आपने उत्तर काण्ड में वर्तमान युग का एक शब्द-चित्र अंकित किया है :

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नरनारी॥
द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्या रंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो पर धन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो बहु झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो विरागी॥
जाके नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

अशुभ वेष भूषन धरे, मच्छामच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं॥

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहि नर मरकट की नाइ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत विरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहि नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषन हीना। विधवन्ह के सिंगार नवीना॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक ना देखा॥
जरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुं परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहि। उदर भरें सोइ धर्म सिखावहि।

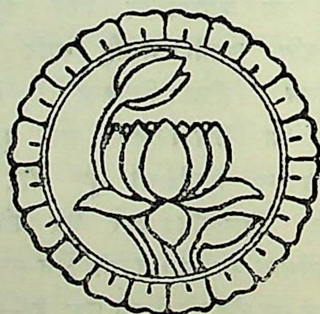
उपर्युक्त चित्र है वर्तमान युग का। इसमें कौन-सा रंग भरा है—राम का अथवा रावण का? राम का रंग तो केवल एक है—दुग्ध धवल रंग : न्याय ही शक्ति है तथा विषय भोग ही जीवन है। रावण का रंग भी केवल एक है—केवल श्याम रंग : शक्ति ही न्याय है तथा जीवन के लक्ष्यमात्र विषय भोग हैं। गोस्वामी जी ! उक्त चित्र में कौन-सा रंग है : राम का अथवा रावण का? यदि यह एक तथ्य है कि आज भी काल की रेखाओं में खचित युग के चित्र में रावण

रंजित है, राम नहीं; तो सत्य क्या रहा? क्या राम ने वस्तुतः रावण को परास्त कर दिया? क्या राम ने वस्तुतः रावण को सदा-सदा के लिए मार दिया?

लगभग ४०० वर्षों से गोलोक में दुग्ध-गंगा तथा मधु-यमुना के संगम में निवास करते-करते आपने जो शीतल शांति अपनी पलकों में सँजो ली है, आपकी यह दुर्लभ शान्ति मैंने कहाँ से भंग करदी? किन्तु मैं क्या करूँ, मैं तो पुनः-पुनः अपने मन को समझाता हूँ—विश्वास मान—राम ने रावण को परास्त कर दिया। किन्तु मन जिद्दी है। वह पुनः-पुनः एक ही प्रश्न दोहरा देता है : क्या सचमुच राम ने रावण को परास्त कर दिया? बताओगे न बाबा तुलसी! क्या सचमुच राम ने रावण को परास्त कर दिया?

उत्तर की प्रतीक्षा में :

परम आदर सहित, आपका
एक जिज्ञासु पाठक





तुलसी के राम की आदर्श राजनीति

⊙

श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव

भू० पू० प्रधान सम्पादक : 'भारत' (प्रयाग)

[सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास के आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम का आदर्श चरित आध्यात्मिकता की दृष्टि से ही नहीं, लोकोपयोगिता की दृष्टि से भी अनुकरणीय तथा अनुसरणीय है - राम की आदर्श राजनीति आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में आज के नेता एवं राजनीतिज्ञ के लिए व्यावहारिक मार्ग-दर्शन तथा प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकती है। . . . सुप्रसिद्ध लेखक, अनुभवी पत्रकार एवं सर्वोदयी-विचारक श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव द्वारा तुलसी के श्री राम की आदर्श राजनीति का एक गम्भीर एवं तटस्थ विवेचन प्रस्तुत है।
—सम्पादक]

भगवान राम के सम्बन्ध में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। रामकथा तथा राम-चरित का आश्रय लेकर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इसी सरणि में सन्त-कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'नाना पुराण निगमागम' के आधार पर अपनी लोकप्रिय रामायण की रचना की। रामायण, रामकाव्य तथा रामकथा से म्रियमाण हिन्दू जाति को बड़ा बल मिला। हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दुओं के आचार-विचार तथा जीवन-परम्परा को सुरक्षित रखने में भी उनसे बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की राजनीति धर्म और नैतिकता पर आधारित थी। उसमें सदाचार और सत्याचरण की प्रधानता थी। आधुनिक राजनीति में धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है और कहा जाता है कि राजनीति को धर्म से बिल्कुल पृथक् रखना चाहिए। धर्म को संघर्ष और विग्रह का कारण माना जाता है, इसीलिए राजनीतिक मामलों में उसे कोई महत्व नहीं दिया जाता। उसे राजनीति से अलग रखने में ही समाज का कल्याण समझा जाता है। स्वतंत्र भारत के संविधान में भी राज्य का कोई धर्म नहीं

माना गया है। उसे 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' की संज्ञा दी गयी है। सभी नागरिकों को अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने तथा अर्चना-उपासना करने की स्वतन्त्रता दी गयी है, किन्तु राज्य किसी एक धर्म का प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता और न किसी धर्म के साथ पक्षपात कर सकता है। किंतु प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र धर्म ही रहा है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलतत्व रहा है। धर्म-विहीन राजनीति समाज में कितनी स्वार्थपरता, अर्थलोलुपता और भ्रष्टाचार फैला रही है—यह बताने की आवश्यकता नहीं है। यदि राजनीतिक जीवन में पवित्रता लाना है, उसे भ्रष्टाचार से मुक्त करना है और सत्यनिष्ठा की प्रतिष्ठा करनी है; तो राजनीति और राजनीतिज्ञों को धर्म का आश्रय लेकर चलना होगा। यदि धर्म मनुष्य को सत्य पर चलने के लिए प्रेरित करता है, मनुष्य को सच्चा मानव बनाने का प्रयत्न करता है, उसको निस्स्वार्थ सेवा और त्याग की शिक्षा देता है; तो कोई कारण नहीं है कि राजनीति तथा राजनीतिक जीवन में धर्म की उपेक्षा अवहेलना की जाय। महात्मा गांधी तथा आचार्य बिनोवा भावे जैसे मनीषियों ने धर्म का महत्व समझा और उन्होंने इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक कार्यकलाप में भी धर्म का आधार आवश्यक है। किन्तु भारत की वर्तमान राजनीति पाश्चात्याभिमुख होकर चल रही है। अस्तु,

भगवान् राम का जीवन धर्म से ओत-प्रोत था। चित्रकूट में सभी सभासदों के समक्ष भाषण करते हुए ऋषि वसिष्ठ कहते हैं :

धरम धुरीन भानुकुल भानू।

—रामच० २।२५३।१

रामराज्य के वर्णन के प्रकरण में भी रामचन्द्रजी को 'श्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर।' (वही, ७।२३।१) कहा गया है। उसी प्रकरण में गोस्वामीजी ने लिखा है :

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ॥
वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥

—वही, ७।१२५।१

इससे स्पष्ट है कि श्रीराम के शासन-काल में राजसभा में धार्मिक प्रवचन होते थे। मुनि वसिष्ठ स्वयं वेद-पुराण की कथाएँ सुनाते थे। तभी तो रामराज्य धर्म के वातावरण से ओत-प्रोत था :

वरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।

—वही, ७।२०

भगवान् राम चाहते थे कि सभी नागरिक धर्म के अनुसार आचरण करें। निषादराज की विदाई के समय उन्होंने उसे उपदेश किया :

मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू।

—वही, ७।१९।१

इन सब बातों से यह प्रमाणित होता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की राजनीति धर्म पर ही आधारित थी। उनका अखण्ड विश्वास था कि राज्य में जब सब लोग धर्म का पालन करेंगे, धर्मानुसार आचरण करेंगे, तभी सम्पूर्ण समाज का कल्याण होगा, शान्ति और सुख का चारों ओर विस्तार होगा। प्राचीन भारत में राजा, मन्त्री और सभासद्—सभी के आचरण एवं व्यवहार में धर्म को बहुत महत्त्व दिया जाता था। एक श्लोक में कहा गया है कि 'जिस सभा में सब सदस्यों के देखते हुए अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य का हनन किया जाता है, उस सभा में सब मृतक के समान हैं। संसार में एक धर्म ही अपना मित्र या सुहृद है, जो मृत्यु के पश्चात भी साथ जाता है; और सब वस्तुएँ तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती हैं। अतः सभी सभासदों को किसी भी अवस्था में धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए।'

संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सत्ता और सिंहासन के लिये कितने रक्तरंजित काण्ड और युद्ध हुए, कितने नृशंस और जघन्य अत्याचार हुए। सत्ता के लिए भाई-भाई में, पिता-पुत्र में और चचा-भतीजे में घोर शत्रुता पैदा हो गयी और भीषण संघर्ष हुए। सत्ता में आने के लिए बीभत्स और अमानुषिक कार्य किये गये; दानवता और पाशविकता के निम्नस्तर पर लोग उतर आये; किंतु भगवान् श्रीरामचन्द्र को सत्ता का कोई मोह नहीं था। मानवता के उच्च आदर्शों के लिए, जीवन के उच्च मूल्यों के लिये उन्होंने हाथ में आती हुई सत्ता को तृणवत् त्याग दिया। महाराज दशरथ ने कुल-परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उन्हीं का राज्याभिषेक करने का निर्णय किया और उसके लिए सब तैयारी भी हो गयी; किंतु अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से, पिता को धर्मसंकट में देखकर, उनके वचन की रक्षा के लिये वे राजमहल के जीवन का ऐश्वर्य-वैभव छोड़कर वनवास के लिये तैयार हो गये। उन्होंने राज-

सिंहासन भाई भरत के लिए छोड़ दिया। मन में माता कैकेयी या और किसी के प्रति कोई दुर्भाव लाये बिना श्रीराम ने वनगमन करना ही अपना परम धर्म समझा। उनकी उस समय की मनःस्थिति अत्यन्त उदात्त थी। उस समय के उनके मुखारविन्द के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने बहुत ही ठीक लिखा है :

प्रसन्नतां यो न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।

—मानस २।२ श्लोक

—अपना राज्याभिषेक होने की बात सुनकर न तो श्रीरामचन्द्र जी हर्ष से फूल उठे और न वनवास से उनका मुख मलीन हुआ—वे कितने बड़े स्थितप्रज्ञ थे, समबुद्धियुक्त एवं द्वन्द्वातीत थे। उन्हीं की तरह भाई भरत को भी सत्ता का कोई लोभ नहीं था। तभी तो अपने राज्याभिषेक की बात स्वीकार न करके रामचन्द्रजी को बन से लौटा लाने और राजसिंहासन पर बैठाने के लिए वे दल-बलसहित चित्रकूट पहुँचे; किन्तु किसी का आग्रह-अनुरोध श्रीराम को उनके संकल्प से डिगा नहीं सका। यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाने पर भी, कि वे चौदह वर्ष की वनवास-अवधि के समाप्त होने के पूर्व अयोध्या कदापि नहीं लौटेंगे, भरत जी विधिवत् सिंहासन पर बैठकर शासन करने के लिए सहमत नहीं हुए। रामजी की पादुका लेकर वे चित्रकूट से लौट गये और राजधानी अयोध्या के समीप नन्दिग्राम में उनकी स्थापना करके बड़े भाई की ओर से राजकाज चलाने लगे। वे राज्य को भगवान् राम की धरोहर वस्तु के रूप में मानते थे और एक तपस्वी की भाँति वल्कल और मृगचर्म धारण कर कुटी में रहते थे। लंका-विजय के पश्चात श्रीरामचन्द्र जी के वापस आते ही भरतजी ने उनके चरणों में पादुका पहना दी और शासनसूत्र उन्हें सौंप दिया। बड़ी धूमधाम के साथ उन्होंने श्रीरामजी का राज्याभिषेक सम्पन्न कराया। वाल्मीकि रामायण के अनुसार वनवास की अवधि में भरत ने राजकोष की दसगुनी वृद्धि की।

श्रीरामचन्द्र जी को सत्ता और राज्य के विस्तार का लोभ होता तो बालिवध के बाद राज्य सुग्रीव को न देकर स्वयं ले सकते थे। इसी प्रकार लंका के पतन के बाद उनका राज्य भी अधिग्रहण कर सकते थे। किन्तु श्रीराम ने पहले ही विभीषण को लंकाधिप बनाने का वचन दे रक्खा था। वचन ही नहीं दिया था, अभिषेक भी करवा दिया था। रावण के वध के बाद श्रीराम ने अपने वचन को पूरा किया और विधिवत् विभीषण का राज्याभिषेक कराया। सत्ता के

प्रति अनुचित मोह और आसक्ति न होने का एक बड़ा कारण कुल की परम्परा, संस्कार, शिक्षा, सदाचार आदि था। त्याग भारतीय-संस्कृति का एक महामंत्र रहा है और त्याग के लिए तपस्या आवश्यक होती है। आर्य-संस्कृति, जो आध्यात्मिक संस्कृति थी, परमार्थ पर ही अधिक बल देती थी, स्वार्थ पर नहीं। आग्नेय महापुराण में श्रीरामचन्द्रजी द्वारा लक्ष्मण को जो राजनीति उपदिष्ट की गयी है, उसमें कहा गया है कि 'बाहर और भीतर से शुद्ध रहकर राजा आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोक पर विश्वास) द्वारा अन्तःकरण को पवित्र बनाये, गुरुजनों का देवताओं के समान ही सम्मान करे।' यह भी कहा गया है कि 'राजा विनयगुण से सम्पन्न होकर आत्मज्ञान का चिन्तन करे।' ऐसी शिक्षा और आचार के होते हुए राजसत्ता के लिये मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है? महाराज दशरथ का परिवार एक आदर्श संयुक्त परिवार था और सभी भाइयों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था; फिर उसमें सत्ता का लोभ और संघर्ष हो ही कैसे सकता था? आज के राजनीतिज्ञ सत्ता के पीछे पागल हैं। उनका अपना कोई स्थिर सिद्धान्त और आदर्श नहीं है। वे सत्ता में आने और पद पाने के लिए निर्लज्जतापूर्वक निम्न स्तर पर उतर सकते हैं। जब तक शिक्षा-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया जाता, आर्य-संस्कृति के आधार पर उसका पुनर्गठन नहीं किया जाता और शिक्षा-क्रम में धर्म को समुचित स्थान नहीं दिया जाता और राजनीति में सत्य, सदाचार और धर्म को यथेष्ट महत्व नहीं दिया जाता, तब तक सत्ता-मोह, पद-लोलुपता, अर्थलोलुपता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता तथा सिद्धान्तहीन पथ-परिवर्तन की कलुषित राजनीति बदल नहीं सकती।

भगवान् राम कितने लोकतन्त्रवादी थे और जनमत का कितना अधिक आदर करते थे, यह उस प्रकरण से स्पष्ट हो जाता है, जब उन्होंने पुरवासियों की एक महती सभा बुलाकर प्रजा को उपदेश दिया। उन्होंने कहा :

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

× × ×

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

—मानस ७।४२।२-३

इस कथन से कितनी विनयशीलता, कितनी निरहंकारता; कितनी निश्छलता और सरलता प्रकट होती है। अपनी प्रभुता और राजपद का भगवान

राम को जैसे रञ्चमात्र भी गर्व नहीं था। उन्होंने सभा में उपस्थित सभी सभासदों तथा पुरवासियों को इस बात की स्वतन्त्रता दे दी कि यदि उनके कथन में कोई बात अनुचित या नीति-विरुद्ध जान पड़े; तो बिल्कुल भयरहित होकर वे उन्हें टोक दें, रोक दें और अपनी आपत्ति प्रकट कर दें। आज तो जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्री भी, जो सिद्धान्त रूप से जनता का सेवक माना जाता है, कहीं भाषण करते या बोलते हुए इतनी छूट अपने श्रोताओं को नहीं दे सकता। इसीलिये हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि राजा होते हुए भी श्रीरामचन्द्र जी पूरे लोकतन्त्रवादी थे; जनता को और लोकमत को अपने पक्ष में रखकर वे काम करते थे।

रामराज्य के वर्णन से भी इस बात का प्रभूत प्रमाण मिलता है कि भगवान् राम के शासन में चारों ओर लोकतन्त्रीय वातावरण व्याप्त था और सर्वसाधारण की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था। लोगों के जीवन-निर्वाह का स्तर ऊँचा था। निपट निर्धनता और अभावग्रस्तता की स्थिति कहीं नहीं थी। कोई कष्टमय जीवन बिताने के लिये विवश नहीं था। समाज में अधिक भेद-भाव और विषमता नहीं थी। जनता में किसी प्रकार की अशान्ति अथवा असंतोष नहीं था। सभी सुखी थे। सभी शान्ति के साथ सहयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। लोगों में (आज-कल की तरह) पारस्परिक कलह अथवा संघर्ष नहीं था। वैर-वैमनस्य लोगों में नहीं था। रामचरित मानस से रामराज्य के वर्णन का कुछ अंश उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते :

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

—वही, ७।१९।४; ७।२०; ७।२०।१

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

—वही, ७।२०।३

रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी।.....................॥

—वही, ७।२१।३-२

जिस शासन के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रजावर्ग सुखी एवं संतुष्ट हो, किसी को अर्थाभाव का और खाने-पहनने का कष्ट न हो, सभी नागरिकों में पारस्परिक सहायता और सहयोग की सुप्रवृत्ति हो, उसे आदर्श शासन ही कहा जाएगा। जिस राजनीति के फलस्वरूप समाज की ऐसी सुव्यवस्था हो, लोगों को इतना सुख-सुपास हो, भरपूर समृद्धि एवं सम्पन्नता की स्थिति पैदा हो गयी हो, उसे हम आदर्श राजनीति की ही संज्ञा देंगे। वर्तमान काल में कल्याणकारी राज्य की बड़ी चर्चा है। राज्य समग्र जनता के हित-कल्याण का ध्येय सामने रखकर काम करता है, किंतु जो उन्नतिशील राष्ट्र कल्याणकारी राज्य के ध्येय की दिशा में आगे बढ़े हुए माने जाते हैं, उनमें अभी लाखों व्यक्ति बेकारी और भुखमरी की-सी अवस्था में येन-केन प्रकारेण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। औद्योगिक उन्नति और आर्थिक समृद्धि होने के बावजूद बहुत-से लोग अभावग्रस्त-जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होते हैं। किन्तु इसके विपरीत रामराज्य में दुःख-दैन्य का, गरीबी और बेकारी का कहीं चिह्न तक नहीं दिखायी पड़ता था। शोषण, भ्रष्टाचार, दमन, अत्याचार, उत्पीड़न और संघर्ष आदि का (जिनकी इतनी शिकायतें वर्तमान राज्यों में पायी जाती हैं) रामराज्य में एकदम अभाव था। यही कारण है कि रामराज्य आदर्श राज्य माना जाता है। महात्मा गांधी ने स्वतन्त्र भारत में उसी तरह का रामराज्य स्थापित करने की कल्पना की थी। सर्वोदयी विचारक भी वैसे ही रामराज्य की स्थापना का स्वप्न देखते हैं, किंतु आज के चिंतकों और विचारकों का स्वप्न कभी पूरा हो सकेगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है। राजा रामचन्द्र जी राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में एक ऐसा ऊँचा आदर्श छोड़ गये हैं, जिसको प्राप्त करना आधुनिक काल की परिस्थितियों में असम्भव-सा जान पड़ता है। उसके लिये लोगों को पहले धर्मपरायण, सत्य-निष्ठ तथा सच्चरित्र बनना होगा। शासकों तथा राजनीतिज्ञों को भगवान राम और भरत जी की तरह त्याग और तपस्या का जीवन बिताने के लिए तैयार होना चाहिए।

श्रीराम की राजनीति में ऊँच-नीच का बहुत भेदभाव नहीं था। शूद्र तो थे, किन्तु वे घृणा की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। कुछ लोगों के मत से शबरी

शूद्रा थी, किन्तु उसके प्रगाढ़ भक्तिभाव और प्रेम से प्रभावित होकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसके आश्रम में पधारने की ही कृपा नहीं की, वरं उसके हाथ से बेर ग्रहणकर के प्रसन्नतापूर्वक खाने में भी कोई संकोच नहीं किया। गोस्वामी जी का कथन है कि भक्ति-भाव में विभोर शबरी रामजी को बढ़िया और मीठे-मीठे बेर खिलाने के उद्देश्य से पहले उन्हें स्वयं चख लेती थी। केवल मीठे बेर ही रामजी को खाने के लिये देती थी। निषादराज भी शूद्र वर्ण का था; किंतु उसकी सेवा और प्रेम को देखकर रामचन्द्रजी ने उसके हाथ के दिये कंद-मूल फल ग्रहण करने में कोई संकल्प-विकल्प नहीं किया। निषाद के साथ भगवान् राम और लक्ष्मण ने बड़ा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। उसे सखा की तरह माना। चित्रकूट जाते समय राम-सखा के रूप में परिचय होने पर भरत जी और वसिष्ठ मुनि भी गले लगाकर निषाद से मिले थे। जब श्रीरामजी लंका पर विजय प्राप्त कर अयोध्या वापस आ रहे थे, तब श्रृंगवेरपुर में उसका प्रेम और आग्रह देखकर, निषादराज को भी साथ ले लिया और राज्याभिषेक हो जाने के बाद दूसरों की तरह उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि की भेंट देकर अयोध्या से प्रेमपूर्वक बिदा किया। यही नहीं, अपना प्रेम प्रकट करते हुए उससे यह भी कहा :

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ।।

चित्रकूट में अपने निवास-काल में कोल-किरात तथा अन्य वनवासियों के साथ भी श्रीरामचन्द्र जी ने प्रेमभाव दिखाया। इस प्रसंग में यह बात भी उल्लेखनीय है कि गरुड़ पक्षिराज तथा स्वयं हरि के वाहन होते हुए भी शिवजी की सलाह से राम-कथा सुनने तथा आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने से हीन कोटि के पक्षी काकभुशुण्डि के पास गये। राम-महिमा सुनने के बाद गरुड़जी ने विनीत-भाव से कहा :

नाथ मोहि निज सेवक जानी । सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ।।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों बड़प्पन का अभिमान त्यागकर अपने छोटे से भी शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने में कोई संकोच नहीं किया जाता था।

श्रीरामजी का कुसुम-सा कोमल स्वभाव होते हुए भी वे दानवों, दैत्यों तथा राक्षसों का दमन करने के लिये कठोर-से-कठोर रुख अपना लेते थे। दुष्टों का दलन कर जनता —प्रजा की रक्षा करना आवश्यक राजकर्तव्य माना जाता था। तभी तो राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने के लिये विश्वामित्र जी महाराज दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगकर अपने साथ ले गये थे। महाराज दशरथ

को मोह में पड़ते देखकर गुरु वशिष्ठ ने उन्हें कर्तव्य का ज्ञान कराया और दोनों राजपुत्रों को जाने देने का परामर्श दिया। वनवास-काल में और उसके पूर्व कितने ही राक्षसों और दानवों का राम-लक्ष्मण ने वध किया। रावण ने मारीच के साथ कुचक्र कर और छद्मवेश धारण कर जब सीताजी को धोखा दिया और उनका अपहरण किया, तब तो अनीति की हद हो गयी। यह अपहरण ऐसा जघन्य और अपमानजनक था, जिसे श्रीराम सहन नहीं कर सके। रावण के कितने ही गुप्तचर आर्य देश में घुस आते थे। वाल्मीकि रामायण के अनुसार दण्डक वन में रावण ने अपनी बाहरी चौकी स्थापित कर रखी थी और खर-दूषण के नेतृत्व में वहाँ राक्षसों की चौदह सहस्र सेना भी थी। रामचन्द्र जी ने कपिराज सुग्रीव से मैत्री कर ली और हनुमान जी के द्वारा यह पता लग जाने पर कि सीताजी का हरण लंकाधीश रावण ने किया है और उसने उन्हें एक बाटिका में अवरुद्ध कर रखा है, श्रीरामचन्द्र जी ने लंका पर आक्रमण करने और जानकी का उद्धार करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उनका स्वाभिमान तथा राष्ट्राभिमान जाग्रत हो गया था, अतः उन्होंने बैर-शोधन करने की ठान ली।

सर्वप्रथम समुद्र के पास सेना उतारनी थी। सागर से मार्ग देने की प्रार्थना की गयी; किंतु तीन दिन की प्रतीक्षा के बाद भी जब समुद्र ने उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया, तब रामचन्द्र जी बहुत ही क्रुद्ध हो उठे। उनका वह रौद्र रूप प्रकट करता था कि अपने संकल्प को पूरा करने के लिए वे कितने दृढ़ थे।

सरोष शर-संधान कर सागर सोख लेने की धमकी दी गयी। प्रचण्ड अग्नि-बाण छोड़ने से जब सागर का जल आन्दोलित हो उठा और जीव-जन्तु जलने लगे, तब समुद्रदेव विवश होकर प्रकट हुए और उन्होंने विनीत भाव से अपने को पार करने का उपाय बताया, जिसके अनुसार नल-नील आदि ने पुल तैयार किया और अपनी सम्पूर्ण सेनासहित रामचन्द्रजी ने उस पार पहुँचकर सुवेल पर्वत पर डेरा डाल दिया। 'बिनु भय होइ न प्रीति' वाला रामजी का सिद्धान्त आज भी अनुकरणीय है।

भगवान् रामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम थे और उनकी राजनीति आदर्श राजनीति थी, जो कई अंशों में आज भी अनुकरणीय है। यदि आज के नेता और राजनीतिज्ञ पाठ और प्रेरणा लेना चाहें तो रामकी राजनीति-राजा और शासक के रूप में राम का व्यवहार—प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकता है।

गीतावली में विभीषण-शरणागति प्रसंग : एक दृष्टि

⊙

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव पी-एच० डी०
प्राध्यापक : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

[लंका का विभीषण रामकथा की मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर चिन्ताग्रस्त शरणापन्न जीव का ही प्रतिनिधि है, जो दुष्ट-संकल्प रावण से तिरस्कृत होकर सत्य-संकल्प राम की शरण में जाता है। .... विभीषण-शरणागति प्रसंग में शरणागति के मूल रहस्य का मनोवैज्ञानिक एवं तात्विक उद्‌घाटन-विवेचन कर रहे हैं लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक, कवि एवं प्रख्यात लेखक डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव--सम्पादक]

अशरणशरण भगवान राघवेन्द्र की अभयप्रदायिनी भक्तवत्सलता असीम और अनन्त है। उसकी यह अहैतुकी कृपा और करुणा वैसे तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के असंख्य जीवों के लिए समान रूप से प्रवाहित होती रहती है; पर जो अनन्य भाव से उनके ही हो चुके हैं, उनके प्रति इस कृपा और करुणा के तरंगायित वेग की कल्पना हमारा मन नहीं कर सकता। उनके लिये तो 'धैर्य हिमवानिव' और 'हिमगिरि कोटि अचल' धीरोदात्त नायक राघवेन्द्र राम सहज अधीर हो उठते हैं और उनकी यह 'अधीरता' ही अनन्य शरणापन्न भावुकजनों की थाती है।

यहीं पर तो उनके ऐश्वर्य का अनन्त आकाश उनके माधुर्य की एक बूंद पर न्योछावर हो जाता है।

शरणागति के इस गूढ़ रहस्य की चर्चा का सूत्रपात तो वैदिक वाङमय से ही हो जाता है; परन्तु राम-काव्य-परम्परा में इसकी सर्वप्रथम प्रामाणिक घोषणा आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण के अन्तर्गत विभीषण-शरणागति-प्रसंग में स्वयं राघवेन्द्र के मुखारविन्द से होती है:

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।।

'एक बार भी शरणापन्न होकर 'मैं तुम्हारा हूं'—इस प्रकार जो प्रार्थना कर लेता है, उसे सर्व प्राणियों से अभय प्रदान कर देता हूं, यह मेरा व्रत है।'

शरणागति के इस भगवत्वाक्य को समग्र आदि-काव्य का प्राण-शक्ति के रूप में ग्रहण करके ही वाल्मीकीय रामायण को 'प्रपत्ति का वेद' कहा जाता है। इस सूत्रवाक्य का परवर्ती साहित्य में अनेक रूपों में अनेक अवसरों पर पात्र, देश और काल के अनुरूप विकास-विस्तार होता रहा। श्रीमद्‌भगवद् गीता के 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन' तथा 'मामेकं शरणं व्रज' जैसे भगवत्वाक्यों में भी यह गूढ़ रहस्यमय संदेश गूंजता रहा।

भगवच्छरणागति की अनेक मार्मिक घटनाओं और अनुभूतियों से ऋषियों, संतों एवं महाकवियों की वाणी प्रत्येक देश-काल में समृद्ध होती रही है, वस्तुतः हमारे जीवन और मरण का प्रत्येक क्षण उन्हीं अशरणशरण के स्निग्ध अमृत से सरस होता रहता है; पर इन में कुछ प्रसंगों का अपना विशिष्ट इतिहास बन गया है। इनमें भी 'विभीषण शरणागति' का प्रसंग सर्वाधिक मर्म-स्पर्शी है। गोस्वामी जी के काव्य में यह प्रसंग अनेक भावुक सहृदयों का सर्वस्व रहा है। इस बहुचर्चित प्रसंग की रसात्मकता आर्त प्रपन्न भक्त-हृदय की भावना और प्रपन्नार्तिहर प्रभु के हृदय की अकनुम्पा के अनेक मनोवैज्ञानिक स्तरों का उद्‌घाटन करती है।

शरणागति का मूल रहस्य है भगवान् के प्रति निश्छल भाव से अपनी समग्र विवशताओं और दुर्बलताओं के साथ आत्मदान। अपनी अपूर्णता और प्रभु की असीम पूर्णता, अपनी लघुता और प्रभु की विराटता का अनुभव अणुजीव को विभु परमदेव के प्रति समर्पित हो जाने को प्रेरित करता है। लंका का विभीषण राम-कथा की मनोवैज्ञानिक भाव-भूमि पर चिंताग्रस्त शरणापन्न जीव का ही प्रतिनिधि है, जो दुष्टसंकल्प रावण से तिरस्कृत होकर सत्यसंकल्प राम की शरण में जाता है।

गोस्वामी जी की 'गीतावली' में विभीषण की प्रस्थानकालीन मनःस्थिति के बड़े मार्मिक चित्र अंकित हैं। भ्राता कुबेर और भगवान शंकर की सम्मति एवं आशीष लेकर विभीषण चलते हैं। इस प्रसंग में कुबेर के यहाँ मिलने वाले भगवान् शंकर का उपदेश विशेष रहस्यपूर्ण है: 'राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै'—वस्तुतः भगवान की शरण में जाने के लिए प्रत्येक क्षण मंगलमय ही है।

जीव प्रभु की शरण में स्थायी रूप में जाने की स्थिति में तभी होता है, जब उसे अन्यत्र कहीं ठौर नहीं रहता और कोई ठौर हो भी कैसे सकता है; क्योंकि जहाज़ के पंछी की भाँति उसके नित्य संरक्षक तो प्रभु ही हैं। स्वयं विभीषण के शब्दों में :

नाहिंन मोहि और कतहूं कछु जैसे काग जहाज के।

—गीता०, पद सं० २९

इस अनभूति की प्रथम अवस्था में ही प्रभु के शरण में जाने के संकल्प मात्र से ही जीव को एक विचित्र आह्लाद की प्रतीति होने लगती है। इस मनःस्थिति की सुकुमार अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए :

महाराज राम पहं जाउंगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउंगो।।
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं हौं निपटहिं सकुचाउंगो।
राम गरीब निवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउंगो।।
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि ते केहि लाभ अघाउंगो।
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउंगो।।
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो बिनु मोल ही बिकाउंगो।
तुलसी पट उतरे ओढिहौं उबरी जूठनि खाउंगो।।

—गीता०, पद सं० ३०

प्रभु के अखण्ड वात्सल्य के प्रति अगाध आस्था और अपनी चेतना के एक-एक अंश में संबंधानुभूति की प्रगाढ़ आत्मीयता का बोध शरणागति पथ की ओर अग्रसर जीव की सहज भावदशा है।

विभीषण का सचिव भी राघवेन्द्र को संदेश देता है कि 'कृपासिंधु! दसकंध-बंधु लघु चरन-सरन आयो सही।' भगवान प्रमुदित मन से हनुमान का जी टटोलते हैं और विभीषण के संबंध में अपना अनुमान व्यक्त करते हैं :

सुमति साधु सुचि सुहृद विभीषन बूझि परत अनुमान सों।

गीता०, पद सं० ३२

हनुमान बड़ा चुटीला उत्तर देते हैं :

हौं बलि जाऊं और को जानै ?

—गीता०, पद सं० ३३ :

सचमुच अन्तर्यामी प्रभु के सिवा जीव के स्वभाव की वास्तविक पहचान और किसे हो सकती है। साथ ही हनुमान की असीम शक्तिमत्ता की भी चुटकी ले लेते हैं :

तुलसी प्रभु करिबौ जौ भलो सोइ बूझि सरासन बान सों।

—गीता०, पद सं० ३३

शक्तिमान ही तो संरक्षण देने की सामर्थ्य रखता है।

भगवान राम को प्रणाम करते हुए विभीषण की विभोरता प्रभु को भी विभोर कर देती है। वे बाहें फैला कर भेंटते हैं :

भयो विदेह विभीषन उत इत प्रभु अपनपो बिसारि कै।
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारि कै।
तुलसी तेहि हों लियो अंक भरि, कहत कछू न संवारि कै।

—गीता०, पद सं० ३६

प्रथम प्रणाम में ही अंक में भर के भेंटने वाले भगवान् राघवेन्द्र के कारुण्य सिंधुत्व की प्रत्येक तरंग शरणापन्न जीव का सहज-सुलभ सौभाग्य है। राम-प्रणाम की इस महिमा पर गोस्वामी जी का भक्तहृदय विमुग्ध हो उठता है :

रंक निवाज रंक राजा किए, गए गरब गरि गरि गनी।
राम-प्रनाम महा महिमा-खनि सकल सुमंगल मनि जनी।
होय भलो ऐसे ही अजहुं गये राम-सरन परिहरि मनी।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी॥

—गीता०, पद सं० ३९

× × ×

मंगल मूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो को ताकी महिमा भनै॥

—गीता०, पद सं० ४०

गोस्वामी जी को सहसा अपनी व्यक्तिगत भाव-दशा की अतीत और वर्तमान परिस्थितियों की तुलना करते हुए आराध्य के प्रति स्निग्ध तन्मयता से कह उठते हैं :

हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो कनै।
सो तुलसी चातक भयो जांचत राम स्याम सुंदर घनै॥

—गीता०, पद सं० ४०

एक ही प्रणाम से प्रसन्न हो जाने वाले भगवान् राघवेन्द्र की शरण में आने वाले जीव के चराचर मंगलमय हो उठता है—

गये राम सरन सब को भलो।
गनी गरीब बड़ा छोटो बुध मूढ़ हीनबल अति बलो।।
पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाचें जलो।
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो।।
नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो।।
प्रभु पद प्रेम प्रनाम कामतरु सद्य विभीषण को फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थलो।।

—गीता०, पद सं० ४२

इस मंगलमय स्थिति का सारा श्रेय जीव की प्रपत्ति भावना को ही नहीं, वरन् प्रभु के सहज अशरणशरण नित्य वत्सल स्वभाव को है। स्वयं राघवेन्द्र के अमृत वचन हैं :

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्ह सन कौन दुराउ।।
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुं न ठाउं।
आयो सरन भजो, न तजों तिहि, यह जानत ऋषिराउ।।
जिन्ह के हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ।
तिनहि लागि धरि देह करों सब डरो न सुजस नसाउ।।
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ।।

—गीता०, पद सं० ४५

तभी तो कृतार्थं जीव आत्मविभोर हो कह उठता है—

नाहिन भजिबै जोग वियो।
श्री रघुवीर समान आन को पूरन कृपा हियो।।

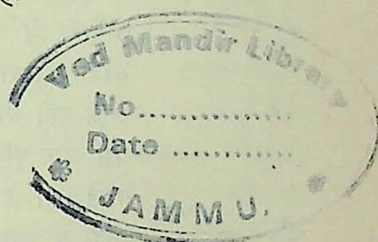
—गीता०, पद० सं० ४६



यज्ञ न पूरा होगा...

श्रीमती शान्ति मेहरोत्रा, एम० ए०
समकालीन भावबोध की प्रसिद्ध कवयित्री : आकाशवाणी, इलाहाबाद

केवल स्वर्णिम प्रतिमा से ही
यज्ञ न होगा पूरा,
छाया फिर भी छाया है
ज्ञान रहित,
दृष्टि रहित
प्राण रहित।
वहन करेगी कैसे
भार वह
मर्यादा पुरुषोत्तम राम के संकल्पों का ?
आदर्शों का !
सीता की निष्ठा के विरुद्ध
कहा होगा किसी ने भी
कुछ भी,
कहीं भी,
किंतु
सीतापति तो तुम थे !
निर्णय तुमको करना था !
कसा तुमने अखण्ड विश्वास को भी
निकष पर ?
नहीं राम, नहीं
दम्भ यह तुम्हारा लोकतंत्र का
कहीं झूठा था
छाया संदेह की
उठी थी तुम्हारे ही मन में
आखिर पुरुष थे तुम !



पलभर में अस्वीकार दिये
सारे रस भीने क्षण।
लंका से ही कसक रही थी
अन्तर में यह बात तुम्हारे।
वैदेही के लिये तभी तो
हुई शपथ अनिवार्य
दिया आश्वासन तुमको देवगणों ने
तुम्हारी ही पत्नी की
अडिग आस्था का!
लाज नहीं आई राम?
प्रेम और पवित्रता
परखे नहीं जाते
शब्दों से, जनमत से।
अन्तर ही देता है अग्नि-परीक्षा
अन्तर ही उसे स्वीकारता है।
इतना सरल नहीं है शायद
स्मृति से कर देना निष्कासित
गत सारे जीवन्त क्षणों को।
सह न सकेगी सीता यह अपमान,
अस्वीकृति,
और तुम्हारे अंशज लव-कुश
अश्वमेघ का अश्व पकड़कर
बारम्बार करेंगे घोषित
हार तुम्हारी!

⊙





सीता-निर्वासन : एक अनुचिन्तन

⊙

आचार्य बाबूलाल गर्ग, एम० ए०
करवी : चित्रकूटधाम

शास्त्रगत, लोकगत और कुलगत मर्यादाओं-मान्यताओं के नैष्ठिक पक्षधर भगवान राम के आदर्श अनाविल जीवन में सीता-निर्वासन का प्रसंग एक ऐसा मर्मस्पर्शी प्रकरण है, जिसके औचित्य-अनौचित्य को ले कर भारतीय मनीषा ने प्रचुर चिन्तन किया है। सीता जैसी सर्वगुण सम्पन्ना पति-समर्पित साध्वी-पत्नी के औचित्य का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। रही अनौचित्य की बात, सो राम जैसे धर्मात्मा,[१] पृथ्वी के समान क्षमाशील, जीव-लोक के संरक्षक और परम कारुणिक साधु-पुरुष के आचरण एवं संकल्प को सहसा किसी प्रकार की चुनौती देना भी आसान काम नहीं है। फिर भी चिन्तन के इस दोहरे पक्ष के अन्तर्द्वन्द्व में राम के प्रति किसी प्रकार की विपरीत धारणा व्यक्त किए बिना ही लोक-चेतना की संवेदना और सहानुभूति बराबर सीता के ही पक्ष में रही। इसीलिए सीता-निर्वासन को लोक स्वीकृति या सहमति कभी नहीं मिली।

यहाँ एक बात विचारणीय है। लोक-चेतना में भावना की प्रखरता रहती है। उसके भावतत्व के समक्ष बुद्धितत्व प्रायः दबा रहता है। इसलिए सीता-निर्वासन के सन्दर्भ में भावातिरेक में लोक-आक्रोश कहीं-कहीं मुखर भी हो उठा है और इस हद तक कि उसकी सीता इस घटना के बाद से राम का मुख तक देखना पसन्द नहीं करतीं और भारतीय संस्कार-बोध को विस्मृत कर राम को पापी कहने में भी नहीं हिचकतीं। ऐसी अभिव्यक्तियाँ जन-जीवन से निःसृत लोक-गीतों में बड़े ही करुण तथा क्षुब्ध स्वरों में हुई हैं।

एक लोकगीत में कौशिल्या से प्रेरित हो गुरु वशिष्ठ सीता के पास जाते हैं और राम के अश्वमेध यज्ञ की चर्चा करते हुए उसमें सम्मिलित होने के लिए अयोध्या लौट चलने को सीता से कहते हैं। पर तिरस्कार की चोट से सीता का मन इतना आहत है कि वह फूट पड़ती हैं और वशिष्ठ जी से कहती हैं : गुरुदेव ! आपकी आज्ञा

१. देखिए : वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग १।

के पालन स्वरूप पाँच पग धरती अवश्य रेंग चलूँगी, पर उस पापी राम का मुख अब कभी भी न देखना चाहूँगी[१]।'

एक अन्य लोक-गीत में लव-कुश के जन्म पर लोक-रीति के अनुसार अयोध्या को 'रोचना' भेजते समय सीता बारी को समझाती हैं कि 'पहला रोचना मेरे स्वर्गीय श्वसुर महाराज दशरथ को समर्पित करना, दूसरा माता कौशिल्या को और तीसरा देवर लक्ष्मण को दे देना। पर देखो, पापी राम से कदापि न कहना कि सीता ने पुत्र जन्मा है'।[२]

इस प्रकार जन-जीवन से निकले इन लोक-गीतों से साफ प्रकट होता है कि पत्नी-परित्याग की इस घटना से लोक-चेतना में कितनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है।

इस देश का जन-मानस सीता-निर्वासन से कितना उद्वेलित हुआ है, इसका एक साक्ष्य यह भी है कि रामकथा के सबसे बड़े लोकनायक कवि गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग का स्पर्श तक नहीं किया। राम और सीता के जीवन की इतनी दर्दनाक कहानी तुलसी द्वारा अनलिखी रह जाय, इसमें अवश्य कोई अन्तर्गूढ़ता छिपी है। पर मुझे तो ऐसा लगता है कि तुलसी के संवेदनशील भावुक हृदय को इस घटना से इतनी ठेस लगी होगी कि वह इसका अंकन करने का साहस ही खो बैठे। मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी कवि तुलसी का इस दिशा में मौनावलम्बन इस बात का द्योतक है कि सीता-निर्वासन पर लोक-चेतना को गहरा आघात लगा था।

परन्तु इस संदर्भ में हमें चिन्तन की कुछ और गहराइयों तक जाना पड़ेगा। हमें इस दृष्टिबोध के साथ-साथ चलना है कि सभ्यता की परिधि में व्यक्ति को

---

१. वेदी मा चढ़ि कै कौशिल्या रानी गुरु से कहैं लागी रे।
गुरु जी, चइत मास तिथि नौमी रमैया जग्य ठानेहु रे॥
गुरु जी, सीता बिन जग्य न होइ लिवाइ लइ आवहु रे।
इतना जो सुनिन्ह वशिष्ठ गुरु सीता ढिग पहुँचेहु रे।
सीता, तुम्हैं बिन होम न होय रमैया जग्य रोपेहु रे॥
पाँच परग भुइ चलिहौं गुरु का कहा करिहौं रे।
गुरु जी, पापी रमैया केर मुखड़ा कबहुं नहिं देखब हो॥

२. पहला 'रोचन' राजा दशरथ दुसरा कौशिल्या रानी रे।
बारी, तिसरा रोचन देवरा लछिमन, पपीवै न बतायेहु रे॥

हमेशा दोहरा जीवन जीना पड़ता है—सहज जीवन और आरोपित जीवन। आरोपित जीवन को हम विकसित जीवन या सांस्कृतिक जीवन अथवा सामाजिक जीवन कह सकते हैं। जीवन के इस दोहरे लिवास को ओढ़ने के लिए व्यक्ति अनिवार्यतः अभिशप्त है। कारण स्पष्ट है। सहज जीवन केवल आदिम-मानव (या कुछ हद तक वीतराग एकान्तवासी हिमालयी योगी) जी सकता था। पर जैसे-जैसे सभ्यता के विकासशील चरण बढ़े, सहजशील जीवन की स्रोतस्विनी के साथ संस्कृति की अनेक धारायें भी उसके समानान्तर बहने लगीं। विकास के परिवेश में प्रवहमान इसी सांस्कृतिक समन्वित रूप को हम आरोपित-जीवन कहते हैं। इसके अन्तर्गत रहन-सहन, नैतिकता, दायित्व-बोध, चरित्र, राजनीति, समाज-नीति तथा युगीन मान्यताओं आदि का संगम रहता है। राम को भी यह दोहरा जीवन जीना पड़ा था—सहज जीवन तथा नृपति-जीवन। इसलिए राम के दोहरे जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही सीता-निर्वासन का मूल्यांकन करना समीचीन होगा। अन्यथा भारतीय सृष्टिक्रम के सब से बड़े प्रतापी तथा आदर्श पुरुष के साथ हम न्याय न कर सकेंगे।

रामकथा के आदि उद्‌गाता महर्षि वाल्मीकि तथा कालिदास और भवभूति जैसे चिन्ताशील बुद्धिवादी महाकवियों ने राम के इस दोहरे जीवन की नियति को दृष्टि में रख कर ही सीता-निर्वासन की घटना को जाँचा-परखा है। उनके काव्य-ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि सीता-निर्वासन राम के आरोपित जीवन की ही उपज है; जिसकी पृष्ठभूमि में उनका कर्तव्य-बोध, राजकीय मर्यादा तथा लोका-राधन वृत्ति—सभी संश्लिष्ट हैं और क्रियाशील हैं। पर जहाँ तक राम के सहज जीवन का प्रश्न है, उनकी मानवीय संवेदनाओं-व्यवहृतियों पर कभी कोई खरोंच तक देखने को नहीं मिली। सीता-परित्याग पर जितना राम रोये, करुण-रस का पुष्ट परिपाक जितना उनके विलाप में परिगत हुआ है और पश्चात्ताप की आग जितनी राम के अन्तस में धधकी है, इतिहास में उसकी मिसाल ढूँढ़ने से नहीं मिलेगी।

बहुधा ऐसा होता है कि आरोपित जीवन की प्रखरता से सहज जीवन कुण्ठित हो जाता है, पर इतिहास साक्षी है कि आरोपित जीवन की ऊष्मा से राम के सहज जीवन की रस गंगा कभी सूखने अथवा मलिन नहीं होने पायी। वह अन्त तक इतनी अथाह तथा पावन बनी रही कि उसकी गरिमा पर किसी प्रकार की आशंका करने का साहस आज तक किसी भी विवेकी पुरुष को नहीं हुआ। इसीलिए

भारतीय प्रज्ञा यदि एक ओर परित्यक्ता सीता को जंगल-जंगल विलखती देख करुणा से फूट-फूट पड़ी है तो दूसरी ओर राजमहलों में सिसकते-रिसते सीता-परित्यागी राम की अन्तर्पीड़ा की सह-अनुभूति से व्यथित एवं विगलित भी हुई है।

रामकथा को सर्व प्रथम छन्दोबद्ध कर के जन-सामान्य के सम्मुख प्रस्तुत करने का श्रेय महर्षि वाल्मीकि को है। वैसे कहा तो यह भी जाता है कि वाल्मीकि के पूर्व भी रामकथा गायकों एवं चारणों की कण्ठ-परम्परा से लोक में प्रचलित रही। परन्तु क्रमबद्ध कथानक के साथ काव्य के रूप में इसे समुपस्थित करने वाले महर्षि वाल्मीकि ही हैं। वाल्मीकि तुलसी जैसे भक्त एवं भावुक कवि नहीं थे। वह राम के भक्त थे अवश्य, पर उनकी भक्ति का आधार राम का ईश्वरत्व और दिव्यत्व नहीं था। वह राम के मानवीय गुणों पर रीझे थे। वह अपने महाकाव्य का नायक एक ऐसे विशिष्ट पुरुष को बनाना चाहते थे; जो संसार में सबसे अधिक गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़व्रती, चरित्रवान्, सर्वहितकारी, विद्वान्, समर्थशाली, सुन्दर, आत्मज्ञानी, क्रोध-जयी, तेजस्वी, ईर्ष्या रहित तथा युद्ध के समय देवताओं के मन में भी भय पैदा करने वाला हो[1]।' और ऐसे पुरुष की तलाश में इन समस्त गुणों का समवाय उन्होंने राम में पाया था। राम के प्रति आकर्षण एवं भक्तिभाव का मापदण्ड उनके ये ही गुण थे। इन्हीं गुणों की कसौटी पर आदि कवि ने 'सीता-निर्वासन' के औचित्यानौचित्य को भी कसा था। और फिर, अपनी रामायण में उन्होंने इस घटना को जिस रूप में प्रसंगायित किया; उसमें सीता के साथ उनकी पूर्ण सहानुभूति तो थी, पर निर्वासन देने पर राम के प्रति उनके मन में किसी प्रकार की प्रतिकूल-धारणा न थी। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि ने तथ्य को राम के दोहरे जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही देखा था। और गहन आलोड़न-विलोड़न के फलस्वरूप उन्होंने घटना के सन्दर्भ में प्रश्न बन

---

१. को न्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च, कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥
चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनुसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥
—वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग १

कर कौंधने वाले औचित्य-अनौचित्य दोनों को नकार दिया था। इसीलिए जब महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम की ऋषिपत्नियों से सीता का परिचय देते हैं तो वे कहते हैं : 'यह धीमान् राम की पत्नी सीता है। पति ने इस निर्दोष का परित्याग कर दिया है, इसलिए इसका पालन-पोषण मुझे करना है :

सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा[1]।

यहाँ एक ओर परित्यक्ता सीता को 'अपापा' तथा दूसरी ओर परित्याग करने वाले राम को 'धीमान्' भी कहा गया है। दोहरे चिन्तन का कैसा अन्तर्द्वन्द्व है, जिसमें दोनों पक्ष अपनी-अपनी जगह पर सही हैं। कैसा विचित्र विरोधाभास है!

सीता-निर्वासन के औचित्य और अनौचित्य—दोनों तत्वों के नकारने का अर्थ यह नहीं है कि वाल्मीकि उपर्युक्त घटना को एक तटस्थ इतिहासकार की भाँति लिख कर निकल गए हों। क्रौञ्च पक्षी के वध से आहत-शोकाहत हो जिसकी प्रज्ञा श्लोक-निर्झरिणी बन कर फूट निकली थी, वह महर्षि करुणा एवं श्रद्धा की मूर्त-देवी सीता की इस घोर विपन्नता के प्रति भला कभी तटस्थ रह सकते थे? और फिर साहित्यकार तो सामाजिक चेतना का निकटतम द्रष्टा एवं समर्थ प्रवक्ता होता है और साहित्य उस चेतना का प्रतिबिम्ब। अतः जब कि लोक-चेतना पर सीता-निर्वासन का मर्मभेदी आघात लगा था, तो वाल्मीकि की सर्जन मेधा पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए कवि की संवेदना और सहानुभूति सीता के ही साथ रही। और इसीलिए सीता की निष्कलुषता की सम्पुष्टि करते हुए वे राम से कहते हैं : राम सीता परम पावन और दोषरहित है। आपका चित्त लोकापवाद से कलुषित हो गया था, इसलिए जानते हुए भी आपने पत्नी को छोड़ दिया था। पर देखो! मैं आपको विश्वास प्रदान करता हूँ कि यदि सीता में किसी प्रकार का कोई दोष हो तो मैंने जो हजारों वर्षों तक तपस्या की है, वह मुझे फलवती न हो :

तस्मादियं नरवरात्मज, शुद्धभावा दिव्येन दृष्टि विषयेण मया प्रदिष्टा।
लोकापवादकलुषीकृत चेतसा या त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा॥

---

१. वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड, सर्ग ५०।

बहुवर्ष सहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्याः दुष्टेयं यदि मैथिली ।।[१]

वाल्मीकि ही नहीं, वाल्मीकियुगीन चेतना के राम भी सीता की परिशुद्धता को स्वीकार करते हैं : सीता बिल्कुल शुद्ध है, इसे जानते हुए भी मैंने लोक भय से उसको छोड़ा है, क्योंकि मेरी समझ में लोकनिन्दा बड़ी भयंकर होती है :

सेयं लोकभयात् ब्रह्मन् अपापेत्यभिजानता।
लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।।[२]

सीता बिल्कुल निर्दोष है, फिर भी लोकापवाद उसके भाग्य विपर्यय का कारण बना—राम की यह स्वीकारोक्ति ही साक्षी है कि सीता को न्याय नहीं मिला, भले ही न्यायाधीश की मंशा वैसी न रही हो। पर कार्य स्वयं में अशोभन, निंदार्ह ही समझा जाना चाहिए। इसलिए वाल्मीकि ने इसकी निन्दा भी की है, पर उस स्वर में नहीं, जो लोक गीतों में मुखर हुआ है। वन-मार्ग में वाल्मीकि के लक्ष्मण ने बड़ी ही अन्तर्वेदना के साथ सीता से कहा था : 'मैं मर जाता तो अच्छा होता, यह लोकनिन्दित कार्य तो मुझे न करना पड़ता' :

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत्।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ।।[३]

ऊपर कहा गया है कि वाल्मीकि ने राम को सृष्टि-लोक में सर्वगुण सम्पन्न पाया था। इसलिए वह राम के बहुत बड़े प्रशंसकों में थे। उनके राम जैसा पुरुष-रत्न धरती पर कोई पैदा ही नहीं हुआ था। फिर भी उनके द्वारा निर्दोष एवं हर तरह से परिशुद्ध जीवन-संगिनी का परित्याग किया गया। राम से यह जघन्य कार्य क्यों और कैसे हुआ ? प्रश्न स्वाभाविक है। राम के सहज जीवन के आचार-व्यवहार को देखते हुए तो यही विश्वास होता है कि वे ऐसा कभी सोच भी नहीं सकते थे ? लेकिन जब कार्य सामने है तो उसका हेतु भी अवश्य होना चाहिए। और हेतु-कारण लोकापवाद था—यह बात भी उजागर है। पर लोकापवाद तो निमित्त कारण हुआ। निमित्त कारण के साथ-साथ कर्तृकारण भी होता है जो स्वयं राम थे। अतः निरपराध पत्नी के परित्याग के दोष से राम बरी नहीं हो

---

१. वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड, सर्ग ९६।
२. वही, सर्ग ९।
३. वही, सर्ग ४७।

सकते। किन्तु तिस पर भी बुद्धिवादी कवि राम को दोषी नहीं समझता। उन्हें अब भी 'धीमान्' कह कर सम्बोधित करता है। विकट गुत्थी उलझ गयी है। इसलिए इसके समाधान के लिए राम के सहज जीवन से हट कर उनके आरोपित जीवन को भी देखना पड़ेगा। राम राजा भी थे। राज पद के कुछ नियम होते हैं, व्यवस्थायें होती हैं, सीमायें और मर्यादायें होती हैं। भावनाओं से ऊपर उठ कर उसका कर्तव्य बोध होता है और इसके दायरे में राजा का जीवन 'स्व-पर' निरपेक्ष बन कर सारी प्रजा के लिए समान भाव से समर्पित होता है। राम के ऐसे ही समर्पित जीवन के परिवेश में सीता का परित्याग किया गया था, जिसकी पृष्ठभूमि में लोकाराधन तथा कर्तव्य-पालन की भूमिका का निर्वाह प्रमुख था। इसके लिए कर्तव्यारूढ़ राम को दोषी कदापि नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस समूचे काण्ड का जिम्मेदार यदि कोई है तो वह नियति ही है और प्रत्यक्षतया कुछ हद तक 'राज पद' भी हो सकता है। जिसके कार्यानुष्ठान-कुण्ड में निर्दोष सीता की आहुति दे दी गयी। इसीलिए वाल्मीकि ने सीता-निर्वासन के लिए राम पर दोषारोपण कभी नहीं किया। हाँ, व्यंग्योक्तियों के माध्यम से समय-समय पर उन्होंने 'राजात्व' की भर्त्सना अवश्य की है, जो इस जघन्य काण्ड का कारण बना। लक्ष्मण सीता से कहते हैं : 'निर्दोष होते हुए भी आपका राजा ने परित्याग कर दिया है : सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम सन्निधौ' [वाल्मीकि रामा०, उत्तर काण्ड, सर्ग ४७] इसलिए 'राजा' की आज्ञा मान कर इस वन में अपना समय काटो—'राज्ञः शासन-मादाय तथैव किल दौहृदम्'। लक्ष्मण की बात सुन कर सीता ने कहा : 'हाय भगवान ! मैंने कौन-सा पाप किया है, जो शुद्ध आचरण वाली मुझ जैसी धर्मपत्नी को 'राजा' ने छोड़ दिया :

किन्तु पापं कृतं पूर्वं को वा दारै वियोजितः।
याहं शुद्ध समाचारा त्यक्ता नृपतिना सती।।[1]

यहाँ बार-बार 'राजा' शब्द का ही उल्लेख किया गया है। कहीं भी राम का नाम निर्देश नहीं है। 'राजा' की आज्ञा से सीता-निर्वासन हुआ—इस व्यंग्योक्ति से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि राम के सहज रूप का इसमें किसी प्रकार का लाग-लपेट नहीं है। 'राजा' राम ने सीता को वन में छोड़ आने की आज्ञा दी थी। किन्तु

---

१. वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड, सर्ग ४७।

ऐसा करने पर पति रूप राम का हृदय शोक से आकुल हुआ था और फूट-फूट कर रोया भी था :

> एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः वाष्पेण पिहितेक्षणः।
> शोक संविग्न हृदयो निःश्वास यथा द्विपः॥[1]

वाल्मीकि-युग के सहस्रों वर्ष बाद भी सीता-निर्वासन के सन्दर्भ में देश की बौद्धिक-चेतना के आयामों का स्तर प्रायः वही रहा, जैसा पहले था। विवेच्य घटना से सम्पृक्त लोकाभिव्यक्ति मध्ययुग में राष्ट्रीय जीवन के गहन अध्येता एवं सूक्ष्म व्याख्याता महाकवि कालिदास (ई० पू० प्रथमशती) की काव्य-प्रतिभा के माध्यम से भी प्रस्फुटित हुई। कालिदास के महाकाव्य रघुवंश के अनुशीलन से पता लगा कि उन्होंने भी राम के दोहरे व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में ही सीता-निर्वासन की घटना का मूल्यांकन किया और इस वैचारिक आयास में सीता के प्रति संवेदनशील हो कर भी राम के प्रति कोई विपरीत भाव उनमें भी नहीं जगा। हाँ, राम के नृपति रूप के प्रति उनके स्वर में कठोरता कुछ अधिक आ गयी प्रतीत हुई।

वाल्मीकि-आश्रम में सीता को छोड़ कर जब लक्ष्मण लौटने लगे तो सीता ने उनसे कहा : 'लक्ष्मण ! मेरी ओर से तुम उस राजा से थोड़ा यह तो पूछना कि अग्नि-परीक्षा में शुद्ध पाने पर भी लोक-निन्दा के डर से आपने सीता का परित्याग किया, तो क्या यह आपके प्रसिद्ध कुल के अनुरूप है ?—

> वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धा मपि यत्समक्षम्।
> मां लोकवाद श्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥[2]

कालिदास-युगीन लोकचेतना की सीता ने 'राजा' राम के सामने एक प्रश्न उछाल दिया, जो आज भी अनुत्तरित है। पर राम के पति रूप को—उनके सहज भाव को—सीता अच्छी तरह से जानती है, पहचानती है, इसलिए तत्क्षण अपने वक्तव्य में संशोधन करती हुई वह पुनः लक्ष्मण से बोल उठती हैं : अरे नहीं ! उनका इसमें क्या दोष, यह तो मेरे भाग्य का परिपाक है, वे तो सभी का कल्याण करने वाले हैं:

---

१. वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड, सर्ग ४५।
२. रघुवंश, सर्ग १४।

कल्याण बुद्धे रथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः।
ममैव जन्मान्तर पातकानां विपाकविस्फूर्जथर प्रसह्यः॥[1]

इधर राम की स्थिति भी बड़ी विचित्र थी। राजा के रूप में राम ने दायित्व वोध की प्रतिबद्धता से सीता-निर्वासन का आदेश तो दे दिया, पर ऐसा करते समय उनके अन्तर्मन पर जो घाव लगा; वह अन्त तक भरा नहीं, बराबर रिसता रहा। सीता को वाल्मीकि-आश्रम के समीप छोड़ कर जब लक्ष्मण अयोध्या वापस पहुँचें और राम से सीता का सन्देश सुनाने लगे, तो राम का सजह मन व्यथित हो उठा, उनके धैर्य का बाँध टूट गया और उनकी आँखों से टप्-टप् आँसू झरने लगे। क्यों न हो, राम ने राजकुल के कलंक के भय से सीता को घर से निकाला था, अपने हृदय से नहीं :

बभूव रामः सहसा सवाष्पः तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता नतेन वैदेहि सुता मनस्तः॥[2]

सीता-निर्वासन के सन्दर्भ में आगे चल कर ७वीं शताब्दी में संस्कृत के कवि एवं नाटककार भवभूति ने राम के दोहरे जीवन का बहुत ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। भवभूति के अनुसार राजा के रूप में राम 'वज्रादपि कठोर' हैं, किन्तु पति या मानव के रूप में 'कुसुमादपि' मृदु हैं। और सीता ? वह तो अग्नि से भी अधिक शुद्ध हैं, जगत की वन्दनीया हैं, अपने जन्म के अनुग्रह से पृथ्वी को पवित्र करने वाली है तथा तीनों लोकों को पुण्यशील तथा सनाथ बनाने वाली हैं—

—अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि..., ननु वन्द्यासि जगताम्..., स्वजन्मनानुग्रह पवित्र वसुन्धरे..., त्वया जगन्ति पुण्यानि... तथा नाथवन्त-स्त्वया लोका...।[3]

इसीलिए भवभूति-कालीन जन-चेतना भी एक ओर राम को अपने दायित्व बोध के प्रति जागरूक तथा मानवीय संवेदनाओं से भरपूर लोकनायक के रूप में प्राप्त कर उनके प्रति उच्च भावनायें रखती है और दूसरी ओर सीता-निर्वासन पर अपने अन्तराल से करुणरस की निर्झरिणी भी बहा देती है। इस प्रकार पूर्ववर्ती कवि

---

१. रघुवंश, सर्ग १४।
२. वही, सर्ग १४।
३. उत्तर रामचरित नाटक : अंक ४ तथा १।

मनीषियों की ही भाँति भवभूति को भी दोहरे चिन्तन की प्रक्रिया भोगनी पड़ी थी।

राज्य का गुरुतर दायित्व ओढ़े राजा राम को गुरुजनों का कड़ा अनुशासन था कि लोकाराधन उनका प्राथमिक और अनिवार्य कर्तव्य है। कुलगुरु वशिष्ठ ने एक सन्देश में दायित्व-बोध के प्रति जागरूक रहने के लिए राम को सतर्क करते हुए कहा : 'हम लोग अयोध्या से बाहर जामाता श्रृंगी ऋषि के यज्ञानुष्ठान में व्यस्त हैं। आप अभी बालक ही हैं और आपको नया-नया राजपद मिला है। इसलिए आप सावधानी के साथ प्रजा के अनुरञ्जन में दत्तचित्त रहेंगे; यतः रघुवंशियों का सब से बड़ा धन यश ही है' :

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजाना मनुरञ्जनं स्याः तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥[1]

गुरुजनों का आदेश शिरोधार्य करते हुए राम घोषणा करते हैं कि लोक की आराधना के लिए स्नेह, दया एवं सुख और यहाँ तक कि यदि जानकी का भी परित्याग करना पड़ा, तो उन्हें व्यथा न होगी :

स्नेहं, दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति में व्यथा॥[2]

'जानकीमपि' शब्द से स्पष्ट है कि राम के जीवन में सीता का स्थान स्नेह, दया तथा सुख से कहीं ऊँचा था और वह (सीता) उनके लिए समस्त सहज वृत्तियों एवं भौतिक उपलब्धियों से परे एक अनिर्वचनीय तत्व थीं। किन्तु हन्त! अचिर काल में ही राम के उपरि घोषित संकल्प की परीक्षा की अकल्पनीय घड़ी उपस्थित हो गयी। उन्हें नगर में प्रसृत सीता से सम्बद्ध अपवाद की मर्माहत चर्चा सुनने को मिली। कुछ क्षणों के लिए राम हतप्रभ भी हुए, पर तत्काल भावनाओं के वेग को दबा कर उन्होंने निर्णय किया कि उन्हें लोकमत का आदर कर के रघुवंशियों के उस चारित्रिक कीर्तिमान को बनाये रखना चाहिए, जिसे उनके पूर्वजों ने अपने महनीय आचरण से उज्ज्वल बनाया है और उनके पिता ने अपने प्राणों की बलि दे कर भी सुरक्षित रखा है। अतः यदि राजवंश का वह अनवद्य चरित्र उनके कारण मलिन हुआ तो राम के जीवन को धिक्कार है :

---

१. उत्तर रामचरितम् : अंक १।
२. वही, अंक १।

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै र्लोक श्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम्।
मत्सम्बन्धात् कश्मला किंवदन्ती स्याच्चेदस्मिन् हन्त धिङ्‌ मामधन्यम्।।
सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
तत् पूरितं हि तातेन माञ्च प्राणाञ्च मुञ्चता।।[1]

इसके अन्तर राम द्वारा सीता का जो परित्याग किया गया, उसकी भूमिका में लोकमत का समादर ही एकमात्र प्रेरक-तत्व था, इसमें किसी अन्य विकल्प के लिए अणु मात्र भी अवकाश नहीं। लोकमत के प्रति राम की निष्ठा इतनी सुदृढ़ थी कि वह उसके विरुद्ध किसी प्रकार की प्रतिकूल बात तक सुनने को तैयार न थे। दुर्मुख के यह कहने पर कि 'महाराज! अग्नि सदृश पवित्र महारानी सीता को दुर्जनों के अनर्गल प्रलापों से त्यागने का निश्चय आपने कैसे कर लिया?' राम ने उसे बीच में ही रोकते हुए कहा : 'शान्तं पापम्, शान्तं पापम्।' पुरवासी कभी दुर्जन हो सकते हैं—दुर्जनानां पौरजानपदाः? नहीं, उनके लिए दुर्जन शब्द का प्रयोग ठीक नहीं। हमारा वेश प्रजा को अभीष्ट है, हमारे प्रति उनका कोई द्वेषभाव नहीं है। सीता परम शुद्ध हैं, अग्नि परीक्षा भी हो चुकी है, यह सही है; पर कार्य अयोध्या से इतनी दूर सम्पादित हुआ है कि इस पर कौन विश्वास करे? अपवाद का प्रसंग तो हमारे दुर्भाग्य से ही उपस्थित हुआ है, प्रजा का इसमें क्या दोष?

इक्ष्वाकुवेशोऽभिमतः प्रजानां जातं च दैवाद् वचनीय वीजम्।
मच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद् यदि दूरवृत्तम्।।

दण्डक वन में वनदेवी वासन्ती राम से पूछ बैठती है : 'देव, सीता परित्याग जैसा (जघन्य) कृत्य आपने क्यों किया : तत्किमिदं कार्यं मनुष्ठितं देवेन?' राम का उत्तर था : 'इसलिए कि सीता का घर में रहना प्रजा-वर्ग को अभीष्ट न था : लोको न मृष्यतीति'। 'किस कारण से : कस्य हेतोः?' 'कारण भी प्रजा-वर्ग ही जान सकता है : स एव जानाति किमपि।'

लोकाराधन के प्रति कितनी प्रगाढ़ आस्था एवं निष्ठा थी!

यह था राम के आरोपित - राजधर्मावलम्बित - जीवन का परिवेश जिसके दबाव में सीता निर्वासन हुआ। वैसे राम यदि चाहते तो वह परिस्थितियों से विद्रोह कर सकते थे और प्रजा की आवाज को अनसुनी कर जीवन-संगिनी के विछोह की

---

१. उत्तर रामचरितम् : अंक १।
२. वही।

व्यथा भोगने से बच सकते थे; किन्तु ऐसा करने पर वह पक्षधरता के दोषी समझे जाने लगते और तब राम वह राम न रह जाते, जिनके द्वारा प्रतिष्ठित राम-राज्य भविष्यत् पीढ़ी के लिए आदर्श माना जाता है।

भवभूतिकालीन लोक-चेतना के मानस-पटल पर राम के सहज जीवन की जो तस्वीर थी, उसका रेखांकन महाकवि भवभूति ने संवेदनशीलता एवं रागात्मकता की अतल गहराई के साथ किया है। राम ने सीता को निर्वासित तो किया, पर इससे उनके मर्मस्थान को जो गहरा आघात लगा, वैसी दुखानुभूति उन्हें राजतिलक के मंगल-मुहूर्त में निज के वनवास पर भी नहीं हुई थी। अपवाद का वृत्तान्त सुनते ही उनकी जो प्रथम भावाभिव्यक्ति हुई, वह यह थी : 'देवि ! तीनों लोक तो तुमसे पवित्र होते हैं और तुम्हारे विषय में लोगों की ऐसी अपावन धारणा ! लोग तुम्हारी कृपा से सनाथ होते हैं, पर तुम अनाथ की भाँति विपत्तियों को झेलोगी' :

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यते ।।[1]

कितनी पूज्य और पवित्र भावना थी पत्नी-सीता के प्रति राम के मन में ! फिर भी छाती पर पत्थर दबा कर स्वयं को कोसते और धिक्कारते हुए उन्हें सीता को छोड़ना पड़ा : 'हाय कष्ट ! मैं अत्यन्त वीभत्स कर्म करने वाला नृशंस हत्यारा हो गया : हा कष्टम् ! अति-वीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।' बाल्यकाल से ही अत्यंत प्यार-दुलार से पली और स्नेहाधिक्य के कारण मुझसे कभी भी विलग न रहने वाली प्रियतमा को मैं आज उसी प्रकार मृत्यु को सौंपने जा रहा हूँ, जैसे कोई पाली हुई चिड़िया बाज के सम्मुख फेंक दे' :

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ।।[2]

सोचते-सोचते राम की आत्मग्लानि की दंशानुभूति इतनी तीव्र हो उठती है कि वह उनके बाहु का परिधान बना कर विश्रुब्ध भाव से निद्रामग्न सीता के शिर के नीचे से अपना हाथ खींच लेते हैं, यह सोच कर कि 'मैं जब इतने जघन्य पाप-कर्म में प्रवृत्त हो रहा हूँ तो फिर अपने करस्पर्श से देवी-सीता को क्यों दूषित करूँ : तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि ?' मन ही मन सीता को उपलक्षित कर के

---

१. उत्तर रामचरितम् : अंक १।
२. वही।

बोले : 'अरी भोली ! मैं जघन्य काम करने वाला चाण्डाल हूँ। मुझे छोड़ो! चन्दन तरु के धोखे तुम विष वृक्ष का सहारा ले रही हो' :

अपूर्व कर्म चण्डालमयि मुग्धे ! विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दन भ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ।।[1]

और फिर राम शोक के उस धरातल पर पहुँच जाते हैं, जहाँ उनकी जिजीविषा शक्ति ही प्रयोजन शून्य प्रतीत होने लगती है। उन्होंने स्वीकारा : 'आज से राम के जीवन की उपयोगिता समाप्त हो गयी : अद्यावधि जीवित प्रयोजनं रामस्य।' भावों के आवेश में राम का अन्तर्मन इतना आकुल तथा दयनीय हो जाता है कि वह सीता के चरणों को अपने मस्तक पर लगा लेते हैं और यह कह कर कि 'राम के सिर पर तुम्हारे चरण कमलों का यह अन्तिम स्पर्श है : (सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादस्पर्शः'; संसार में दाम्पत्य-स्नेह का एक नया कीर्तिमान स्थापित कर देते हैं।

राम की अन्तर्व्यथा का शब्द-चित्र अंकित करती हुई अपनी सखी तमसा से मुरला कह रही है : 'सखी ! तुम तो जानती ही हो कि पत्नी-विछोह से निष्पन्न राम का करुणरस उनकी गम्भीर प्रकृति के कारण बाहर प्रस्फुटित तो नहीं हो पा रहा है, किन्तु अन्तर्निगूढ़ प्रगाढ़ पीड़ा से वह रस फूंकने वाले पुटपाक के समान भीतर ही भीतर धधक रहा है' :

जानास्येव यथा वधूपरित्यागात् प्रभृति—
अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ़ घनव्यथः।
पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।[2]

इस प्रकार सीता-निर्वासन की शोकाग्नि में तप कर राम का चरित्र कञ्चन की भाँति निखर कर सामने आया है। इसीलिए भवभूति-कालीन लोक-चेतना की सीता के मन में राम के प्रति कोई विकार नहीं, कोई रोष नहीं। दण्डक वन में राम को विलाप करते देख सीता का पत्नीत्व एक बार कुछ जगा और उनका प्रणय कोप थोड़ा मुखर भी हुआ। अतः उपालम्भ के स्वर में मन ही मन सीता फूट पड़ी : 'आर्य पुत्र ! एक ओर तो आपने मुझे अपने घर से निर्वासित कर दिया और दूसरी ओर यहाँ 'हा प्रिये जानकी' जैसे स्नेह सूचक शब्दों का भी उच्चारण कर रहे हैं।

---

१. उत्तर रामचरितम् : अंक १।

२. वही, अंक ३।

करनी और कथनी में इतना असामञ्जस्य ? असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य ?' परन्तु आँसुओं के प्रवाह से तत्काल भावनाओं का परिमार्जन करती हुई वह पुनः बोल उठती हैं : 'अरे, नहीं ! राम का हृदय मैं ही अच्छी तरह से जानती हूँ और मेरे हृदय को भी राम ही सम्यक्तया पहचानते हैं : अहमेव तस्यहृदयं जानामि, ममैषः ।'

भाव की इस भूमा पर पहुँच कर सीता की शोक निवृत्ति तो हो जाती है, पर लोक-चेतना की संवेदना को इस घटना से जो घाव लगा, वह बराबर रिसता रहा और प्रत्येक युग में उसका उद्वेग किसी न किसी के माध्यम से बहिर्मुख भी होता रहा। वाल्मीकि तथा कालिदास के काल में स्वयं सीता के मुख से ही कुछ व्यंगोक्तियाँ निकलीं थीं, पर भवभूति-युग तक पहुँचते-पहुँचते प्रातिभ लोकमनों की चिन्तन-प्रक्रिया में परिवर्तन आ गया था और उनकी सीता में पहले की अपेक्षा सौम्यता, गम्भीरता, स्नेहशीलता और आदर्श-प्रियता जैसे गुणों का विकास अधिक हो गया था। इसलिए भवभूति-युग में उस उद्वेग की उद्भावना सीता द्वारा नहीं, अन्य पात्र के माध्यम से ही हुई।

शम्बूक वध के समय राम के दण्डक वन पहुँचने पर वनदेवी वासन्ती राम से एक प्रश्न करती है : 'महाराज ! आप जिस भोली-भाली सीता को 'तुम मेरे प्राण हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नयनों की चन्द्रिका हो, तुम मेरे अंगों के लिए अमृत हो' जैसी सैकड़ों मीठी-मीठी बातों से बहलाया करते थे' उसी सीता को. . . (आपने निर्वासित कर दिया) ? भला यह तो बतायें कि आपने यह अनुचित कार्य क्यों किया ?' :

> **त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं**
> **त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।**
> **इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां**
> **तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ।।**[1]

तत्किमिदं कार्यमनुष्ठितं देवेन ?

और जब राम ने उत्तर दिया : 'इसलिए कि लोग सीता का अयोध्या में रहना नहीं पसंद करते थे'—तो वासन्ती राम की भर्त्सना करती हुई पुनः कहती है : 'अरे निठुर ! आपको यश इतना प्यारा है, पर यह तो सोचो कि निर्दोष पत्नी का इस

---

१. उत्तर रामचरितम् : अंक ३।

प्रकार परित्याग करने पर आपको जो अयश मिला, इससे बढ़ कर भी क्या और कोई अपकीर्ति हो सकती है'? :

अयि कठोर यशः किलते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम्।

यह नारी के चोट खाये हृदय के उद्‌गार थे। राम के पास भला इसका क्या उत्तर था! वह तो भुक्तभोगिनी, किन्तु राम को अच्छी तरह से पहचानने वाली स्वयं सीता की इन अभिव्यक्तियों में ही ढूँढ़ा जा सकता है: 'सखी वासंती! आर्य पुत्र के लिए तुम ऐसे शब्द क्यों निकाल रही हो! आर्य पुत्र तो सब के पूज्य हैं। सखी, तुम ही दारुण और कठोर हो':

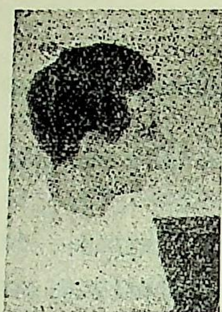
सखि वासन्ति! किं त्वमेवंवादिनी भवसि! पूजार्हः सर्वस्य आर्यपुत्रः। सखि! त्वमेव दारुण कठोरा च।'

राम के दोहरे जीवन-सत्य के युग-युगीन गहन साक्षात्कार से सीता के निर्वासन-दर्शन का जो स्वरूप भारतीय मनीषा ने प्रतिष्ठित किया, घटनाक्रम की आलम्बन (भोक्ता) स्वयं सीता ने उपयुक्त निर्णय देकर मानो पुष्टि की उसमें मुद्रा जड़ दी।

●

संसार में जितने मानव हैं सब ने रामचरित मानस को अपने दृष्टिकोण से देखा और विदेशों में उसका अनुवाद उनकी भाषाओं में हुआ। यह ग्रन्थ विश्व के मानव मात्र के लिए है। जाति, धर्म, परिवार, देश-काल का बन्धन इसमें नहीं है। उन्होंने रामायण को रामचरित मानस का नाम इसलिए दिया कि वह राम के जीवन का काव्य है। रामकथा का आस्वादन हर रूप में मानव मात्र के लिए कल्याणकर है। राम नाम तो शताब्दियों से चल रहा है। अन्य देशों जैसे सुमात्रा, बाली आदि में भी रामकथा और रामायण हैं। तुलसी ने मानस को नये परिवेश में रचा। कठिनाई सिर्फ यही है कि भक्तों ने इसे धर्मग्रन्थ मान कर इसका पारायण शुरू कर दिया। आज देश को आवश्यकता है कि मानस की बातों को चरितार्थ करें और प्रत्येक युवक, प्रौढ़ और बालक का यह कर्त्तव्य हो जाना चाहिए कि उसको ले कर वह भी आगे बढ़ें।

—डा० रामकुमार वर्मा



तुलसी की भाव एवं विचार-भूमि

श्री विजयनारायण सिंह, एम० ए०
रिसर्च स्कालर : काशी विद्यापीठ, काशी

[काशी विद्यापीठ के तरुण विद्वान्-शोधछात्र श्री विजयनारायण सिंह (विजय बलियाटिक) ने संत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी की विविध काव्यकृतियों के अन्तरंग-पक्ष का तलस्पर्शी गहराई के साथ विश्लेषण-विवेचन करते हुए प्रतिपादित किया है कि उनमें भाव-व्यञ्जना और वैचारिकता का पूर्ण सामञ्जस्य है—संपादक]

तुलसी के रामकथा-काव्यों के विवेचन के क्रम में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनके अन्तरंग पक्ष पर भी विचार कर लिया जाय। यह बात सर्व विदित है कि तुलसीदास ने इन सभी कथा-काव्यों में अपना प्रतिपाद्य विषय एक ही रखा है। काव्य के अन्तरंग पक्ष का संबंध मूलतः विषय से ही होता है। अतः यह तो स्पष्ट है कि इन काव्यों का अन्तरंग पक्ष भी भिन्न-भिन्न नहीं होगा, किन्तु यह अवश्य विचारणीय है कि किस कथा-काव्य में अन्तरंग पक्ष के किस तत्त्व को अधिक महत्व दिया गया है और किसे छोड़ दिया गया है। यहाँ तुलसी के रामकथा-काव्यों पर इसी दृष्टि से विचार किया जायगा।

अन्तरंग पक्ष के अन्तर्गत भाव, रस, विचार और काव्य संदेश की परिगणना होती है। भारतीय साहित्य शास्त्रीय मान्यता के अनुसार काव्य में भाव ही प्रमुख होता है, जिसकी परिणति रस में होती है और रस ही काव्य की आत्मा है, किन्तु भाव-तत्त्व विचार या बुद्धि-तत्त्व से सर्वथा विरहित नहीं होता। भाव-क्षेत्र के आयाम बहुत व्यापक हैं, जिनके अन्तर्गत विचार-तत्त्व भी सन्निविष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः मानव में भाव और विचार की क्रियाएँ इस तरह गुम्फित और आश्लिष्ट होती हैं कि उन्हें विच्छिन्न कर पाना कठिन होता है। जैविक धर्म के रूप में जिजीविषा जन्य भाव-तरंगों का भले ही महत्व हो, किन्तु मानव-धर्म की दृष्टि से बुद्धि द्वारा नियंत्रित और संतुलित भाव-तरंगों का ही महत्व होता है। अतः काव्य में कवि भाव-व्यंजना के साथ-साथ चिन्तन के ऐसे पक्षों का भी उद्घाटन करते हैं,

जिनसे समाज का दृष्टि-शोधन तथा पथ-प्रदर्शन होता है। इसी को कवि का काव्य-संदेश कहते हैं।

तुलसी के रामकथा-काव्यों में भाव और विचार-तत्त्व का यह आश्लेषण एवं संश्लेषण सर्वाधिक महत्वपूर्ण और विचारणीय है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि तुलसीदास भावों के नहीं, विचारों के कवि हैं। यह धारणा ऐसे ही लोगों की हो सकती है, जो काव्य को वैविध्यपूर्ण जीवन से विच्छिन्न अथवा उसके केवल एकांगी रूप – भावपक्ष – से ही संबद्ध मानते हैं। काव्य में समृद्धि और सिद्धि जीवन की एकांगिता से नहीं, विविधता से संबद्ध एवं संपृक्त होने के कारण ही आती है। तुलसी के रामकथा-काव्यों में जो समृद्धि एवं सिद्धि दिखाई पड़ती है, उसका कारण यही है कि कवि ने जीवन को एकांगी रूप में नहीं, व्यापक एवं विराट रूप में ग्रहण किया है, उसे केवल दूर से नहीं देखा है, उसके भीतर प्रविष्ट हो कर उसके साथ आन्तरिक साक्षात्कार किया है। इस साक्षात्कार की उपलब्धि ही तुलसीदास का काव्य-संदेश है। इस तथ्य का परीक्षण भाव एवं विचार-तत्त्व की संतुलित एवं संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के आकलन द्वारा हो सकता है।

तुलसी की भाव-व्यंजना

तुलसी ने अपने रामकथा-काव्यों में जिन भावों की व्यंजना की है, उनके मूल में प्रतिपाद्य विषय के प्रति उनकी गहरी आस्था और दृढ़ निष्ठा प्रेरक शक्ति के रूप में वर्तमान है। तुलसी की दृष्टि में जीवन का चरम लक्ष्य भगवान राम के प्रति प्रपत्ति भावना से पूर्णतया समर्पित हो जाना ही है। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने सभी काव्यों की रचना की है। रामकथा-काव्यों में उन्होंने भाव-व्यंजना की जो पद्धति अपनाई है, उसमें भी यही लक्ष्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वर्तमान है। उन्होंने भाव के विविध आयामों को केवल इसीलिए उद्घाटित किया है कि उन्हें उपयुक्त चरम लक्ष्य की ओर प्रेरित कर के उसी में अवसित किया जा सके। यों तो भाव का क्षेत्र अनन्त है, किन्तु उसके कुछ प्रमुख आयाम वे भाव-तत्त्व हैं, जिन्हें भारतीय साहित्यशास्त्र में स्थायीभाव कहा गया है। इन भावों में से उत्साह, रति, विस्मय और क्रोध की अभिव्यक्ति तुलसी ने सब से अधिक की है। उन्होंने अपने आराध्य को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह उत्साह का साक्षात रूप है। यह समस्त सृष्टि जिस ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, वह स्वयं नर रूप में विश्व का भार हरण करने के लिए अवतरित हो कर जिस उत्साह का प्रदर्शन करता है, वह सामान्य मानवीय उत्साह

नहीं है। इसी तरह तुलसी ने राम के जिन सहायकों एवं भक्तों के चरित्र की अवतारणा की है, वे भी अपने-अपने ढंग से अपने कार्यों के संपादन में उत्साह का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। तुलसी के काव्यों में अभिव्यक्त रतिभाव भी सामान्य रतिभाव नहीं है। तुलसी के कथा-नायक राम परब्रह्म और नायिका सीता आद्या-शक्ति हैं। अतः उनका रतिभाव जो सभी काव्यों में प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है, मानवीय रतिभाव को अतिक्रमित करने वाला है। यही नहीं, राम के सहायकों, भक्तों एवं स्वयं कवि के हृदय में राम के प्रति जो भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है, उसके मूल में भी लौकिक रतिभाव को अतिक्रमित करने वाला ईश्वरीय रतिभाव वर्तमान है, जिसे दास्य रति कहा जाता है। अवतार होने के कारण राम नर-लीला करते हुए भी प्रायः अपने अलौकिक रूप को अपने भक्तों के सम्मुख प्रकट कर के उन्हें विस्मया-विभूति कर देते हैं। राम का नर-रूप भी सामान्य नहीं है। उनके असामान्य सौंदर्य को देख कर मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी मुग्ध और आत्मविभोर होते दिखाई पड़ते हैं। जड़ पदार्थ भी उनके सान्निध्य में चेतनवत् क्रिया करने लगते हैं। क्रोध का भाव भी रामकथा-काव्यों में अत्यन्त सात्विक एवं मर्यादित रूप में अभिव्यक्त हुआ है। राक्षसों के पापकृत्यों का प्रत्यक्षीकरण होने पर राम और राम के प्रति दुराव या दुराव की आशंका होते ही हनुमान, अंगद, लक्ष्मण आदि आक्रोश से भर उठते हैं।

तुलसी के रामकथा-काव्यों में रामचरित मानस ही ऐसा है, जिसमें उपर्युक्त स्थायी भावों के परिपाक से रस-निष्पत्ति हुई है। यों तो स्थूल रूप से 'मानस' में वीर और शृंगार रस आश्लिष्ट रूप में आद्यन्त दिखाई पड़ते हैं, किन्तु ये रस स्वयं एक अन्य रस के साधन बन गए हैं, जिसे भक्ति नामक दसवाँ रस कहा जाता है। 'मानस' के समस्त कथा-व्यापार में निहित भावों की विविध धाराएँ इस भक्ति रूपी सिन्धु में जाकर विलीन होती हैं। 'मानस' में तुलसीदास ने स्पष्ट कहा है कि इस काव्य में हरि-पद-रति रस अर्थात् भक्तिरस ही प्रधान है, अन्य सभी रसों का आयोजन तथा वैचारिक स्तर पर भक्ति और ज्ञान का निरूपण भक्तिरस की सिद्धि के लिए ही किया गया है :

नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाज गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सज गाई॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥

सम जमलफल नियम फूग्याना। हरि पद रति रसबेद बखाना।।[1]

तुलसी के अन्य रामकथा-काव्यों में विभिन्न भावों और रसों का 'मानस' जैसा व्यापक समायोजन नहीं दिखाई पड़ता है। गीतावली में यद्यपि प्रबंध-विस्तार है, किन्तु उसमें जीवन की व्यंजना नहीं हो पाई है। इसमें रतिभाव की व्यंजना विविध रूपों में सर्वाधिक हुई है। यह भाव भी प्रमुखतः वात्सल्य रति और दास्य रति के रूप में चित्रित हुआ है। यद्यपि इसमें कान्तारति का भी चित्रण हुआ है, किन्तु उससे निष्पन्न श्रृंगार रस गीतावली का प्रमुख रस नहीं है। यदि वात्सल्य रति (स्नेह) एवं दास्य रति (श्रद्धा) को स्थायीभाव माना जाय, तो उनसे निष्पन्न वात्सल्य रस एवं भक्तिरस को गीतावली का प्रधान रस माना जा सकता है। गीतावली के बालकांड में राम के बाल-रूप और बाल-क्रीड़ा के वर्णन तथा राम-वनवास के समय माताओं एवं पुरवासियों की वियोग-व्यथा के वर्णन में वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक दिखाई पड़ता है। इसी तरह उत्तरकांड में राम के रूप-वर्णन और होली, झूला, दीपावली आदि आनन्दोत्सवों के वर्णन में नगर-वासियों का राम के प्रति आकर्षण श्रद्धाभावना से ही अनुप्राणित है। अतः ऐसे पदों में भक्तिरस की ही व्यंजना मानी जाएगी। वीर रस एवं करुण रस की भी अभिव्यक्ति गीतावली में हुई है, किन्तु उनका आधिक्य नहीं है।

कवितावली में कथा-विस्तार कम है। उसमें लंकादहन और युद्ध-वर्णन के प्रसंगों को ही अधिक महत्व दिया गया है। साथ ही उत्तरकांड में कवि ने भगवान के प्रति अपने दैन्य निवेदन एवं भक्ति-विवेचन पर ही विशेष बल दिया है। फलस्वरूप कवितावली में वीर रस और भक्तिरस का प्राधान्य है। कवितावली के सुन्दरकांड में लंकादहन का जो वर्णन किया गया है, उसमें भयानक रस की पूर्ण व्यंजना हुई है। इस प्रसंग में अग्निदाह के दृश्यों के वर्णन में आलंबन और आश्रय के अनुभावों के चित्रण के कारण यह रसवत्ता अधिक परिपुष्ट हो गई है। बालकांड में राम के बालरूप एवं बालक्रीड़ा के वर्णन में वात्सल्य रस का सम्यक् परिपाक दिखाई पड़ता है। इस तरह कवितावली का रस-विधान 'मानस' जैसे प्रबंध काव्य के समान न होते हुए भी उससे इस अर्थ में तुलनीय है कि इसमें भी अन्य सभी रस भक्तिरस के ही अंग बन गए हैं।

जानकीमंगल और रामललानहछू वर्णनात्मक मंगल-काव्य हैं। इनका उद्देश्य

१. मानस, १।३७।१०-१४।

रस-सृष्टि करना नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर मांगलिक भावनाओं को पुष्ट करना है। सामाजिक मंगल के लिए तुलसी ने राम-कथा और राम-भक्ति को ही साधक तत्त्व माना है। इसलिए प्रकारान्तर से इन काव्यों में भी भक्तिरस की ही सिद्धि हुई है। इन दोनों काव्यों में आलंबन रूप में राम के सौंदर्य वर्णन के साथ सामाजिक परिवेश और मांगलिक कार्यों का भी वर्णन किया गया है, जिसमें कोई भी रस प्रमुख और स्पष्ट रूप से निष्पन्न नहीं हुआ है। प्रासंगिक रूप में जानकी-मंगल में राम-सीता के रतिभाव के चित्रण एवं रूप-वर्णन में शृंगार रस की व्यंजना हुई है। राम के प्रति अयोध्या और जनकपुर के नर-नारियों का जो अलौकिक आकर्षण चित्रित किया गया है, उसके मूल में भक्ति-भावना ही निहित है, किन्तु उसका परिपाक भक्ति रस में नहीं हो सका है।

रामाज्ञाप्रश्न और बरवैरामायण में भी भक्ति-भावना की ही प्रधानता है। रामाज्ञाप्रश्न संकेत-कथा-काव्य होते हुए भी निबंध-काव्यों के समान विचार-प्रधान काव्य है। उसमें शकुन-शास्त्र के साथ-साथ राम-भक्ति के प्रचार का नया माध्यम भी उद्भावित किया गया है। इस कारण उसमें भक्तिरस के अतिरिक्त अन्य किसी रस का संचरण नहीं हो पाया है। बरवैरामायण में राम और सीता के रूप-सौंदर्य तथा उनके विरह वर्णन में शृंगार रस की व्यंजना अवश्य हुई है, पर वह भी काव्य की मुख्य भाव-धारा—भक्ति-भावना—में ही पर्यवसित हो गई हैं। बरवैरामायण का उत्तरकांड भक्ति-भावना से ओत-प्रोत होने के कारण भक्ति-रस प्रधान है और पूर्ववर्ती कांडों की रस-योजना इस अंगी रस का अंग बन गई है।

तुलसी की चिन्तन-धारा

पहले कहा जा चुका है कि तुलसी के काव्यों की भाव-व्यंजना उनके विचार-तत्वों से पूर्णतया आश्लिष्ट हैं। जिन भावों की व्यंजना उन्होंने की है, उनकी पृष्ठभूमि में उनकी धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक विचारणाएँ बद्धमूल हैं। 'मानस' की प्रस्तावना में ही तुलसीदास ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है :

अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥[1]

इसमें सूत्र रूप में कवि ने अपनी विचार-धारा का संकेत कर दिया है। भारतीय संस्कृति में चतुर्वर्गीय पुरुषार्थ की उपलब्धि को ही जीवन का आदर्श माना गया है।

---

१. मानस, १।३७।९।

तुलसीदास भी अपने काव्य के माध्यम से न केवल अपने लिए, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों की ज्ञान-विज्ञान पर आश्रित साधना का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं। तुलसी की दृष्टि में धर्म की यही मूल धारणा है कि जीवन को सार्थक और सफल बनाने के लिए तर्क और ज्ञान का अवलंबन लेकर इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि की जाय। इनमें से मोक्ष तो अन्तिम लक्ष्य है, जिसे प्राप्त करने के लिए धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है। तुलसी की दृष्टि में धर्म स्थूल तत्त्व नहीं, एक सूक्ष्म और व्यापक अवधारणा है, जिस पर समस्त जगत आवृत है। उसका स्थूल रूप उन नैतिक और सामाजिक मान्यताओं में निहित है, जिन्हें तुलसी ने स्वयं धर्मरथ रूपक में व्याख्यायित किया है :

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।[1]

इस उद्धरण में जीवन-युद्ध में विजयी हो कर मोक्ष के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए धर्म को ही साधन बताया गया है, जिसके अंग निम्नलिखित तत्त्व हैं—शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, दम (आत्मनियंत्रण), क्षमा, कृपा, समता, भगवद्भक्ति, विरति, संतोष, दान, बुद्धि, विज्ञान, अचलमन (दृढ़ता), सम, यम, नियम, अभेद और विप्र-गुरु-पूजा। ये सभी तत्त्व मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य जीवन की पूर्णता के साथ ही ऐहिक और पारमार्थिक सफलता के लिए आवश्यक हैं। धर्म की यह अवधारणा पूर्णतः स्वीकृत होने पर ही उस धर्म-राज्य की स्थापना हो सकती है, जिसे तुलसीदास ने राम-राज्य कहा है। इस धर्म-भावना से नियंत्रित होने पर काम, अर्थ और मोक्ष की भी सम्यक् सिद्धि हो सकती है।

तुलसीदास की समस्त दार्शनिक और सामाजिक मान्यताओं का आधार उनकी धर्म संबंधी उपयुक्त अवधारणा ही है। वे ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूपों में कोई भेदक रेखा नहीं खींचना चाहते, क्योंकि इससे उनकी धर्म संबंधी दृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उनकी यह मान्यता है कि निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप में अपने

---

१. मानस, ६।८०।५-१०।

को अभिव्यक्त कर के धर्म-पथ पर अग्रसर करता है और समस्त सामाजिक मर्यादाओं को स्थिर करता हैं। अतः सगुण ब्रह्म की भक्तिमूलक उपासना से ही उस परम पद की सिद्धि हो सकती है, जिसे ज्ञानमार्गीय मोक्ष या कैवल्य पद कहते हैं। स्वयं तुलसीदास उसे परम विश्राम की संज्ञा देते हैं। सगुण ब्रह्म रूप राम की भक्ति से ही परम विश्राम की उपलब्धि हो सकती है। इस भक्ति के लिए भी प्रपत्ति भावना की आवश्यकता है, जिसमें शरणागति के छः तत्त्व सम्मिलित हैं :

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।[1]

धर्म और दर्शन संबंधी इन मान्यताओं की अभिव्यक्ति तुलसी ने 'मानस' में सब से अधिक की है। गीतावली में धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन की अधिकता नहीं है, किन्तु राम-भक्ति के माहात्म्य का वर्णन है। कवितावली में भी धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन अधिक नहीं है, किन्तु राम-भक्ति का प्रतिपादन उसमें विशेष रूप से किया गया है। तुलसी के अन्य रामकथा-काव्यों में धार्मिक और दार्शनिक विवेचन का अभाव है, किन्तु रामाज्ञाप्रश्न और बरवैरामायण में राम-भक्ति का माहात्म्य वर्णन किया गया है। जानकीमंगल और रामललानहछू चिन्तन की दृष्टि से विचारणीय नहीं हैं।

तुलसी का काव्य-संदेश

तुलसीदास ने अपने रामकथा-काव्यों की रचना एक विशेष उद्देश्य से की है। वह उद्देश्य है राम के ब्रह्मत्व एवं राम की भक्ति का प्रतिपादन। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कवि ने राम-कथा को विभिन्न काव्यरूपों और शैलियों में काव्यबद्ध किया है, जिससे विभिन्न रुचियों वाले व्यक्ति अपनी रुचि के अनुरूप इन काव्यों से आनन्द, शान्ति अथवा ज्ञान का लाभ प्राप्त कर सकें। इस तरह लोक-कल्याण के जिस महान उद्देश्य से तुलसीदास ने इन काव्यों की रचना की है, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इन काव्यों में तुलसीदास ने समाज के सभी वर्गों के लिए अलग-अलग संदेश दिए हैं, किन्तु राम-भक्ति एक ऐसा संदेश है, जिसे उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया है और अपने सभी रामकथा-काव्यों में भिन्न-भिन्न रूपों में

---

१. तुलसी-काव्य-मीमांसा में उद्धृत, पृ० ४६०।

अनेकशः व्यक्त किया है। तुलसी के विभिन्न रामकथा-काव्यों से एतत्संबंधी कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं :

रामचरितमानस

भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।[1]

गीतावली

बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे।[2]

कवितावली

मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है।[3]

रामाज्ञाप्रश्न

रामनाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानंद।[4]

बरवैरामायण

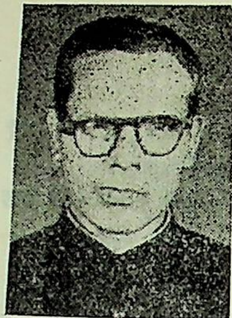
रामनाम जपु तुलसी होइ बिसोक।
लोक सकल कल्यान, नीक परलोक।[5]

⊙



---

१. 'मानस', १।२८।१।
२. गीतावली, ७।१५।
३. कवितावली, ७।३७।
४. रामाज्ञाप्रश्न, ३।४।४।
५. बरवैरामायण, ५१।



महाकवि तुलसी

⊙

कविवर ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री, एम० ए०
फिरोजाबाद

धन्य हे सन्त शिरोमणि धन्य धन्य हे कविता के अवतार।
धरणि में धूम मची चहुँ ओर गगन में गूँजा जय-जयकार॥१॥

यवन-मत शासन की उद्दण्ड चतुर्दिशि आग बरसती थी।
स्वर्ग भू भारत की सुख शान्ति सत्व के लिए तरसती थी॥
दिनों दिन मर्यादा थी भंग उजड़ते थे वन विज्ञ-विचार।
बने तुम श्रावण के घनश्याम बहा दी 'मानस' की रस-धार॥२॥

धर्म, धृति, कर्म, मर्म, व्रत, नियम, नम्रता का होता था लोप।
पराजित पुण्य प्रवीण प्रकाम पाप का प्रबल छा रहा कोप॥
आर्य संस्कृति की नौका जीर्ण शीर्ण हो डूब चली मँझधार।
पधारे पर-उपकार पुनीत प्रेम के लेकर प्रिय पतवार॥३॥

शैव और वैष्णव मत का यहाँ चल पड़ा कलुषित अन्तर्द्वन्द।
संघटन दीपक की शुचि ज्योति हो गयी तत्क्षण अतिशय मन्द॥
परस्पर द्वेष, घृणा, अपमान, अनय के भरने लगे विचार।
एकता का स्वर्णिम सन्देश सुनाया तुमने बारम्बार॥४॥

दिया यों आर्य जाति को तेज, शक्ति, नव साहस का शुचि स्रोत।
हीनता भगने लगी तुरन्त हुई यों प्रभुता ओतःप्रोत॥
पिला कर अमृत धार विचार किया नवजीवन का सञ्चार।
रखेंगे युग युग तक हम याद कवीश्वर, तेरा यह उपकार॥५॥

अलौकिक लीलाओं के धाम राम के गुण गौरव का गान।
बना वह पीड़ित, शोषित प्रबल पराजित जनता का वरदान।
हुए जब झंकृत सूक्ष्म समेत सफल हृत्तंत्री के मधु तार।
विजय के लिए भावना भव्य हो गया राम, शक्ति अवतार॥६॥

तुम्हारा सुन्दर, सबल, सुरम्य, वरद, वैशिष्ट्य भरित साहित्य।
निराशा नील निशा के लिए उदित है मानो नव आदित्य।।
लोक-प्रियता के पूर्ण विराम छा रही कीर्ति सुरभि संसार।
भक्त हे तुलसीदास ललाम, नमन है तुमको शत-शत बार।।७।।

तुलसी ने वर्णाश्रमधर्म का पोषण भले किया हो पर संस्कारहीन कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे। तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण-भरा है। इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है।

—अमृतलाल नागर
(सुप्रसिद्ध साहित्यकार)



मानस में नारी का स्थान

⊙

श्री मुरारीलाल अग्रवाल
न्यायाधिकारी-राजस्व : करवी, बाँदा

['रामचरित मानस' के मौलिक तत्व पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो साफ प्रकट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास के मानस में नारी-जाति के लिए अमित पूज्य भावना तथा असीम करुणा का सागर हिलोरें ले रहा था। विद्वान-न्यायाधिकारी तथा मानस-मर्मज्ञ श्री मुरारीलाल अग्रवाल ने इस तथ्य का बड़ी ही श्रद्धा, निष्ठा तथा वैदुष्य के साथ विवेचन किया है—सम्पादक]

नारी पूर्ण रूपेण प्रकृति का प्रतिरूप है। कौन-सी ऐसी कला है, जिसकी अभिव्यञ्जना नारी के विना पूर्ण हो सके। वेदों तथा पुराणों में नारी का सम्मान सर्वोपरि है। तुलसीकृत रामचरित मानस भी तो वेदों और पुराणों का ही निचोड़ है। इसलिए 'मानस' में नारी का सर्वोच्च स्थान मिलना स्वाभाविक ही है।

महिषासुर से संतप्त, त्रस्त तथा आतंकित देवों को जब शक्ति का आह्वान करना पड़ा, तो वह सर्वशक्ति नारी के रूप में ही उत्पन्न हुई; जो महिषासुर-जैसे दानवों का काल बनी। नव दुर्गा के रूप में प्रतिष्ठित वह एक ऐसा नारी रूप है, जिसमें सभी देवताओं के गुणों का समावेश हुआ। कोई भी शक्तिमान देवाति-देव हो, नारी के बिना उसका विग्रह अपूर्ण ही माना जाता है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बिना ब्रह्मानी के, जगत्-पालनकर्ता भगवान विष्णु बिना लक्ष्मी के तथा संहारकर्ता शिव बिना पार्वती के पूर्णता को प्राप्त नहीं होते। महाकाल यमराज पर यदि किसी ने विजय प्राप्त की है तो वह महासती सावित्री भी एक नारी ही थी। ललित कलाओं के आचार्य भगवान कृष्ण को भी प्रेरणा उस नारी समाज से मिली, जिसे हम गोपियाँ कहते हैं। सृष्टि का निर्माण तथा उद्भव नारी जाति पर ही निर्भर है। अनेक धर्मों की मान्यता है कि मानव-जाति का प्रारम्भ प्रथमतः नारी के आविर्भाव से ही हुआ है। पुराकालंविदों के अनुसार कृषि की खोज नारी

के हाथों हुई। यदि नारी न होती तो आज न मानव का अस्तित्व होता और न संस्कृति एवं कलाओं का ज्ञान ही। भला ऐसे महत्वपूर्ण तत्व की उपेक्षा लोक-कवि तुलसी कभी कर सकता है?

सन्त तुलसीदास के रामचरित मानस में नारी जाति को जो ऊँचा स्थान दिया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिए उसमें नारी के लिए अत्यन्त सम्मानपूर्ण विशेषणों तथा सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है। नारी जाति को ज्ञानोपदेश का प्रबल साधन मानस में माना गया है। रत्ना के उद्बोधन पर ही मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास का आत्मज्ञान जगा और वे विश्व-व्यापी अमरकीर्ति अर्जित करने में सफल हुए। नारी जाति के सम्मान की बात इससे बढ़ कर और क्या हो सकती है कि मानस में दम्पति के परिचयात्मक उच्चारण में पुरुष के पहले स्त्री का नाम लिया गया है; मानस में कहीं 'राम सीता' नहीं मिलेगा, अपितु 'सीताराम' अथवा 'सीयराम' का ही प्रयोग किया गया है। भगवान शंकर जब पार्वती जी को रामकथा सुनाते हैं तो शिवजी उन्हें 'सुमति, भवानी' आदि आदरपूर्ण शब्दों से अलंकृत करते हैं: 'नाम एक दुइ कहहुँ बखानी, सावधान सुनु सुमति भवानी।' इसी प्रकार स्वयं भगवान राम ने भी सीताजी को 'सुन्दरि, सुमुखि, हंसगमनि' जैसे विशिष्ट सम्बोधनों से सम्बोधित किया है।

रामचरित मानस के मर्म को ठीक तरह से न समझने वाले कुछ समालोचकों ने तुलसीदास में नारी-विरोधी भावना का दर्शन किया है, किन्तु यदि मानस का गहराई से आलोड़न-विलोड़न किया जाय, तो साफ प्रकट होता है कि नारी के प्रति समवेदना और सहानुभूति रखने वाला तुलसी के समान कोई अन्य कवि नहीं मिलता। तुलसी ने लिखा है:

कत विधि रची नारि जग माहीं, पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

नारी जाति के लिए इतनी ऊँची तथा करुणाजनक भावना रखने वाली कोई दूसरी उक्ति किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं।

मानस में अनेक प्रसंग आये हैं, जिनमें नारी की महत्ता का वर्णन मिलता है। यहाँ ऐसे ही कुछ प्रेरक प्रसंगों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

रामचरित मानस में नारी को कितना ऊँचा स्थान दिया गया है, उसका पता उस समय सहज ही लग जाता है, जब सीता-हरण के अनन्तर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम साधारण जीव की भाँति सीता का नाम रटते-रटते फूट पड़ते

हैं। उस समय नारी के प्रति नर की आत्मीय भावना का ऐसा स्रोत बह निकलता है कि जिसमें जड़-चेतन का भेद भी धुल जाता है। राम सीता का पता पूछते कहते हैं :

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृग नैनी ।।
खंजन शुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुन्द कली दाडिम दामिनी । सरद कमल ससि अहि भामिनी ।।

ऋतुराज वसन्त सभी को सुहावना लगता है। पर प्रिया के बिना भगवान राम को वही वसन्त भयजनक प्रतीत होता है :

देखहु तात वसंत सुहावा । प्रियाहीन मोहिं भय उपजावा ।।

इसी प्रकार पावस की हरियाली तथा बादलों की मधुर गर्जना भी सीता की अनुपस्थिति में राम को भयकारक मालूम होती है :

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने छिपकर बालि वध किया और ऐसा करके उन्होंने अपने निर्मल चरित्र पर कुछ काले धब्बे छोड़ लिये, पर इस कार्य के पीछे भी नारी के सम्मान की रक्षा निहित थी। बालि कहता है : 'नाथ ! आपका अवतार धर्म की संस्थापना हेतु हुआ है, फिर भी आपने व्याध की तरह छिपकर मेरा बध किया। यह अन्याय क्यों ?' राम का उत्तर था :

अनुज वधू भगिनी सुत नारी । सुन शठ ये कन्या सम चारी ।।
इनहिं कुदृष्टि विलोकै जोई । ताहि वधे कछु पाप न होई ।।

यही नहीं, लोक व्यवहार में नारी की शिक्षा का बड़ा महत्व होता है। शास्त्रकार नारी की शिक्षा या परामर्श को 'कान्तासम्मित उपदेश' कहते हैं। लेकिन तुमने अपनी पत्नी तारा के उपदेश की भी अवहेलना की :

मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना । नारि सिखावन करसि न काना ।

संत तुलसी ने मानस में नारी की शिक्षा का सदैव आदर किया है। इससे ऐसा लगता है कि नीति एवं व्यवहार के क्षेत्र में तुलसीदास जी नारी को नर से कहीं अधिक योग्य एवं निपुण समझते हैं। इसीलिए मानस में जब-जब पुरुष गलत रास्ते पर चलता नजर आया, नारी पति को सुमार्ग पर चलने की सीख देने में नहीं चूकी। बालि की पत्नी तारा ने बालि को राम के समर्थन करने पर सुग्रीव से विरोध न करने की सलाह दी थी, जिस पर बालि ने ध्यान नहीं दिया था;

और जिसका जिक्र ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। रावण की पत्नी मन्दोदरी अपने पति रावण का उद्बोधन करती हुई कहती है :

कन्त करष हरि सन परिहरऊ। मोर कहा अति हित हिय धरहू ।।
तव कुल कमल-विपिन दुखदाई। सीता शीतनिशा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिन दीन्हे। हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हे।।

हे नाथ, भगवान राम से वैर आप न करें। यह सीता आपके कमलवन के समान कुल के लिए शीतकाल की रात्रि की भाँति (नाशरूप बन कर) आई है। इसलिए इस सीता को लौटाये बिना आपका हित ब्रह्मा अथवा शंकर कोई भी नहीं कर सकता।

नारी के प्रति संत तुलसीदास की इतनी आदरपूर्ण पूज्य भावना थी कि जहाँ कहीं नारी के शील, मर्यादा तथा सम्मान पर आघात हुआ है, वहीं तुलसीदास नारी के पक्ष में कूद पड़े हैं। विभीषण रावण से कहता है :

जो आपन चाहस कल्याना। सुजश सुमति शुभ गति शुभ नामा।।
तो परनार लिलार गोसाईं: तजहु चौथ चन्दा की नाईं।।

बन्धुवर, यदि आप कल्याण चाहते हैं, सुन्दर यश, सुन्दर बुद्धि, सुन्दर गति और सुन्दर नाम चाहते हैं, तो पर स्त्री के मुख का देखना वैसे ही छोड़ देना चाहिए जैसे लोग चौथ के चन्द्रमा को देखने से बचते रहते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम क्रोधजयी, शीलवान अतिशय सहिष्णु, गम्भीर तथा शन्तचित्त महामानव थे। उनकी मुखमुद्रा में मुस्कान बराबर खेलती रहती थीं, किन्तु नारी का अपमान देखकर वह भी अपने क्रोध को नहीं रोक पाते थे। राम-रावण के महायुद्ध की पृष्ठभूमि केवल नारी के अपमान पर ही तैयार हुई थीं। भगवान राम ने सुग्रीव को मित्र बना लिया था और उसकी हर प्रकार से उन्होंने सहायता की थी; किन्तु जब उन्हें यह मालूम हुआ कि काफी समय बीत जाने के बाद भी सुग्रीव सीता की खोज के लिए कोई प्रयत्न नहीं कर रहा है, तो वे आग-बबूला हो गये, बोले :

वरषा गत निर्मल ऋतु आई। सुधि न तात सीता कर पाई।।
एक बार कैसेहु सुधि जानौं। कालहु जीत निमिष महं आनौं।।
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी।।
जेहि शायक मारा मैं बाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कह काली।।

स्फटिक शिला पर इन्द्र-पुत्र जयन्त ने महारानी सीता का अपमान कर दिया—

सीता चरण चोंच हति भागा—इस पर राम के क्रोध की सीमा न रही और सींक का वाण उसकी ओर फेंक दिया। परिणाम यह हुआ कि तीनों लोक में उसकी कोई रक्षा न कर सका। अन्त में नारद के कहने पर जब वह उन्हीं की शरण में आया, तब कहीं उसके प्राण बच सके। फिर भी नारी-अपमान के दण्ड स्वरूप 'एक नयन करि तजा भवानी'।

पत्नी के रूप में नारी में अपार शक्ति का साक्षात्कार तुलसी ने किया था। सुरपति वसत बाहुबल जाके, नरपति तकत सकल रुख ताके - ऐसे चक्रवर्ती राजा दशरथ भी 'सो सुनि तिय रिस गयेहु सुखाई' और फिर डरते-डरते कैकेई के पास जाकर बड़े अनुनय-विनय के साथ कहते हैं :

कहु केहि रंकहि करहुँ नरेशू। कहु केहि नृपहिं निकारहुँ देशू।
अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केइ दुइ सिर केहि जम चह लीना।
बार-बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकवयनि।
कारण मोंहि सुनाउ, गजगामिन निज कोप करि॥

यह सब पति द्वारा पत्नी के सम्मान तथा महत्ता प्रदर्शित करने का एक उदाहरण मात्र है।

नीतिशास्त्र के पारंगत विद्वान लंकाधिप रावण, जिन्होंने नारी में आठ अवगुणों को निरूपित कर उसकी निन्दा की थी, ने भी पत्नी मन्दोदरी का सम्मान करते हुए कहा था कि तुम मेरे शत्रु की जो प्रशंसा कर रही हो, वह तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस व्याज से मेरी ही प्रशंसा की जा रही है :

जानहु प्रिया तोरि चतुराई, एहि विधि कहहु मोरि प्रभुताई।

नारी के स्वरूप तथा शक्ति की महत्ता की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों में मानस में की गयी है। महासती अनुसूया ने नारी के पातिव्रत धर्म का विश्लेषण कर नारी की मर्यादा बाँधने का अनुकरणीय प्रयास किया है ; उन्होंने चार प्रकार की स्त्रियाँ निरूपित की हैं। उनमें से सर्वश्रेष्ठ तथा बन्दनीय नारी वह है जो पति परायण होती है, जिसमें पति के लिए एकनिष्ठता होती है और जिसने स्वप्न एवं कल्पना में भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं किया, ऐसी स्त्री की प्रशंसा चारों वेद कहते हैं : 'जस गावहिं श्रुति चारि'।

इस प्रकार मानस में जगह-जगह पर नारी की महत्ता को प्रदर्शित किया गया है, फिर भी कुछ पण्डितम्मन्य अविचारी लोग तुलसीदास पर नारी-विरोधी होने का आक्षेप करते हैं, जो किसी भी दशा में उचित नहीं कहा जा सकता। वस्तुतस्तु

मानस को ठीक तरह से समझने और उसके तत्व को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। तुलसी पर 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' चौपाई को लेकर दोषारोपण किया जाता है कि नारी के प्रति उनकी भावना अच्छी नहीं थी। पर दरअसल बात यह है कि यह उक्ति समुद्र की है। समुद्र जड़ है। इसलिए जड़ द्वारा कही गयी बात आदर्श नहीं मानी जा सकती। इसे तुलसी की भावना कहना कवि के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता। कवि को अनेक स्थलों पर तटस्थ दृष्टि अपनानी पड़ती है। खलनायकों की उक्तियाँ कवि की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं।

नारी में आठ अवगुण गिनाये गये हैं। यहाँ भी लोग तुलसी के प्रति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। पर यह उक्ति भी राक्षसराज रावण की है। प्रसंगतः राक्षस की कही बात को कवि की उक्ति मानना उचित नहीं।

इसलिए यह कहना अनुचित होगा कि तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में नारी का अनादर किया है। वस्तुतः 'रामचरित मानस' का प्रणयन ही नारी के सम्मान की रक्षा के लिए हुआ है। ⊙

जकार्ता : ७ सितम्बर १९७१। आठ एशियाई राष्ट्र पश्चिमी प्रभाव से अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों, परम्पराओं की रक्षा करने के लिए रामायण की शरण ले रहे हैं। गत सप्ताह से पूर्व जावा के पण्डान नामक स्थान पर अन्तरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव चल रहा है। महोत्सव का शुभारम्भ इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुहार्तो ने किया जो रामायण के प्रति श्रद्धा रखने वालों में हैं। महोत्सव में भाग ले रहे देश भारत, थाईलैण्ड, लंका, नेपाल, बर्मा, कम्बोडिया, मलयेशिया और इण्डोनेशिया हैं जिनके १५० गायक तथा नर्तक यहाँ उपस्थित हैं। आयोजकों का विश्वास है कि इसके माध्यम से संस्कृति के प्रति लोगों की आस्था और दृढ़ होगी तथा उनके देशों की सरकारें भी इस ओर आकर्षित होंगी। आयोजन में सम्मिलित होने के लिए जितने प्रतिनिधि-मण्डल आए हैं उनके पास अपने देश के सुलभ एवं प्रचलित रामायण की प्रतिलिपियाँ हैं। इण्डोनेशिया की सब से प्राचीन रामायण काकाविन रामायण है जो प्राचीन जावानी भाषा में है। इण्डोनेशिया की ओर से कार्यक्रम में रामायण का चार प्रकार का प्रस्तुतीकरण रखा जा रहा है।



मानस में साम्प्रदायिक सद्भावना

⊙

श्री शारदाशंकर पाण्डेय 'मानस मराल' एम० ए०
इलाहाबाद

[मानस के तत्वान्वेषी कथावाचक एवं गहन अध्येता श्री शारदा शंकर पाण्डेय 'मानस मराल' ने मानस में सामाजिक पक्ष को उजागर करते हुए कहा है कि मानस में केवट, शबरी, हनुमान, विभीषण तथा गीध आदि रामायण-पात्रों के कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जो साम्प्रदायिक सद्भावना के क्षेत्र में संकीर्ण भावनाओं को झकझोर देने वाले हैं। इसलिए रामचरित मानस को साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझना कवि की काव्य-साधना के प्रति महान अन्याय है—सम्पादक]

गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस महाकाव्य में विभिन्न दर्शनों, नीतियों एवं विचार-धाराओं का समन्वय किया गया है। कई आलोचक रामचरित मानस का सांगोपांग अध्ययन किये बिना गोस्वामी तुलसीदास को ब्राह्मण-भक्त व साम्प्रदायिक भावनाओं वाला व्यक्ति बता देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ब्राह्मणों को प्रतिष्ठा देते हैं, यह बात सत्य है; पर वे उस प्रकार के सांप्रदायिक व्यक्ति नहीं हैं, जो समाज के लिए अहितकर हो। गोस्वामी तुलसीदास वस्तुतः मानवता के कवि हैं। उनके काव्य के नायक राम अखिल ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म के अवतार हैं, फिर भी राम की कहानी एक इन्सान की कहानी है। अतः मानस किसी धर्म विशेष या किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ न होकर मानव-मात्र का ग्रन्थ है। गोस्वामी तुलसीदास के राम की विशेषतायें निम्न चौपाई में स्पष्ट हैं :

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।

राम का चरित्र एक आदर्श आचरण संहिता, मर्यादावाद एवं लोक धर्म की उच्चतम आधार शिला पर टिका है। वह कवि सांप्रदायिक कैसे हो सकता है, जिसके नायक राम मानव-मात्र को ही नहीं, जीव-मात्र को प्राणप्रिय हैं :

अस को जीव-जन्तु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्राण प्रिय नाहीं ।

गोस्वामी तुलसीदास ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा इसलिए करते हैं, क्योंकि वे सनातन वर्ण-व्यवस्था के प्रतिपादक एवं समर्थक हैं।

यह व्यवस्था तो वेद विहित है। समाज में वर्ण-व्यवस्था को न मानने से मर्यादाहीनता, अव्यवस्था, भ्रम एवं उच्छृंखलता का वातावरण उपस्थित हो सकता है, इसीलिए सामाजिक मर्यादाओं को दृष्टि में रख कर उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को महत्ता दी। इसका अर्थ यह नहीं है कि चूंकि वे स्वयं ब्राह्मण वर्ण के थे, इसलिए उन्होंने ब्राह्मणों का पक्षपात किया है। गोस्वामी तुलसीदास को तो ब्राह्मणों से बड़ी कुण्ठायें प्राप्त हुई थीं। और वे तो अपने संबंध में कहते हैं :

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगारि न सोऊ।।
तुलसी रस नाम गुलाम है राम को, जा को रुचै सो कहौ कुछ कोऊ।
माँगिकै खैबो मसीत को सोइबो, लैइबो को एक न देइबो कोदोऊ।।

इसी के साथ यह भी कहते हैं :

मेरे न जाति-पाँति, न चहौं कोई की जाति-पाँति।
न कोऊ मेरे काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक सब रघुनाथ ही के हाथ में भारी है भरोसो एक नाम को।।

वे वंदना प्रसंग में महीसुरों की वंदना के साथ बानरों, भालुओं व निशाचरों की भी वंदना करते हैं। यथा :

कपिपति रीछ निसाचर राजा । अंगदादि जे कीस समाजा।।
बन्दहुँ तिनके चरन सुहाये । अधम सरीर राम जिन पाये।।

यदि वे साम्प्रदायिक होते तो अधम शरीर धारण करने वाले जीवों की वंदना कैसे करते ? इस तथ्य को तो विभीषण व हनुमान जी ने भी भलीभाँति समझा था। सुन्दर कांड में प्रसंग आया है कि विभीषण ने हनुमान जी से कहा कि मैं तामस शरीर वाला हूँ, मुझे राम कैसे मिल सकते हैं :

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी।।
तात कबहु मोंहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तन कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोंहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।।

हनुमानजी ने विभीषण को बताया कि भगवान राम को प्राप्त करने के लिये जाति-पाँति की विशेषतायें होना आवश्यक नहीं है। वे तो केवल सेवा, प्रेम व भक्ति से प्रभावित होते हैं। वे अपना स्वयं का उदाहरण देते हुए विभीषण की हीन-भावना को दूर करते हैं:

सुनहु बिभीषण प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
गहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।
अस मैं अधम सखा, सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर।।

इस प्रकार हनुमान ने स्पष्ट किया कि राम उच्च कुल में जन्म प्राप्त व्यक्ति से ही प्रेम करते हैं, ऐसी बात नहीं है। वे मानवीय मूल्यों को महत्व देते हैं। शूद्र वर्ण को हरिजन कह कर सम्बोधित करने की सम्प्रति परम्परा चल रही है। इस शब्द का मानस में प्रयोग हुआ है और इस प्रकार सबसे बड़े हरिजन तो हनुमान जी ही हैं:

हरिजन जाति प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि गाढ़ी।।

शबरी कोई उच्च वर्ण की नारी नहीं थी; पर राम उससे अत्याधिक प्रभावित होते हैं और कहते हैं:

मानहुँ एक भगति कर नाता।

यही नहीं, उसे अत्यन्त सुपात्र समझ कर भक्ति के साधन बतलाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की सामाजिकता, भ्रातृ-भाव एवं समानता का भाव केवट प्रसंग में भी बड़े हृदयग्राही रूप में दृष्टिगोचर होता है। केवट अपने को निम्नवर्ण का मान कर महर्षि वशिष्ठ को दूर से दण्ड प्रणाम करना चाहता है, पर वशिष्ठ उसे उठा कर गले लगा लेते हैं:

राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।

केवट जैसा निम्न कुलोत्पन्न व्यक्ति और वशिष्ठ जैसे उच्चकोटि के कुलीन ब्राह्मण ही नहीं, उत्कृष्टतम सिद्ध महापुरुष; पर इन दोनों का सौहार्द्रपूर्ण मिलन साम्प्रदायिक सद्भावना का अति उज्ज्वल निदर्शन है:

एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ वशिष्ठ सम को जग माहीं।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त एक प्रसंग ऐसा है, जो सांप्रदायिक सद्भावना के क्षेत्र में एक महान् क्रांतिकारी है और संकीर्ण विचारों को झकझोर देने वाला

है। उच्चवर्ण के ही व्यक्ति क्या, गृद्ध जैसे पक्षी से तो सभी घृणा करेंगे। मांस-भक्षी और वह भी मृत जानवरों का मांस भक्षण करने वाला गीध जब अपनी परोपकार शीलता, त्याग एवं बलिदान की भावना से राम को प्रभावित करता है, तो वे उसे गोद में ले लेते हैं तथा पितृ-तुल्य सम्मान देते हैं :

राखौ गीध गोद करि लीन्हों।

गोस्वामी जी ने कहा है :

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी॥

गीध को जो उत्कृष्ट कोटि की गति प्राप्त हुई, उसके रहस्य का उद्घाटन करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से विह्वल होकर राम ने जो भाव व्यक्त किया है, वह मानवता का महान मूलमन्त्र है :

जल भरि नयन कहत रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥

परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

तुलसीदास तो स्पष्ट बताते हैं कि परहित-कर्ताओं के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उन्होंने यह नहीं बताया कि महान उपलब्धियों के लिए उच्च वर्ग में उत्पन्न होना आवश्यक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास के विचार एक ओर शास्त्र-सम्मत तथा वेद-विहित हैं तो दूसरी ओर जीव-मात्र के प्रति प्रेम व सौहार्द्र की भावना से ओत-प्रोत हैं। गोस्वामी तुलसीदास में संकीर्णता का सर्वथा अभाव है।

वर्ण-व्यवस्था के समान एक दूसरी समस्या है, जिसके कारण प्रायः साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है। यह समस्या भाषा की समस्या है। प्रायः हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, दक्षिण भारतीय भाषाओं तथा अन्य विदेशी भाषाओं के प्रश्न को लेकर बड़े मतभेद व कलह हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस समस्या को समझा था और इसका समाधान भी बताया था और उनकी दृष्टि में भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का साधन है। मुख्य वस्तु तो वह भाव हैं, जिन्हें प्रकट करना अभीष्ट है :

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिये साँच।

गोस्वामी तुलसीदास अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत के महान पण्डित थे। परन्तु उन्होंने ही सर्वप्रथम यह संकेत किया कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्तर प्राप्त होना चाहिये। संस्कृत के महान विद्वान होते हुए भी वे अपने

ग्रन्थों का हिन्दी में प्रणयन करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के इस क्रांतिकारी कार्य के कारण तत्कालीन संस्कृत के पंडितों ने उनका विरोध किया था। किंवदन्ती है कि काशी के पण्डितों ने विश्वनाथ जी के मंदिर में रामचरित मानस के ऊपर संस्कृत में प्रणीत अन्य शास्त्र तथा वेदादि ग्रन्थ रात्रि में बंद कर दिये थे। प्रातःकाल कपाट खुलने पर सब ग्रन्थ नीचे रखे पाये गये और तुलसीकृत रामचरित मानस सर्वोपरि विराजमान था।

वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-भावना एवं साम्प्रदायिक सद्भावना उनके काव्य की श्रेष्ठतम विशेषता है।

●

रामायण को आज के नये समाज के अनुरूप मौलिक व आधुनिक धरातल पर सुसंस्कृत रूप से व्याख्यायित करने की जरूरत हो गयी है, जिससे आज का युवक राम के चरित्र और आदर्श की ओर आकर्षित हो सके। नये सन्दर्भ में भगवान राम को अवतार दिखाने के बजाय मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रकट करना ही समुचित होगा। रामायण का आजकल जिस रूप में चित्रण हो रहा है वह कट्टर परम्परावादी रूप का परिचायक है। २०वीं शताब्दी के युवकों के मन में रामायण के उपदेश बैठ सकें, ऐसे रामायण का प्रस्तुतीकरण किया जाना आवश्यक है।

—जगजीवन राम

प्रतिरक्षा मंत्री : भारत सरकार

तुलसी की भक्ति का स्वरूप

⊙

प्राचार्य श्री गोपालदास अग्रवाल, एम० ए०, एल० टी०
मध्य प्रदेश शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश

[युवा लेखक प्राचार्य श्री गोपालदास अग्रवाल की दृष्टि में तुलसी की भक्ति की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि उसमें शील है, सौन्दर्य है, धर्म है; पर सबसे बड़ी बात है उसमें लोक-कल्याण की मंगलमयी कामना, जो तुलसी को अन्य कवियों के ऊपर स्थान प्रदान करती है—संपादक]

कविकुल शिरोमणि सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी भगवान राम के परम भक्त थे। तुलसी के सम्पूर्ण जीवन में एकमात्र राम की भक्ति ही उनका अवलम्ब रहा है। उनकी भक्ति-भावना की सच्ची झाँकी 'विनय-पत्रिका' में देखते ही बनती है। भक्ति का प्रमाण है दीनता। भक्त ज्यों-ज्यों अपने इष्ट-देव की महत्ता और अपनी तुच्छता पर विश्वास करता जाता है, त्यों-त्यों उनकी भक्ति चमकती जाती है। भक्त-कवि तुलसी ने बार-बार अपने मन को भगवान राम की ओर प्रेरित किया। सचमुच वे भारतीय-संस्कृति की अमर विभूति हैं।

भक्त-कवि तुलसीदास के राम परब्रह्म परमात्मा के अवतार थे। जो सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में थे, किन्तु गोस्वामी जी ने सगुण में ही निर्गुण की कल्पना की; क्योंकि तुलसी सगुण और निर्गुण में किसी भी प्रकार से तनिक भी भेदभाव नहीं समझते थे। यही प्रमुख कारण है कि कवि ने अपनी भक्ति में इन दोनों स्वरूपों को स्थान दिया है। आपकी भक्ति की महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि वह लोक-रंजक और लोक-रक्षक है। उनकी भक्ति में शील है, सौन्दर्य है तथा उसमें धर्म भी है, जिसका लक्ष्य है लोक-कल्याण। कवि तुलसी की भक्ति वर्णाश्रम धर्म को मानते हुए भी उपासना के क्षेत्र में जाति-पाँति को व्यर्थ समझती है।

तुलसी की भक्ति लोक-कल्याण की भावना की नींव पर ही आधारित है। तुलसी ने कहीं भी ज्ञान-मार्ग का खंडन-मंडन नहीं किया। किन्तु सत्य

बात तो यह है कि भक्ति मार्ग पर उन्होंने विशेष बल दिया है और उस भक्ति भाव में भी तुलसी को दास्य भाव अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। उन्होंने भक्ति करते हुए कभी भी मोक्ष की चिंता नहीं की। वे राम की अनन्य भक्ति में अपने जीवन का एवं अपनी साधना का उत्कर्ष समझते थे :

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुधि बेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।

स्वर्गीय आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट मत है कि 'धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है।' धर्म है ब्रह्म के सत्य स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति, जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व स्थिति में मिलता है। वे आगे कहते हैं कि : 'भक्ति की भावना अखिल विश्व के बीच सत्य की इस प्रवृत्ति के साक्षात्कार की साधना करता है।' उसके भीतर का चित्र बाहर तीन स्वरूप में परिलक्षित होता है : सौन्दर्य, भक्ति और शील। सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन तुलसी ने किया है। उनके द्वारा किये गये सौन्दर्य का सबसे अच्छा वर्णन उस समय मिलता है, जब बन जाते हुए राम ग्रामवासियों, विशेषतया ग्रामीण स्त्रियों की सौन्दर्य-भावना को स्पष्ट कर देते हैं। सभी ग्रामीण स्त्रियाँ राम और सीता के मधुर वचन सुनने को आतुर-सी दिखाई पड़ती हैं। राम वनगमन के सम्बन्ध में तुलसी की निम्न पंक्तियाँ मार्के की हैं :

धरि धीर कहैं चलु देखिय जाय, जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ कल आपस में कुछ तो कहिहैं।

राम ठहर भी जाते हैं, प्रश्न उठता है क्यों? क्या राम थक गये थे? नहीं, वे तो इसीलिए ठहरे थे कि ग्रामीण स्त्रियाँ अपने को धन्य समझ सकें। यहाँ तुलसी ने सौन्दर्य के बीच शील का समावेश कर दिया है। राम वनगमन के समय गाँवों से होकर निकले। क्या बहुत दिनों तक रहे थे? नहीं। फिर भी राम के प्रति ग्राम-निवासियों का प्रेम सदैव के लिए नवीन ही रहा। यहाँ तक कि राम-सीता और लक्ष्मण के चले जाने पर भी बहुत दिनों तक वे चर्चा का विषय बने रहे। यही तुलसी की भक्ति के स्वरूप और वर्णन की विशेषता है तथा यही राम का अलौकिक सौन्दर्य है, जिसे देखने के लिए सभी का बार-बार जी चाहता है।

राम के अलौकिक सौन्दर्य के साथ-साथ उनके अलौकिक बल-पराक्रम का भी कवि ने परिचय कराया है। उनके राम ईश्वरावतार राम 'लवनिमेष

परमान जुग काल जासु कोदण्ड' राम से बढ़कर शक्तिशाली विश्व में है ही नहीं। तुलसी ने दोनों रूपों की स्थापना एक साथ की है। इस स्वरूप का दर्शन हमें उस समय होता है, जब राम विश्वामित्र के साथ जाते हैं। हमें उनके शक्तिशाली स्वरूप की झाँकी मिलती है तथा रावण पर राम की विजय के रूप में अनन्त शक्ति की चरमावस्था दिखलाई पड़ जाती है। तुलसी की अमर भक्ति का स्वरूप वही है, जिसके द्वारा कवि की कुचालें सदा के लिए छूट जायँ तथा बुरे कर्मों की ओर ध्यान तक न जाय। इसी को कवि ने 'श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ, सज्जन विरत विवेक' कहा है, जिसका मुख्य आधार शील ही दिखाई पड़ता है :

प्रीति राम सो नीति पथ, चलिय रागरिस जीत,
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति।

तुलसी ने राम के अनन्य शील का ऐसा विशद और हृदयग्राही चित्रण किया है कि मानव-मात्र का हृदय अपने आप उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। उनका मत है कि 'राम के शील को देखकर भी जो द्रवीभूत नहीं होता, वह मनुष्य जड़ है, उसने व्यर्थ ही मनुष्य की योनि को प्राप्त किया है'; जैसे :

सुनि सीतापति शील सुभाये,
मोहन मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाये।

कवि ने भगवान राम के शील स्वभाव को निश्चय करने के लिए उनके जीवन में प्रारंभ से अन्त तक इसी की चर्चा की है, जिससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राम सम्पूर्ण धर्म स्वरूप हैं। क्योंकि धर्म का विरोध और राम का विरोध एक ही बात है। इस बात का उदाहरण निम्न पंक्तियाँ दे रही हैं:

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।

इसका सबसे बड़ा उदाहरण विभीषण एवं मीराबाई हैं। विभीषण की भक्ति भावना विश्व-कल्याण की व्यापक भावना की ओर अग्रसर होती हुई दिखलाई पड़ती है। इसीलिए वह लोक-कल्याण विधायक धर्म का अवलम्बन करके भगवान श्रीराम की ही शरण में जाना उचित समझता है। यही बात मीराबाई के सम्बन्ध में भी सत्य उतरती है। मीरा ने तुलसी का पत्र पाकर लोक-लाज का त्याग कर श्रीकृष्ण को पति के रूप में वरण किया।

गोस्वामी जी ने भक्ति के लिए दैन्य, आशा, उत्साह, आत्म-ग्लानि, अनुताप, आत्मनिवेदन आदि आवश्यक बतलाया है। भक्ति का मूलतत्व गोस्वामी जी ने

महत्व की अनुभूति अथवा अपने हृदय में लघुत्व का अनुभव बतलाया है। इसी-लिए तुलसी ने दैन्य को भक्ति का सबसे बड़ा बल बताया है। वे कहते हैं कि:

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो,
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।।

तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बातें निम्नलिखित हैं।

उनकी भक्ति का आधार भगवान् का लोक-धर्म-रक्षक और लोक-रंजक स्वरूप ही था। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति भारतीय भक्ति-मार्ग की भक्ति है, जो सभी के लिए सुलभ है। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति में लेने-देने का भाव बिलकुल नहीं दिखलाई पड़ता, क्योंकि वह निष्काम है। तुलसी के लिए भक्ति का आनन्द ही भक्ति का मूल है :

जो जगदीश तो अति भलो, जो महेश तो भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरण अनुराग ।।

तुलसी की भक्ति के अन्तर्गत अन्तःकरण बिना कपट के शुद्ध हो जाता है। समस्त कलुष अपने आप धुल जाते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि बिना अन्तः-करण की पूर्ण शुद्धि के भक्ति तो हो ही नहीं सकती। तुलसी ने यह बात अनेक स्थानों में कही है कि भक्तिहीन सदाचार स्थायी हो ही नहीं सकता। उनके मत में भक्ति के बिना शील आदि गुण निराधार हैं। तुलसी की भक्ति की प्रेरणा आनन्ददायिनी है; जिसमें रूप, गुण तथा शील के प्रभाव का सन्तुलित योग रहता है। उन्होंने भक्ति के अनेक साधन बतलाये हैं: जैसे नाम-स्मरण, राम-कथा गान, श्रवण, सगुन स्वरूप का चिन्तन, गुरुभक्ति और सत्संग आदि। नवधा भक्ति के अन्तर्गत वर्णित भक्ति के अन्य साधन हैं। तुलसी ने शबरी को नवधा भक्ति का अच्छा स्वरूप बताया है। साथ ही भक्ति के नवों साधनों का व्यापक वर्णन विनय-पत्रिका में भी किया है। वे कहते हैं कि :

सेवक सेव्य भाव बिन, भव न तरिंह उरगारि ।

तुलसी ने यह भी बताया है कि कलिकाल में भक्ति का प्रधान एवं सरलतम रूप केवल राम नाम जप ही है:

राम नाम कवि अभिमतदाता, हित परलोक लोक पितुमाता।

इसीलिए वे भगवद्-भक्ति की प्राप्ति के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक उपयोगी साधन बताते हैं:

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा, किये योग तप ज्ञान विरागा।

उनके मतानुसार राम की कथा ही केवल राम-भक्ति को दृढ़ कर सकती है। यथा :

राम चरन रति जो चाहें,

अथवा

पद निर्वान, भाव सहित सो यह कथा करें श्रवण पुरमान।

उन्होंने अपनी भक्ति दर्शन का उल्लेख इस प्रकार से किया :

भाव रूप भगवान, सुख निधान करुणा भवन।
तजिय मना मद मान, भजिय सदा सीतारमण।

उन्होंने राम की अनन्य भक्ति का लक्षण इस प्रकार से प्रतिपादित किया है :

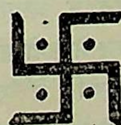
सो अनन्य जाके अति मति न टरे हनुमन्त,
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।

इस तरह से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्त कवि तुलसीदास सम्पूर्ण जगत को ही राम भक्ति के कारण राम-मय देखते हैं :

सीय राम मय सब जग जानी।
करऊँ प्रनाम जोर जुग पानी॥

इसी से उनकी भक्ति-साधना ही धर्म की मर्यादा बन गयी हैं।

●



मानस का खड़ीबोली में 'निराला' द्वारा रूपांतरण

⊙

डॉ० शिवनाथ, एम० ए०, डी० फिल्०

प्राध्यापक : विश्व-भारती, शान्ति निकेतन, बंगाल

[बहुत कम लोग जानते होंगे कि गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरित मानस' को अहिन्दी भाषा-भाषियों की सुविधा के लिए अवधी से खड़ीबोली में रूपान्तरित करने का प्रयास महाकवि निराला ने किया था, जिसका विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं विश्व-भारती, शान्ति निकेतन (बंगाल) के विद्वान-प्राध्यापक डॉ० शिवनाथ जी डी० फिल्०। रामचरित मानस के देशव्यापी प्रचार-प्रसार की दिशा में प्रस्तुत लेख कवियों तथा लेखकों का प्रेरणा स्रोत बन सकेगा—ऐसी आशा की जाती है—सम्पादक]

निराला का 'रामायण' (विनयखंड) काशी के 'श्रीराष्ट्रभाषा विद्यालय' से सं० २००५ वि० में प्रकाशित हुआ था। यह तुलसीदास-कृत 'रामचरित मानस' के आरंभिक अंश ('मानस' के १२० दोहे तक) का खड़ीबोली हिंदी में रूपांतर है। इस अनुवाद के मूल में हमें दो कारण निहित दिखाई पड़ते हैं। एक, निराला की राम और तुलसीदास के प्रति भक्ति और दूसरा, 'मानस' को अधिक से अधिक लोगों के लिए सुलभ तथा बोधगम्य बनाने की चेष्टा। दूसरे कारण के संबंध में यह स्मरण रखना है कि हिंदी की एक बोली अवधी में लिखे जाने के कारण 'मानस' उत्तर भारत के हिंदी-भाषी प्रदेशों में ही विशेष रूप से बोधगम्य है। भारत के अहिंदीभाषी दक्षिण तथा अन्य प्रदेशों में इसे समझने में पाठक तथा श्रोता को कठिनाई होती है। परंतु खड़ीबोली हिंदी का व्यवहार भारत-व्यापी है और यह निखिल भारत में अल्पाधिक रूप में समझी जाती है। खड़ीबोली हिन्दी का जानकार भारत में कहीं भी जाकर अपनी बात को दूसरों पर प्रकट कर सकता है। ऐसी स्थिति में 'रामचरित मानस' के खड़ीबोली हिंदी में रूपांतरित हो जाने से उसके सारे भारत में समझे जाने की संभावना

है। दक्षिण भारत की हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन की ओर विशेष रुचि है। वहाँ के लोग खड़ीबोली हिंदी तो भलीभाँति समझ लेते हैं, किंतु अवधी और ब्रज को समझने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक बार हिंदी की एम० ए० कक्षा के दक्षिण के एक छात्र ने मुझसे कहा था कि खड़ीबोली हिंदी तो हम अच्छी तरह समझ लेते हैं, मगर अवधी और ब्रज को समझने में हमें बहुत दिक्कत होती है। निराला द्वारा रूपांतर 'रामायण' ऐसे लोगों के लिए निस्संदेह ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इस रूपांतर के पहले कारण की ओर भी हमने संकेत किया है। निराला में तुलसीदास के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी और राम के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए उन्होंने 'राम की शक्ति-पूजा' लिखी, जो महाकाव्य न होते हुए भी महाकाव्य की प्रवृत्तियों से संपन्न छोटा काव्य है और जिसमें निराला ने राम को कर्तव्य की पूर्ति के लिए एक नवीन साधन में रत दिखाया है, जो साधन हिंदी-साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक है। उनका 'तुलसीदास' नामक काव्यग्रंथ भी इसी कोटि का है, जो तुलसीदास के प्रति श्रद्धा के कारण ही लिखा गया था।

एक बार 'रामायण' की पांडुलिपि दिखलाते हुए निराला ने मुझसे कहा था : 'स्पीरिट और ढंग वही है; भाषा अपनी है।' 'वही' से उनका तात्पर्य तुलसीदास-कृत 'रामचरित मानस' से था। इसमें संदेह नहीं कि इसमें भाषा निराला की है और सब कुछ तुलसीदास का ही है। निराला ने पदावली भी प्रायः तुलसीदास की ही रखी है—विशेषतः वहाँ, जहाँ सामासिक पदावली है। इस प्रकार निराला का 'रामायण' अधिकांश स्थलों पर तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का-सा ही है।

मंगलकरा कलिमलहरा तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कुटिल कविता सरित की जो परम पावन पाथ की।
प्रभु-सुयश-संगति भणित-कलि होगी सुजन-मन-भावनी,
भव-अंग-भूति श्मशान की सुमरे सुहावन-पावनी।

—रामायण

मंगल करनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥

प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-जन-भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी ॥

—रामचरित मानस

इन उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि निराला के रूपांतर में तुलसीदास की 'स्पीरिट' और उनके 'ढंग', दोनों की रक्षा की गई है। तुलसीदास तथा निराला, दोनों के काव्यों में भाषा तथा शैलीगत समान प्रवाह है।

इसका भी स्मरण रखना आवश्यक है कि अनुवाद-संबंधी वैसी ही कठिनाइयाँ निराला के सम्मुख भी थीं, जैसी अन्यों के सामने रहती हैं। काव्य का रूपान्तर काव्य में—और एक पंक्ति का रूपान्तर प्रायः एक ही पक्ति में—होने के कारण कठिनाई और भी बढ़ जाती है। रूपांतर में ऐसी कठिनाई उपस्थित होने पर निराला ने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रेष्ठ के संग्रह और सामान्य के त्याग पर दृष्टि रखी है। निम्नलिखित उद्धरणों में निराला ने एक ही उदाहरण दिया है, 'मानस' में दो उदाहरण हैं :

नहीं निबाह उघरने पर। कालनेमि जैसे कपि के घर। —रामायण
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू। —मानस

× × ×

बक हंस को, कुजात जात को। हँसे मलिन खल विमल बात को। —रामायण
हंसहिं बक दादुर चातक ही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही। —मानस

इसमें निराला ने 'दादुर, चातक' की जगह 'कुजात, जात' कर दिया है। इससे तात्पर्य तो आ गया, मगर वे ही शब्द नहीं आ पाए। निम्नलिखित उद्धरण में भी तात्पर्य पर ही दृष्टि रखी गयी है :

भाषा-भणित, अल्पमति मेरी। हँसने योग्य, नहीं त्रुटि तेरी। —रामायण
भाषा भनित भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहीं खोरी। —मानस

रूपांतर की कठिनाई एवं परिवर्तन पर दृष्टि के कारण मूल की अभिव्यक्ति से अपर अभिव्यक्ति भी यत्रतत्र हुई है। ऐसा करने से, मेरी दृष्टि से, कहीं-कहीं अभिव्यक्तिगत सौंदर्य बढ़ गया है :

हरि-गुण-गाथा कहते-सुनते। शिव के दिन बीते सुख बुनते। —रामायण
कहत-सुनत रघुपति-गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा। —मानस

कहना न होगा कि 'दिन बीते सुख बुनते' में 'कछु दिन तहाँ रहे' की अपेक्षा अधिक सौंदर्य है, इसमें अभिव्यक्तिगत मार्मिकता है। इसी प्रकार एक स्थान पर

निराला ने 'वर्णन करना' के लिए 'छंदना' (छंद से नामधातु की क्रिया) का प्रयोग किया है, जो 'वर्णन करना' का अर्थ देने के साथ ही 'छंदों में वर्णन करना' का भी अर्थ देता है :

साधु-असाधु-चरण मैं बंदूँ। दुखप्रद उभय, बीच कुछ छंदूँ। —रामायण

बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। —मानस

ऐसे स्थलों पर निराला नवीन अभिव्यक्तियों के कर्तावाले अपने पुराने रूप में सामने आते हैं।

निराला ने 'बृहत दोहा' के अतिरिक्त वे ही छंद ग्रहण किए हैं जो 'रामचरित मानस' में प्राप्त हैं, अर्थात् दोहा, चौपाई, सोरठा और हरिगीतिका छंद अपने रूपांतर में भी उन्होंने रखे हैं। तुलसीदास ने कुछ अन्य छंदों का भी उपयोग किया है, किंतु वहाँ तक 'रामायण' में अनुवाद ही नहीं है। 'बृहत दोहा' का उदाहरण दे रहा हूँ :

पिता-भवन, उत्सव परम, यदि मुझको आदेश हो।

तो मैं जाऊँ देखने, शत-शत बंदन आपको॥

'रामायण' के 'निवेदन' में निराला ने अपने द्वारा व्यवहृत छन्दों के संबंध में कहते हुए यह भी कहा है :

'कहीं कुछ परिवर्तन भी है, भाषा में न आ सकने के कारण जैसे बृहत दोहा एक नपा हुआ है. . .। इससे छंदशास्त्र की एक वृद्धि हुई है।'

बृहत् दोहे में निराला ने प्रायः लघु-गुरु का ही क्रम रखा है। यत्रतत्र ही लघु-लघु का विधान है, जैसा कि ऊपर के एक बृहत् दोहे में है। यह भी स्मरण रखना है कि बृहत् दोहा 'रामायण' में कम है। छंदशास्त्र में 'बृहत दोहा' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। इस रूप का भी कोई छंद नहीं है। यह छंद निराला की अपनी रचना है। उद्धरण से भी यह बात प्रमाणित है।

'निवेदन' में निराला कहते हैं :

'आशा है, पाठक पढ़कर राष्ट्रभाषा के विस्तार के प्रयत्न में हमारा उत्साह बढ़ाएँगे।'

इसमें संदेह नहीं कि इसके अनुवाद में निराला का लक्ष्य 'रामचरित मानस' को अहिंदी-भाषी प्रदेशों में पहुँचाना था, जिसकी ओर हमने आरंभ में ही संकेत किया है।

●



रामचरित मानस में संवाद-योजना

⊙

श्रीमती इन्दुजा अवस्थी
प्राध्यापिका : दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

[रामलीला पर शोध-कार्यरत प्राध्यापिका तथा हिन्दी की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती इन्दुजा अवस्थी अपने इस अनुसंधान-परक लेख में अध्ययन-अनुशीलन की तलस्पर्शिता के साथ मानस की संवाद-योजना का विशद विवेचन प्रस्तुत करती हुई कहती हैं कि नाटकीय प्रसंगों और संवादों की उद्भावना के कारण ही रामचरित मानस शताब्दियों से लक्ष-लक्ष भारतीयों के पढ़ने-सुनने तथा रंगमंच पर रामलीला (लोकनाट्य) के माध्यम से प्रदर्शित किए जाने की वस्तु बना हुआ है—संपादक]

तुलसी-कृत रामचरित मानस समूचे हिन्दी प्रदेश में रामकथा और रामभक्ति को युग-युगान्तर तक प्रतिष्ठित करने वाली रचना है। मानस जहाँ महाकाव्य के रूप में उदात्त कथानक, गरिमामयी शैली और अत्यन्त उच्च कोटि के कवित्व से मंडित है; वहीं कथानक के विकास में कवि की नाटकीय क्षमता दृष्टिगोचर होती है। इसकी प्रबंध योजना बहुसूत्री एवं जटिल होते हुए भी सुसंगठित है। अनेक अवान्तर प्रसंगों और क्षेपक कथाओं का समावेश होते हुए भी 'रामजन्म से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की आधिकारिक कथा में इतनी सुनिश्चित कार्यान्विति है कि सभी घटनायें और प्रसंग किसी न किसी रूप में आधिकारिक कथा की निष्पत्ति से अनिवार्यतः जुड़े प्रतीत होते हैं। मानस की संरचना को देखते हुए एक बात पर अनिवार्य रूप से ध्यान जाता है, वह है इसमें मार्मिक और नाटकीय प्रसंगों की बहुलता। इन स्थलों पर संवादों की आयोजना की गई है। इन संवादों के समावेश से विभिन्न घटनाओं की रोचकता और प्रभावशीलता बहुत बढ़ गई है। बल्कि यहाँ तक प्रतीत होता है कि मानसकार के मन में इनके नाटकीय प्रदर्शन की बात अवश्य रही होगी और उसने प्रमुख घटनाओं में संवादों का विन्यास नाटकीय प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से किया है।

मानस की कथा-वर्णन की शैली वक्ता-श्रोता शैली है। कथा-वर्णन की यह शैली भारतीय महाकाव्यों की-अपनी विशेषता है और संस्कृत के महाभारत, रामायण से लेकर भारतीय भाषाओं के अनेक महाकाव्यों में अपनाई गई है। इस शैली के कारण भी महाकाव्यों में कथा के प्रस्तुतीकरण में नाटकीयता का समावेश हो जाता है, कभी कथा स्थान-स्थान पर रोक दी जाती है, कभी उसमें स्तुतिपरक उपदेशात्मक या विचारात्मक प्रसंग-खण्ड जुड़ जाते हैं, श्रोता के-प्रश्न करने पर प्रायः वक्ता गताख्यानिक शैली में पूर्व घटनाओं का वर्णन करने लगता है और इस तरह कथा अधिक स्पष्ट और-प्रभावकारी बन जाती है।

महाकाव्यों की यह वक्ता-श्रोता शैली मध्य युग में प्रचलित गाथा गायन से उद्भूत जान पड़ती है। समूचे मध्ययुग में प्राचीन आख्यानों के नाटकीय गायन की प्रथा का उल्लेख मिलता है। उस समय राजाओं के-दरबारों में चारण रहा करते थे, जो उनके उत्साहवर्धन के लिए वीरतापूर्ण प्रसंगों का गायन कर के जीविकोपार्जन करते थे। क्रमशः ये चारण राज-दरबारों तक ही सीमित न रह कर जनता के बीच भी धार्मिक कथाओं अथवा लौकिक वीर-गाथाओं - या प्रेमाख्यानों का गान करने लगे। इन्होंने मंडलियाँ बना ली थीं, जिनमें एक प्रमुख गायक होता था और शेष उसका साथ देते थे। प्रमुख गायक एक पंक्ति का गान करता था और शेष उसे दुहराते थे। क्रमशः-इन मंडलियों में कथा का आख्यान प्रश्न-उत्तर के रूप में किया जाने लगा। संभवतः कथा गायन की इस शैली की लोकप्रियता को देख कर महाकाव्यों में भी इसे अपना लिया गया होगा। इसके अतिरिक्त मानस में लगभग सभी प्रमुख कथा प्रसंगों में संवादों का सहारा लिया गया है। कुछ स्थलों पर तो उनका विन्यास इस प्रकार है कि गीतात्मक नाट्य संवादों की भाँति प्रतीत होते हैं। जो भी हो, इन संवादों ने मानस की रोचकता और प्रभावशीलता को बहुत बढ़ा दिया है, इसमें संदेह नहीं। लक्ष्मण-परशुराम संवाद, मंथरा-कैकेयी संवाद, शूर्पणखा और राम-लक्ष्मण संवाद, अशोकवाटिका में रावण और सीता का संवाद तथा रावण-अंगद संवाद ऐसे उपयुक्त हैं कि उन्होंने कथा को अत्यधिक आकर्षक बना दिया है।

जनकपुर से राम-विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करवाने लगते हैं। समूची अयोध्या में हर्ष की लहर दौड़ जाती है। परंतु कैकेयी की दासी मंथरा जब यह सुनती है, उसे तनिक नहीं सुहाता। वह कैकेयी को आकर यह समाचार सुनाती है और अनेक प्रकार के तर्कों से उसे राजा दशरथ से राम का बनवास तथा भरत को राज्य-यह दो वर माँगने को

तैयार कर लेती है। रामकथा में यह स्थल बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं से राम वनवास की घटना से कथा के प्रमुख प्रतिपाद्य रावण-वध की संभावना प्रारंभ होती है। कथा का यह नाटकीय मोड़ कैकेयी-मंथरा संवाद पर निर्भर है। नगर में राम-अभिषेक की तैयारियाँ देखकर दुखित मंथरा कैकेयी के कक्ष में आती है और कैकेयी के पूछने पर कहती हैं :

रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहिं जनेसु देइ जुबराजू॥
भयेउ कौसिलहि बिधि अतिदाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
पूत बिदेसु न सोच तुम्हारे। जानति हहु बस नाह हमारे॥

कथन की मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट है, राम के विरुद्ध ही कुछ कहती तो कैकेयी भी उसे न स्वीकार पाती; परंतु वह नारी मन की शाश्वत दुर्बलता को पहचान कर सौत के प्रति ईर्ष्या के भाव को जगाना चाहती है और अंततः इसमें सफल भी होती है। कौशल्या का गर्व, कैकेयी कहाँ तक सह पायेगी ? परंतु कैकेयी पर शीघ्र प्रभाव नहीं पड़ता, वह रोष में भर कर कहती है :

पुनि अस कबहुं कहेउ घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावों तोरी॥

कैकेयी आश्वस्त है, उसे न केवल दशरथ वरन् राम के प्रेम, आदर का भी विश्वास है :

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पियारी॥
मो पर करहिं सनह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीच्छा देखी॥

वह मंथरा से उसकी चिंता का कारण पूछती है। मंथरा अपमान का घूंट पचा कर अचूक बाण का संधान करती है :

कोउ नृप होउ हमें का हानी। चेरी छाँड़ि अब होब कि रानी॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा॥

कैकेयी पर प्रभाव पड़ता है। सच ही तो, मंथरा निःस्वार्थ है, उसे रानी थोड़े ही बनना है, वह जो कहती है मेरे हित के लिए। और तब बार-बार कैकेयी के पूछने पर वह फिर सौत कौशल्या पर ही चर्चा को केंद्रित करती है। राम के प्रति कैकेयी के प्रेम और विश्वास को जान कर आगे वह राम का उल्लेख नहीं करती है। इसके विपरीत नारी के सहज शंकालु स्वभाव को जानते हुए पति के प्रति विश्वास को भी डिगाती हुई कैकेयी को चुनौती-सी देती है :

जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूंधहु करि उपाउ वर वारी॥
तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुंह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥

सौत जड़ उखाड़ना चाहे, पति ठग कर झूठे प्रेम के भुलावे दे तो कौन स्त्री उत्तेजित न हो उठेगी और भला अपने स्वभाव को सरल-निश्छल कौन नहीं समझती। और इतना ही नहीं :

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाय निजबात सँवारी॥
पठये भरत भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत मातु बल पीके॥
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
यहु कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥

'भरत को ननिहाल भेज दिया गया, राम की माता को तुम्हारे ऊपर पति का प्रेम नहीं भाता था—वैसे तो राम का तिलक मुझे भी प्रिय होता, पर इस परिस्थिति में चिंता होती है।' कैकेयी पर प्रभाव न पड़ना असंभव था—राम के प्रति उसका प्रेम था, पर भरत पर अधिक होना स्वाभाविक है। भरत का ननिहाल भेजा जाना उसे शंका में डालता है और फिर पति के प्रेम की वह विशेष अधिकारिणी है, उसे यह विश्वास करते देर कैसे लगे कि कौशल्या को यह प्रिय नहीं लगता। फिर मंथरा उसके अधिकार भाव पर अगली चोट करती है : 'तुम समझती हो पति हमारे हैं, पर वे इतने दिनों से राम-अभिषेक का साज सजा रहे हैं, तुमसे क्यों न कहा ?'

भयेउ पाख दिनु, सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥

कैकेयी भी यह कैसे सहे कि उसके निरंतर प्रेम का दम भरने वाले दशरथ उससे बिना पूछे इतना बड़ा कार्य करने जा रहे थे :

रेख खँचाइ कहौं बलु भाखी। भामिनि भयउ दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥
कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिला देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं, लषनु राम के नेब॥

बहुपत्नी प्रथा के उस युग में कौन नारी 'दूध की माखी' बन जाने से नहीं डर जायेगी और फिर एकलौता बेटा सेवक बने या बंदी-गृह में डाल दिया जाए, यह तो एकदम असह्य है। कैकेयी का विवेक और धैर्य समाप्त होता है, सौत के प्रति ईर्ष्या का भाव मन में फुफकार मारने लगता है। रूपगर्विता का गर्व कभी टूटना नहीं चाहता :

नैहर जनमु मरब बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई॥

पर तभी उसे निराश न होने पाये; अतः मंथरा सांत्वना देती है—स्त्री की शक्ति की, पति पर उसके अधिकार की याद दिलाती है :

अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहाग तुम्ह कहुँ दिन दूना।।
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ।।

कैकेयी गर्व से फूल उठती है, सच ही राजा को वश में रखना उसके लिए कोई कठिन तो नहीं और मंथरा उसे अचूक उपाय सुझाती है :

दुइ वरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती।।
सुतहि राज रामहि बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।
भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगहु जेहि वचनु न टरई।।

दो वरदानों की याद दिलाती हुई पुनः सौत की विजय को पराजय में बदल देने को कहती है और भूपति को राम शपथ दिलाने का उपाय सुझाती है। इस प्रकार इस संवाद अंश में मनोवैज्ञानिकता का अपूर्व निर्वाह हुआ है और नारी स्वभाव से मानसकार कितने परिचित थे, इसका पूरा प्रमाण मिलता है।

एक अन्य संवाद प्रसंग है पंचवटी में शूर्पणखा और राम-लक्ष्मण का संवाद। कथा की दृष्टि से यह भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सीताहरण की संभावना इसी से स्पष्ट होती है; परन्तु इसमें जिस विनोद और व्यंग्य का परिचय दिया गया है, उससे गंभीर रामभक्त मानसकार के व्यक्तित्व का एक नया ही पक्ष उद्घाटित होता है। पंचवटी में राम-लक्ष्मण को देख कर शूर्पखणा के मन में उनके लिए कामना उत्पन्न हो जाती है और वह राम के पास जाकर कहती है :

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखिऊँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं।।
ता तें अब लगि रहउँ कुंवारी। मन माना कछु तुम्हहिं निहारी।।

तत्काल सलज्ज गंभीर और मृदुला सीता के विपरीत एक उग्र वासनामयी प्रगल्भा रमणी का चित्र सामने आता है, जो अपनी भिन्नता से सीता के व्यक्तित्व को मानों और उजागर करता है। राम शूर्पणखा को सहज विनोदभाव से लक्ष्मण के पास भेज देते हैं कि मेरा छोटा भाई अभी कुँवारा है। परंतु लक्ष्मण शूर्पणखा को जो उत्तर देते हैं वह हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण है :

सुंदरि सुनु मैं उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।।
प्रभु समरथ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा।।

लक्ष्मण की उक्ति में शूर्पणखा जैसी प्रगल्भा नारी के व्यक्तित्व पर गहरा

व्यंग्य है—पराधीन रहने से आपका काम कैसे चलेगा? आप उन आर्य ललनाओं में से तो नहीं हैं जो प्रिय के साथ दुख-सुख में समय काट लेती हैं। आप ठहरीं एक स्वाधीन स्वेच्छाचारी स्त्री। परंतु साथही वे राम को भी नहीं छोड़ते सहज परिहास से कह उठते हैं—भाई समर्थों को तो दोष नहीं लगता। वे चाहें तो स्त्री के रहते वन में परस्त्री को भी अपना सकते हैं, पर अकिंचन लक्ष्मण ऐसा कैसे कर सकता है। स्पष्ट है कि यह केवल निर्दोष परिहास है। लक्ष्मण राम के चरित्र पर संदेह नहीं करते, वरन् एक स्वेछाचारिणी को भुलावा दे रहे हैं। इस प्रसंग की समाप्ति शूर्पणखा के नासिकोच्छेदन से होती है और कथा का निर्वहण समीप आता दीखता है।

अशोक वाटिका में बंदिनी सीता के साथ रावण के संवाद में हम नारी का ओजस्वी, प्रतिप्राण महिमामय रूप देखते हैं; ऐसा रूप जिसे देख कर हमें लगता है कि हम स्वयं मात्र उसका परिशीलन कर के, उसके संबंध में विचार कर के कुछ ऊँचे उठ गए हैं। एक वेणीधारिणी, कृश और पलपल मन ही मन रघुपति का नाम जपती हुई सीता से रावण कहता है :

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करहुं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करहि बिकासा॥
सठ सूने हरि आनहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

सोने की लंका का राजाधिराज कहता है : हे सुन्दरी एक बार मेरी ओर देख भर लो, अपनी समस्त रानियों को तुम्हारी चरणदासी बना दूँगा। परंतु सीता लंकापति के महत्व को एक तिनके से तुच्छ बना देती है, तिनके की ओट उससे बात करती हैं। यह अत्यन्त कोमल और नाटकीय कल्पना है। सीता तिरस्कारपूर्वक रावण से व्यंग्य करती हैं : जुगनू के प्रकाश में कभी कमलिनी को खिलते देखा है? यह कथन इतना तिरस्कारपूर्ण है कि सीता की गालियों से नहीं, इस कथन से रावण तिलमिला उठता है और सीता पर तलवार लेकर दौड़ पड़ता है :

सीता तें मम कृत अपमाना। कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना॥

परंतु सीता इस धमकी से तनिक भी विचलित न हो कर अपना निर्णय सुना देती है :

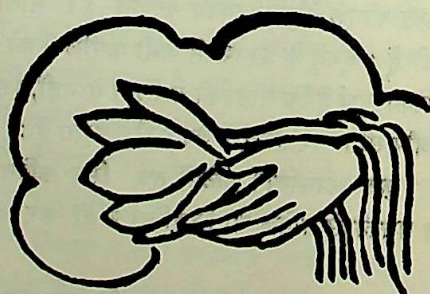
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥

'या तो राम की नीलकमल की माला के समान सुंदर और हस्ती के कर के समान सुदृढ़ भुजायें मेरे गले में पड़ेगीं अथवा तेरी तलवार। हे दुष्ट सुन, यह मेरी निश्चित प्रतिज्ञा है।' सीता के इस कथन से मानों रावण की सोने की लंका की चमक सती की मुख दीप्ति से धूमिल पड़ जाती है। सीता का एक वाक्य रावण की समस्त शक्ति, धन-वैभव और ज़ोर-जबर्दस्ती को एक फूंक में उड़ा देता है। तिनके की ओट से व्यभिचारी को पददलित कर देने वाली सती की महिमा मानस के काव्यरस को ब्रह्मानंद बना देती है और युग युगान्तर के लिए काव्य धन्य हो उठता है।

इसी प्रकार मानस में जहाँ कहीं भी उचित अवसर मिला है, तुलसी ने संवादों की योजना की है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद, अंगद-रावण संवाद, हनुमान की सीता से बातचीत और रावण-मंदोदरी संवाद मानस के अतिशय उत्कृष्ट अंश हैं; जिनमें कवि का भाषा पर असाधारण प्रभुत्व, विनोदप्रियता, हाजिरजवाबी और उत्कृष्ट चरित्र-चित्रण की क्षमता स्पष्ट होते हैं।

इन्हीं नाटकीय प्रसंगों और संवादों की उद्भावना के कारण रामचरित मानस जहाँ शताब्दियों से लक्ष-लक्ष भारतीयों के पढ़ने-सुनने की वस्तु रही है, वहीं युगों से अनेक रीतियों और शैलियों में उसके रंगमंचीय प्रदर्शन भी होते रहे हैं। आश्विन मास में दशहरे के अवसर पर समूचे उत्तर भारत में खेला जाने वाला धार्मिक लोकनाट्य रामलीला तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित बतलाया जाता है और उसका आधार रामचरित मानस तथा उसके संवाद ही हैं।

●





रत्ना की बात

⊙

डॉ० प्रेमनारायण टण्डन, एम०ए०,पी-एच० डी०
प्राध्यापक : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आराध्य मेरे!
सुना है—लिख रहे हो कथा तुम
भगवान राम की,
त्यागा था जिन्होंने असहाया प्रियतमा को,
आवश्यकता थी जब इन्हें
सर्वाधिक सम्पर्क की उनके!
भगवान क्या उनको मानते हो—
तुम अपना इसी से?
और कर रहे हो अनुकरण आराध्य का अपने,
ठुकराकर निराश्रिता पत्नी को?
विश्वास है तुम्हें—
हो जायेंगे सन्तुष्ट वे तव पत्नी त्याग से?
परन्तु, तुम्हारे राम ने—
विलाप भी किया था विरह व्यथित हो,
हरण जब हुआ था प्रिया का
लंकाधिप द्वारा पंचवटी में।
प्रसंग लिखोगे जब तुम यह—
रचना में अपनी
ध्यान मेरा तब क्या न आयेगा तुमको?
अनुकरण करोगे इसमें भी यदि आराध्य का—
शान्ति अमित पा जाऊँगी।

•





प्रियतम मेरे

⊙

श्रीमती कमला सक्सेना
राजकीय कन्या इण्टर कालेज, करबी (बाँदा)

प्रियतम मेरे !
न जाने कैसे क्षण थे वे,
तन में कम्पन
मन में कम्पन
प्राणों में सिहरन, स्पन्दन,
अर्धरात्रि की घोर तमिस्रा
याचक तन के आप बने थे।
किन्तु हाय ! दिन मेरे घूमे
ढो न सकी मैं उस सुख का अतिरेक,
क्रोधित हो कह गयी नाथ मैं
कुछ अनचाहे बोल—
मुखर हो फूट पड़ा सहसा
एक अचीन्हा शाश्वत सत्य—
'यदि होती श्री राम से ऐसी गाढ़ी प्रीति,
तो जाते प्राणेश तुम सब भव-बाधा जीत'
—हाँ, ये अनचाहे बोल
प्रिय गया तुम्हारा अन्तस डोल।
तुम शान्त मौन गम्भीर
किन्तु, वासना तिमिर को
गयी ज्ञान की विद्युत सहसा चीर।
और तब,
सत्यभाषिणी नारी को
क्या मिला ?
मिला केवल जीवन अभिशाप,

चिर विरह अश्रु संताप।
सोच रही हूँ आज
'सत्य' भी रे छलना है।
इसीलिए तो
जीवन का अभिशाप झेलती रही अकेली
रत्ना ने अब तक वियोग की
पीड़ा से ही खेली।
बोलो प्रियतम !
पीकर अपना अश्रुनीर
कब तक कोई जी सकता है ?
फटा हुआ नम भाग्य चीर
कब तक कोई सी सकता है ?
व्यथा सिन्धु के तट पर सहसा
एक 'सत्य' को और पा लिया—
'जल बिन मीन देह बिन वारी
तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी'—
बिना पुरुष के नारी का अस्तित्व 'शून्य' है।
क्योंकि तब, लोक दृष्टि के व्यास
बदल जाते हैं
बिछे हुए पथ के फूल
सब शूल बन जाते हैं।
और तो और,
बनती कृत्या
अपनी छाया
अपनी काया।



गोस्वामी तुलसीदास : जीवन-परिचय

⊙

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी
काशी

[किसी युगान्तरकारी महामानव की महनीयता का मापदण्ड यह नहीं कि वह कहाँ और कब पैदा हुआ, वरन यह कि लोक-जीवन के लिए उसका अवदान क्या है ? इसीलिए सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के स्थूल रूप—वैयक्तिक जीवन—की जाँच-परख के बजाय उनके भाव रूप—सर्जन कला—की ओर ही हमारी दृष्टि अधिक रही - फिर भी पाठकों की एतद्विषयक जिज्ञासा हेतु हम यहाँ काशी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी (सम्पादक : तुलसी ग्रन्थावली) का एक संक्षिप्त लेख प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें विद्वान लेखक ने तुलसी के जीवन पर अब तक प्राप्त समग्र सामग्री का पर्यालोचन कर बहुमान्य मत पर प्रकाश डाला है—सम्पादक]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने न तो अपनी जाति, गोत्र, जन्मस्थान, माता-पिता आदि के सम्बन्ध में ही कुछ लिखा और न उन्होंने कहीं यही संकेत दिया कि उन्होंने कहाँ शिक्षा प्राप्त की, किस गुरु से क्या पढ़ा और किस सम्वत में उनका जन्म हुआ। विनय-पत्रिका और कवितावली में प्राप्त निम्नांकित संकेतों के अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका प्रारम्भिक नाम 'रामबोला' था, उनके माता-पिता ने उन्हें त्याज्य समझ कर छोड़ दिया था और बचपन में वे बड़े कष्ट से इधर-उधर भिक्षा माँगते फिरते हुए जीवन बिताते थे :

राम को गुलाम नाम 'रामबोला' राख्यौ राम।
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।।

—विनय-पत्रिका

साहेब सुजान जिन स्वानहूँ को पच्छ कि
'रामबोला' नाम हौं, गुलाम राम साहि को।।

—कवितावली

मात - पिता जग जाइ तज्यौ।
जननी - जनक तज्यौ जनमि ॥

—कवितावली

तन जन्यौ कुटिल कीट ज्यौं तज्यौ मातुपिताहु।

—विनय-पत्रिका

बारेते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन।
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक कौ ॥

—कवितावली

रामचरित मानस में :

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नर-रूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबि-कर-निकर ॥

के आधार पर यह कल्पना कर ली गई है कि उनके गुरु का नाम 'नरहरिदास' था। किन्तु यह दोहा तो जाबालि-संहिता के निम्नांकित श्लोक का पद्यानुवाद मात्र है :

वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूप स्वयं हरिः।
यद्वावयंसूर्योदयतस्तमो नश्यति सांप्रतम् ॥

इसी प्रकार मानस के रूपक में :

रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी।
तुलसिदास-हित हिय हुलसी सी ॥

के आधार पर तथा मानस में अन्य कई स्थानों पर इसी प्रकार 'तुलसी' के साथ 'हुलसी' शब्द के प्रयोग से मान लिया गया है कि उनकी माता का नाम 'हुलसी' था, जिसका समर्थन रहीम के तथाकथित अर्द्ध दोहे से कर दिया जाता है :

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी-सो सुत होय।

जो उन्होंने तुलसीदास जी के निम्नांकित अर्द्ध दोहे के उत्तर में कहा था :

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।

गोस्वामी जी की पत्नी के भी तीन नाम मिलते हैं—रत्नावली, बुद्धिमती, और ममता। अयोध्या के महात्मा लोग तो यहीं मानते हैं कि उनका विवाह हुआ ही नहीं, वे प्रारंभ से ही वैरागी हो गए थे। किन्तु कुछ विद्वानों ने निम्नांकित उद्धरणों के आधार पर माना है कि उनका विवाह तो हुआ था, पर वे गृहस्थी छोड़कर विरक्त हो गए थे :

बर्‌यो लोक-रीति में,
हम तो चाखा प्रेम रस

पत्नि के उपदेश

ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।

जहाँ तक गोसाईं-चरित तथा मूल गोसाईं-चरित द्वारा प्रस्तुत जीवनी का प्रश्न है, वे दोनों ग्रंथ पूर्णतः कल्पित हैं, जिनका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। हाँ, रामचरित मानस की रचना-तिथि स्वयं गोस्वामी जी ने स्पष्ट दे दी है :

संवत् सोरहसै एकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इस प्रकार संवत् १६३१ की चैत्र शुक्ल नवमी (रामनवमी) मंगलवार को रामचरित मानस का लेखन प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार उन्होंने जानकी-मंगल तथा पार्वती-मंगल का रचनाकाल जय संवत् (सम्वत् १५८२) की फाल्गुन शुक्ला पंचमी, गुरुवार अश्विनी नक्षत्र दिया है :

जय संवत् फागुन सुचि पाँचै गुरु दिन।
अश्विनि विरचेउ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु॥

—पार्वती मंगल

फाल्गुन शुक्ला पंचमी को अश्विनी नक्षत्र और गुरुवार केवल १५८२ के जय संवत् में ही पड़ा था। अतः उनका जन्म संवत् १५८२ से पहले ही हुआ था। इस आधार पर उनका जन्म सम्वत् १५५४ में ही माना जा सकता है, क्योंकि तुलसी विषयक अनेक प्राचीन ग्रन्थों में गोस्वामी जी का जन्म सं० १५५४ बताया गया है। अन्य सब तिथियाँ स्वतः अप्रामाणिक सिद्ध हो जाती हैं।

गोस्वामी जी का जन्म राजापुर (जिला बाँदा, उ० प्र०) में हुआ माना जाता है। इधर कुछ सज्जनों ने सोरों (जिला एटा, उ० प्र०) में उनका जन्म स्थान सिद्ध करने की प्रबल चेष्टा की थी, किन्तु अलीगढ़ के डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल ने अपनी 'सोरों सामग्री पर एक दृष्टि' शीर्षक पुस्तिका में उसका सारा भण्डा-फोड़ कर दिया है।

गोस्वामी जी का तिरोधान रुद्रबीसी (संवत् १६६५-१६८५) के समय महामारी से पीड़ित होने पर श्रावण कृष्ण तृतीया, संवत् १६८० को प्रातःकाल गंगातट पर हुआ।

इस सम्बन्ध में किसी का एक दोहा प्रचलित था :

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥

किन्तु अब नवीन खोज के अनुसार गोस्वामी जी के जन्म और अवसान से सम्बद्ध दोहे इस प्रकार बदल गये हैं:

पन्द्रह सै चौवन विषै कालिन्दी के तीर।
स्रावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो शरीर॥
संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
स्रावन श्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो शरीर॥

यही ठीक भी है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में श्रीधर स्वामि विरचित श्रीमद्भागवत की टीका पर तुलसी के समकालीन श्री चिन्तामणि भट्ट के द्वारा लिखी हुई भावार्थ दीपिका की एक प्रति है। उसमें सप्तम स्कन्ध की जहाँ समाप्ति हुई है, वहाँ पुष्पिका दी हुई है, इसी के पीछे के पृष्ठ पर चिन्तामणि भट्ट के ही हाथ का यह श्लोक लिखा हुआ है:

० ८ ६ १
आकाशाहिरसक्षपाकर मिते संवत्सरे श्रावणे,
प्रातर्वासव भूषिते सित दिने कृष्णे तृतीया तिथौ।
काश्यां देव नदी जलेऽति विमले लीला शरीरं मुदा,
त्यक्त्वा रामपदं जगाम तुलसीदासः कलौ दुर्लभम् ॥

[सम्वत् १६८० के श्रावण कृष्ण पक्ष की तृतीया को प्रातःकाल काशी की गंगा के निर्मल जल में (तट पर) प्रसन्नतापूर्वक अपना लीला-शरीर छोड़कर तुलसीदास अपने राम के चरणों में पहुँच गये, जो कलियुग में अत्यन्त दुर्लभ है।]

गोस्वामी जी के समकालीन चिन्तामणि भट्ट का यह स्वहस्तलिखित विवरण सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण है कि गोस्वामी जी का अवसान श्रावण कृष्ण तृतीया, सं० १६८० को गंगातट पर हुआ।

गोस्वामी जी के सम्बन्ध में अनेक दन्तकथायें प्रचलित हैं, जैसी सभी महात्माओं (महापुरुषों) के सम्बन्ध में प्रचलित हो जाती हैं; पर वे सब-कि हनुमानजी से उनकी भेंट हुई थी, उन्होंने किसी मृतक को जिला दिया था, राम-लक्ष्मण को उन्होंने चित्रकूट में देखा था और उन्हें चन्दन भी लगाया था तथा वे गोस्वामी जी के घर पहरा भी देते थे आदि, अप्रामाणिक हैं।

●



तुलसी-जन्मभूमि-गोष्ठी-प्रसंग में वस्तुतत्व विवेक

⊙

आचार्य श्री शिवावतार मिश्र, एम० ए०

अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, पोस्ट डिग्री कालेज, अतर्रा (बाँदा)

[जनपद के रसलीन कवि, विनोदी-वक्ता तथा हिन्दी-संस्कृत के यशस्वी विद्वान आचार्य श्री शिवावतार मिश्र ने यहाँ बड़े ही परिहासात्मक एवं समन्वयात्मक ढंग से तुलसी की जन्मभूमि की प्रामाणिकता के प्रश्न पर आयोजित एक विवाद-गोष्ठी की सार-गर्भित आख्या प्रस्तुत की है--सम्पादक]

बारह वर्ष व्यतीत हो चुके, जब कि ३१ मई, १९६० को भारत की राजधानी (दिल्ली) में आयोजित भारतीय हिन्दी परिषद् के तत्वावधान में एक वाग्युद्ध को देखने, सुनने तथा उसमें कुछ कहने का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वहाँ 'तुलसी विचार परिषद्' की तीन बैठकें डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, आचार्य विनय मोहन शर्मा तथा डॉ० नगेन्द्रजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुईं। विषय था 'सोरों सामग्री की प्रामाणिकता पर विचार।' सर्वप्रथम विषय-प्रवर्तक श्री डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने सोरों सामग्री का संक्षिप्त परिचय कराया, जिसमें वाह्य तथा अन्तः-साक्ष्यों के आधार पर महाकवि तुलसीदासजी की जन्मभूमि सोरों के समीप गंगातट पर स्थित ग्राम 'रामपुर' बताई गई। उन्होंने भवन, वंशज, जनश्रुति, भाषाशैली, पाण्डुलिपियाँ और तुलसीदासजी के वचन इस षड्विध गृह्य सामग्री को प्रस्तुत किया और साथ ही नाभादास की प्रशस्तियों, प्रियादास की टीका आदि ऐसी विविध वाह्य सामग्री को भी प्रस्तुत किया, जो आविचारचारु थीं अथवा उनके पक्ष में कुछ बल दे सकतीं थीं। डॉ० उदयभानु सिंह ने सोरों और राजापुर के उभयपक्षों की विचारणीय प्रश्नावली को समुपस्थित करते हुए सोरों की अप्रामाणिकता का एक व्यन्जित स्वरूप रखा। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के रीडर डॉ० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल ने राजापुर का प्रबल पक्ष स्थापित करते हुए प्रस्तुत सोरों सामग्री की एक-एक वस्तु का खण्डन

प्रामाणिक रूप में किया। उन्होंने सोरों सामग्री के संकलनकर्ता श्री पं० गोविन्द वल्लभ भट्टजी की सम्वत् २०१५ में मुद्रित एक पुस्तक की तात्विक आलोचना करते हुए बताया कि सोरों में तुलसी अथवा उन्हीं के द्वारा कल्पित तुलसीदास के अनुज नन्ददास का घर कहीं नहीं है और न आसपास 'रामपुर' नामक कोई ग्राम है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि सोरों में नन्ददास को तो कोई जानता भी नहीं। इसी प्रकरण में श्री शुक्लजी ने पं० रामनरेश त्रिपाठी की 'तुलसीदास के जन्मस्थान की खोज' शीर्षक वाली मानस-भूमिका की चर्चा करते हुए नरसिंह के मन्दिर को अबका बना हुआ बताया और भाषा, लोकाचार के आधार पर यह प्रमाणित किया कि किसी भी दशा में तुलसीदास को सोरों क्षेत्रीय सिद्ध नहीं किया जा सकता। उन्होंने भाषा सम्बन्धी अनन्त उदाहरणों के साथ अवध और सोरों के विवाहावसर पर प्रयुक्त संस्कारों की वह प्रमाणित सूची प्रस्तुत की, जिससे तुलसीदास जी की जन्मभूमि का अनुमान सहज में लगाया जा सकता था। निष्कर्ष में उनका यही मत था कि सोरों सामग्री में केवल आत्म-विज्ञापन का भाव भरा है, सोरों में रामानन्द सम्प्रदाय के भक्त न कभी थे और न आज हैं तथा चित्रकूट आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए किसी राम-भक्त सन्त द्वारा तुलसीदास जी इस सूकर क्षेत्र लाये गये जो आज गोंडा जिले में है और तुलसी का जन्मस्थान सर्वतोभावेन राजापुर है।

श्री शुक्लजी के भाषण के पश्चात् आचार्य वेदव्रत शर्मा ने जो सचमुच सोरों सामग्री के समर्थ समर्थक हैं—डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त के राजापुर-पक्षीय विचारों पर घोरतर आघात करते हुए सोरों सामग्री की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में एक ऐसा सिंहनाद किया, जिससे श्रोताओं को भय तो कम, परन्तु विनोद अवश्य अधिक मिला; क्योंकि उनके भाषण में प्रामाणिक टोन के साथ-साथ उनके अध्यवसाय एवं लगन की अद्भुत झलक मिल रही थी।

भारतीय हिन्दी परिषद् के प्रबन्ध-मन्त्री डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने इस सम्बन्ध में गृहमन्त्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र (मध्य प्रदेश), श्रीकान्त शरण, श्री वियोगी हरि, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', श्री हरिनन्दन शरण आदि मान्य मनीषियों के सम्प्राप्त सन्देश सुनाये; जिनमें राजापुर के ही पक्ष का समर्थन था और यथाकथञ्चित सोरों को तुलसीदासजी की ससुराल मानने का माननीय परामर्श था।

द्वितीय गोष्ठी में गोरखपुर यूनिवर्सिटी के डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने

बाबा वेणीमाधवदास जी के मूल गोसाईं-चरित तथा वराहपुराण आदि की अनेक प्रामाणिक सामग्रियों के आधार पर सोरों की स्थिति गोंडा जिले में ऐसी प्रमाण-पूर्ण पद्धति से प्रस्तुत की, जिससे सोरों (एटा) तथा सोरों सामग्री की दशा त्रिशंकु की-सी हो गई। 'सोरों पक्ष के समर्थक किसी भी मनीषी ने इनके इन तथ्यों का निराकरण न किया' यह श्रोताओं की लालसा अन्त तक अपूर्ण रही।

तृतीय गोष्ठी में मुझे भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया गया, जिसमें सर्वप्रथम मैंने तुलसी-स्मारक सभा, राजापुर (बाँदा) के मन्त्री पं० गंगा प्रसाद जी के उस पत्र के संबंध में बताया; जिसे भट्ट जी एक वेदवाक्य-सा प्रमाणभूत मानकर अपनी सोरों सामग्री प्रदर्शनी का एक प्रमुख अंग बनाये हुए हैं। संक्षेपतया उसमें लिखा था "आपका पत्र प्राप्त होता भया, प्रसन्नता से हृदय गद्गद् होता भया, सोरों के विषय में कोई लिखित प्रमाण तो नहीं है परन्तु 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' से प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है, आपका यह धार्मिक कार्य, सराहनीय है, यहाँ एक तुलसी-स्मारक संस्कृत पाठशाला है, उसके लिये कुछ चन्दा दीजिये" इत्यादि। मैंने इस उपर्युक्त पत्र को चन्दासंचय-चातुरी का एकरूप बताया, क्योंकि सन् १९१९ ई० में जब हिन्दी को परिमार्जित रूप मिल चुका था; तब 'भया' आदि शब्दों का प्रयोग सर्वथा संदिग्ध है। मेरी दृष्टि से उन्होंने भट्ट जी के 'भया' आदि भाषा से पहिले अपना मेल मिलाया और बाद में अपने मन्तव्य को स्पष्ट कर दिया कि 'सोरों के सम्बन्ध में कोई लिखित प्रमाण नहीं है'। इसके अतिरिक्त 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' यह पंक्ति स्पष्ट कर देती है कि तुलसीदास ने 'पुनि' कहकर पहिले कहीं सुनी गई कथा की ओर संकेत किया है और कोई भी व्यक्ति अपनी जन्मभूमि को आत्मीय शब्दों से न बताकर 'सूकर खेत' शब्द से कैसे सूचित करता? 'सूकर खेत' शब्द का प्रयोग किसी तीर्थ-विशेष के निर्देशन का स्वतः प्रमाण है, जन्मभूमि का नहीं। मैंने उस सामग्री में एक सोरों के पण्डा जी की बही की वह पाण्डुलिपि भी देखी थी, जिसमें तुलसीदास जी के वंश का उल्लेख है। उस सम्बन्ध में मैंने तीर्थ स्थलों के पण्डों की लेखन प्रणाली का दिग्दर्शन कराते हुए बताया कि किसी तीर्थ-विशेष का पण्डा अपने यहाँ के व्यक्ति की वंशा-वली का विवरण नहीं रखता, अपितु उनकी बहियों में तीर्थयात्रियों का हवाला रहता है। यह पत्र सचमुच एक प्रबल प्रमाण है कि यहाँ तुलसीदास एक तीर्थ-यात्री के रूप में आये। बाँदा गजेटियर में सोरों से राजापुर आने वाले तुलसीदास

जी के उल्लेख के सम्बन्ध में भी मैंने यह विचार व्यक्त किया कि पहिले तो गजेटियर जनश्रुतियों के आधार पर लिखे जाते हैं, जो सर्वथा प्रामाणिक नहीं होते, फिर यह गजेटियर यदि अकबरकालिक होता तो यह अपनी मान्यता भी रखता; दूसरे इसके लिखने वाले तुलसीदास जी के वे वयोवृद्ध वंशज हैं, जो प्रतिदिन १ तोला अफीम खाते थे और जिन्होंने जिलाधीश बाँदा के यह पूछे जाने पर कि 'तुलसीदास जी कहाँ के थे' बताया कि 'साहब हेईं के'। पश्चात् जब साहब ने यह पूछा कि 'वे क्या सोरों से आये थे ?' तो बोले 'हाँ साहेब, हमार पुरखा सोरों से आये रहे हैं।' भला बताइये ऐसा श्रुतिलेख कहाँ तक प्रामाणिकता रख सकता है। सर्वाधिक विचारणीय बात तो यह है कि यदि तुलसीदास जी ऐसी महाविभूति ने अपने जन्म से सोरों (एटा) को कृतार्थ किया था, तब तो एटा जिले के गजेटियर में भी उनके राजापुर चले आने का उल्लेख होना चाहिए, जब कि एटा जिले के गजेटियर में ऐसी कोई चर्चा संकेत रूप में भी नहीं है। प्रसंगवश वहाँ मैंने राजापुर के संकट मोचन मन्दिर, स्वयं तुलसीदास जी का मंदिर एवं मूलरूप में अवस्थित अयोध्या काण्ड रामायण, अनजहाई बाजार, नाँदी तौरा का हनुमान मंदिर एवं तुलसीदास जी को पूर्वज मानने वाले विविध परिवारों का विवरण दिया और इस अंश में अपनी असमर्थता प्रकट की कि यदि कहीं मुझे ईश्वर ने हनुमान जी ऐसा सामर्थ्य प्रदान किया होता तो उपर्युक्त ये सभी वस्तुएँ मैं लोगों के समक्ष लाकर रख सकता।

मैंने एक परिहासात्मक ढंग से इस समन्वय को भी उपस्थित किया कि जन्मभूमि की प्रमाणभूत सबल सामग्री के आधार पर राजापुर को जन्मभूमि माना जाये और रत्नावली-साहित्य की उपलब्धि से सोरों (एटा) को ससुराल की मान्यता दी जाये और गोंडा जिले वाले भी ताकि निराश न हों, एतदर्थ वहाँ के सूकरक्षेत्र (वराह क्षेत्र) को गुरुभूमि की श्रद्धा अर्पित की जाये और सरकार से यह अनुरोध किया जाये कि अनुदान देते समय जन्मभूमि के साथ ससुराल वालों और गुरुद्वारा वालों का भी ध्यान रखे; क्योंकि किसी भी महापुरुष के सम्बन्धियों का जन्म ऐसे ही अवसरों में प्रायः होते देखा जाता है।

इसके बाद डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, आचार्यप्रवर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के सारगर्भित भाषण हुये और सभी ने सोरों सामग्री के परीक्षण की आवश्यकता बताई।

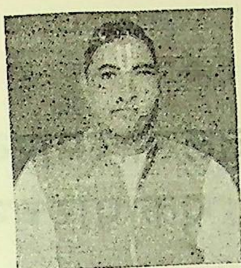
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के प्रामाणिक तर्कों को सुनकर लोग अवाक् से

हो गये। उन्होंने बाँदा गजेटियर की चर्चा करते हुए यह कहा कि सोरों समर्थकों को गजेटियर के उन अंशों को भी उद्धृत करना चाहिए, जिसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लिखित है कि तुलसीदास की ससुराल राजापुर में आज भी प्रवाहित यमुना के उस पार 'महेवा' में थी। अथवा उनका ऐसा करना ठीक भी है, क्योंकि ऐसा करने से उनकी रत्नावली-साहित्य सामग्री का मूलोच्छेद ही हो जाता। पश्चात् उन्होंने सोरों सामग्री में से बालकाण्ड तथा अरण्यकाण्ड की उन पुष्पिकाओं पर प्रकाश डाला, जिनमें संवत्संख्या का परिवर्तन स्पष्ट है। उन दोनों स्थानों पर ८ के स्थान में बनाये गये ९ की संख्या अपने अलग-अलग अस्तित्व की स्वतः परिचायक है। बालकाण्ड में तो समाप्ति रेखा के बाद ही 'सोरों वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिषी रघुनाथदास ने काशीपुरी में' यह अलग से जोड़ा गया है और पुनः तीन समाप्ति रेखाएँ खींच दी गई हैं। इसके अतिरिक्त दोनों पुष्पिकाओं में 'विमल वैराग्य सन्दीपिनी' का उल्लेख इस जालसाजी का ज्वलन्त प्रमाण है, क्योंकि अरण्यकाण्ड की समाप्ति में यह वाक्य भले ही उचित हो; परन्तु बालकाण्ड के लिए सर्वथा असंगत है। उन्होंने यह भी प्रकट किया कि सन् १७८० तक की लिपियों में 'कृश्न' लिखने की परम्परा थी न कि ऐसे 'कृष्न' की। आगे उनके इस कथन पर एक विनोद रहा कि महाभारत के अनुसार नन्द (दास) के पुत्र कृष्ण (दास) को स्वीकार करना तो एक प्रामाणिक बुद्धिमत्ता है, परन्तु 'तुलसीदास गुरु की आग्या सों उनके भ्रातासुत कृष्नदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास काशीजी मध्ये' में सोरों न लिखकर सोरों क्षेत्र लिखना एक चतुरता भरी चाल है। यदि क्षेत्र का ही प्रयोग करना था तो वहाँ सूकर क्षेत्र लिखा जाता और दुर्भाग्य यह है कि यह सब जालसाजी काशीपुरी जैसी पुण्य नगरी में हुई, इत्यादि।

डॉ० नगेन्द्रजी से आवाहित होने पर भी किसी सोरों समर्थक मनीषी ने मिश्र जी के तर्कों के खण्डनार्थ कमर नहीं कसी।

सभा विसर्जन के बाद प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा की यही पुकार थी कि सोरों सामग्री संदिग्ध ही नहीं, अपितु अमान्य है।

●



विजय-रथ

⊙

महन्त श्री रामशरण दास जी

प्रबन्धक : श्री जयदेव वैष्णव संस्कृत कालेज, करबी चित्रकूटधाम

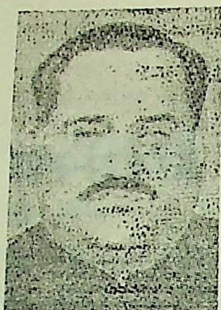
युद्ध केवल शस्त्रास्त्रों के बल पर नहीं जीता जा सकता। शत्रु को परास्त करने के लिए कतिपय आन्तरिक गुणों की अपेक्षा होती है, जिनमें प्रमुख हैं—शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, इन्द्रिय-दमन, परोपकार, क्षमा, कृपा, समता, ईश्वराराधन, विरक्ति, सन्तोष, दान, बुद्धि, विज्ञान, मनःशुद्धि, शम, दम, नियम तथा ब्राह्मण एवं गुरु के प्रति श्रद्धा। जिस राष्ट्र के सैनिकों में उपर्युक्त गुण विद्यमान हैं, उसकी विजय सुनिश्चित है। [विगत बँगला देश-संघर्ष के सन्दर्भ में यह तथ्य पूर्ण उजागर हो गया है कि शस्त्रास्त्रों का अपरमित भाण्डार रखते हुए भी इन गुणों के अभाव से ही पाकिस्तानी सेना का उपर्युक्त गुणमण्डित भारतीय सेना के समक्ष शोचनीय पराभव हुआ है।]

सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के लंका काण्ड में राम-रावण युद्ध के अवसर पर 'विजय-रथ' का चित्रण निम्नांकित चौपाइयों में किया है :

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु, बुधि सक्ति प्रचण्डा। बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

●





राजापुर में तुलसी-स्मारक भवन : एक परिचय

⊙

प्रस्तुतकर्त्ता : श्री कृष्णदत्त मिश्र
तुलसी स्मारक समिति, राजापुर

तुलसी-साहित्य की सामयिक एवं भावी उपयोगिता को दृष्टि में रख कर उसके अध्ययन व प्रचार की आवश्यकता समझते हुए देश के युगचेता राजनीतिक मनीषी स्व० पं० गोविन्द वल्लभ पन्त ने सन् १९५३ ई० में 'तुलसी-स्मारक' की एक विशाल योजना बनाई तथा एतदर्थ देश के विभिन्न क्षेत्रों के गण्यमान्य महानुभावों के सहयोग को प्राप्त कर 'तुलसी-स्मारक समिति' का संगठन किया, जिसके अध्यक्ष पं० गोविन्दवल्लभ पन्त को ही मनोनीत किया गया। समिति के उपाध्यक्ष डा० सम्पूर्णानन्द तथा मंत्री पं० चतुर्भुज शर्मा निर्वाचित हुए।

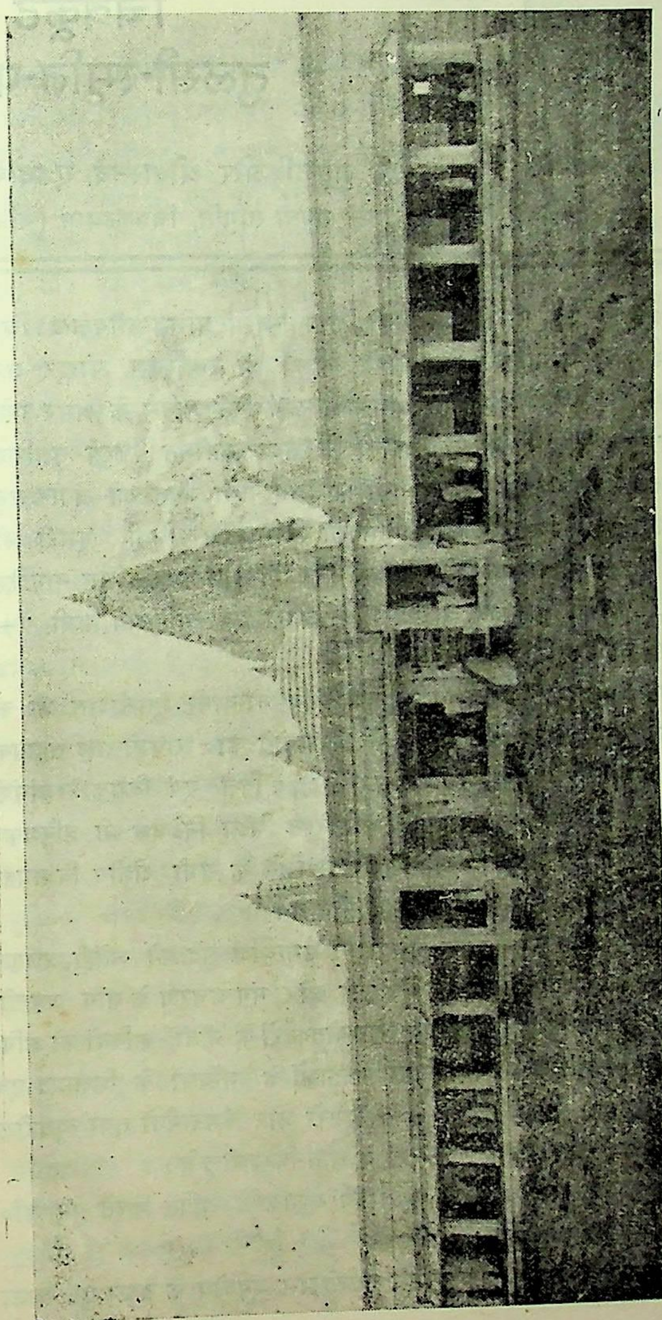
प्रदेश एवं देश के प्रतिष्ठित महानुभावों का सम्यक् सहयोग इस कार्य में मिला और इसी से प्रोत्साहन पाकर समिति ने २१ लाख रुपये की एक विशाल योजना बनाई। इसके अन्तर्गत तुलसी-मन्दिर का जीर्णोद्धार, मानस-भवन का निर्माण तथा उसमें सम्पूर्ण तुलसी-साहित्य का संकलन, तुलसी-काव्य के जिज्ञासुओं को अध्ययन एवं शोध कार्य की सुविधा प्रदान करने आदि का प्रावधान रखा गया।

सौभाग्य से 'तुलसी-मन्दिर का जीर्णोद्धार' तथा 'तुलसी-स्मारक भवन' का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। साथ ही एक अतिथि भवन भी बन गया है। शेष उद्देश्य योजनाधीन हैं, जिनके कार्यान्वयन के लिए समिति प्रयासरत है।

'तुलसी-स्मारक समिति' के प्रथम अध्यक्ष पं० गोविन्द वल्लभ पन्त तथा पं० चतुर्भुज शर्मा के प्रयास से सन् १९६० से 'स्मारक-भवन' के सामने 'तुलसी मेला' का भी शुभारम्भ किया गया है। 'तुलसी मेला समिति' के अध्यक्ष पं० चतुर्भुज शर्मा हैं तथा प्रवन्ध-मंत्री इन पंक्तियों का लेखक (पं० कृष्णदत्त मिश्र)। 'तुलसी मेला' प्रति वर्ष रामनवमी के अवसर पर सम्पन्न होता है।

●





तुलसी-स्मारक भवन, राजापुर



चित्रकूट में तुलसी-स्मृति-पर्व

⊙

श्री जुगुलकिशोर श्रीवास्तव, एडवोकेट
मंत्री : तुलसी जयंती समिति, चित्रकूटधाम (बाँदा)

३१ जुलाई, १९७१ ई०। तुलसी की साधना-भूमि प्रसिद्ध तीर्थकेन्द्र चित्रकूट धाम का रम्य, प्रशान्त तथा पावन स्थल। श्री राधाकृष्ण पोद्दार महाविद्यालय के सामने, विश्वविश्रुत महाकाव्य रामचरित मानस के अमर प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास जी की पुण्य-जयन्ती का भव्य आयोजन। परम सुसज्जित नवनिर्मित पण्डाल के नीचे चित्रकूट-धाम की तुलसी-प्रेमी जनता का अपार समूह उमड़ आया था। एक ओर साधु-सन्तों की विभिन्न मण्डलियाँ, दूसरी ओर गृहस्थ नागरिकों का जनसम्पर्क—जिसमें नगर एवं क्षेत्र के प्रतिष्ठित नागरिक, अध्यापक, विद्यार्थी, पत्रकार, सरकारी अधिकारी एवं महिलायें सभी थे—सभामण्डप को सुशोभित कर रहा था।

सामने विशाल सभामञ्च। आराध्य कवि गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रतिमा के समीप उत्तर प्रदेश के विद्वान शिक्षामंत्री डॉ० रामजीलाल सहायक, आबकारी एवं जेलमंत्री श्री स्वामीप्रसाद सिंह, वित्त एवं विद्युत राज्यमंत्री श्री राधाकृष्ण गोस्वामी, उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त शिक्षा निदेशक श्री हरिशंकर शर्मा, जिलाधीश श्री विलियम मोर्वेसिंह तथा जिले के सभी क्षेत्रीय विधायक, उच्चाधिकारी तथा नेता एवं वक्तागण आसीन थे।

शिक्षामंत्री डॉ० रामजीलाल सहायक ने सभाध्यक्ष पद को ज्योंही अलंकृत किया, लाउड स्पीकर की मन्द्र ध्वनि गूंज उठी और मंगलाचरण के साथ जयन्ती-महोत्सव का कार्य प्रारम्भ हुआ। एक ओर गीतकारों के गीतों, कवियों की कविताओं, कथा-वाचकों के प्रवचनों तथा वक्ताओं के भाषणों के शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे थे, तो दूसरी ओर कैमरामैनों तथा न्यूजरील तैयार करनेवालों के कैमरे बड़ी तत्परता के साथ क्रियाशील थे।

इस पुण्य अवसर पर सन्त कवि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए डॉ० रामजीलाल सहायक ने कहा :

प्रातःस्मरणीय सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास युगबोध के द्रष्टा एवं स्रष्टा

कवि थे। उनका आविर्भाव इस जगत में उस समय हुआ था, जब जीवन-मूल्यों का शोचनीय ह्रास हो रहा था, समाज में विघटन की प्रवृत्तियाँ जोर मार रही थीं, भारतीय-संस्कृति संक्रमण वेला से गुजर रही थी, मानवीय-मूल्यों का भारी अवमूल्यन हो रहा था, धर्म, राजनीति एवं दर्शन—सभी क्षेत्रों में अपकर्ष विवर्धमान था; फलतः देश का पतन सन्निकट और अवश्यम्भावी प्रतीत होने लगा था। ऐसे विकट क्षणों में तुलसी ने समाज को जीवनी-शक्ति प्रदान कर उसे जीवित रखा। इसके लिए भारतीय समाज उनका चिरऋणी रहेगा।

महात्मा तुलसीदास ने हमें 'रामायण' के माध्यम से ब्रह्मतत्व को समझने का संकेत दिया। निराकार ब्रह्म जब साकार होता है, तब वह राम के रूप में आता है। इसीलिए राम महान आदर्श हैं और अनुसरणीय हैं। राम में मानव-जाति के लिए अपेक्षित सभी गुण विद्यमान हैं। वह शीलवान हैं, उदात्त हैं, कारुणिक हैं और पापियों को दण्ड देने में कठोर भी हैं। तुलसी ने ऐसे राम को हमारे सामने प्रस्तुत किया। आज के समाज को राम से प्रेरणा प्राप्त करने की बड़ी आवश्यकता है। और ऐसे राम के आदर्श को हम तुलसी के माध्यम से ही प्राप्त कर सकते हैं।

आज का युग निराशा का युग है, विघटन का है, विषमता का है। जीवन के विकास को ये चीजें अवरुद्ध करती हैं। इनके उन्मूलन की एक ही महौषधि है, और वह है तुलसी की रामायण। तुलसी ने किस प्रकार जन-जन में आशा का संचार किया, समन्वय की भावना जगाई और विषमता को दूर किया। रामायण के आदर्श परिवार को देखो, विश्व में ढूँढ़ने पर न मिलेगा। इसी चित्रकूट की भूमि में 'भरत' ने कितना ऊँचा आदर्श कायम किया, विचारने की बात है। यदि तुलसी न पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही ऐसा राम न होता, ऐसा भरत न होता।

हरिजन-उद्धार की बात आज हम कर रहे हैं, पर महात्मा तुलसीदास ने ४०० वर्ष पूर्व पहले ही हरिजनोद्धार करके दिखाया है। शबरी का प्रसंग इसका उदाहरण है। तुलसी की एक और महान देन है। वह है जीवन में एकता को प्रतिष्ठापित करना। उन्होंने विभिन्न धर्मों, वर्गों, सम्प्रदायों, जातियों तथा विभिन्न प्रान्तों के निवासियों में भावात्मक एकता पैदा की। अतः यदि हम तुलसी से एकता की प्रेरणा नहीं लेते, तो हमारा तुलसी-जयन्ती मनाना ही व्यर्थ है।

इस जयन्ती का आयोजन पावन-भूमि चित्रकूट में हो रहा है। चित्रकूट एक महान तीर्थ है। तुलसी की साधना-भूमि है। यह भूमि जब भगवान राम को परमप्रिय है, तो 'रामजी के लाल' (मुझ) को क्यों न प्रिय होगी? इस तीर्थ का विकास होना चाहिए। मैं भी उसमें अपना योगदान करूँगा अवश्य।

विद्युत्-मंत्री श्री राधाकृष्ण गोस्वामी ने कहा : मानस चतुश्शती के सन्दर्भ में तुलसी की साधना-भूमि चित्रकूट में यह पहला तुलसी-स्मृति-पर्व है। चतुश्शती संवत् २०३१ तक चलेगी। मैं चाहता हूँ कि इन ३-४ वर्षों में तुलसी पर काफी काम हो जाना चाहिए।

यों तो तुलसी के अवदान के लिए सारा विश्व कृतज्ञ है, पर भारत विशेष रूप से ऋणी है। तुलसी ने ४०० वर्ष पूर्व देश को समाजवाद का नारा दिया। तुलसी ऐसे समाज का निर्माण देखना चाहते थे, जहाँ 'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।' भला बताओ तुलसी से बढ़कर कौन समाजवादी हो सकता है? समाज के उन्नायकों को, बुद्धिजीवियों को तुलसी से प्रेरणा लेनी चाहिए और उनके सन्देश को घर-घर, जन-जन तक पहुँचाने का व्रत लेना चाहिए, तभी देश का विकास सम्भव है।

आबकारी-मंत्री श्री स्वामीप्रसाद सिंह ने कहा : आज की दुनिया कलहों से सन्तप्त है, संघर्षों की आग से झुलस रही है। उससे त्राण पाने के लिए तुलसी का उपदेश ही एकमात्र सम्बल है। तुलसी के विचारों के अनुरूप समाज का निर्माण होगा, तभी सुख व शान्ति मिलेगी। तुलसी ने रामराज्य की सुन्दर कल्पना हमें दी, पर शताब्दियाँ बीत गयीं, रामराज्य नहीं आया। कारण स्पष्ट है। हमने तुलसी के बताये हुए मार्ग पर चलने का प्रयास ही नहीं किया। हम प्रति वर्ष तुलसी का स्मरण करते हैं, केवल वाचिक। ऐसी जयन्ती का कोई अर्थ नहीं। सच्ची जयन्ती तभी मनायी जायेगी, जब हम तुलसी के बताये हुए मार्ग पर चलेंगे।

इस अवसर पर और भी अनेक विद्वानों ने तुलसी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की, जिनमें अतिरिक्त शिक्षा निदेशक श्री हरिशंकर शर्मा तथा श्री विनीतजी रामायणी प्रमुख थे।

यहाँ पर जयन्ती-समारोह की पृष्ठभूमि में सम्पन्न गतिविधियों का सिंहावलोकन करा देना अनुपयुक्त न होगा। सर्वाधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि इस समारोह को प्रदेश के विद्वान-मनीषी मुख्यमंत्री माननीय श्री कमलापति जी त्रिपाठी का आशीर्वाद प्राप्त था। यद्यपि वे सम्मेलन में नहीं आ सके थे,

पर जयन्ती की सम्पन्नता के लिए अपना शुभ-सन्देश भेजना भी नहीं भूले थे। दूसरी विशेष बात यह थी कि जयन्ती के प्रवर्तक एवं योजना-नायक राज्यमंत्री श्री राधाकृष्ण गोस्वामी थे। समारोह के संचालनार्थ श्री गोस्वामीजी ने दिनांक १८ जुलाई, १९७१ को यज्ञवेदी में प्रमुख नागरिकों एवं सन्त-महन्तों की एक बैठक बुलाई थी, जिसमें समारोह के संचालनार्थ विचार-विमर्श हुआ था। इसी अवसर पर एक 'तुलसी-जयन्ती समारोह समिति' का गठन भी किया गया था, जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी रखे गये थे :

करवी के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट श्री एम० एल० अग्रवाल (अध्यक्ष), चित्रकूट-धाम नगरपालिका के अध्यक्ष श्री गोपालकृष्ण करवरिया (उपाध्यक्ष), श्री रामदास शास्त्री, यज्ञवेदी (उपाध्यक्ष), श्री देवीप्रसाद मिश्र (उपाध्यक्ष), श्री जुगुल किशोर श्रीवास्तव, एडवोकेट (मंत्री), श्री गौरीशंकर गर्ग (उपमंत्री), श्री बाबूलाल गर्ग (प्रचारमंत्री) तथा श्री भैरवप्रसाद गोयल (कोषाध्यक्ष)।

इनके अतिरिक्त कई सदस्य भी चुने गये और कार्य के संचालनार्थ अनेक उपसमितियाँ भी बनाई गयीं, जिनका विवरण इस प्रकार है।

१. श्री मत्तगयेन्द्र स्वामी में प्रातः १०९ रामायणियों के सस्वर पाठ के प्रबन्ध के लिए निर्मित उपसमिति के संयोजक, पोद्दार विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री रामभवन उपाध्याय।

२. यज्ञवेदी में महिलाओं का कीर्तन : संयोजिका—प्रधानाचार्या कन्या-विद्यालय, सीतापुर।

३. शोभायात्रा के लिए गठित उपसमिति के संयोजक श्री गौरीशंकर गर्ग।

४. सभामंच तथा सभासंचालन की उपसमिति के संयोजक श्री बाबूलाल गर्ग।

इस प्रकार जयन्ती के संचालन में तन, धन, मन से जहाँ एक ओर चित्रकूट और करवी के नागरिकों तथा पण्डों-महन्तों का सक्रिय सहयोग रहा, वहाँ दूसरी ओर करवी के तत्कालीन ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट श्री एम० एल० अग्रवाल तथा जयन्ती-समारोह की तिथि के पूर्व ही कार्यभार ग्रहण कर लेने वाले करवी के नव-नियुक्त ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट श्री एस० के० मुखर्जी का व्यवस्थापन विशेष उल्लेखनीय रहा।

•

परिशिष्ट

⊙

चित्रकूट-दर्शन

अनुक्रमणिका



चित्रकूट-दर्शन

⊙

बाबूलाल गर्ग, शास्त्री, एम० ए०

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग-श्री जयदेव वैष्णव संस्कृत महाविद्यालय, करवी

[चित्रकूट वनों, पर्वतों, झरनों अथवा मन्दिरों और प्रतिमाओं से सम्पृक्त किसी स्थान विशेष का नाम मात्र नहीं है। यह हमारी उस सांस्कृतिक-चेतना का प्रतीक है, जिसमें हमारे जातीय चिन्तन की समूची उपलब्धियाँ संश्लिष्ट हैं। इस प्रतीक-पुरुष का साक्षात्कार करने के लिए आर्यावर्त के कोने-कोने से तीर्थ-यात्रियों के अनन्त काफिलों की चित्रकूट-यात्रा का एक सिलसिला सृष्टि के प्रारम्भिक दिनों में शुरू हुआ था, वह अभी भी जारी है और कभी खतम होने को नहीं। आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर तुलसी जैसे चिन्ताशील मनीषी कवि जिस प्रतीक-पुरुष की प्रशंसा के गीत गाते नहीं अघाये, उसे हम अपनी भाषा में 'चित्रकूट' नाम से सम्बोधित करते हैं। प्रस्तुत लेख के माध्यम से उसी प्रतीक-पुरुष का एक स्थूल विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—लेखक]

• आमुख

चित्रकूट आर्यावर्त का प्राचीनतम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा निसर्गतः सुषमा-सम्पन्न आरण्यक तीर्थस्थान एवं वीतराग सन्त-महात्माओं की तपश्चर्या का पावन तपोवन है। युग-युगों से अनगिनत तपस्वियों और पावन जनों की आध्यात्मिक विद्युत् तरंगों का यहाँ इतना प्रबल घात-प्रतिघात हुआ है कि भक्ति, वैराग्य और शान्ति तथा सात्विक भावना चित्रकूट के अणु-अणु में घुल-मिल गयी है। इसीलिए यह अनादिकाल से भारतीय मनीषा की आराधना का एक पुण्य-केन्द्र बना हुआ है और इसकी सुखद गोद का आश्रय पाकर भौतिक आधि-व्याधियों से संतप्त असंख्य जीवों ने स्थायी शान्ति प्राप्त की है।

चित्रकूट के अनिर्वचनीय प्रभाव का पता इसी बात से लग जाता है कि चाहे आदि-कवि वाल्मीकि हों या पुराणों के प्रणेता महर्षि व्यास; महाकवि कालिदास

हों या संस्कृत नाटककार भवभूति; संत कवि तुलसी हों या मुसलमान कवि रहीम—सभी ने चित्रकूट के महत्व का गुणगान मुक्तकण्ठ से किया है। मानवीय सृष्टि-सरणि में सब से प्रतापी अवतारी पुरुष भगवान राम ने भला जिस स्थान को अपना निवास स्थान चुना हो और जिसकी प्रशंसा के भाव भरे गीत गाये हों; उसके प्रभाव, गुण तथा माहात्म्य के बारे में कुछ कहना शेष रह जाता है! इसलिए प्रस्तुत पुस्तिका में चित्रकूट की अन्तर-प्रभविष्णुता के सम्बन्ध में हमें अधिक नहीं कहना है। मानस चतुःशती के अवसर पर सुदूरवासी जनता को तुलसी की काव्य-प्रेरणा भूमि चित्रकूट के दर्शनीय स्थलों की जानकारी कराना, इस पुण्यभूमि की समस्याओं और उसके समाधानों के लिए जनचेतना को उद्‌बुद्ध करना और इसे एक सुन्दर आकर्षक पर्यटन केन्द्र बनाने की दिशा में सरकारी तथा गैर-सरकारी योजनाओं को प्रकाश में ला कर उनमें सक्रियता, तीव्रता एवं गतिशीलता आने के लिए योजना-नायकों को उत्प्रेरित करना हमारा प्रमुख उद्देश्य है।

● स्थान-परिचय

चित्रकूट उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले की करवी तहसील तथा मध्यप्रदेश के सतना जिले की सीमा पर स्थित है। यह प्रयाग (इलाहाबाद) से ८० मील पश्चिम झाँसी-मानिकपुर (मध्य रेलवे) के बीच करवी स्टेशन से ५ मील दक्षिण में है। चित्रकूट नाम का कोई विशेष नगर या ग्राम नहीं है। सामान्यतया करवी, सीतापुर, कामता, खोही तथा नयागाँव—ये पाँच बस्तियाँ और इनका समीपवर्ती वनाञ्चल ही 'चित्रकूट' नाम से विख्यात है। इधर उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा सीतापुर तथा करवी को मिला कर नगरपालिका का संघटन किया गया है और उसका नामकरण 'चित्रकूटधाम नगरपालिका' किया गया है। इसलिए करवी तथा सीतापुर आदि बस्तियों को भी लोग चित्रकूटधाम कहने लगे हैं।

● चित्रकूट पहुँचने का साधन

चित्रकूट पहुँचने के लिए रेल तथा बसों की सेवायें उपलब्ध हैं। इलाहाबाद तथा जबलपुर की ओर से आने वाले रेल-यात्रियों को मानिकपुर जंक्शन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है और वहाँ से मानिकपुर-झाँसी लाइन पर मानिकपुर से तीसरे स्टेशन करवी पर यात्रियों को उतरना पड़ता है। झाँसी की ओर से ट्रेन द्वारा यात्रा करने वाले 'चित्रकूट' स्टेशन पर उतर सकते हैं; पर यह स्टेशन छोटा है, आवासादि

की अपेक्षित सुविधायें भी उतनी उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए अधिक सुविधा एवं सुरक्षा की दृष्टि से चित्रकूट से अगले स्टेशन करवी पर यात्रियों को उतरना उपयुक्त है। कानपुर की ओर से आने वालों को बाँदा में गाड़ी बदल कर झाँसी-मानिकपुर गाड़ी पकड़नी पड़ती है। पर आजकल तो 'बसों' का प्रचलन इतना अधिक हो गया है कि चाहे जिधर से चित्रकूट आना हो, सभी तरफ से बसें चित्रकूट के लिए मिल जाती हैं। प्रयाग से दिन भर घण्टे-घण्टे बाद रोडवेज बसें आती रहती हैं। सतना से चित्रकूट का मार्ग बन जाने से वहाँ से भी लारियाँ चित्रकूट तक चलने लगी हैं। सागर से भी छतरपुर, महोबा आदि स्थानों से होती हुई बसें चलने लगी हैं।

● आवास की सुविधायें

यात्रियों के ठहरने के लिए सीतापुर (चित्रकूट) में कई धर्मशालायें हैं, जिनमें कलकत्ता वाली धर्मशाला, माँजी की धर्मशाला, आगरा वालों की धर्मशाला, श्रीराम धर्मशाला अधिक प्रसिद्ध हैं। इधर चित्रकूट में अनेक जातीय धर्मशालायें बन गयी हैं और वहाँ भी यात्रियों को आवास की सुविधायें मिल जाती हैं। सीतापुर में चित्रकूटधाम नगरपालिका का यात्री-गृह तथा पयस्विनी के किनारे मध्यप्रदेश सरकार द्वारा निर्मित सार्वजनिक निर्माण विभाग-डाकबँगला और वन विभाग-डाकबँगला भी हैं। इनके अतिरिक्त चित्रकूट में सैकड़ों मठ व मन्दिर हैं, जहाँ यात्रियों को निःशुल्क आवास की व्यवस्था कर दी जाती है। यहाँ पण्डे लोग भी पर्याप्त संख्या में रहते हैं, जो यात्रियों को हर सम्भव सुविधायें प्रदान करते हैं। शीघ्र ही सरकार द्वारा एक विशाल 'यात्री-गृह' बनने वाला है, जिसमें कहा जाता है कि ९० कमरे होंगे, जो आधुनिक-उपकरणों से सुसज्जित रहेंगे। यदि यह योजना साकार होती है तो विदेशी तथा सम्भ्रान्त पर्यटकों की आवास-समस्या बहुत कुछ हल हो जायगी।

● चित्रकूट के दर्शनीय स्थल

चित्रकूट एक आरण्यक तीर्थ है। हरी-भरी वन-श्रेणियों के बीच स्थान-स्थान पर यहाँ ऐसे दर्शनीय स्थल हैं, जो रमणीयता और पवित्रता के लिए युगों से सुविख्यात हैं। केवल धार्मिक महत्व वाले स्थानों की संख्या बहुत अधिक है; पर अध्यात्म, संस्कृति तथा पर्यटन—तीनों दृष्टि से जो स्थान महत्वपूर्ण हैं, उन्हीं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है :

⊙ कामदगिरि

चित्रकूट तीर्थ के मुख्य देव 'श्री कामदगिरि' हैं। इसकी प्राकृतिक सुषमा बड़ी ही निराली है। महर्षि वाल्मीकि, महाकवि कालिदास तथा संत कवि तुलसी ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में इसका वर्णन किया है। इसके दर्शन एवं परिक्रमा करने से श्रद्धालु-यात्री के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। इसीलिए इसका नाम 'कामदगिरि' है।

कवि शिरोमणि महात्मा तुलसीदास ने इसे एक ऐसा शिकारी बताया है, जिसका निशाना पाप रूपी मृग को मारने में अचूक है। इस पर्वतराज का प्रभाव यों तो अनादिकाल से चला आ रहा है, पर भगवान राम के प्रवास करने से इसका महत्व और भी बढ़ गया है :

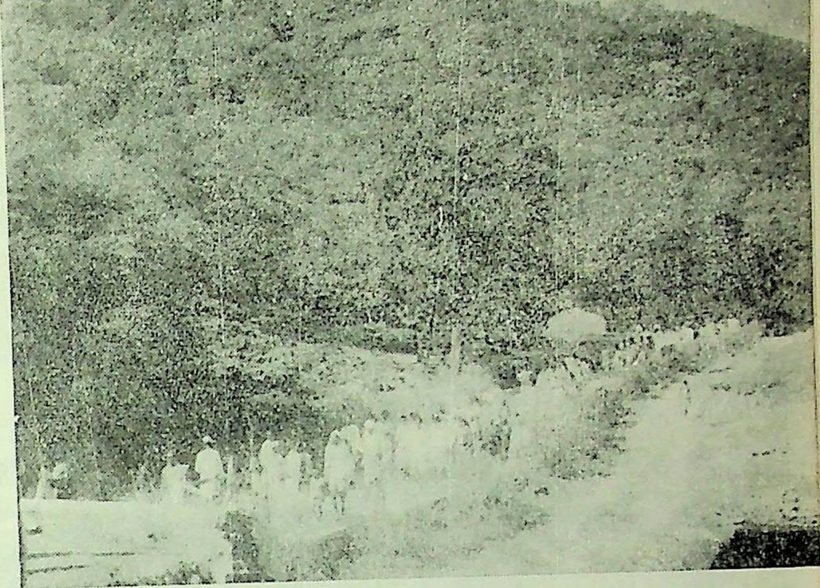
कामदगिरि भे रामप्रसादू
अवलोकत अपहरत विषादू।

कामदगिरि के दर्शन के लिए प्रतिमास की अमावस्या, चैत्र रामनवमी और दीपमालिका को भारत के कोने-कोने से असंख्य यात्री चित्रकूट आते हैं और इसकी परिक्रमा कर स्वयं को धन्य समझते हैं। पर्वत के चारों ओर परिक्रमा के लिए पक्का मार्ग बना हुआ हैं, जिसकी परिधि लगभग ३ मील है। परिक्रमा के किनारे-किनारे सैकड़ों देवालय बने हुए हैं, जिनमें राममुहल्ला, मुखारविन्द, साखी गोपाल, भरत-मिलाप (चरण-पादुका) तथा पीली कोठी अधिक महत्वपूर्ण हैं।

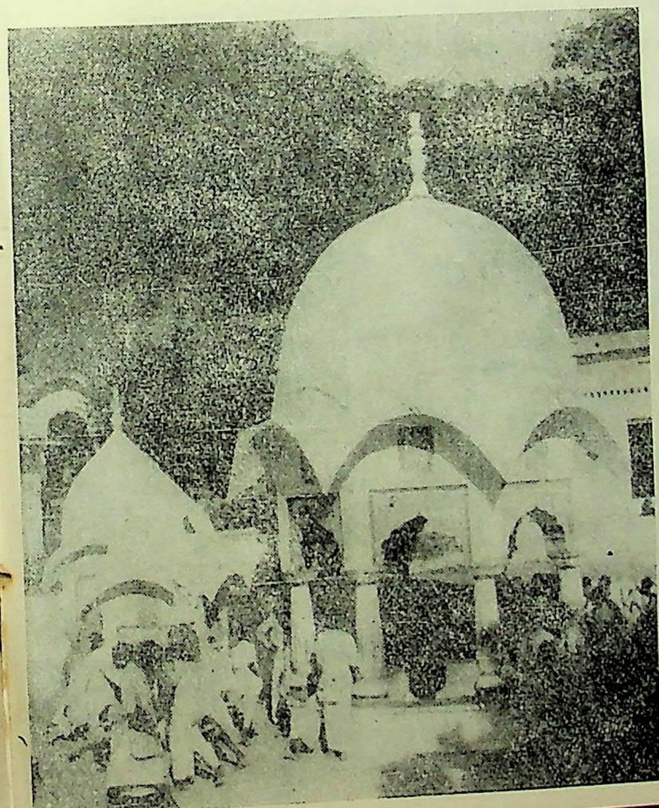
पर्वत के दक्षिण-पार्श्व में एक छोटी-सी पहड़िया है, जिसे 'लक्ष्मण पहड़िया' कहते हैं। इसके शिखर पर श्री लक्ष्मण जी का मन्दिर बना हुआ है। जन-श्रुति के अनुसार राम के वनवास-काल में लक्ष्मण जी का यही निवासस्थान था।

⊙ भरत-मिलाप (चरण-पादुका)

यह स्थान कामदगिरि के दक्षिण पार्श्व में परिक्रमा पथ पर है। यह वही स्थान है, जहाँ भरत-राम का अश्रुप्रवाही मिलन हुआ था। वह मिलन, जिसमें पर्वतराज की कठिन शिलायें भी पिघल कर पानी-पानी हो गयीं थीं, पक्षियों का कलरव शान्त पड़ गया था और वन-खण्ड की तरु-लतायें भी चार आँसू रो पड़ी थीं। जहाँ धर्म के समक्ष राजनीति ने मत्था टेका था और कर्तव्य ने वैभव को पैरों तले कुचल राज्य-पद को कन्दुक बना कर इधर-उधर फेंका था। पिघली हुई उन शिलाओं का चिह्नावशेष आज भी उस अपूर्व मिलन की याद को ताजा कर देता है।



श्री कामदगिरि-परि-
क्रमा का एक दृश्य



भरतमिलाप (चरण पादुका)

रामघाट (मंदाकिनी)

जानकी-कुण्ड

⊙ रामघाट

चित्रकूट पर्वत से एक मील पूर्व पयस्विनी (मंदाकिनी) नदी तक निर्मित रामघाट भक्तों एवं श्रद्धालुओं के लिए बड़ा ही पवित्र स्थान है। यहाँ पर बैठ कर इधर-उधर दृष्टि डालने से वाराणसी में गंगा के घाटों का स्मरण हो आता है। यह वहीं घाट है, जिसके बारे में यह दोहा प्रसिद्ध है :

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर,
तुलसिदास चंदन घिसे तिलक करें रघुवीर।

रामघाट के ऊपर अनेक मन्दिर व मठ हैं, जिनमें श्री मत्तगयेन्द्र (मदगंजन स्वामी) शंकरजी का मन्दिर अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। मन्दिरों के इस समुदाय को 'पुरी' कहते हैं। इसके चतुर्दिक परिक्रमा बनी हुई है। लोग श्रद्धा के साथ पुरी की भी परिक्रमा करते हैं।

⊙ प्रमोद वन

रामघाट से आधा मील दक्षिण चित्रकूट-सतना रोड पर पयस्विनी तट पर यह स्थान स्थित है। इसमें रीवां नरेश का बनवाया हुआ श्री नारायण भगवान का मन्दिर है। इसके चारों ओर लगभग ३०० कोठरियाँ बनी हुई हैं, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि रीवां नरेश ने किसी दैवी बाधा की शान्ति के लिए इनका निर्माण करा कर उतने ही पण्डितों द्वारा किसी विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया था।

प्रमोद वन के ठीक सामने पश्चिम में 'दास हनुमान' नामक स्थान है, जो एक सिद्ध जगह मानी जाती है।

⊙ जानकी कुण्ड

प्रमोद वन से एक फर्लांग दक्षिण स्थित जानकी कुण्ड आजकल चित्रकूट का सर्वाधिक रम्य आश्रम समझा जाता है। यहाँ विरक्त महात्माओं की सैकड़ों गुफायें तथा कुटीरें हैं, जहाँ तीन-चार सौ महात्मा सदैव तपश्चर्या करते रहते हैं। इस आश्रम का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुहावना है। नीचे मन्दाकिनी छल-छल करती हुई बह रही है। इसके दोनों किनारे सघन वृक्षों की सुन्दर कतारें हैं, जो दर्शक का मन हठात् मोह लेती हैं। मंदाकिनी के जल में यहाँ असंख्य दीर्घकाय मछलियाँ तैरती रहती हैं, जो कुछ क्षणों के लिए पर्यटकों के मनोरंजन का साधन बन जाती हैं।

आश्रम में स्व० संत श्री रणछोरदास जी महाराज द्वारा स्थापित एक संस्कृत

पाठशाला तथा श्री रघुवीर जी का भव्य मन्दिर है। यहाँ एक धर्मशाला तथा कई सुन्दर भजनाश्रम बने हुए हैं।

प्रसिद्धि है कि वनवास-काल में महारानी जानकी यहाँ नित्य स्नान करने आतीं थीं, इसीलिए इसका नाम 'जानकी कुण्ड' पड़ा।

⊙ स्फटिक शिला

यह स्थान जानकी कुण्ड से लगभग एक मील दक्षिण सघन पादपावली से आवृत्त पयस्विनी के तट पर है। यह वहीं स्थान है जहाँ :

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाये।।
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

एक विशाल शिला-खण्ड पर भगवान राम के चरण-चिह्न अंकित हैं। इसी शिला पर बैठी हुई भगवती सीता पर इन्द्र-पुत्र जयन्त ने काक का रूप धारण कर चञ्चु-प्रहार किया था। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अतीव आकर्षक, मनोमुग्धकारी और नेत्रानुरञ्जनकारी है।

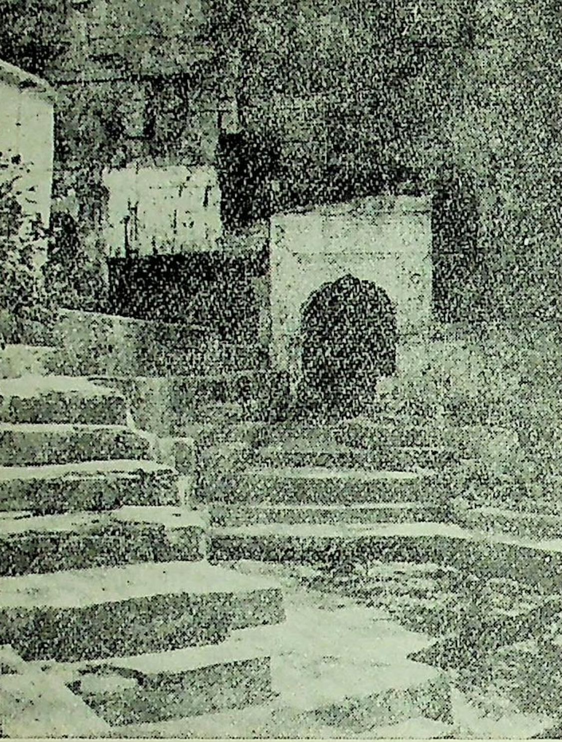
⊙ अनुसूया आश्रम

जानकी कुण्ड से लगभग १० मील दक्षिण प्रकृति देवी की हरी-भरी गोद में अवस्थित महासती अनुसूया तथा महर्षि अत्रि जी की तपश्चर्या का पवित्र स्थल 'अनुसूया-आश्रम' के नाम से विख्यात है। पुण्यशील दम्पति (अत्रि-अनुसूया) के प्रभाव से इसका कण-कण परम पवित्र तथा प्रेरणा-स्रोत है। यह जन-समूह के कोलाहल से दूर शान्ति का आगार परम रमणीक आश्रम है। इस आश्रम की पुनीत शरण में महात्माओं ने परम सिद्धि प्राप्त की है। यहाँ अत्रि, अनुसूया तथा उनके पुत्र भगवान दत्तात्रय, दुर्वासा और चन्द्रमा की मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। प्राकृतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक—तीनों दृष्टि से यह स्थान महत्वपूर्ण है। यह वहीं स्थान है, जहाँ महासती अनुसूया ने महारानी सीता को 'पातिव्रत धर्म' का दिव्य उपदेश देकर नारी-जाति का मार्ग प्रशस्त किया था।

चित्रकूट-सतना रोड से फूट कर एक पक्का उपमार्ग यहाँ तक जाता है। इसे मध्यप्रदेश शासन द्वारा बनाया गया है। यहाँ एक सिद्ध बाबा का बड़ा सुन्दर आश्रम बना है। नीचे अनुसूयाजी की तपस्या से लाई गयी पयस्विनी (मंदाकिनी) नदी बह रही है।

स्फटिक-शिला

अनुसूया-आश्रम



गुप्त गोदावरी

भरतकूप

पर विचारणीय बात यह है कि इतने सुन्दर तथा रमणीक आश्रम में पर्यटकों के आवासादि के लिए न तो कोई धर्मशाला है, न सरकारी विश्राम-गृह ही। देश के धर्मशील सम्पन्न परिवारों तथा शासन को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

⊙ गुप्त गोदावरी

यह तीर्थस्थल अनुसूया-आश्रम के लगभग चार मील पश्चिम में है। एक लम्बी गुफा से निरन्तर जल स्राव होता रहता है। भीतर अँधेरा होने से यात्री दीपक (गैस) के प्रकाश में अन्दर प्रवेश करते हैं। इसके भीतर एक कुण्ड है, जिसे सीता कुण्ड कहते हैं और दरवाजे से १५-१६ गज की दूरी पर है। गुफा से पानी की धारा कुण्डों पर गिरती है और वहीं लुप्त हो जाती है, इसी से इसे गुप्त गोदावरी कहते हैं। यहाँ का प्राकृतिक कला-कौशल अद्‌भुत है। जलवाही गुफा के बगल में एक विशाल गुफा है, जिसका ऊपरी भाग काफी ऊँचा है। छत पर एक ऐसा पत्थर लटका हुआ है जो हिलता रहता है। इसे लोग 'खटखटा चोर' कहते हैं, जिसके पीछे अनेक किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं।

⊙ मड़फा

गुप्त गोदावरी से दो-तीन मील दूर माण्डव्य ऋषि का परम प्राचीन आश्रम 'मड़फा' नाम से प्रसिद्ध है। एक छोटी पहाड़ी पर ध्वंसावशेष मात्र एक अति प्राचीन किला है, जो कालिंजर दुर्ग का ही एक अंग बताया जाता है। यहाँ का पर्वतीय प्राकृतिक दृश्य बहुत ही चित्ताकर्षक है। भगवान श्री बाला जी का भव्य मन्दिर यहाँ बना है, पास में ही पञ्चमुखी शंकर जी की विशाल प्रतिमा भी स्थापित है। पहाड़ी से कई झरने झरते हैं तथा नीचे 'पाप-मोचन' नामक एक प्रसिद्ध सरोवर है।

यह आश्रम दुर्गम वनाञ्चल में अवस्थित है, इसलिए यहाँ सुरक्षा की दृष्टि से यात्रियों को बड़ी सावधानी से जाना चाहिए।

⊙ भरत कूप

यह श्री कामदगिरि से पाँच मील पश्चिम तथा झाँसी-मानिकपुर रेलवे लाइन पर 'भरत कूप' स्टेशन से एक मील दक्षिण में है। यह वही ऐतिहासिक कूप है, जिसमें भरत जी ने श्री रामचन्द्र जी के अभिषेकार्थ लाए हुए समस्त तीर्थों का जल डाला था। इसलिए इसके जल में स्नान का बड़ा महत्व माना जाता है :

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा।।
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी।।

कूप के पास ही भरत जी का मन्दिर है। भरत जी की स्मृति में एक संस्कृत पाठशाला भी चलाई जा रही है।

⊙ गणेश बाग

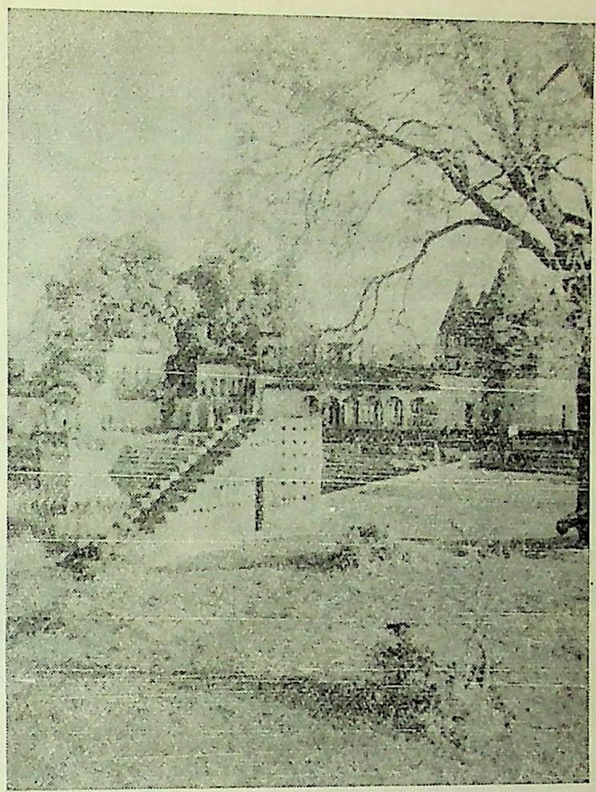
करवी से १ मील दक्षिण में देश के प्राचीन गौरव तथा समृद्धि का प्रतीक-स्वरूप गणेश बाग पेशवा नरेशों की कीर्ति सँजोये खड़ा है। इसका निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में श्रीमन्त विनायकराव पेशवा ने अपने आमोद-प्रमोद के लिए कराया था। यहाँ की इमारतों का निर्माण भारतीय स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। बीच में प्राचीन शैली का भव्य षट्कोणी पंचमन्दिर है, जिसके ऊपरी भाग में भित्ति-प्रस्तरों की बारीक कटाई करके 'खजुराहो' की भाँति देवी-देवताओं की असंख्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। सामने एक सरोवर है, जिससे इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। पश्चिमी भाग में एक बड़ा ही भव्य जलाशय है, जिसमें कूप और वापी का सुन्दर सम्मिश्रण है। यह तीन खण्डों का है और इसके दो खण्ड पानी से प्रायः भरे रहते हैं। गर्मियों में दूसरा खण्ड भी खुल जाता है। पर सरकार द्वारा विधानतः संरक्षित-इमारत घोषित किए जाने के बावजूद सुरक्षा तथा मरम्मत के अभाव में भारतीय शिल्प कला का यह अद्भुत नमूना धीरे-धीरे धराशायी होता हुआ स्मृति-शेष ही रह जाता दीख रहा है।

⊙ बाँके सिद्ध

गणेश बाग से दो मील दक्षिण-पूर्व हरे-भरे विन्ध्य पर्वत के पार्श्व भाग में स्थित बाँके सिद्ध अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

प्रथमहिं देवन गिरि गुहा राखी रुचिर बनाय।
राम कृपानिधि कछुक दिन वास करहिंगे आय।

के अनुसार सचमुच यह देव निर्मित एक सुन्दर कन्दरा है। इसके निर्माण में भगवती प्रकृति देवी ने अपूर्व चातुर्य दिखाया है। एक विशाल चट्टान के नीचे विस्तृत कक्ष बना हुआ है, जो धरातल से सैकड़ों फीट ऊँचा और शिखर से पचासों फीट नीचा है। गुफा तक पहुँचने के लिए नीचे से पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर से निर्मल जल वाला झरना गिर रहा है, जिसका



गणेश बाग

देवांगना

श्री कामदगिरि की झाँकी

मन्दाकिनी का उद्गम-स्थल

दृश्य बड़ा ही मनोहर है। यह गुफा के उत्तरी भाग को नहलाता हुआ पर्वत के ही वक्ष में विलीन हो जाता है।

⊙ कोटितीर्थ

बाँके सिद्ध से एक मील दक्षिण इसी पर्वत पर 'कोटितीर्थ' नामक रम्य स्थान है। इसका प्राकृतिक दृश्य भी बाँके सिद्ध की भाँति ही है। यहाँ भी एक झरना बह रहा है, जो पर्वत में ही अन्तर्लीन हो जाता है। कहा जाता है कि जब भगवान राम चित्रकूट पधारे थे, तब उनके दर्शनार्थ देवलोक से आए हुए करोड़ों देवता इसी स्थान पर रुके थे। इसीलिए इसे 'कोटितीर्थ' कहते हैं।

⊙ देवाङ्गना

यह स्थान कोटितीर्थ से डेढ़ मील दक्षिण में (करवी से ४ मील दक्षिण अथवा रामघाट (चित्रकूट) से ३ मील पूर्व) कोटितीर्थ वाले पर्वत के अञ्चल में ही सुशोभित है। यहाँ का पर्वतीय दृश्य तथा जल प्रपात का उद्गम बाँके सिद्ध एवं कोटितीर्थ केही समान है। प्रसिद्धि है कि राम के बनवास-काल में उन के दर्शनार्थ देव लोक से आयी हुई विविध देवों की स्त्रियाँ इस स्थान पर रुकी थीं, इसलिए इसे 'देवाङ्गना' कहते हैं।

⊙ हनुमान-धारा

यह स्थान देवाङ्गना वाली पर्वत शृंखला पर ही रामघाट (चित्रकूट) से दो मील पूर्व स्थित है। यहाँ श्री हनुमान जी की भव्य मूर्ति स्थापित है, जिसके दर्शन के लिए यों तो यात्री प्रतिदिन पहुँचते रहते हैं, पर भाद्रपद शुक्ल पक्ष के अन्तिम मंगलवार (बुढ़वा मंगल) को यहाँ प्रतिवर्ष बड़ा भारी मेला लगता है।

पर्वत के भीतर से एक ऐसा झरना फूट निकला है, जिसकी शुण्डाकार निर्मल जल धारा श्री हनुमान जी की बायीं भुजा पर पड़ती है। इसे देखने से शंकर भगवान के मस्तक पर गंगावतरण के दृश्य की कल्पना होने लगती है। मूर्ति के पास तक पहुँचने के लिए नीचे से ३६० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यात्रियों के विश्राम के लिए एक छोटी-सी धर्मशाला भी यहाँ है।

इसी पर्वत श्रेणी में हनुमान-धारा के ऊपर 'सीता रसोई' तथा 'नरसिंह-धारा' नामक स्थान भी दर्शनीय हैं।

उल्लिखित स्थानों के अतिरिक्त चित्रकूटधाम में और भी कई दर्शनीय स्थल हैं। जानकी कुण्ड के मार्ग में 'रामधाम' तथा दक्षिण 'सिरसावन'; परिक्रमा मार्ग में पीली कोठी तथा सैकड़ों अन्य मन्दिर; पीली कोठी से थोड़ी दूर 'राम शैय्या'; करवी से ४ मील पश्चिमोत्तर 'सूर्य कुण्ड' आदि पवित्र स्थान हैं, जो दर्शन करने योग्य हैं। चित्रकूट के दक्षिणी वनाञ्चल में शरभंग आश्रम तथा सुतीक्ष्ण आश्रम भी दर्शनीय हैं, पर ये स्थान बड़े दुर्गम हैं।

⊙ वाल्मीकि आश्रम

करवी से १२ मील पूर्व चित्रकूट-इलाहाबाद राजमार्ग पर आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि जी का पावन आश्रम एक हरी-भरी पहाड़ी के शिखर पर स्थित है। पहाड़ी के नीचे वाल्मीकि नदी (ओहन नदी) बहती है। पहाड़ी के शिखर पर एक मन्दिर है, जिसमें महर्षि वाल्मीकि की प्रतिमा स्थापित है। इसके दक्षिण-पूर्व पार्श्व मार्ग में एक गुफा में अनेक प्रकार की प्राचीन मूर्तियाँ स्थापित हैं।

पहाड़ी के शिखर के नीचे तल भाग से कुछ ऊपर प्रसिद्ध असावर देवी (आशा मणि देवी) का मन्दिर है, जिनके दर्शनार्थ प्रति सोमवार को मेला लगता है। चैत्र रामनवमी को यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, जो ४-५ दिन तक चलता है।

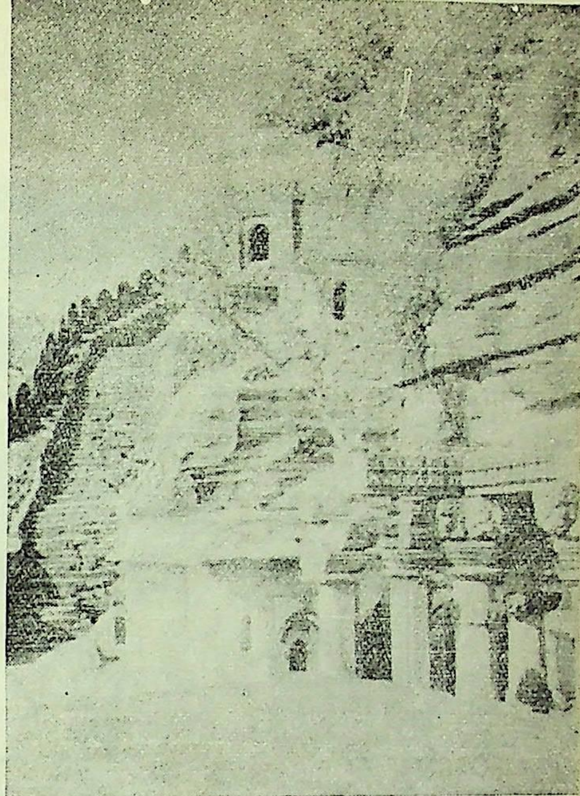
वाल्मीकि-आश्रम वही स्थान है, जहाँ महर्षि वाल्मीकि ने वनवासी भगवान राम को चित्रकूट में वास करने का परामर्श दिया था। स्थान अत्यन्त रमणीक है।

यहाँ एक संस्कृत पाठशाला भी स्थापित है।

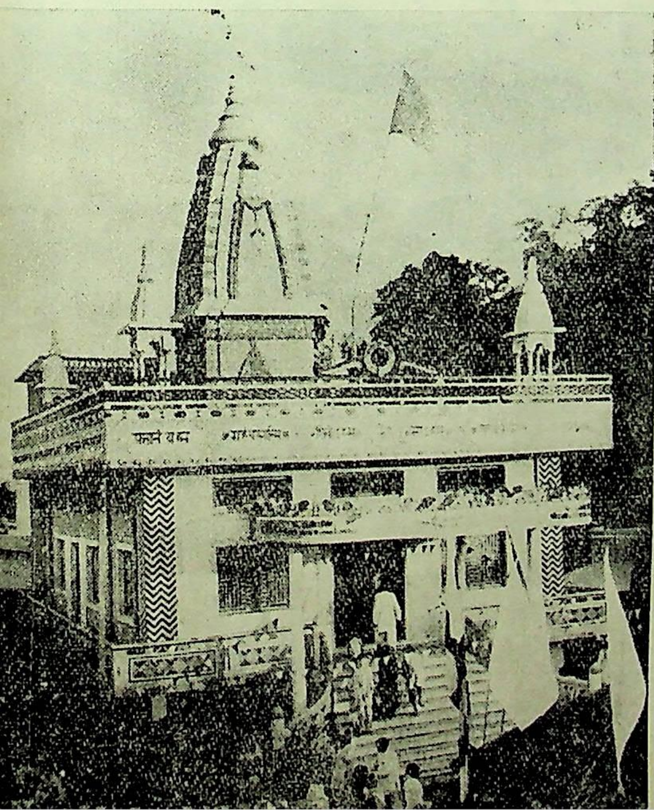
⊙ कालिंजर

इतिहास-प्रसिद्ध कालिंजर स्थान यद्यपि चित्रकूट क्षेत्र से कुछ दूर पड़ जाता है, फिर भी चित्रकूट का समीपवर्ती प्रसिद्ध तीर्थ होने के कारण इसका यहाँ परिचय देना अनुपयुक्त न होगा। यह चित्रकूट से २४ मील पश्चिम में एक प्राचीन तीर्थ है, साथ ही इतिहास-प्रसिद्ध एक दुर्ग भी है। तीर्थस्थान के रूप में इसकी महिमा का वर्णन पुराणों में भी मिलता है।

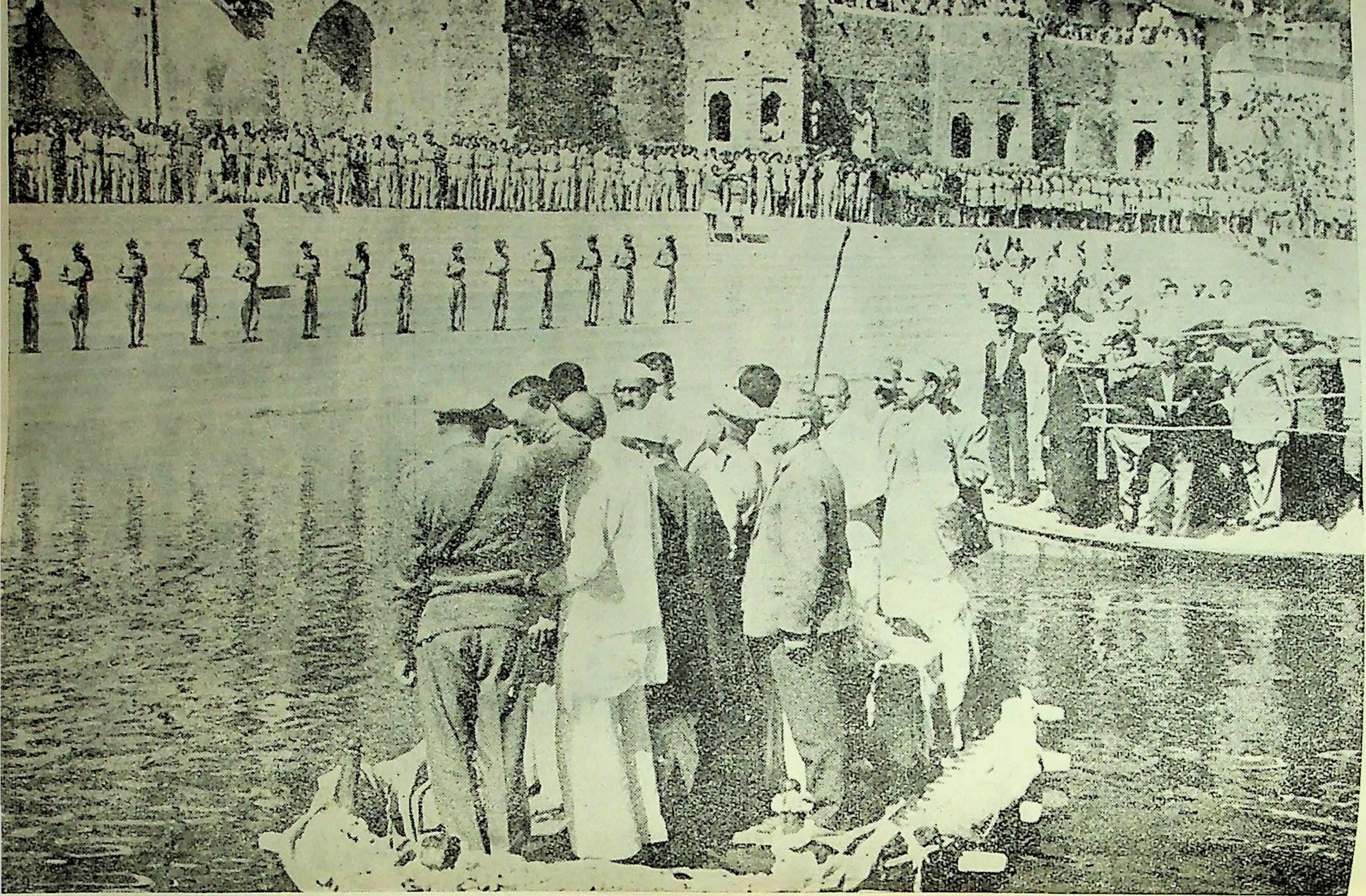
दुर्ग के रूप में इसके महत्व का साक्षी भारतीय इतिहास है। १५४५ ई० में राजा कीर्तिसिंह के शासन-काल में शेरशाह सूरी ने इस पर चढ़ाई की थी, किन्तु बारूद में आग लग जाने से वह मृत्यु का ग्रास बन गया था। बाद में सन् १५६९ ई०



कालिंजर



पीलीकोठी



प्रधानमन्त्री
स्वर्गीय
लालबहादुर
शास्त्री
का
अस्थि
विसर्जन

में राजा रामचन्द्र सिंह के समय अकबर ने इस अभेद्य दुर्ग पर आक्रमण कर इसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

दुर्ग में पहुँचने के लिए सात फाटकों को पार करना पड़ता है। द्वारों पर विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बनायी गयी हैं और प्रायः सभी दरवाजों पर तत्कालीन सम्वत् अंकित हैं।

दुर्ग के अन्तिम फाटक से थोड़ी दूर पर 'सीता-सेज' और उसी के समीप ही 'सीता कुण्ड' तथा 'पाताल गंगा' नामक गुफा है। इसके आगे 'पाण्डव कुण्ड' तथा कुछ और आगे 'बुद्धि भद्र' या 'बुढ़िया का तालाब' नामक स्थान है। इसका निर्माण बड़े कलात्मक ढंग से किया गया है। इसका जल कुष्ठ आदि महारोगों का नाशक बताया जाता है।

इसके अतिरिक्त यहाँ सिद्ध की गुफा, भैंरों की झिरिया, महादेव का कुण्ड, भैरवनाथ की विशाल मूर्ति, पन्ना फाटक के पास मृगधारा, वाराह भगवान की प्रतिमायें, नीलकण्ठ महादेव की मूर्ति और बुन्देलों का ध्वंसावशिष्ट राजमहल विशेष दर्शनीय हैं।

यहाँ पहुँचने के लिए झाँसी-मानिकपुर रेलवे के अतर्रा अथवा बाँदा स्टेशन पर उतर कर बसें पकड़नी चाहिए। वैसे इन स्टेशनों से कालिंजर तक पहुँचने के लिए उतने उपयुक्त साधन नहीं हैं, जितने अपेक्षित हैं।

⊙ राजापुर

सूर्य-कन्या यमुना जी के पवित्र जल से प्रच्छालित राजापुर चित्रकूट से २४ मील पूर्वोत्तर है। यह वही राजापुर है, जिसे 'रामचरित मानस' के अमर प्रणेता सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास को जन्म देने का गौरव मिला है। यहाँ यमुना तट पर गोस्वामी तुलसीदास तथा संकटमोचन हनुमान जी के मन्दिर हैं, जहाँ उनकी प्रतिमायें स्थापित हैं। तुलसी-मन्दिर के पास एक भवन में रामचरित मानस के कुछ भाग की हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जिसे गोस्वामी जी के हाथ की ही लिखी बताया जाता है।

यमुना की धारा से तुलसी-मन्दिर की रक्षा के लिए १९१७ ई० में तुलसी-स्मारक सभा की स्थापना की गयी थी, जिसके प्रयत्न स्वरूप उत्तर प्रदेशीय प्रशासन द्वारा कई लाख रुपयों के व्यय से पक्के घाट का निर्माण करा कर तुलसी-मन्दिर की रक्षा का प्रयास किया गया है। हाल में बस्ती के दक्षिण संत कवि

की स्मृति को उज्जीवित रखने के लिए एक विशाल 'तुलसी-स्मारक भवन' का भी निर्माण हुआ है। सन् १९६० ई० से यहाँ 'तुलसी मेला' भी लगाया जाने लगा है। इसके विकास के लिए अभी और भी कई योजनायें विचाराधीन हैं।

• वाल्मीकि-युगीन चित्रकूट

चित्रकूट अत्यन्त प्राचीन तीर्थ केन्द्र है। कुछ लोगों की धारणा है कि भगवान राम के प्रवास-काल के कारण ही यह पवित्र तीर्थ बना, पर वास्तव में इसके पहिले ही चित्रकूट एक परम पावन तपोवन माना जाता था। चित्रकूट की रमणीयता, पवित्रता तथा आध्यात्मिकता को देख कर ही महामुनि भरद्वाज तथा आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने भगवान राम को चित्रकूट में प्रवास-काल बिताने की सलाह दी थी। इस प्रकार इसमें सन्देह नहीं कि चित्रकूट अनादि तीर्थ है।

चित्रकूट का प्रथम परिचय हमें आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के आदि-काव्य 'रामायण' में मिलता है। महर्षि वाल्मीकि भगवान राम से पहले उत्पन्न हुए थे और यह प्रसिद्धि भी है कि उन्होंने 'रामायण' की रचना राम के आविर्भाव के पूर्व ही कर डाली थी। महर्षि वाल्मीकि का समय ऐतिहासिक गणना से परे है। भारतीय विश्वासों के अनुसार अरबों वर्ष पहले उनका जन्म हुआ था, पर यदि आधुनिक इतिहासकारोंकीही बात मानी जाय ; तब भी वाल्मीकि का काल ईसा के कई हजार वर्ष पूर्व समझा जाता है।

वाल्मीकि-युग में चित्रकूट परम रमणीक, अत्यन्त पावन, आध्यात्मिक साधना का सिद्ध पीठ और ऋषियों का तपोवन था। चित्रकूट पर्वत का दर्शन शुभ तथा कल्याणकारी माना जाता था। चित्रकूट के शिखरों के दर्शनमात्र से मनुष्य का मोह छूट जाता था और उसका परम कल्याण होता था :

'महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः। यावता चित्रकूटस्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते। कल्याणानिसमाधत्ते न मोहे कुरुते मनः। (वाल्मीकि रामायण : अयोध्या० ५४।३०)।

उस समय यहाँ मधु (शहद), कन्दमूल तथा विभिन्न प्रकार के फलों की प्रचुरता थी। विविध पक्षियों का कलरव होता रहता था, मयूर की काकली से वन प्रान्त गूँजता रहता था। हरिणों, सिहों तथा हाथियों के झुण्ड घूमते रहते थे। जगह-जगह पर झरने झरते थे तथा कन्दराओं की बहुतायत थी। ऋषियों के आश्रम जगह-जगह बने हुए थे, जहाँ बीतरागी मुनिगण तपश्चर्या में निरत रहते

थे। वनाञ्चल नाना प्रकार की औषधियों तथा विभिन्न वनवृक्षों एवं लताओं से भरपूर था। चित्रकूट की वनश्री का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने तीन-चार अध्यायों में बड़े ही तादात्म्य भाव से किया है। दे० वाल्मीकि रा० : अयो० का०, ९४-९७) ।

चित्रकूट में बहने वाली नदी को वाल्मीकि-काल में भी 'मन्दाकिनी' नाम से ही जाना जाता था। मन्दाकिनी नदी का जल बड़ा ही पवित्र माना जाता था, जिसमें स्नान करने तथा उसका जल पीने से प्राणी सुखी तथा पापरहित हो जाता था। वाल्मीकि रामायण से पता चलता है कि मन्दाकिनी नदी में उस समय कमल भी थे। इसके दोनों तट घने वृक्षों के आवृत्त थे। सिद्ध लोग बड़ी श्रद्धा से इसमें स्नान किया करते थे :

विचित्र पुलिनां रम्यां हंस सारस सेविताम्।
कुसुमैरूप सम्पन्नां पश्य मदाकिनीं नदीम्।
नानाविधैस्तीररुहै वृत्तां पुष्पफलद्रुमैः।
जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तर वाससः।
ऋष्यस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये।
इमां हि रम्यां गजयूथ लोहितां निपीततोयां गजसिंह वानरैः।
सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां न सोऽस्ति यः स्यान्न गतक्लमः स्यात्।
—वाल्मीकि रामायण : अयोध्याकाण्ड, ९५ सर्ग

वाल्मीकि के समय में चित्रकूट का दर्शन तथा मन्दाकिनी के जल का स्नान बड़ा ही पुण्यदायक तथा कल्याणकारी माना जाता था और चित्रकूट-वास शोक-विपत्ति नाशक एवं परम शान्तिदायक होता था। भगवान राम ने यह बात कई बार कही है कि चित्रकूट में रहने से वनवास का दुख उन्हें जरा भी प्रतीत नहीं हुआ :

न राज्यभ्रंशनं भद्रे ! न सुहृद्भिर्विना भवः।
मनो मे वाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्॥
यदीह शरदोऽनेकांस्त्वया सार्धमनन्दिते।
लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति।
दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्।
—वाल्मीकि रामायण : अयोध्याकाण्ड, ९४-९५

वाल्मीकि-युग में चित्रकूट ऋषियों-मुनियों तथा सिद्धों-तपस्वियों के निवास की साधना भूमि थी, किन्तु वहाँ कोल-किरात जैसी वन्य-जातियों का नाम-निर्देश नहीं

मिलता। इससे ऐसा लगता है कि यहाँ उस समय तपस्वियों के अलावा अन्य जन-जातियाँ नहीं रहती थीं। कालक्रम में ये जातियाँ दक्षिण भारत की ओर से आकर यहाँ बस गयी होंगी, जिनका उल्लेख तुलसीकृत रामायण में मिलता है।

• कालिदासकालीन चित्रकूट

वाल्मीकि-काल भारतीय सभ्यता के उत्कर्ष का आदि-काल माना जाता है और उसका ऐतिहासिक दृष्टि से समय-निर्धारण करना बड़ा ही कठिन है। किन्तु महाकवि कालिदास ईसा के पूर्व प्रथम शती में उत्पन्न हुए थे, यह ऐतिहासिक सत्य है। इसे हम मध्ययुग भी कह सकते हैं। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में भी चित्रकूट का विशद उल्लेख है और यह स्थल तब भी एक महान धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक पवित्र तीर्थ माना जाता था।

चित्रकूट की वनस्थली हरी-भरी तथा पुष्पों और फलों से सम्पन्न थी। यहाँ के वृक्ष अतिथियों का स्वागत शीतल छाया तथा मधुर फल देकर करते थे। ऋषियों की तपश्चर्या से यहाँ का वातावरण इतना पवित्र तथा सात्विक था कि मनुष्यों को क्या कहा जाय, हिंस्र-व्याघ्रादि भी सात्विक प्रकृति के हो गए थे और बिना पुष्पों के आये ही वृक्षों में फल लग जाते थे। रघुवंश, सर्ग १४ के अनुसार आश्रमों में तपस्वीगण वीरासन लगा कर वृक्षों के नीचे ध्यानमग्न रहते थे :

छायाविनीताध्व परिश्रमेषु भूयिष्ठ सम्भाव्य फलेष्वमीषु।
तस्यातिथी ना मधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु।।
आनिग्रहत्रास विनीत सत्वम पुष्प लिंगात्फलवन्धि वृक्षम्।
वनं तपः साधन मेत दत्रे राविष्कृतोदग्रता प्रभावम्।।
वीरासनर्ध्यान जुपामृषीणाममी समध्वासित वेदि मध्याः।

कालिदास के समय की मन्दाकिनी नदी का नाम मन्दाकिनी ही था। इसका जल बड़ा स्वच्छ था, प्रवाह मन्द था और यह ऐसी प्रतीत होती थी कि मानों पृथ्वी रूपी नायिका के गले में मोतियों की माला पड़ी हो; देखें, रघुवंश, सर्ग १४ :

एषा प्रसन्नास्तिमित प्रवाहा सरिद्विदूरान्तर भावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः।।

चित्रकूट पर्वत उस युग में भी बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता था। यहाँ के वृक्षों की छाया बड़ी शीतल तथा स्निग्ध थी। पर्वत का चतुर्भाग भगवान राम के चरण-चिह्नों से अंकित होने के कारण पवित्र तथा कल्याणप्रद समझा जाता था। कालिदास

ने चित्रकूट पर्वत के स्वरूप का चित्राङ्कन करते हुए लिखा है कि यह मस्त साँड़ की तरह सुहावना लग रहा है। गुफा ही इसका मुख है, जलधारा की ध्वनि ही इसका शब्द है, इसकी चोटियाँ इसके सींग हैं और उनमें छाये बादल ही मानो सींगों पर कीचड़ लिपटा हुआ है :

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु।
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रुमेषु ॥ –पूर्व मेघ, १

धारा स्वनोद् गारि दरी मुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्वुदवप्रपंकः।
वध्नाति मे वन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ।।–रघुवंश, १४

कालिदास के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि कालिदास के समय तक चित्रकूट भयानक वनाञ्चल ही रहा। यहाँ ऋषिगण तथा सिद्ध लोग ही रहते थे। पर चित्रकूट के पार्श्ववर्ती संभागों में बस्तियाँ बसने लगी थीं और खेती करने वाले कृषक-गण भी आबाद हो गए थे। क्योंकि मेघ को चित्रकूट से अलकापुरी भेजते समय मालक्षेत्र (पाठाक्षेत्र, जो चित्रकूट के दक्षिण-पूर्व पर्वतीय भूभाग है) का परिचय देते हुए कालिदास जी कहते हैं कि मालक्षेत्र (पाठाक्षेत्र) की कृषि एकमात्र वर्षा जल पर ही आधारित है, इसलिए इस जनपद की भोली-भाली कृषक ललनायें तुम्हें वड़े उत्साह से देखेंगी :

त्वय्या यत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधू लोचनैः पीयमानः ।।
सद्यः सीरोत्कषण सुरभि क्षेत्र मारुह्य मालं।
किञ्चित्पश्चात् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।। –पूर्वमेघ, १६

● तुलसी-कालीन चित्रकूट

संत कवि गोस्वामी तुलसीदास के समय (१६वीं शती) तक यद्यपि चित्रकूट में काफी परिवर्तन आ गया था, चतुर्दिक बस्तियों का विकास हो गया था और इसके वन-प्रान्त भाग में वन्य-जातियाँ - कोल-किरातादि - निवास करने लगी थीं, फिर भी चित्रकूट का धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक रूप वैसा ही अक्षुण्ण एवं सुरक्षित था, जैसा वाल्मीकि-युग अथवा कालिदास-काल में था।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म चित्रकूट क्षेत्र के समीपवर्ती गाँव राजापुर में हुआ था और राजापुर छोड़ने के बाद उन्होंने चित्रकूट में वास भी किया था, इसलिए चित्रकूट के सम्बन्ध में उनका विस्तृत ज्ञान स्वाभाविक था। चित्रकूट की वनश्री

का जो भी वर्णन तुलसीदास जी ने किया है, वह उनका आँखों देखा विवरण था और चित्रकूट के अलौकिक प्रभाव का जैसा मूल्यांकन उन्होंने किया, वह भी उनका अनुभूति-परक था।

तुलसी के अनुसार चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा निराली थी। नाना प्रकार के विटपों तथा लताओं से वनाञ्चल सुशोभित था। जगह-जगह पर सुन्दर झरने झरते थे। विविध पक्षियों का श्रोत-पेय कलरव होता रहता था। मधु (शहद), फल तथा कन्द-मूल उस समय भी पर्याप्त मात्रा में यहाँ उपलब्ध थे। मृग, सिंह तथा हाथी जंगलों में घूमते रहते थे। ऋषि, मुनि तथा तपस्वियों के अनेक आश्रम थे :

झरना झरहिं सुधासम वारी। त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी।।
विटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती।।
नील कण्ठ कल कण्ठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं विहँग, श्रवण सुखद चित चोर।।
करि केहरि कपि कोल कुरंगा। विगत वैर विचरहिं सब संगा।।
सो बन सैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन।।
खगहा करि हरि बाघ वराहा। देखि महिष वृष साज सराहा।।
बयरु विहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।।
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान विविध विधि बाजहिं।।
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन।।
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा।।
बेलि विटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद मंगल मूला।।

यह तो रहा चित्रकूट का वाह्य सौन्दर्य, जो आज भी थोड़ी-बहुत विकृति के साथ विद्यमान है और यात्रियों एवं पर्यटकों के आकर्षक एवं चित्तानुरञ्जन का केन्द्र बना हुआ है। परन्तु अनादि काल से लेकर आज तक चित्रकूट कोटि-कोटि श्रद्धालु जनता के आदर, सम्मान तथा आराधना का जो भाजन बना हुआ है, उसका प्रमुख हेतु उसका अन्तः सौन्दर्य—आध्यात्मिकता एवं पुण्यशीलता—है। इसीलिए प्राचीन महर्षियों ने इसे अपनी तपश्चर्या का स्थल चुना था और वाल्मीकि-भरद्वाज ऐसे महात्माओं ने भगवान राम को भी चित्रकूट में प्रवास-काल बिताने की सम्मति दी थी।

किसी स्थान विशेष की पवित्रता और पुण्यता सहज भी होती है, जिसमें वहाँ की नैसर्गिक स्थिति—प्राकृतिक सुषमा, जलाशयों तथा अन्य भौगोलिक उपकरणों

—का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किन्तु इसका शक्तिशाली और प्रभविष्णु हेतु अर्जित होता है, जिसमें उस स्थान में बसने वाले धार्मिक, आध्यात्मिक एवं पवित्र सन्त-महात्माओं की सत्क्रियाओं के परमाणुओं की प्रसरण शील विद्युत् शक्ति का संयोग होता है। उन पवित्रात्माओं की सत्क्रियाओं की वृद्धि के साथ-साथ इसका उत्तरोत्तर विकास भी होता चला जाता है। चित्रकूट की ऐसी ही स्थिति है। एक ओर तो यहाँ का प्राकृतिक वातारण सहज आकर्षक, शान्तिदायक तथा चित्तानु-रञ्जक है, दूसरी ओर प्राचीनकाल से असंख्य ऋषियों-तपस्वियों ने यहाँ इतनी अधिक आध्यात्मिक साधना एवं तपश्चर्या के अनुष्ठान सम्पन्न किए हैं कि यहाँ के अणु-अणु में पवित्रता भर गयी है और सारा वातावरण ही पुण्यमय हो गया है। तुलसी के युग तक आते-आते चित्रकूट का बाह्य सौन्दर्य गौण पड़ गया था और इसके अन्त:सौन्दर्य की महत्ता चरम स्थिति तक पहुँच गयी थी। इसमें आदि-काल से ले कर तब तक के सिद्ध-महात्माओं की सत्क्रियाओं का प्रभाव भी था और उससे भी अधिक भगवान राम का यहाँ अनेक वर्षों तक निवास रहा।

चित्रकूट में आकर्षण की दो प्रमुख वस्तुयें हैं—चित्रकूट पर्वत (श्री कामद-गिरि) तथा मन्दाकिनी नदी। तुलसी के अनुसार इन दोनों का अलौकिक प्रभाव अनिर्वचनीय है। चित्रकूट पर्वत एक ऐसा अचल शिकारी है, जिसका निशाना पाप-रूपी मृग को मारने में कभी विफल नहीं होता और ठीक इसी प्रकार मन्दाकिनी नदी का भी प्रभाव है, जो गंगा जी की ही एक धारा है और जैसे डाकिनी (डाइन) बच्चों को खा जाती है; उसी प्रकार यह पापों को खा जाती है :

चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकै न घात मार मुठभेरी॥
सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥

—रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड

तुलसी के अनुसार चित्रकूट समस्त शोकों का नाश करने वाला, कलि के उत्पातों को दूर करने वाला, सभी का कल्याण करने वाला एक ऐसा हरा-भरा वृक्ष है, जिसे मन्दाकिनी रूपी मालिन अपने निर्मल जल से सदा सींचती रहती है। इस चित्रकूट रूपी कल्याण-वृक्ष की छाया को पथिक रूपी साधक बड़े भाग्य से पाते हैं और इससे अपना अभीष्ट प्राप्त कर परितृप्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो व्यक्ति चित्रकूट में रह कर मन्दाकिनी के जल का स्नान-पान करता हुआ भगवान श्रीराम के नाम का स्मरण करता है, उसे सहज ही परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। श्री कामदगिरि (चित्रकूट) ऐसा पर्वत है, जो मनोरथों को पूरा करने

के लिए चिन्तामणि तथा कल्पवृक्ष के समान है और जो युग-युगों से पृथ्वी पर जगमगा रहा है :

सब सोच विमोचन चित्रकूट। कलि हरन करन कल्याण बूट।।
मन्दाकिनि मालिनि सदा सींच। बर वारि विषम नर नारि नीच।।
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ।।
—विनयपत्रिका : २३

राम नाम जप जाग करत नित मज्जत पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भाव तो मन कौ सुख साधन अनयास महाफलु।
कामद मनि कामता कलप तरु सो जुग जुग जागत जगती तलु।
—विनयपत्रिका : २४

ऊपर संकेत दिया जा चुका है कि तुलसी के समय तक चित्रकूट में वन्य-जातियाँ भी आ कर बस गयीं थीं; जो असभ्य, अशिक्षित, निर्धन तथा सभी प्रकार से अभाव-ग्रस्त तो थीं, पर ऋषियों-मुनियों के साहचर्य से उनमें अतिथि-सत्कार एवं विनम्रता जैसे मानवोचित गुणों का विकास इतना अधिक हो गया था कि तथाकथित सभ्य नागरों का भी व्यवहार उनके समक्ष फीका पड़ सकता है :

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई।।
कन्द मूल फल भरि-भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।
कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधासी।।
भरि भरि परनकुटी रचि रूरी। कन्द मूल फल अंकुर जूरी।।
सबहिं देहिं करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा।।
देहिं लोग बहुमोल न लेहीं। फेरत राम दुहाई देहीं।।
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा।।
तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगधारे। सेवा जोगु न भाग हमारे।।
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। इंधन पात किरात मिताई।।
यह हमारि अति बड़ सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई।।
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुघाती।।
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहि पट कटि नहिं पेट अघाहीं।।
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।।
—रामचरित मानस : अयोध्याकाण्ड

● आज का चित्रकूट

आज चित्रकूट वैसा नहीं रहा जैसा, वाल्मीकि अथवा कालिदास के समय था। काल के अनन्त प्रवाह में उसमें अनेक परिवर्तन आ गए। सृष्टि के विकास क्रम में चित्रकूट में भी सभ्यता का विकास हुआ और बड़े-बड़े वन-कान्तार आबादियों में परिवर्तित हो गए। चित्रकूट के समीपवर्ती इलाकों में गाँव-के-गाँव बसते चले गए और कुछ आबादियाँ तो आज बढ़ती-बढ़ती अच्छे शहर का रूप धारण करती चली जा रही हैं, जिनमें चित्रकूट की परिधि में ही करवी तथा सीतापुर प्रमुख हैं। गाँवों की संख्या की वृद्धि का तो कहना ही क्या !

वाल्मीकि को हुए तो एक नहीं अनेक युग बीत गए, चार सौ वर्ष पूर्व तुलसी के समय में भी ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे अनुमान लगे कि उस समय चित्रकूट में कोई मठ या मन्दिर रहा हो, सिवाय इसके कि चारों तरफ घोर जंगल और उसके बीच में ऋषियों, मुनियों तथा वन्य-जातियों की विद्यमानता थी। पर इतिहास साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि तुलसी के कुछ ही समय बाद से चित्रकूट में मठ एवं मन्दिरों के विकास की बाढ़-सी आ गयी और उनका इतनी द्रुतगति से निर्माण हुआ कि चित्रकूट पर्वत की परिक्रमा तथा उसका उत्तरी भाग थोड़े ही दिनों में विशाल मन्दिरों एवं अखाड़ों से भर गया। रामघाट के पास मन्दाकिनी नदी में दो फर्लांग लम्बे पक्के घाटों का निर्माण हो गया और श्री कामदगिरि (चित्रकूट) के चारों ओर परिक्रमा-पथ का पक्का मार्ग बना दिया गया। इन कार्यों के सम्पादन में तत्कालीन पन्ना नरेश श्री अमान सिंह (१८वीं शती का प्रारम्भ) तथा श्री हिन्दूपत (उन्नीसवीं शती का प्रारम्भ) का प्रमुख योगदान है। उन्होंने न केवल सैकड़ों अखाड़ों (मठ-मन्दिरों) का निर्माण कराया, वरन उनके भरण-पोषण के लिए लाखों रुपयों की आय के पृथक्-पृथक् सैकड़ों गाँवों की उनमें माफियाँ भी लगाईं। बाद में धीरे-धीरे अन्य राजाओं तथा साधुओं के स्वतंत्र देवालय भी बने। कालिंजर दुर्ग के पतन के बाद चित्रकूट क्षेत्र में कई रियासतों (राज्यों) का भी उदय हुआ और इन जागीरदारों के यहाँ महल भी बने। इधर चित्रकूट के पास से ही झाँसी-मानिकपुर रेलवे लाइन के निकल जाने से यातायात की सुविधायें बढ़ीं और कलकत्ता जैसे महा नगरों के सम्पन्न परिवारों ने चित्रकूट में कई धर्मशालायें भी बनवा दीं।

मन्दिरों एवं अखाड़ों के निर्माण तथा यातायात के साधनों के विकास के साथ-साथ चित्रकूट में 'मेला' लगने की प्रक्रिया भी शुरू हुई और प्रति मास की

अमावस्या तथा दीपमालिका और रामनवमी के अवसर पर यहाँ भारी मेला लगने लगा, जिसमें देश के कोने-कोने से लाखों दर्शनार्थियों की भीड़ एकत्र होने लगी। इधर जैसे-जैसे देश की जनसंख्या में और यातायात के उपकरणों में वृद्धि होने लगी, मेले में सम्मिलित होने वाले यात्रियों एवं पर्यटकों की संख्या भी बढ़ने लगी। फलस्वरूप दीपमालिका ऐसे मेले के अवसर पर आजकल यात्रियों की संख्या पाँच लाख से भी ऊपर पहुँच जाती है।

सांस्कृतिक तीर्थ होने के कारण चित्रकूट में भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत की शिक्षा का अच्छा प्रसार हुआ। यही कारण है कि जन-संख्या की दृष्टि से एक छोटी जगह होते हुए भी इस समय चित्रकूट क्षेत्र में लगभग एक दर्जन संस्कृत पाठशालायें स्थापित हैं, जिनमें से अनेक पाठशालाओं में 'आचार्य' पर्यन्त समुचित शिक्षा की व्यवस्था है। इधर आधुनिक कालेजों की संख्या में भी बड़ी द्रुतगति से वृद्धि हो रही है। अब तक इस क्षेत्र में दर्जनों हाईस्कूल तथा चार-पाँच इण्टरमीडिएट कालेज खुल गए हैं और इस वर्ष चित्रकूटधाम महाविद्यालय (डिग्री कालेज) खोलने का भी कार्यारम्भ हो गया है।

इसके अतिरिक्त चित्रकूट में विभिन्न तीर्थाश्रमों तक पहुँचने के लिए आधुनिक सड़कों का भी निर्माण हुआ है और हो रहा है, बिजली तथा पेयजल (नल योजना) की भी व्यवस्था हो चुकी है। नये-नये मन्दिरों, कुटियों तथा धर्मशालाओं का भी निर्माण काफी मात्रा में हुआ है। आने-जाने के लिए बसों, टैक्सियों तथा टेम्पो गाड़ियों का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया है। तीर्थ की वृद्धिंगत लोकप्रियता के साथ तीर्थ-पुरोहित (पण्डागण) भी बस गए, जिनसे दूर-दूरागत यात्रियों को आवासादि की सुविधायें भी मिलने लगीं। कहने का अभिप्राय यह कि चित्रकूट जैसे आरण्यक तीर्थ में भी वे सभी चीजें तथा सुविधायें जुट गयी हैं; जो काशी, अयोध्या जैसे नगर तीर्थों में उपलब्ध हैं।

फिर भी यह परम संतोष की बात है कि आधुनिकता के विकास के बावजूद चित्रकूट का प्राचीन आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक स्वरूप आज भी सुरक्षित है। आज भी यहाँ हजारों की संख्या में साधु-तपस्वी कुटीरें बना कर तपश्चर्या में निरत हैं और देश के कोने-कोने से प्रति मास लाखों यात्री यहाँ पहुँच कर आध्यात्मिक-शान्ति प्राप्त करते हैं।

वाल्मीकि से लेकर तुलसी तक ने चित्रकूट की वन-श्रेणी की सुषमा के मनोरम गीत गाए हैं और सच पूछा जाय तो यह रमणीक वन-सम्पदा ही चित्रकूट तीर्थ की

विभूति है, जिसने नगरतीर्थों की तुलना में इसे विशिष्ट स्थान दे रखा है। यह वनश्री आज भी चित्रकूट में आकर्षण एवं चित्तानुरञ्जन का विषय बनी हुई है। श्री कामदगिरि के उत्तर भाग में अवश्य वन समाप्त हो गया है और इस ओर वन-वृक्षों का स्थान मन्दिरों, अखाड़ों तथा जन सम्पर्की वस्तुओं ने ले लिया है, पर पर्वत के दक्षिणी भाग में रामघाट (मन्दाकिनी तट) से ले कर अनुसूया आश्रम तथा इसके आगे भी लगभग पचासों मील के क्षेत्र में इतना घना जंगल है, जहाँ आज भी दिन-दहाड़े सिंह गरजता रहता है तथा वाल्मीकि-तुलसीकालीन सभी पशु-पक्षी अबाध विचरण करते रहते हैं। हाँ, जंगली हाथी अवश्य आजकल चित्रकूट में नहीं पाये जाते, पर पालतू हाथी अभी भी कहीं-कहीं चरते मिल जाते हैं। अनुसूया आश्रम, गुप्त गोदावरी, मड़फा, स्फटिक शिला, हनुमानधारा, देवांगना, शरभंग आदि कुछ ऐसे ही तीर्थाश्रम हैं, जहाँ इतना भयावह, किन्तु सुहावना वनाञ्चल है; जिन्हें देख कर वाल्मीकि-कालिदास और तुलसी के काव्य-ग्रन्थों में रूपांकित अरण्यश्री का अखण्ड चित्र आँखों के सामने सजीव हो उठता है और पर्यटक इन तीनों महाकवियों के समकालीन चित्रकूट के लहलहे वन-वृक्षों, चहकते पक्षियों, फुदकते मृगशावकों, कूदते वानरों, दहाड़ते सिंहों, झरझराते झरनों और छलछलाती मन्दाकिनी को आज भी उसी रूप में पाकर युगीनदूरता को भूल जाता है।

● चित्रकूट के अखाड़ों एवं देवालयों का संक्षिप्त परिचय

जैसे वाराणसी नगर में मन्दिरों की बहुलता पायी जाती है, वैसे ही चित्रकूट के इस आरण्यक धाम में अखाड़े काफी संख्या में पाये जाते हैं। इन अखाड़ों की स्थापना चित्रकूट के तपस्वी सन्तों ने की थी, पर अधिकांश अखाड़ों के भवनों का निर्माण तत्कालीन पन्नानरेशों की उदारता तथा दानशीलता से सम्पन्न हुआ, जिन्होंने यहाँ के तेजस्वी सिद्ध-महात्माओं की सिद्धियों एवं तपस्याओं से प्रभावित हो कर उनका निर्माण कराया और अखाड़ों के मुख्य-देवों की 'भोग-पूजा' एवं साधु-समागतों के जीवन-निर्वाह के लिए प्रायः सभी अखाड़ों में माफी के रूप में कुछ गाँव लगाये, जिनकी सनदें आज भी ताम्रपत्रों पर अखाड़ों के महन्तों के पास मौजूद हैं। इन्हें अंग्रेजों ने भी माना और इधर स्वतंत्र भारत में जमींदारी उन्मूलन हो जाने पर भी अखाड़ों में समर्पित गाँवों तथा भू-सम्पत्तियों का प्रतिकर प्रति वर्ष अखाड़ों के महन्तों को सरकारी खजाने से प्राप्त होता रहता है।

इन अखाड़ों में से कुछ तो समय के कुचक्र में पड़ कर जीर्ण-शीर्ण दशा में अपने अतीत की स्मृति पर आँसू बहा रहे हैं, पर अधिकांश अखाड़ों तथा देवालयों में आज भी कुछ विकृतियों के साथ भारतीय संस्कृति के परिवेश में उनकी स्थापना के मूल-भूत उद्देश्यों के संरक्षण की चेष्टा की जा रही है।

चित्रकूटधाम में वैष्णव मतावलम्बी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रमुख सात अखाड़े हैं : १. निर्वाणी अखाड़ा, २. दिगम्बर अखाड़ा, ३. निर्मोही अखाड़ा, ४. संतोषी अखाड़ा, ५. महानिर्वाणी अखाड़ा, ६. खाकी अखाड़ा तथा ७. निरालम्बी अखाड़ा।

इनमें से निर्वाणी अखाड़ा, खाकी अखाड़ा तथा निरालम्बी अखाड़े की अनी 'निर्वानी अनी' कही जाती है और इसका निशान एक रंग का होता है, जिसमें श्री हनुमान जी एवं श्री सूर्य भगवान का चिह्न होता है।

दिगम्बर अखाड़े की 'दिगम्बर अनी', निशान पंचरंगा और चिह्न श्री हनुमान जी व श्री सूर्य भगवान का ही होता है।

निर्मोही अखाड़ा, संतोषी अखाड़ा तथा महानिर्वाणी अखाड़ा की अनी 'निर्मोही' कहलाती है। निशान भी पाँच रंग का होता है और निशान पर श्री हनुमान जी व श्री सूर्य भगवान के चिह्न होते हैं।

इस सम्प्रदाय की चित्रकूट में आठ गद्दियाँ हैं, जिन्हें पन्नानरेश से विधानतः विशेष सम्मान प्राप्त हैं : १. रामबाग, २. करवी माफी, ३. ददरी, ४. यज्ञवेदी, ५. सीतापुर, ६. बालाजी, ७. गूदड़ तथा ८. खोही स्थान।

दो स्थान चित्रकूट में श्री रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। उन्हें भी पन्ना-नरेश से सम्मान प्राप्त है : १. बड़ा मठ तथा २. अचारीजी का स्थान (नया गाँव)।

उपर्युक्त अखाड़ों की शाखा-प्रशाखा के रूप में श्री रामानंद संप्रदाय के अंतर्गत और भी कई अखाड़े तथा मन्दिर हैं, जिनकी संख्या सौ से भी अधिक है; जिनमें पन्नानरेशों—श्री अमान सिंह और श्री हिन्दूपत (शासन काल १६वीं-१७वीं शताब्दी)—द्वारा माफियों के रूप मे गाँव लगाए गये थे। बाद में अनेक ऐसे भी देवालयोंका निर्माण हुआ है, जिनमें किसी राजा विशेष से अधिकृत दान नहीं मिला, किन्तु सन्तों-महात्माओं ने अपनी तपश्चर्या के बल पर श्रद्धालु जनता को आकृष्ट कर उनका विकास किया और स्वयं सिद्धि तथा स्वावलम्बन के बल पर नरेशों से प्राप्त माफियों वाले अखाड़ों से भी बढ़ कर जिन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की है, उनमें 'पीली कोठी' (संन्यासी-आश्रम) तथा जानकी कुण्ड के स्व० महात्मा श्री रणछोर

दास जी के स्थान प्रमुख हैं। विजावर नरेश का 'विजावर मन्दिर' तथा चरखारी नरेश द्वारा बनवाया गया 'चरखारी मन्दिर' भी अच्छे माने जाते हैं। चित्रकूट में अखाड़ों तथा प्रतिष्ठित देवालयों की संख्या इतनी अधिक है कि स्थानाभाव से सब का पृथक्-पृथक् परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं।

यहाँ प्रसंगवश यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि अध्यात्म के उपासक वैष्णव धर्मावलम्बी सन्त-महात्माओं के सम्प्रदाय में युद्ध एवं संघर्ष सूचक 'अखाड़ा' तथा 'अनी' (सेना) आदि शब्दों का समावेश क्यों और कैसे हुआ ? अर्थात् भगवान के पवित्र मन्दिरों एवं वीतराग सन्तों की आराधना स्थली को 'अखाड़ा' और सन्तों की जमातों को 'अनी' (सेना) क्यों कहा गया ? इसका रहस्य यह है कि मध्ययुग में यवनों-हूणों जैसे बर्बर एवं विधर्मियों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति एवं धर्म खतरे में पड़ गया था। विधर्मियों द्वारा हिन्दुओं के मन्दिरों को ढहाया जा रहा था और उनके देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा था। संस्कृति के ऐसे संकटकाल में उसकी रक्षा करना आवश्यक हो गया था। फलस्वरूप वैष्णवों एवं शैवों ने अध्यात्म के साथ-साथ लौकिक शक्ति की भी आवश्यकता का अनुभव किया और धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु आततायियों का सामना करने तथा उनकी कुचेष्टाओं को विफल करने के लिए सम्प्रदाय के अन्दर ही साधुओं की सेनायें तैयार कीं, जिन्होंने 'स्वधर्म' के लिए देश-काल की परिस्थिति के अनुसार अनासक्त हिंसा का भी आश्रय लिया और उसे आपद्धर्म समझ कर सिक्खों की ही भाँति अस्त्र-शस्त्रों को भी ग्रहण किया। इस प्रकार जिन देवालयों एवं स्थानों में साधुओं की ऐसी प्रतिरक्षात्मक सेनायें तैयार की जाती थीं, उन्हें 'अखाड़ा' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा और अखाड़ों में भर्ती होने वाले साधुओं को 'नागा' तथा उनकी जमातों को 'अनी' (सेना) कहा गया। धर्म एवं संस्कृति के उद्देश्य से ही अन्य तीर्थों की भाँति चित्रकूट में भी लगभग ४०० वर्ष पूर्व साधुओं के उपर्युक्त सात 'अखाड़े' स्थापित किए गए थे।

प्राप्त जानकारी के अनुसार वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित विरक्त साधु ही अखाड़ों में रखे जाते हैं और अखाड़ों के 'नागा' (रक्षा सेना के सैनिक) बनने के पूर्व उसे कई साधनात्मक सोपान चढ़ने पड़ते हैं। सर्व प्रथम हरिद्वार, वृन्दावन, प्रयाग, उज्जैन अथवा नासिक में 'कुम्भ' के अवसर पर उसे शपथ लेनी पड़ती है। 'निर्वाणी अनी' में सम्मिलित होने वालों को शालिग्राम और तुलसी की शपथ, 'निर्मोही अनी' में 'तुलसी और महाप्रसाद की सौगन्ध' खानी

पड़ती है। इसी प्रकार 'दिगम्बर अनी' में भी शपथ लेकर ही सम्मिलित होना पड़ता है।

तदनन्तर वह साधु ३ वर्षों तक 'यात्री' कहलाता है। इस अवधि में 'यात्री' को सफाई करने और सभी साधुओं को दतून देने आदि का काम करना पड़ता है। इसके बाद ३ वर्षों तक वह 'छोरा' (बालक) के रूप में रहता है। इस काल में उसे परिचर्या आदि का कार्य करना पड़ता है, फिर तीन वर्ष तक उसे 'हुरदंगा' कहा जाता है। इस समय उसे रसोई आदि का कार्य सम्पादन करना पड़ता है। तत्पश्चात् एक वर्ष तक वह 'मुरेठिया' कहलाता है। मुरेठिया को जमात की मैनेजरी एवं लिखा-पढ़ी का काम सौंपा जाता है। इस प्रकार साधुओं के बीच रह कर वह साधु आचार-विचार से पूर्ण परिचित एवं अभ्यस्त हो जाता है और समाज की सेवा एवं रक्षा की भावना उसमें सुदृढ़ हो जाती है; तब उसे 'उज्जैन' या 'हरिद्वार' में 'नागा' बनाया जाता है। नागाओं की ४ श्रेणियाँ होती हैं : १. वसंतिया, २. हरिद्वारी, ३. सागरिया तथा ४. उज्जैनिया। इनमें से जो साधु उज्जैन में 'नागा' बनाया जाता है, उसे आचार एवं नियम-भेद से 'सागरिया' या 'उज्जैनिया' कहा जाता है और हरिद्वार में दीक्षित नागा को 'वसन्तिया' या 'हरिद्वारी' कहते हैं।

[एक महन्त जी से वार्तालाप के आधार पर प्रस्तुत]

• चित्रकूट की आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार

चित्रकूट के देशव्यापी महत्व का कारण उसका प्राकृतिक सौन्दर्य तो है ही, पर युग-युगों से चित्रकूट को जो एक महान तीर्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है, उसका मुख्य कारण उसकी आध्यात्मिकता है। अनादिकाल से वीतराग सन्तों की तपश्चर्या से यहाँ के अणु-अणु में आध्यात्मिक पराशक्ति व्याप्त हो गयी है। इस पराशक्ति के चमत्कारों की अनेक गाथायें आप्त पुरुषों से सुनी जाती हैं, जिन पर आज के वैज्ञानिक एवं तर्क प्रधान युग में केवल वही व्यक्ति विश्वास करते हैं, जिनके मन में श्रद्धा तथा पवित्रता का आधिक्य है। इन चमत्कारिक-गाथाओं में से एक गाथा अनुसूया-आश्रम के परमहंस बाबा के सम्बन्ध में प्रचलित है, जिन्होंने एक बार वृहत् भण्डारा (भोजनदान) किया था। कहा जाता है कि पूड़ियाँ बनाते समय घी की कमी हो गयी। याचकों ने इसकी सूचना सिद्ध बाबा को दी। बाबा जी ने कहा : 'परेशानी क्या है, जाओ दो टीन घी मन्दाकिनी मैया से उधार ले आओ।' निर्देशानुसार मन्दाकिनी के पवित्र जल से भर कर दो टीन लाये गए और याचकों ने ज्योंही उन टीनों को कढ़ाई में उँड़ेला, लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, टीनों का जल

घी में परिणत हो कर कढ़ाई में गिरा। बाद में, कहा जाता है कि सिद्ध-बाबा ने दो टीन घी मन्दाकिनी की धार में प्रवाहित करवा दिया।

एक और चमत्कारिक घटना की बड़ी चर्चा है। चित्रकूट के एक अन्य प्रसिद्ध महात्मा 'गूदड़' बाबा से मिलने के लिए पन्नानरेश आए। उन दिनों गूदड़ बाबा 'चौथिया-बुखार' से पीड़ित थे। राजा के आगमन को सुन कर 'गूदड़' बाबा ने अपने 'चौथिया बुखार' को अपनी गुदड़ी में अधिष्ठित कर पन्नानरेश से वार्तालाप करने लगे। उसी समय राजा ने देखा कि 'गुदड़ी' अकारण काँप रही थी। राजा के बार-बार प्रश्न करने पर गूदड़ बाबा ने कहा कि 'आप से वार्तालाप करते समय तक मैंने अपने बुखार को गुदड़ी में बैठा दिया है।' आश्चर्यचकित हो कर राजा ने कहा कि महाराज, जब आप इतने शक्तिमान हैं तो बुखार को सदा के लिए क्यों नहीं दूर भगा देते, नाहक क्यों कष्ट भोग रहे हैं। उत्तर में गूदड़ बाबा ने कहा कि पूर्वकृत कर्म का भोगना अनिवार्य है। भोगने से ही उसका अन्त होता है। पर यदि मैं अपनी तपस्या से इसे बिना भोगे हटा देता हूँ तो यह प्रारब्ध बन कर मेरे साथ लगा रहेगा और किसी दूसरे जन्म में मुझे इसे भोगना ही पड़ेगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इसी जन्म में भोग कर इसे क्यों न समाप्त कर दूँ।

इस प्रकार के आध्यात्मिक चमत्कारों की अनगिनत घटनायें चित्रकूट के साधु-सन्तों की वाणी से सुनने को मिलती रहती हैं, किन्तु इन घटनाओं तथा गाथाओं की पृष्ठभूमि में किसी ऐतिहासिक प्रलेख के अभाव में इन पर विश्वास करना व्यक्ति की अपनी वृत्ति एवं भावना पर आधारित है; पर चित्रकूट में ऐसी भी अध्यात्म शक्ति का उदाहरण विद्यमान है, जो इतिहास-सम्मत है और जिसके प्रामाणिक अभिलेख (सनद) आज भी उस देवालय में विद्यमान है। इसका सम्बन्ध मुगल-सम्राट औरंगजेब से है, जिसने चित्रकूट के एक सन्त की आत्मशक्ति से प्रभावित हो कर एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया और उसके 'प्रधान देवता' के 'भोग-राग' के लिए ८ गाँवों की माफियाँ लगायीं। विवरण इस प्रकार है :

• बाला जी मन्दिर और औरंगजेब

[1]सन् १६८३ ई०। रमजान के महीने का १९वाँ दिन। मुगल सम्राट्

---

१. देखो, धर्मयुग : २६ सितंबर, १९७१ ई० : 'चित्रकूट का बाला जी मन्दिर, जिसे औरंगजेब ने बनवाया था' : लेखक : बाबूलाल गर्ग, शास्त्री।

औरंगजेब ने चित्रकूट की यात्रा सम्पन्न की। और इस यात्रा में उसने अपने इतिहास-विश्रुत जीवन में एक ऐसा नवीन अध्याय जोड़ दिया, जिसे आश्चर्यजनक तो नहीं कहा जा सकता, पर विचारणीय वह अवश्य है। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार औरंगजेब हिन्दू-धर्म का कट्टर विरोधी और हिन्दुओं के मठ-मन्दिरों को ढहाने वाला तथा उनके देवी-देवताओं की मूर्तियों को तोड़ने वाला था। किन्तु उसकी चित्रकूट-यात्रा में एक ऐसा भी तथ्य प्रकाश में आया, जिसने उसके व्यक्तित्व की एक और तस्वीर पेश की। औरंगजेब ने चित्रकूट में पयस्विनी-तट स्थित 'बाला जी मन्दिर' के संत श्री बालकदास जी महाराज की साधना एवं सिद्धि से प्रभावित हो कर मन्दिर के प्रधान देवता श्री ठाकुर बाला जी के सम्मान में विशाल मन्दिर का निर्माण कराया और श्री ठाकुर बाला जी की 'पूजा' और 'भोग' के लिए आठ गाँव और कृषि योग्य बिना लगानी ३३० बीघा अतिरिक्त भूमि के साथ मन्दिर के अन्य खर्चों के लिए एक रुपया दैनिक अनुदान (भत्ता) भी प्रदान किया।

औरंगजेब जैसा कट्टर मूर्ति भञ्जक मुसलमान क्यों और कैसे यह सब कर सका। आज इसकी सही और प्रामाणिक जानकारी अतीतगत काल खण्ड के गर्भ में विलीन है; पर प्रचलित किंवदन्तियाँ कहती हैं—चित्रकूट में पहुँचते ही औरंगजेब ने सेना को आदेश दिया था कि भोर होते ही चित्रकूट के सारे मठ-मन्दिरों को तोड़ कर ढेर कर दिया जाए और मन्दिरों की समस्त प्रतिमाओं को चूर-चूर कर पयस्विनी में प्रवाहित कर दिया जाए। किन्तु भोर होने के पूर्व रात में ही सेना के जवानों में ऐसा भयंकर उदर शूल पैदा हुआ कि उनके प्राणों के लाले पड़ गए। औरंगजेब घबरा गया। खोज-खोज कर वैद्य-हकीम बुलाये गए, पर सभी उपचार व्यर्थ हुए। उसी समय किसी ने निवेदन किया—बाला जी अखाड़ा के सिद्ध महात्मा का आशीर्वाद ही अब एकमात्र शरण है। बादशाह दौड़े-दौड़े महात्मा के पास पहुँचे और विनय के साथ सारी घटना कह सुनायी। बाबा जी द्रवित हो उठे। उन्होंने धूनी की 'भभूत' (राख) देकर बादशाह को आशीर्वाद दिया। और आश्चर्य! भभूत मुख में डालते ही सारी सेना चंगी हो गयी। औरंगजेब की खुशी और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके विचारों में परिवर्तन आ गया। नास्तिक परम आस्तिक बन गया। फलस्वरूप संत की आध्यात्मिक शक्ति से उसने उक्त कार्य को सम्पन्न किया।

दूसरी जनश्रुति यह भी संकेत देती है कि चित्रकूट के समीपवर्ती प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर पहुँचने पर बादशाह ने चित्रकूट के महात्मा तपस्वी श्री बालकदास जी

की सिद्धि के चमत्कारों की काफी चर्चायें लोगों से सुनी थीं; अतएव जिज्ञासा और कुतूहल से प्रेरित हो कर औरंगजेब बड़े सात्विक भाव से चित्रकूट आया था और महात्मा जी के दर्शन कर उनकी सिद्धियों के कतिपय चमत्कारों का प्रत्यक्ष अनुभव कर उनसे इतना प्रभावित हुआ कि अपनी सहज वृत्ति को त्याग कर के श्री ठाकुर बाला जी के सम्मान में उसने मन्दिर का निर्माण तथा गाँवों का दान किया।

बहरहाल किंवदन्तियों की प्रामाणिकता सर्वथा सन्दिग्ध होती है, जो गहन खोज अथवा सहज आस्था एवं विश्वास की अपेक्षा रखती हैं, पर इतना तो पूर्ण प्रामाणिक और सही है कि औरंगजेब ने चित्रकूट की यात्रा में मन्दिर का निर्माण कराया और माफी के रूप में आठ गाँवों का दान किया।

दान की पुष्टि में औरंगजेब ने फारसी में एक 'फरमान' जारी किया, जो मूल रूप में मन्दिर के वर्तमान महंत जी के पास अभी तक विद्यमान है। अंग्रेजों के शासन-काल में उसे अंग्रेजी में अनुदित करा कर 'हाईकोर्ट' से प्रमाणित भी करा लिया गया है। औरंगजेब के इस फरमान को आगे चल कर चित्रकूट के अधिपति पन्नानरेश महाराज हिंदूपत (सन् १८१४ ई०) ने स्वीकार किया और बाद में अंग्रेज़ों ने भी उसे ज्यों का त्यों बरकरार रखा। स्वतंत्र भारत में भी जमींदारी उन्मूलन हो जाने के बावजूद औरंगजेब के लगाए हुए गाँवों का प्रतिकर राजकोष से एन्युटी के रूप में उक्त मन्दिर को मिल रहा है। फरमान में उल्लेख है: 'यह फरमान आलमगीर बादशाह के शासन के ३५वें वर्ष रमजान के पवित्र महीने की १९वीं तारीख को जारी किया गया है।' फरमान के लेखक नवाब रफी उलकादर सआदत खाँ वाकया नवीस थे, जो अवध में बादशाह के प्रतिनिधि (वाइसराय) थे। उक्त फरमान को रमजान की २५वीं तारीख दिन शनिवार को शाही रजिस्टर में दर्ज किया गया, जिसका सत्यापन एवं प्रमाणीकरण मुख्य माल अधिकारी श्री मातमिद्दौला रफीउल शाह ने किया और शाही रजिस्टर (कोर्ट-रिकार्ड) में उसे चढ़ाया (दर्ज किया) श्री जमाल मुल्क नाजिम आफताब खाँ ने।

'फरमान' में जारी की गयी राजाज्ञा में कहा गया है कि बादशाह का शाही आदेश है कि इलाहाबाद सूबे के कालिंजर परगना के अंतर्गत चित्रकूट पुरी के निर्वाणी महंत श्री बालकदास जी को श्री ठाकुर बालाजी के सम्मान में उनकी 'पूजा और भोग' के लिए बिना-लगानी माफी के रूप में आठ गाँव--देवखरी, हिनौता, चित्रकूट, रौदेरा, सिरिया, पड़री, जखा और दोहरिया—दान स्वरूप प्रदान किए गए हैं और ३३० बीघा बिना लगानी कृषि योग्य भूमि (राठ परगना

के जाराखाड गाँव की १५० बीघा तथा अमरावती गाँव की १८० बीघा) के साथ-साथ 'कोनी-परीष्टा' परगना की लगान वसूली से एक रुपया दैनिक अनुदान भी स्वीकृत किया गया है। 'फरमान' में यह भी उल्लिखित है कि इसके द्वारा आदिष्ट किया जाता है कि 'राज्य के वर्तमान तथा भावी सामंत, जागीरदार अथवा राज्याधिकारी आठों गाँवों सहित दान की सारी जायदाद को पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिना लगानी माफी के रूप में मानते चले जायेंगेऔर इसमें किसी प्रकार काहस्तक्षेप न करेंगे तथा प्रस्तुत घोषणा के विपरीत कोई कदम न उठायेंगे।'

● चित्रकूट की जल समस्या और उसका समाधान

यह बात अजीब-सी लगती है कि जो क्षेत्र या स्थल अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए विश्व-विख्यात हो, वहाँ पानी की समस्या इतनी विकराल हो कि लोग एक-एक बूंद के लिए तरसते हों। पर भारतीय प्राचीन ग्रन्थ तथा इतिहास साक्षी हैं कि चित्रकूट क्षेत्र जल के लिए आदिकाल से अभिशप्त रहा है। और यह अभिशाप गर्मियों के दिनों में अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाया करता है। पुराणों में उल्लेख है कि प्राचीन काल में चित्रकूट के तपस्वी-महात्माओं को यहाँ का जल संकट जब असह्य हो गया तो देव और दानव—दोनों ने मिल कर चित्रकूट के प्रमुख तपस्वी महाराज अत्रि की धर्मपत्नी महासती अनुसूया से प्रार्थना की कि वे कुछ ऐसा उपाय करें, जिससे चित्रकूट का जल संकट दूर हो। इस पर माता अनुसूया ने चित्रकूट की वनस्थली में एक गड्ढा खोद कर गंगा माता का आवाहन किया और उनसे चित्रकूट का जल संकट दूर करने की प्रार्थना की। गंगा माता ने अपनी एक धारा चित्रकूट को प्रदान की, जो 'मन्दाकिनी' नाम से विख्यात हुई।

इस प्रकार मंदाकिनी के तटवर्ती क्षेत्र की जल-समस्या तो समाप्त हो गयी, पर चित्रकूट क्षेत्र में दूर तक फैले वनाञ्चल की जल-समस्या अभी तक ज्यों की त्यों बनी रही। आजकल चित्रकूट के समीपवर्ती आरण्यक-भूभाग को 'पाठाक्षेत्र' नाम से अभिहित किया जा रहा है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

विन्ध्याचल श्रेणी के अञ्चल में स्थित यह भूभाग अपनी विपन्नता के लिए प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध है। लगभग १०० मील की परिधि में फैला हुआ यह आरण्यक क्षेत्र पर्वतों, टीलों, गहन जंगलों तथा विशाल कन्दराओं-नालों से घिरा हुआ है और शेर, बाघ, रीछ जैसे हिंस्र वन्य-जन्तुओं से संकुल है। चित्रकूटधाम के इस पाठाक्षेत्र के अन्तर्गत लगभग १०० ग्राम हैं, जो जंगलों-पहाड़ों के बीच बसे

हुए हैं। इस भूभाग का क्षेत्रफल लगभग ३ लाख एकड़ है। कुल क्षेत्र की लगभग ५७ हजार एकड़ भूमि में खेती होती है; शेष १ लाख ४३ हजार एकड़ भूमि बंजर, जंगल तथा पहाड़ों के रूप में पड़ी हुई है। भौगोलिक दृष्टि से पाठा क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है: १. पठार का ऊपरी भाग तथा २. पठार का निचला भाग। पठार के ऊपर लगभग ६५ गाँव हैं और इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख एकड़ है, किन्तु कृषि योग्य भूमि केवल २७ हजार एकड़ ही है।

पठार के निचले भाग में ३६ गाँव माने जाते हैं और इसका रकबा लगभग १ लाख एकड़ है, जिसकी ३० हजार एकड़ भूमि में खेती होती है। इस प्रकार पूरे चित्रकूट क्षेत्र (पाठा क्षेत्र) की कुल ३ लाख एकड़ भूमि में से केवल ५७ हजार एकड़ भूमि ही कृषि योग्य है और इसमें से ५ हजार एकड़ से भी कम भूमि अभी सिञ्चित है। इधर वर्षा के पानी का संकट भी इस क्षेत्र में बराबर बना रहता है, इसीलिए यह क्षेत्र प्राचीन काल से अभावग्रस्त तथा निर्धन है। संत कवि तुलसी के शब्दों में यहाँ की मूल निवासी जाति कोल-भीलों की इस उक्ति में यहाँ की सामाजिक स्थिति का सही चित्र उभर आता है:

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई ॥

इस आरण्यक संभाग में आजकल तो प्रायः सभी जातियों के लोग बस गए हैं, किन्तु यह क्षेत्र मूलतः एवं अधिकांशतः आदिवासी कोल-भीलों का है। क्षेत्र की कुल जनसंख्या १ लाख ४४ हजार है इसमें लगभग ४४ हजार अकेली कोल जाति है और शेष एक लाख में विभिन्न जातियों के लोग हैं। पठार के ऊपरी भाग में तो कोल-भीलों की ही अधिकता है। यहाँ की आर्थिक स्थिति इतनी विषम है कि गाँव में एक-दो परिवार अति धनी हैं और शेष परिवार अति निर्धन हैं। समस्त भूमि का स्वामित्व प्रायः ५ प्रतिशत लोगों को ही प्राप्त है शेष लगभग ९५ प्रतिशत जनता भूमिहीन या स्वल्पातिस्वल्प भूमि वाली है। जिनकी जीविका का साधन भूस्वामियों की दासता या मजदूरी करना है।

चित्रकूट क्षेत्र (पाठा क्षेत्र) की प्रमुख समस्या 'जलाभाव' है—जैसा कि ऊपर कहा गया है। और यह जल संकट कोई नया नहीं है। यहाँ एक कहावत प्रचलित है—आग लगै रुखमा ददरी, जहाँ पैसे का दूध टका गगरी। रुखमा-ददरी चित्रकूट से ५ मील पूर्व दो गाँव हैं। इस लोकोक्ति के अनुसार यहाँ उस जमाने में टका (दो पैसे) में एक गगरी पानी बिकता था, जब कि दूध १ पैसा में ही एक गगरी मिल

जाता था। एक अन्य लोकगीत में जिस समय पाठा क्षेत्र की जल-त्रस्त हिन्दू ललना कूक उठती है—मोरी गगरी न फूटे चाहे मनुस मर जाये - यानी मेरी जल भरी गगरी न फूटे चाहे बदले में मेरा मनुस (पति) ही क्यों न मर जाय, तो वेदना के इन स्वरों में पानी के लिए क्षेत्रीय जनता की छटपटाहट मुखर हो उठती है।

लगभग ६६ वर्ष पूर्व १९०५-१९०६ ई० में मिस्टर एफ० वी० पावेल नामक एक अंग्रेज बन्दोवस्त अधिकारी ने पाठा क्षेत्र का सर्वे करने के बाद सर्किल रजिस्टर में लिखा था कि 'पाठा क्षेत्र एक ऐसा भूभाग है, जहाँ हर समय सूखा (जलाभाव) का संकट बना रह सकता है।'

क्षेत्र में जिस वर्ष अपेक्षित वर्षा हो जाती है उस वर्ष खेती का काम तो किसी प्रकार चल जाता है, किन्तु 'पेय जल' की समस्या गर्मियों में बनी ही रहती है। पथरीली तथा पर्वतीय भूमि होने के कारण हर गाँव में कूप तैयार नहीं किए जा सकते। कुओं का पानी इतनी गहराई पर है कि चट्टानों को चीर कर कूप खोदना एक बड़ा ही कठिन काम है। इसलिए सम्भवतया यहाँ के निवासी मीलों दूर किसी जंगली झरने आदि जलाशयों से बैलगाड़ियों द्वारा पेय जल भर लाते हैं। पर यदि दैवयोग से किसी वर्ष अवर्षण हुआ, तो खेती के लिए ही नहीं, पीने के लिए भी पानी के हेतु त्राहि-त्राहि की गुहार मचने लगती है। १९५८ में यहाँ भीषण अकाल पड़ा था। उस समय सरकार ने अनुसूया आश्रम के समीप तथा अन्य जगहों से मन्दाकिनी से पानी ले कर ट्रकों, बैलगाड़ियों द्वारा गाँव-गाँव पहुँचाया था। उसी वर्ष पाठा क्षेत्र जल संकट की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ था। १९५८ के बाद भी प्रायः हर वर्ष थोड़ा-बहुत अवर्षण से जल-समस्या का सामना क्षेत्रीय जनता को करना पड़ा। पर १९६६ में पुनः भीषण सूखा से अकाल की स्थिति पैदा हो गयी, जिससे एक बार पुनः क्षेत्र एक-एक बूंद पानी के लिए कराह उठा। बाँदा जिले के अकाल-पीड़ित क्षेत्र का दौरा करने के उपरान्त 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' न्यूज सर्विस के विशेष संवाददाता श्री एस० सी० काला ने अपने समाचार में २८ अक्टूबर, १९६६ को लिखा है कि : 'सर्वाधिक भयंकर प्रभावित क्षेत्र पाठा (चित्रकूट क्षेत्र) है, जहाँ इस वर्ष वर्षा केवल ६ इंच हुई है; जब कि सामान्यतया यहाँ ३० इंच वारिष हुआ करती है।' श्री काला ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में पाठा क्षेत्र के आदिवासी कोल-भीलों तथा अन्य भूमि-हीनों की दयनीय स्थिति का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्हें द्रुतगति से खाद्य-सामग्री तथा पेय-जल की सम्पूर्ति की जाय, अन्यथा स्थिति बड़ी खतरनाक हो जायगी।

इलाहाबाद से आए हुए 'भारत' (दैनिक) के विशेष संवाददाता ने अपनी रिपोर्ट में सूखे का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करते हुए ५ नवम्बर '६६ को 'भारत' में लिखा है कि 'खाद्याभाव के साथ जलाभाव की समस्या भी उत्पन्न हो गयी है। फलस्वरूप स्थिति और अधिक भयावह हो गयी है। गाँवों के कुएँ सूख रहे हैं। ग्रामीणों के सामने पेय जल का भी संकट उत्पन्न होने वाला है। . . .जून मास तक (यहाँ के) कुएँ बिल्कुल सूख जायेंगे। पशुओं के लिए चारे की समस्या तो जटिल है ही, साथ में उनके पीने के लिए पानी की समस्या भी विकटरूप में सामने आ गयी है।'

इस प्रकार चित्रकूट क्षेत्र में बराबर पड़ने वाले अकालों ने सरकार का ध्यान पूर्णरूपेण अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और सूखा तथा जलाभाव की समस्या को सदा-सदा के लिए खत्म कर देने के उद्देश्य से सरकार ने एक बड़ी विशाल 'पाठा क्षेत्रीय जल-पूर्ति योजना' बनाई है, जिसका कार्यान्वियन भी बड़ी तेजी से किया जा रहा है।

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए श्री ओमप्रकाश विश्नोई (अधीक्षण अभियंता, पंचम मण्डल, स्वायत्त शासन अभियंत्रण विभाग, झाँसी) की एक विज्ञप्ति के अनुसार 'पाठा क्षेत्र जल-पूर्ति योजना' का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

● चित्रकूट (पाठा क्षेत्र) जल-पूर्ति योजना

बाँदा जिले का दक्षिण-पूर्वी भाग (पाठा नाम से प्रसिद्ध), बिखरी बस्ती वाला, लहरदार अधिकतर चट्टानों, ग्रेनाइट तथा अन्य चट्टानों से युक्त, ग्रामीण अंचल में बसा हुआ है। इस क्षेत्र में भूमिगत जल का मिलना कठिन है और यद्यपि गाँवों में छिछले कूप हैं, पर ये सामान्यतः ग्रीष्म के दौरान सूख जाते हैं। विस्तृत सर्वेक्षण तथा सभी सम्भावनाओं को ध्यान में रखने के उपरान्त यह निश्चत किया गया है कि पैंसुनी नदी से पानी पम्प करके, इसे पीने योग्य बनाया जाये और तब इसे पम्प द्वारा ३ कस्बों तथा २६० गाँवों को पहुँचाया जाये, जो लगभग ८०० वर्ग कि. मी. के भू-भाग में बिखरे हुए हैं; जिनमें कि घटित सतहें १०९ से २७७ (एम) तक है।

पैंसुनी नदी बाँदा जिले में दक्षिणी किनारे से प्रविष्ट होती है और जिले में उत्तर-पूर्वी राह से होती हुई अन्ततः यमुना से मिल जाती है। इससे ३६००० किलो लीटर प्रतिदिन से अधिक की उपलब्धि है जिसका ६० प्रतिशत उत्तर प्रदेश स्थित 'कैंचमेन्ट क्षेत्र' से है। कच्चा जल प्रसिद्ध तीर्थ स्थान चित्रकूट से ६ कि. मी. दूर स्थित करवी नामक स्थान के निकट चढ़ाना पड़ता है। एक ६.६ मीटर व्यास का

अन्तप्रवाह कूप (इनलेट) इसके तट पर बनाया जा रहा है, जिस पर कच्चा जल 'पम्पिग स्टेशन' निर्मित होगा। २०.६५ मीटर से हो कर कच्चा जल करवी स्थित 'ट्रीटमेन्ट काय' तक पहुँचाने के लिए चढ़ाया जायेगा। ७४०० कि. ली. पानी प्रतिदिन यहाँ फ्लाक्यूलेशन-क्लैरोफीकेशन रैपिड ग्रेविटी फिल्टेशन तथा अन्ततः क्लोरीन द्वारा उबालने की विधि द्वारा सम्हाला जायेगा।

तदुपरान्त करवी स्थित स्वच्छ जल (पम्पिग स्टेशन) से पानी सम्पूर्ण पाठा क्षेत्र की विभिन्न दिशाओं में, जिसे इस उद्देश्य के लिए कई भागों में विभक्त किया गया है, भेजा जायेगा। एक चढ़ाऊ नालिका से चित्रकूट पानी पहुँचाया जाएगा, जहाँ से ५३ मीटरों द्वारा यह लक्ष्मण टीला नामक पहाड़ी पर बनाए जाने वाले एक हौज में एकत्र होगा; जहाँ से १२ गाँव तक इसे पहुँचाया जायेगा। यह सम्पूर्ण क्षेत्र करवी में पैसुनी नदी के पश्चिम में पड़ता है और इसका प्रसार मध्य प्रदेश सीमा तक है। पाठा क्षेत्र का शेष भाग नदी के पूर्व में पड़ता है। इसलिए पाठा क्षेत्र के इस पश्चिमी भाग में अन्तिम गाँवों की अपेक्षा तिगुने पहिले पम्प द्वारा पानी पहुँचाना होगा। गाँवों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त संख्या में शीर्षोपरि जलाशयों का निर्माण किया जायेगा।

दूसरी चढ़ाऊ नालिका पानी को करवी—ट्रीटमेन्ट काय से १८.२५ एम पर स्थित एक शीर्षोपरि जलाशय पर पहुँचायेगी, जो करवी कस्बे के लिए हो, जो द्रुतगति से एक महत्वपूर्ण कस्बे के रूप में परिवर्तित हो रहा है, एकत्रित किया जायेगा।

तीसरी दिशा में स्वच्छ पानी पम्प द्वारा पैसुनी नदी के पूर्वी तट पर स्थित २७ गाँवों को पहुँचाया जायेगा। यह क्षेत्र ऊबड़-खाबड़ है तथा यहाँ भूमि तलों में भी पर्याप्ताधिक अन्तर है और इससे पूर्व के ऊँचे पठार पर स्थित तथा परिणामतः पेयजल से वंचित गाँवों तक पानी पहुँच सके। एक बार और बूस्टिंग की आवश्यकता होगी। इस भाग में १०० मीटर के लगभग पम्पिंग का प्रयोग करना होगा।

शेष जल ९९ मीटर द्वारा एक १७ कि. मी. लम्बी चढ़ाऊ नालिका में सेमरदहा तक पहुँचाया जाता है ताकि २२८ गाँवों को वितरित हो सके। यह स्थान एक अबाध नदी ओहन के किनारे पर है जिस पर सिंचाई विभाग ने एक बाँध निर्मित किया है। यह प्रस्तावित है कि करवी ट्रीटमेंट काय को पम्प द्वारा रिक्त जलराशि को पूरा करने के लिए इस नदी से प्रतिदिन १८०० कि. ली. जल प्राप्त किया जाये। सेमरदहा पर १८०० कि. ली. की इस जल राशि की प्राप्ति के लिए सेमरदहा पर निर्मित काय है। (अ) एक इनटेक कूप तथा कच्चा जल पम्पिग स्टेशन, (ब) फ्लाक्यूलेटर

क्लेरोफायर–फिल्ट्रेशन–स्टेरोलाइजेशन इकाइयाँ, (स) स्वच्छ जल कुण्ड तथा (द) स्वच्छ जल पम्पिग स्टेशन।

सेमरदहा स्वच्छ जल पम्पिग स्टेशन से चढ़ाऊ नालिकायें तीन दिशाओं में फूट कर ५ क्षेत्रीय जल कुण्डों तक पानी चढ़ाती हैं। पानी पुनः इन क्षेत्रीय जल कुण्डों से गाँव के सेवा-जल कुण्डों तक 'बूस्ट' किया जाता है, जिनमें से कुछ चट्टानी पठार के सबसे खराब स्थानों पर स्थित हैं। ग्रीष्म के दौरान भारी संख्या में ग्रामीणों का पानी के अभाव में इस क्षेत्र से पलायन करना सुभिज्ञ है, जो कि स्थानीय छिछले कूपों में सूख जाता है। वर्षा काल में, इन गाँवों में से काफी संख्या में गाँव —पट्टियों तथा खराब मार्गों के कारण अगम्य हो जाते हैं।

इस प्रकार पानी की विभिन्न क्षमता के ९० शीर्षोपरि जलाशयों तक पहुँचने के लिए ६० कि. मी. लम्बे चढ़ाऊ नालिकाओं की मात्रा तय करनी होगी। तब इसे आकर्षण द्वारा ५०० कि. मी. लम्बी वितरण नालिकाओं से हो कर पहुँचाया गया होगा—विभिन्न प्रकार के पाइप जिनका उपयोग हुआ है—कास्ट आइरन ए. सी. और माइल्ड स्टील से जी. आई. और पी. वी. सी. तक हैं। इससे पूर्व कि देश के सब से खराब इलाकों के पूरे २६८ गाँव को विशुद्ध पेयजल उपलब्ध हो; एक लाख से ऊपर लोग केवल अपने घरों में 'विव काक' खोलने पर अथवा गली के स्टैण्ड पोस्ट से शुद्ध जल प्राप्त कर सकेंगे। कुछ ग्रामीणों के लिए एक कल्पनातीत सम्भावना जिन्हें अब भी शंका है कि ऐसा कोई चमत्कार होगा?

पैसुनी नदी से किसी भी दिशा में अन्तिम गाँव तक पहुँचाने के लिए पानी को अधिक से अधिक ६५ किलो मीटर की दूरी तय करनी होगी। यद्यपि सभी पम्पिग प्लान्ट्स का कुल योग लगभग ५६० मीटर होगा, अधिकतर ऊँचाई जिससे होकर पानी पहुँचाया गया, लगभग १५० मीटर होगी। सभी पम्पिग संयंत्रों को इलेक्ट्रो मीटर द्वारा चालित करने का प्रस्ताव है, जिसके लिए विद्युत् राज्य-विद्युत्-परिषद् द्वारा फैलाए गए तार-समूह से प्राप्त होगी।

१९७२ के मध्य तक, इस योजना की समाप्ति तक लगभग २ करोड़ रुपए व्यय हो चुके होंगे, निःसन्देह एक बड़ी रकम, लेकिन एक लाख से ऊपर लोगों की व्यथा को, जो समाप्त हो जायेगी, रुपयों और पैसों में नहीं आँका जा सकता। प्रारम्भिक वर्षों में योजना को चालू रखने की लागत लगभग ३.५० लाख रुपये वार्षिक होगी, लेकिन पूरे कार्य के बढ़ने के साथ, लगभग २० वर्ष पश्चात् लागत भी अनुपात में बढ़ेगी। उत्पादन की सही लागत २० पैसे प्रति किलो मीटर से कम आने की आशा है।

⊙ युगल लक्ष्य

जल वितरण का प्रारूप ऐसा रखना है जिससे कि प्रत्येक गाँवों में दयनीयतर तथा पिछड़े विभागों को योजना का लाभ प्राप्त हो। प्रत्येक ५०० की आवादी के लिए २ स्टैण्ड पोस्ट—एक पिछड़े वर्ग के विभागों के लिए तथा एक सामान्य जनता के लिए—प्रदान किए जायेंगे। अधिक बड़े गाँवों के लिए, स्टैण्ड पोस्टों की संख्या सतर्कतापूर्वक निश्चित की जायेगी, ताकि दयनीयतर विभागों की पूर्ति तथा जो समर्थ हैं; उन लोगों को गृह कनेक्शनों को बढ़ावा देने के युगल लक्ष्यों को साकार किया जा सके।

● चित्रकूट के विकास हेतु योजनायें

चित्रकूट के विकासार्थ तथा इसे एक सुन्दर पर्यटन-केन्द्र बनाने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश—दोनों राज्यों की सरकारों द्वारा विभिन्न योजनायें तैयार की गयी हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस धाम के प्रभावी विकास एवं उत्थान को दृष्टि में रखते हुए चित्रकूट-धाम की प्रमुख तीन बस्तियों—करवी, तरौहां तथा सीतापुर को मिला कर चित्रकूट-धाम नगरपालिका का गठन कराया। नगर-पालिका के पूर्व करवी नोटीफाइड एरिया तथा सीतापुर टाउन एरिया के रूप में कार्यरत थीं और तरौहां, करवी नोटीफाइड एरिया में ही सम्मिलित थी। नगर-पालिका का निर्माण १९५८ में किया गया और जनता द्वारा चुने गए प्रथम नगर-पालिका मण्डल (बोर्ड) ने २६ नवम्बर, १९५९ को कार्यभार ग्रहण किया। चित्रकूट-धाम नगरपालिका को 'विकास-परिषद' (डवलपमेण्ट बोर्ड) का भी अधिकार सरकार द्वारा प्रदत्त है, जो अन्य नगरपालिकाओं को नहीं है। नगरपालिका इस महान सांस्कृतिक धाम के विकास के लिए सचेष्ट है। अनेक योजनायें पूरी हो चुकी हैं और अनेक अपेक्षित योजनाओं को सम्पन्न किए जाने का प्रयास किया जा रहा है।

चित्रकूट के विकास की चर्चा करते समय दो-एक नामों का स्मरण हठात् हो आता है। इनमें प्रमुख हैं राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, जिन्होंने ६ अक्टूबर, १९५७ से २३ अक्टूबर, १९५७ तक १८ दिन चित्रकूट में स्वास्थ्यलाभ हेतु निवास किया था। राजर्षि टण्डन ने चित्रकूट के उत्थान के लिए भारत सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री प० गोविन्दवल्लभ पन्त का ध्यान आकृष्ट किया, जिससे प्रेरित हो कर पं० पन्त ने ४ जनवरी, १९५८ को ग्वालियर (म० प्र०) में मध्य क्षेत्रीय परिषद्

(सेन्ट्रल जोनल बोर्ड) की बैठक में कहा : 'सीमा जन्य समस्याओं का एक उदाहरण बाँदा जिले में चित्रकूट के समीपवर्ती क्षेत्र का है, जो तीर्थयात्री केन्द्र के रूप में महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र के लिए एक 'संयुक्त विकास-योजना' का प्रस्ताव किया गया है, जो यहाँ आये हुए तीर्थयात्रियों के हित में आवश्यक है'। और इसके फलस्वरूप १९६० ई० में उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश सरकारों की एक मिली-जुली 'चित्रकूट विकास संयुक्त सलाहकार परिषद्' की स्थापना की गयी, जो चित्रकूट के विकास के लिए कार्य कर रही है। संयुक्त सलाहकार परिषद् के गठन एवं कार्य-पद्धति का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :

● चित्रकूट विकास संयुक्त सलाहकार परिषद्

जैसा कि ऊपर वर्णित है, यह परिषद् चित्रकूट क्षेत्र के सर्वतोमुखी विकास के हेतु सरकार द्वारा निर्मित एक बड़ी ही महत्वपूर्ण संस्था है। इसका संघटन भारत-सरकार द्वारा स्थापित उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों की 'केन्द्रीय क्षेत्रीय परिषद्' के अन्तर्गत तत्कालीन भारत के स्वराष्ट्र मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त के प्रयास से किया गया है। समिति का कार्यालय चित्रकूट में रखने का निश्चय किया गया है और इसमें बाँदा (उत्तर प्रदेश) तथा सतना (म० प्र०) के जिलाधीशों को पदेन सदस्य रहने का प्रावधान है जो बारी-बारी से एक वर्ष के लिए परिषद् के अध्यक्ष होते हैं। परिषद् का सचिव एक गजटेड ऑफीसर होता है, जो अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाता है। इनके अतिरिक्त दोनों प्रदेशों के क्षेत्रीय विधायक तथा एक-एक सरकार द्वारा नामजद सदस्य होते हैं। सदस्यों की संख्या समय-समय पर परिवर्तित भी होती रहती है।

समिति की स्थापना का उद्देश्य है कि वह चित्रकूटधाम के हर सम्भव विकास के लिए प्रदेशीय सरकारों तथा क्षेत्र की स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को समय-समय पर निम्नलिखित विकास-परक सुझाव दिया करे :

१. तीर्थयात्रियों एवं पर्यटकों की सुविधा के लिए यातायात के साधनों का विस्तार तथा सुन्दर सड़कों का निर्माण।

२. यात्रियों एवं पर्यटकों के ठहरने के लिए उपयुक्त विश्राम-गृहों का निर्माण।

३. चित्रकूटधाम के विभिन्न स्थलों की सफाई तथा स्वच्छता की व्यवस्था।

४. चित्रकूट क्षेत्र के अन्तर्गत शिक्षण संस्थाओं का विकास तथा उन्हें राज्य सरकारों से पर्याप्त सहायता देने की व्यवस्था करना।

५. चित्रकूट की वनश्रेणी की सुरक्षा तथा विकास।

६. मन्दाकिनी के घाटों तथा अन्य धार्मिक, ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण स्थानों की सुरक्षा तथा उनका जीर्णोद्धार।

७. धार्मिक संस्थाओं की देखभाल एवं व्यवस्था।

८. दर्शनीय स्थलों की उन्नति एवं विकास।

९. क्षेत्र के हर सम्भव विकास के लिए प्रयास।

यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि उक्त 'संयुक्त विकास परिषद्' एक ऐसी संस्था है, जो चित्रकूट के विकास के लिए केवल परामर्श एवं सुझाव मात्र दे सकती है; पर उन सुझावों का कार्यान्वयन तो सरकारें तथा क्षेत्रीय स्वायत्त शासन संस्थाओं द्वारा ही किया जा सकेगा।

इस प्रकार यह संस्था विगत १२ वर्ष से चित्रकूट के विकास के लिए कार्यरत है और यद्यपि इसकी कार्य-पद्धति बड़ी शिथिल तथा धीमी है, फिर भी क्षेत्र के विकास की दिशा में इसने अब तक अनेक प्रस्ताव पारित कर अपने सुझाव दिए हैं और राज्य सरकारों से अनुरोध किया है कि इनका कार्यान्वयन अविलम्ब किया जाय।

इसके प्रमुख सुझाव ये हैं :

१. चित्रकूट के विभिन्न दर्शनीय स्थलों तक 'सिटी बसें' चलाई जायं।

२. सीतापुर-नयागाँव को जोड़ने के लिए पयस्विनी (मंदाकिनी) पर एक पुल का निर्माण किया जाय।

३. चित्रकूट से शराब की दूकानें हटा ली जायँ।

४. चित्रकूट का सही विवरण प्रस्तुत करने के लिए 'चित्रकूट-पुस्तिका' तथा प्रामाणिक मानचित्र का प्रकाशन कराया जाय।

५. भरतकूप मार्ग का निर्माण कराया जाय।

६. चित्रकूट-बस अड्डे का निर्माण कराया जाय।

७. समस्त चित्रकूट क्षेत्र का विद्युतीकरण कर दिया जाय।

८. पयस्विनी घाट से दूकानों का स्थानान्तरण किया जाय तथा वहाँ वेन्यों (आसनों) का निर्माण कराया जाय।

९. यात्रियों के आवास के लिए 'रैन-बसेरा' का निर्माण कराया जाय।

१०. स्फटिक शिला का विशेष विकास किया जाय।

११. कामदगिरि-परिक्रमा का विस्तार किया जाय।

१२. सीतापुर, प्रमोदवन तथा जानकी कुण्ड में पयस्विनी के घाटों का निर्माण कराया जाय।

१३. पयस्विनी नदी में लाशों के प्रवाहित करने का निषेध किया जाय।

१४. गणेश बाग होकर करवी से हनुमान धारा तक एक सड़क का निर्माण कराया जाय।

• चित्रकूटधाम नगरपालिका का योगदान

चित्रकूट के विकास के लिए सब से बड़ा दायित्व 'चित्रकूटधाम नगरपालिका' का ही है। और वस्तुतः चित्रकूटधाम नगरपालिका का गठन ही मुख्यतया इसी उद्देश्य को लेकर हुआ है। चित्रकूट के विकास की दृष्टि से ही इसे 'विकास-परिषद्' (डवलपमेंट बोर्ड) का अधिकार भी सरकार ने प्रदान किया है। सरकार जो भी योजनायें चित्रकूट के विकास के लिए सोचती है, वह प्रायः नगरपालिका के माध्यम से ही कार्यान्वित कराती है। अपने सीमित साधनों तथा प्राप्त सरकारी अनुदानों से यह इस दिशा में काफी सचेष्ट है, पर अभी तक उसे अपेक्षित सफलतायें नहीं मिल सकीं। कारण कई हो सकते हैं, पर अंशतः धन की कमी तथा अंशतः चित्रकूट के अधिकांश भाग के मध्यप्रदेश की सीमा में होने का कारण भी है। फिर भी पालिका के प्रयास से कुछ कार्य सम्पन्न हुए; जो चित्रकूट के निवासियों तथा यात्रियों एवं पर्यटकों की सुविधा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय है: चित्रकूटधाम का पालिका-परिधि में विद्युतीकरण और नल-योजना द्वारा पेय जल की व्यवस्था। इनके अतिरिक्त इसके द्वारा अनेक योजनायें निर्धारित की गयी हैं, जिनके पूरी हो जाने पर यह स्थल बहुत ही सुन्दर तथा सुविधाजनक हो जायगा। इन योजनाओं को साकार बनाने के लिए पालिका कृत-प्रयास है। प्रमुख विचाराधीन योजनायें ये हैं:

१. चित्रकूटधाम के विशेष कर परिक्रमा की परिधि में जहाँ तक बिजली तथा नल व्यवस्था नहीं हुई, वहाँ तक दोनों योजनायें लागू करना।

२. यात्री शेडों का निर्माण करना।

३. यात्रियों-पर्यटकों की सुविधा के लिए 'नगर-बस सर्विस' चालू करना।

४. मन्दाकिनी नदी के किनारे-किनारे पर्णकुटी-ढंग के कक्षों का निर्माण।

५. प्रमुख सार्वजनिक मन्दिरों का जीर्णोद्धार।

६. स्फटिक शिला से लेकर करवी तक पयस्विनी नदी की सफाई।

७. बालाजी घाट तथा माटनघाट के सामने विस्तृत चबूतरों का निर्माण।
८. चित्रकूट के समस्त घाटों का जीर्णोद्धार तथा विस्तार।
९. शौचालयों का निर्माण।

● चित्रकूट के विकास में उ. प्र. सरकार की विचाराधीन योजनायें

सरकारी सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार उत्तरप्रदेश सरकार चित्रकूट के विकास के लिए काफी रुचि ले रही है। उत्तरप्रदेश के शिक्षामंत्री डा० रामजी-लाल सहायक द्वारा १ अगस्त '७१ को नगरपालिका भवन में की गयी एक घोषणा के अनुसार चित्रकूट को एक सुन्दर पर्यटन केन्द्र बनाने, उत्तम सड़कों तथा विदेशियों के लायक आवास-गृह बनाने की योजना सरकार के विचाराधीन है।

चित्रकूट के विकास के लिए सरकार द्वारा उठाये गए कदमों के सम्बन्ध में उत्तरप्रदेश विधान परिषद् की 'आश्वासन-समिति' ने अप्रैल १९७० में एक प्रतिवेदन प्रसारित किया है, जिसमें कहा गया है कि २६ मार्च, १९६३ ई० को सदन को यह आश्वासन दिया गया था कि सरकार चित्रकूट क्षेत्र के उत्थान के सम्बन्ध में निम्नलिखित मामलों पर विचार कर रही है :

विद्युतीकरण, जल-वितरण, यात्री शेड, नगरपालिका-बस सर्विस, पर्णकुटी सदृश क्वार्टरों का निर्माण, सार्वजनिक मन्दिरों का निर्माण, पयस्विनी की सफाई, शौचालयों का निर्माण, घाटों का संरक्षण एवं निर्माण, घाटों के सामने प्लेटफार्मों का निर्माण आदि। (ये माँगें तथा सुझाव चित्रकूटधाम नगरपालिका द्वारा प्रस्तुत किए गए थे।)

आश्वासन-समिति के अनुसार बिजली तथा नल-योजना का काम प्रायः पूरा हो चुका है।

यात्री शेडों के निर्माण हेतु चतुर्थ वर्षीय योजना में व्यवस्था कर दी गयी है।

बस सर्विस चालू करने के लिए भी कोशिश की जा रही है।

घाटों के सामने प्लेटफार्मों के निर्माण के लिए प्रस्ताव चल रहा है।

शौचालयों के लिए बाँदा के कलेक्टर को लिखा गया है।

चतुर्थ योजना में एक 'टूरिस्ट होम' (पर्यटक-आवास) बनाने का प्रबन्ध कर दिया गया है। यह बन जायेगा।

परिक्रमा के विस्तार के लिए मध्यप्रदेश ने ८५ हजार रुपया का एस्टीमेट बना

दिया है। उत्तर प्रदेश में एक चौथाई भाग पड़ता है। यहाँ का भी एस्टीमेट बन जायगा।

पयस्विनी नदी में स्फटिक शिला के समीप से करवी तक सफाई तथा ड्रेजिंग व्यवस्था के सम्बन्ध में समिति ने अपने प्रतिवेदन में बताया कि समिति को बताया गया है कि इस सम्बन्ध में 'इन्वेस्टीगेशन एवं प्लानिंग डिवीजन इलाहाबाद' ने नदी की सफाई तथा नदी के नियमित बहाव के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर दिया है। चित्रकूट में मेले के अवसर पर उक्त डिवीजन द्वारा 'पयस्विनी-बाँध' से पर्याप्त मात्रा में जल सम्पूर्ति की व्यवस्था है। [इन पंक्तियों के लिखते समय तक सूचना यही है कि 'पयस्विनी-बाँध' का निर्माण ही निरस्त कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त व्यवस्था कौन होगी, आश्वासन-समिति ही जाने—लेखक]

वैसे तो उत्तर प्रदेश सरकार चित्रकूट के विकास की अनेक योजनायें बना चुकी है और इसके विकास के लिए अनगिनत आश्वासन भी दे चुकी है, फिर भी अभी तक चित्रकूट का विकास नहीं हो सका, इसके सम्बन्ध में आश्वासन-समिति ने अध्ययन कर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं :

⊙ समिति के निष्कर्ष

समिति के समक्ष जो साक्ष्य आए और जो समिति ने स्थान पर जा कर स्वयं निरीक्षण करके सूचना प्राप्त की, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस आश्वासन की पूर्ति अभी तक केवल इस कारण नहीं हो पायी कि विभाग ने प्रथमतः तो इसको आश्वासन ही नहीं समझा और दूसरे चित्रकूट के घाटों की समस्या के संबंध में अपने उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं किया। जब १३ नवम्बर, १९६९ को स्वायत्त शासन विभाग के सचिव समिति के समक्ष साक्ष्य के लिए उपस्थित हुए तो उन्होंने समिति को बताया कि विभाग की राय में यह आश्वासन नहीं था और इसके संबंध में केवल यही कहा गया था कि विभाग इस प्रश्न पर विचार कर रहा है। उन्होंने समिति को यह भी बताया कि यदि वास्तव में समिति इसको आश्वासन समझती है तो वह उसको पूरा करने की चेष्टा करेंगे। विभाग द्वारा इसको आश्वासन न माने जाने व इस सम्बन्ध में तुरन्त कोई कार्यवाही न किए जाने के फलस्वरूप इस स्थान के विकास पर होने वाला व्यय भी अकारण ही बढ़ गया है। उदाहरणार्थ वहाँ पर जल-वितरण योजना, जिसका अनुमान उस समय ३१ लाख रुपए था, अब ४३ लाख रुपये की हो गयी है और इस प्रकार अन्य योजनाओं पर भी अब व्यय बढ़

जाने की आशंका है। इसके अतिरिक्त विभाग का यह विचार रहा कि चित्रकूट के घाटों का विकास सरकार का उत्तरदायित्व नहीं है, वरन इस विषय पर जो दो समितियाँ (ज्वाइन्ट एडवाइजरी कमेटी और लोकल डवलपमेंट कमेटी) हैं, उन पर ही इन बातों का उत्तरदायित्व है।

साक्ष्य से समिति को यह भी सूचना मिली कि जो संयुक्त विकास समिति दोनों प्रदेशों के अधिकारियों की है, की बैठकें भी किसी पूर्व निश्चित क्रम के अनुसार नहीं होती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इस समिति की बैठकें, जब से इसका गठन हुआ है, केवल २-३ बार ही हो पाई हैं। इस सन्दर्भ में समिति द्वारा चित्रकूट जा कर सभी परिस्थितियों का निरीक्षण किए जाने और वहाँ पर दोनों प्रदेशों के अधिकारियों की सम्मिलित बैठक बुलाए जाने से इस आश्वासन की पूर्ति की दिशा में विशेष सतर्कता आ गई है।

चित्रकूट के विकास की समस्या इस कारण और भी जटिल हो गई है कि न केवल इससे सम्बन्धित अनेक विषयों के सम्बन्ध में वहाँ की नगरपालिका द्वारा योजनायें या प्रस्ताव सरकार के पास आने आवश्यक हैं, वरन् इस कारण भी कि चित्रकूट का कुछ भाग मध्य प्रदेश में पड़ता है और कुछ भाग उत्तर प्रदेश में। इस कारण दोनों सरकारों और उनके पदाधिकारियों में इस विषय पर पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखने की आवश्यकता है। समिति को आशा है कि जो कार्य इस सम्बन्ध में अभी तक पूर्ण नहीं हो सके, वे शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण हो जायेंगे और वहां पर यात्रियों के लिए पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध होंगी। समिति की राय में वहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार यदि मन्दिरों के चढ़ावे के धन से पूर्ण नहीं हो सकता तो प्रदेश के आर्कियोलोजिकल विभाग से इस सम्बन्ध में सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार वहाँ पर यात्रियों के लिए विश्राम-गृह इत्यादि बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार के पर्यटन विभाग से सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार का भी कोई प्रबन्ध किया जा सकता है कि वहाँ की संयुक्त विकास समिति की बैठक कम से कम प्रत्येक छः महीने में एक बार अवश्य हो और उसके द्वारा की गयी सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दोनों राज्यों की सरकारों के विभिन्न विभागों की जिम्मेदारी हो। इस समय इस समिति की सिफारिशें स्थानीय विकास समिति के पास जाती हैं, जिसको इन सिफारिशों को सरकार के विभिन्न विभागों को भेज कर उनकी पूर्ति के सम्बन्ध में साधन माँगने पड़ते हैं। इस प्रकार उन सिफारिशों के कार्यान्वयन में अत्यधिक समय लग जाता है।

समिति की राय में प्रादेशिक सरकार के विभिन्न विभाग, जैसे सार्वजनिक निर्माण विभाग, स्वायत्त शासन विभाग, यातायात विभाग, सिंचाई विभाग या आर्कियोलाजिकल विभाग में बराबर सम्पर्क बनाए रखने की आवश्यकता है; जिससे कि किसी एक विभाग द्वारा चित्रकूट के विकास के सम्बन्ध में अपना उत्तर-दायित्व पूरा न किए जाने के कारण अन्य विभागों को अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में अड़चन न पड़े।

● चित्रकूट वनाञ्चल को 'वनजन्तु बिहार' बनाने की योजना

'आश्वासन-समिति' के उपर्युक्त सन्दर्भ में चित्रकूट के विकास की कितनी योजनायें बनायी गयी हैं, पाठकों को जानकारी हुई; ऐसी ही एक योजना के लिए उत्तर प्रदेश 'वन विभाग' ने भी आश्वासन दिया है। पर वह भी कब तक पूरी होगी, सरकार ही समझ सकती है। इसकी चर्चा तब उठी, जब एक बार १३-१२-६९ ई० को उत्तर प्रदेश के मुख्य अरण्यपाल श्री त्रिभुवन नाथ श्रीवास्तव करवी पधारे थे और करवी डाक-बँगले में नगर के एक शिष्टमंडल से, जिसमें इन पंक्तियों का लेखक भी सम्मिलित था, बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था :

'मैं महसूस करता हूँ कि चित्रकूट एक बड़ा ही सुन्दर प्राकृतिक स्थान है। इसका विकास अवश्य होना चाहिए। हमारे पास जो भी साधन उपलब्ध हैं, उनका उपयोग चित्रकूट के विकास में किया जायगा।'

'स्फटिक शिला तथा उसके आस-पास का प्रदेश कितना रमणीक है, इस वनाञ्चल का संरक्षण तथा विकास अवश्य होना चाहिए।'

मुख्य अरण्यपाल ने उस समय उपस्थित जिले के वन-विभागाधिकारियों को निर्देश दिया कि वे लोग इस ओर विशेष ध्यान दें और चित्रकूट-वन विकास हेतु एक 'समिति' का गठन कर लें, जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार का प्रतिनिधित्व हो। विभागीय अधिकारियों को निर्देश देते हुए मुख्य अरण्यपाल उत्तर प्रदेश ने कहा कि 'अनुसूया आश्रम' में एक बढ़िया विश्राम गृह बनवाकर स्थान को आकर्षक बनाया जाय। चित्रकूट वनाञ्चल के विभिन्न भागों में सड़कों का विकास किया जाय और जगह-जगह डाक-बँगले बनवाये जायँ।

अन्त में उत्तर प्रदेश के मुख्य अरण्यपाल श्री त्रिभुवननाथ जी श्रीवास्तव ने विभागीय वनाधिकारियों को निर्देश देते हुए कहा कि : 'चित्रकूट प्राचीन सांस्कृतिक स्थान है, इसलिए इसके वन का संरक्षण एवं विकास अवश्यमेव होना चाहिए।

क्योंकि यदि एक बार वनश्री (जंगल) नष्ट हुई, तो दुबारा उसका जन्म नहीं हो सकता।'

और फिर अपनी बात का उपसंहार करते हुए कहा कि चित्रकूट क्षेत्र में हमारा इरादा 'वन-जन्तु-विहारशाला' स्थापित करने का है, जो यात्रियों एवं पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण की चीज होगी।

• विकास में प्रगति के कुछ चिह्न

पीछे बताया जा चुका है कि श्री रामप्रकाश गुप्त भूतपूर्व उपमुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश की अध्यक्षता में अप्रैल १९७० में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की आश्वासन समिति ने चित्रकूट-यात्रा कर एक प्रतिवेदन प्रसारित किया था, जिसमें चित्रकूट के विकास के लिए उठाये गए विभिन्न सरकारी कदमों पर प्रकाश पड़ता है। दो वर्ष बाद १०-२-७२ को पुनः उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की आश्वासन समिति की चित्रकूट-यात्रा हुई। इस बार समिति के अध्यक्ष उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मंत्री श्री कैलाश प्रकाश जी थे।

समिति की बैठक में उन्हीं पुरानी योजनाओं का पिष्ट-पेषण हुआ। पर इस समिति ने कुछ नयी बातें भी बताईं, जिनसे ऐसा लगा कि चित्रकूट का विकास अब सम्भवतः आसन्न है।

आश्वासन समिति के सचिव ने बताया कि चित्रकूट के घाटों के जीर्णोद्धार तथा विकास के लिए ७ लाख ५० हजार रुपये की योजना सरकार के विचाराधीन है। पयस्विनी के तट पर पर्ण-कुटियों के निर्माण तथा स्फटिक शिला से रामघाट तक पयस्विनी नदी की सफाई की योजनायें भी सरकार के विचाराधीन हैं।

यह भी बताया गया कि परिवहन विभाग द्वारा 'यात्री शेड' (यात्रा विश्रामगृह) के लिए ७ लाख ३ हजार रुपये स्वीकृत किया गया है। रूपरेखा तैयार हो रही है।

इन योजनाओं के अतिरिक्त यह भी पता चला है कि 'पर्यटन-विभाग' उत्तर प्रदेश चित्रकूट को एक ऐसे 'पर्यटन केन्द्र' में विकसित करना चाहता है, जहाँ विदेशी पर्यटक भी ज्यादा से ज्यादा तादाद में पहुँच सकें और जिनके लिए हवाई अड्डे की भी सुविधायें उपलब्ध की जा सकें। इस सन्दर्भ में क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, आगरा ने चित्रकूटधाम नगरपालिका तथा जिलाधीश बाँदा से अपेक्षित सूचनायें माँगी है और प्रदेश के शिक्षामंत्री श्री रामजीलाल सहायक तो पहले ही अपनी चित्रकूट-यात्रा में इसका संकेत दे चुके हैं।

इस पुस्तक के तैयार करते समय ही सूचना मिली है कि इसी जुलाई, '७२ में उत्तर प्रदेश सरकार ने 'चित्रकूट-राजापुर विकास समिति' का भी गठन किया है, पर इन पंक्तियों के लिखते समय तक इस नव संगठित समिति की रूपरेखाओं, योजनाओं तथा गतिविधियों की जानकारी उपलब्ध न हो सकने के कारण उस पर कुछ लिखा नहीं जा सकता।

और छपते-छपते समाचारपत्रों में पढ़ने को मिला कि उत्तर प्रदेश के पर्यटन मंत्री श्री अजीत प्रताप सिंह ने घोषणा की है कि राज्य में पर्यटन उद्योग के विकास के लिए पौराणिक स्थलों को पर्यटन की दृष्टि से आकर्षक बनाने की राज्य सरकार द्वारा योजना बनाई गयी है। इनमें चित्रकूट तथा राजापुर भी हैं। यहाँ आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था हो रही है (देखिए, 'भारत' : १५-८-७२ ई०)।

● चित्रकूट के विकास में मध्य प्रदेश सरकार की योजनाएँ

चित्रकूट उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा में स्थित है। इस तीर्थ के प्रायः सभी आरण्यक आश्रम तथा अधिकांश वनाञ्चल मध्य प्रदेश में ही पड़ते हैं। इसीलिए चित्रकूट के विकास के लिए उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश—दोनों राज्यों की एक 'चित्रकूट विकास संयुक्त परामर्शदातृ समिति' का संघटन हुआ है और दोनों सरकारें इसके विकास में प्रयास-रत हैं। मध्य प्रदेश प्रशासन ने अपने क्षेत्र में सड़कों का निर्माण कराकर विभिन्न स्थलों में सुविधापूर्वक आने-जाने में यात्रियों की सहायता की है। एक वन-विभाग का तथा दूसरा सार्वजनिक निर्माण विभाग का विश्राम-गृह बनवा कर सम्भ्रान्त पर्यटकों को कुछ आवास सुविधायें भी उपलब्ध करा दी हैं। वैसे अभी बहुत ऐसी आवश्यक समस्यायें हैं, जिनका निराकरण मध्य प्रदेश को तत्काल करा देना चाहिए; जिनमें यात्रियों की सुरक्षा के लिए वन श्रेणियों के मध्य स्थित आश्रमों में पुलिस की एक-दो चौकियाँ, अच्छी सड़कों का निर्माण, यातायात के लिए टैक्सियों की व्यवस्था, विभिन्न दर्शनीय स्थलों में बिजली तथा पेय जल की व्यवस्था प्रमुख हैं। पर जैसा कि मध्य प्रदेश प्रशासन ने अपनी योजनाओं की घोषणा की है, यदि वे पूर्ण कर दी जाती हैं, तो सचमुच चित्रकूट भारत का एक बहुत बड़ा पर्यटन केन्द्र बन सकेगा।

विगत वर्ष १२ जुलाई, सन् १९७१ ई० को मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने चित्रकूट में 'वन-महोत्सव' का उद्घाटन करते हुए जो घोषणायें

कीं तथा उस अवसर पर सरकार के वन-विभाग द्वारा जो विज्ञप्तियाँ एव बुलेटिनें वितरित की गयीं, उनसे चित्रकूट को 'सर्व सम्पन्न अधुनातन पर्यटन केन्द्र' बनाने के लिए मध्य प्रदेश सरकार कृत-संकल्प है। वन-विभाग द्वारा घोषित किया गया कि चित्रकूट-वन परिक्षेत्र में लगभग ५२ वर्ग मील क्षेत्र में बाँस का रोपण करने की योजना है तथा यहाँ वन्य पशु-पक्षियों की सुरक्षा हेतु 'अभयारण्यन' का भी प्रावधान है।

घोषणा में बताया गया कि मध्य प्रदेश के क्षेत्र में जल प्रदाय योजना सीतापुर-पीली कोठी मार्ग निर्माण, अनुसूया आश्रम-गुप्त गोदावरी मार्ग निर्माण, चित्रकूट चिकित्सालय का विकास, कामदगिरि की परिक्रमा को चौड़ा करना, सीतापुर-चित्रकूट के बीच पुल निर्माण, बिजली व्यवस्था, बसस्टैण्ड निर्माण, मध्यमवर्गी पर्यटकों के लिए विश्राम-गृह निर्माण आदि की योजनायें विचाराधीन हैं।

उक्त तिथि को चित्रकूट में वृक्षारोपण का शुभारम्भ करते हुए मुख्यमन्त्री श्री शुक्ल ने कहा था : 'सौभाग्य से मैं चित्रकूट जैसे महान् तीर्थ में वृक्षारोपण करने आया हूं। चित्रकूट जैसे वनाञ्चलीय तीर्थ के लिए यह योजना (वृक्षारोपण की योजना) अत्यन्त उपयोगी है। मैं चाहता हूँ कि कामदगिरि की परिक्रमा के चारों ओर वृक्षारोपण किया जाय, जिससे परिक्रमा-पथ में इतनी हरियाली हो कि यात्री तथा पर्यटकगण प्रकृति के सौन्दर्य का आस्वाद लेते हुए परिक्रमा करें।'

मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने आगे कहा : 'हमारे पूर्वजों ने वृक्षों तथा वनों को बहुत महत्व दिया था। वन हमारी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इसलिए वन-सम्पदा का संरक्षण करना तथा उसे बढ़ाना हमारा दायित्व है। वृक्षों की उपयोगिता न केवल नेत्रानुरञ्जन के लिए ही होती है, बल्कि इनसे हमारी भौतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है। मैं चाहता हूँ कि चित्रकूट धाम के वनाञ्चल का विकास आध्यात्मिक एवं भौतिक—दोनों उपलब्धियों की दृष्टि से किया जाय।'

श्री शुक्ल ने कहा : 'चित्रकूट इतना महान तीर्थ है कि वर्ष भर में यहाँ जितने यात्री आते हैं, उतने यात्री वाले तीर्थ हमारे देश में कम हैं। मैं चाहता हूँ कि चित्रकूट केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना वाले यात्रियों के लिए ही रुचिकर न रहे, बल्कि पर्यटन की दृष्टि से आने वाले देशी-विदेशी पर्यटकों के लिए भी यह एक दर्शनीय तथा आकर्षक जगह बने—इसका विकास इस दृष्टि से हो, यह मेरी इच्छा है।'

इस अवसर पर मध्य प्रदेश वन-विभाग द्वारा एक सचित्र लघु-पुस्तिका भी प्रकाशित की गयी है, जिसमें न केवल चित्रकूट के महत्व पर प्रकाश पड़ता है, बल्कि जिससे मध्य प्रदेश द्वारा निर्णीत तथा संचालित चित्रकूट के विकासार्थ विभिन्न

योजनाओं की भी सम्यक् जानकारी होती है। नीचे उसका संक्षिप्त रूप उसी शीर्षक के साथ दिया जा रहा है :

● सांस्कृतिक स्थल : चित्रकूट

आधुनिक सन्दर्भों के परिवेश में पुराने मूल्य बदल गए हैं तथा एक नयी प्रकार की गतिविधि का उदय हुआ है, जिसे 'पर्यटन' (टूरिज्म) कहते हैं। इससे धर्म स्थानों तथा रमणीय स्थलों का दुगना महत्व हो गया है। पहले तो केवल धर्म-प्राण लोग ही इन स्थानों का भ्रमण करते थे, किन्तु अब अधुनातन प्रगतिशील विचार-धारा के लोग बड़ी संख्या में योजनाबद्ध ढंग से पर्यटन करने लगे हैं। चित्रकूट उन्हीं स्थानों में से है जिनका दुहरा महत्व है तथा जो बहुमुखी आकर्षण के केन्द्र हैं। सुन्दर मन्दाकिनी तट, सघन वृक्षावलियाँ, हरी-भरी पर्वतमालायें, तीर्थ और मन्दिर इस स्थान को एक भरे-पूरे पर्यटन स्थल का स्वरूप देते हैं। एक ऐसा स्वरूप जिसमें आगे चल कर एक आधुनिकतम पर्यटन स्थल के रूप में (चित्रकूट) के विकसित होने की सम्भावनाएँ निहित हैं।

इस अद्भुत नैसर्गिक एवं सांस्कृतिक स्थल को एक सुन्दर 'पर्यटन केन्द्र' के रूप में विकसित करने की योजनाएँ विकसित की जा रही हैं।

चित्रकूट की धार्मिक और सांस्कृतिक महत्ता से भरे इस स्थान का मूल सौन्दर्य यहाँ के प्राकृतिक आकर्षण में है। मन्दाकिनी और पयस्विनी की जलधाराओं तथा आस-पास की पहाड़ियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाया है। सघन एवं हरी-भरी वृक्षावलियाँ यहाँ का विशेष आकर्षण है। महर्षि वाल्मीकि और भरद्वाज ने भी यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को अद्वितीय बताया है। इसी आधार पर भगवान राम को भी यहाँ निवास करने का परामर्श ऋषि-महर्षियों ने दिया था।

पुण्य-सलिला मन्दाकिनी के जलास्रोत से सिञ्चित चित्रकूट का यह कामदगिरि हिन्दू-संस्कृति व भारतीय-दर्शन की एक महान देन है, जिसकी प्राकृतिक व धार्मिक गरिमा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के सामञ्जस्य से मानवता व भारतीयता को प्रदत्त एक अनुपम गौरवमयी धार्मिक एवं सांस्कृतिक शृंखला है।

कामदगिरि पर्वत विभागीय व्यवस्था के अन्तर्गत एक संरक्षित वन है, जिसका क्षेत्रफल ४९.२८ हेक्टर है। भगवान राम की पावन पर्ण-कुटीर को हृदयंगम करने वाला यह पवित्र वन स्थल मुख्यतः करधई के वृक्षों से आच्छादित है। धार्मिकता व मानवता के सजग प्रहरी की प्रेरणा से इस पुण्यस्थली की परिक्रमा के जीर्णोद्धार का

जो पावन अभियान आरम्भ किया गया है, वह तुलसी के मानस की भाँति एक अमर गाथा है। भगवान राम के कर कमलों से सत्यं शिवं सुन्दरम् के पावन संदेश देने वाला फल-फूलों व पाद्यों से सुसज्जित तुलसी-दर्शन का यह गौरवशाली कामदगिरि काल-चक्र के प्रहारों से हरीतिमा व सज्जा-विहीन हो चला था, जिसकी गरिमा व महानता के पुनरुत्थान व स्थायित्व की पवित्र भावना से प्रेरित हो कर प्रदेश के वन-मंत्री महोदय के कुशल नेतृत्व व मार्ग-दर्शन में वन-विभाग को देश के इस महान राष्ट्रीय पर्व को इस पुण्यस्थली में मनाने का गौरव प्राप्त हुआ है। आज का यह वन-महोत्सव समारोह संत तुलसी के मानस की भाँति चित्रकूट के पावन पटल पर हरीतिमा का नया उपहार लिए वन-मंत्री श्री शत्रुघ्नसिंह जी तिवारी के क्रांतिकारी युग की एक ऐतिहासिक व अमर घटना है, जिसके पादप-पुष्पों की घनी छाया व सुहावनी सुगन्ध में चिर-त्रसित मानवता इस क्षेत्र में अनुपम शांति व परमानन्द का अनुभव करेगी। किन्तु कुछ दिनों से चित्रकूट में वनस्पतियों को हानि पहुँचने से भूमि-क्षरण हो रहा है। भूमि के कटने से तथा वृक्षों के अभाव के कारण लक्ष्मण-गिरि और कामदगिरि आदि पहाड़ियों के सौन्दर्य में कमी होना स्वाभाविक है।

अतः वन-विभाग ने इस वर्ष (१९७१) में वन-महोत्सव के अवसर पर चित्रकूट में बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कर के इस स्थान के सौन्दर्य को बढ़ाने का संकल्प किया है। स्वयं मुख्यमंत्री जी एवं वन-मंत्री जी २२वें वन-महोत्सव के अवसर पर चित्रकूट में वृक्षारोपण योजना का शुभारम्भ कर रहे हैं। लक्ष्मण पहाड़ी एवं कामदगिरि क्षेत्र को यदि पुनः वृक्षाच्छादित करने में सफलता मिल गयी, तो इस स्थान का पर्यटन-सौन्दर्य बहुत बढ़ जायगा। चित्रकूट वन परिक्षेत्र में लगभग ५२ वर्ग मील क्षेत्र में बाँस का रोपण करने की योजना है। यहाँ वन्य पशु-पक्षियों की सुरक्षा हेतु 'अभयारण्यन' का भी प्रावधान है। मन्दाकिनी तट पर वन-विभाग का सुन्दर विश्राम-गृह है।

इस वर्ष वन-महोत्सव के अवसर पर चित्रकूट में कोई २००० वृक्ष लगाए जायेंगे। सुविधानुसार बाँस, अशोक, पैल्टाफोरम, जेकेरेण्डा, गोल्ड मुहर, केशिया, सियामिया, केशिया किश्चुला, सिल्वर ओक और यूक्लिप्टस का वृक्षारोपण करना है।

पर्यटन स्थल के रूप में चित्रकूट का भविष्य उतना ही उज्ज्वल है, जितना कि उसका गरिमापूर्ण अतीत। यहाँ पुरातन और नूतन का अभूतपूर्व संयोग हो रहा है, जिसके परिणाम-स्वरूप एक सर्वसम्पन्न अधुनातन पर्यटन स्थल के रूप में चित्रकूट का विकास सुनिश्चित है।

●

चित्रकूट

यात्रियों और पर्यटकों के उद्‌गार



[भारतीय पुराणों, काव्यों तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों में चित्रकूट की महत्ता एवं प्रशंसा पर ढेर सारी सामग्री उपलब्ध है, किन्तु आधुनिक काल के यात्रियों एवं पर्यटकों ने भी इसके बारे में समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ हम उनमें से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के संक्षिप्त विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, जो न केवल चित्रकूट की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हैं, वरन् उसकी समस्याओं, विकृतियों तथा समाधानों-सुझावों का भी संकेत देते जाते हैं।]

● **राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन** **प्रयाग**

चित्रकूट क्षेत्र संसार भर में प्रसिद्ध है। रामचन्द्र जी के थोड़े ही दिनों के वास ने इसको पवित्र कर दिया है। हमारे साहित्य में इसकी चर्चा है। तुलसीकृत रामायण तो एक प्रकार से चित्रकूट की देन है। अनुसूया जी का स्थान मेरी स्मृति में इतना गड़ गया है कि इस स्थान की सुखद स्मृति चिरस्थायी रहेगी। इसकी हरियाली तथा महिमा का क्या कहना है!

आज आप लोगों ने बैठ कर चित्रकूट की रक्षा के निमित्त जो संस्था (चित्रकूट उत्थान समिति) बनाई है, उसके प्रति मेरी शुभकामना है। मेरा जी चाहता है कि समिति निरंतर उद्योग करती रहे और बहुसंख्यक यात्रियों की असुविधाओं को दूर करती रहे। मुझे स्वभावतः सुख है कि आप लोगों के ध्यान में यह बात आई। मेरा सौभाग्य है कि उसका छोटा-सा निमित्त मैं बन गया हूँ।

अनुसूया जाने पर कुछ लोगों ने बात उठाई है कि वहाँ मन्दिर बन जाय। मेरा अनुमान है कि कार्य कठिन नहीं है। ढंग का मन्दिर हो, सुन्दर हो, भव्य मूर्ति हो। मूर्ति से कुछ भाव प्रकट होता है। रामायण का वह अंश बहुत मनोरम तथा महत्वपूर्ण है, जहाँ सीता जी को सती अनूसूया ने शिक्षा दी थी। ऐसी सती अनुसूया के मन्दिर के लिए लाख-दो लाख रुपया लगा देना कठिन नहीं है, पर संगठन की आवश्यकता है, जिसमें लोगों का विश्वास हो। लोग देना चाहते हैं, पर दें किसको ? यदि यह समिति ठीक से काम करे और देश के सामने सुझाव रखे तो मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश—दोनों सरकारें, जिनसे यह स्थल सम्बन्वित है, सहायता करेंगी। बहुत संभव है, धर्म विषयक नीति के कारण खजाने से मन्दिर के लिए कोष न मिले, पर अन्य कार्य (क्षेत्रीय विकास) के लिए रुपया मिल जायगा। गरीब और अमीर सभी ऐसे कार्य के लिए रुपया देते हैं।

(राजापुर में) पंत जी का हाथ पड़ने से बिड़ला जी ने हाथ डाला, वहाँ कुछ न कुछ हो ही जायगा। चित्रकूट के लिए भी चिन्तन हो तो कुछ काम हो सकता है।

[स्वास्थ्यलाभ हेतु १८ दिवसीय चित्रकूट प्रवासकाल में २३-१०-५७ को चित्रकूट उत्थान समिति के उद्घाटन-भाषण से]

⊙



महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन

मैं कई बार चित्रकूट पर्वत की परिक्रमा करने गया। . . . चित्रकूट के शिखर पर चढ़ने में मुझे आनन्द आता था। परिक्रमा के बहुत-से स्थान परिचित हो गए थे, इसलिए कहीं दो गिलास पानी पीते, कहीं मध्याह्न भोजन करते, कहीं आध घण्टा गपशप करते परिक्रमा सबेरे से शाम तक पूरी हो जाती थी।

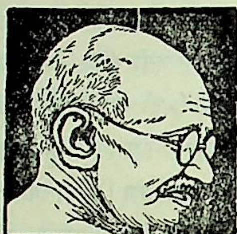
यद्यपि यहाँ भी वही नदी थी, जो करवी में हमारी पाठशाला (श्री जयदेव वैष्णव संस्कृत महाविद्यालय) की बगल से बहती थी; किन्तु वहाँ (करवी में) हमें

'चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर' याद न आती थी। नदी के और ऊपर कुछ मील पर जानकी-कुण्ड है। यहाँ नदी पथरीली जमीन पर कल-कल करती वह रही है। पानी स्वच्छ, जिसमें झुण्ड की झुण्ड मछलियाँ तैरती थीं। साधुओं ने यहाँ अपना एक गाँव ही बसा लिया है। कुटियाँ अधिकतर मिट्टी के भिण्डों को खोद कर बनायी गयी थीं, जो भीतर से ठण्ढी मालूम होती थीं। ऐसी ही कुटियों को देख कर तुलसीदास ने अपने ऋषि-आश्रमों का चित्रण किया होगा। जानकी-कुण्ड के 'ऋषि' कितनी बातों में भेद रखते हुए भी बहुत-सी बातों में अपने पूर्वजों से समानता रखते थे। पहले के ऋषियों की भाँति ये सकलत्र न थे, किन्तु ये उन्हीं की भाँति सपरिग्रह थे। पहले के ऋषियों की भाँति ये सिर्फ वन्य-कन्दमूल पर गुजारा नहीं करते थे, किन्तु थे ये उन्हीं की तरह यूथ बाँध अरण्य में बसे।

चित्रकूट से दण्डकारण्य के रास्ते की ओर जाने का आकर्षण मेरे लिए बहुत था, किन्तु इतनी बड़ी मुहिम के लिए वहाँ समय कहाँ था? अनुसूया के आश्रम पर हम एक बार गए। पहाड़ और घना जंगल, जंगली जानवरों की हर जगह सम्भावना थी। विन्ध्याटवी में घुसने पर बाण के हर्षचरित में वहिन की खोज में भटकते हर्ष और दिवाकर मित्र का आश्रम स्मरण आने लगता और जंगल में किसी कृष्णकाय ब्राह्मण को देख कर कादम्बरी का जरद्-द्रविड़ धार्मिक याद हो आता। आश्रम नदी के बायें किनारे है। वहाँ एक धर्मशाला थी। हम लोग खाना बनाने की तैयारी करने लगे। धुआँ आसमान में मेघ चित्र बनाने लगा। तब हमें पिछवाड़े के पहाड़ के पार्श्व पर काले-काले बड़े-बड़े मधुच्छद लटकते दिखाई पड़े। समय से पहले हम सजग हो गए और आग को दूसरी ओर ले गए, नहीं तो वे लम्बी मधु-मक्खियाँ यदि एक बार हमारी गुस्ताखी को अपनी शान के खिलाफ समझ जातीं तो हमारा वहाँ से बच कर निकलना मुश्किल था। मुझे यह सुन कर आश्चर्य हुआ कि ग्रामीण लोग रात को मशाल वाले बाँस या रस्सी के सहारे सैकड़ों हाथ ऊँची आगे की ओर लटकती इन चट्टानों पर पहुँच मधु जमा करते हैं। मेरे दिल में तो यही खयाल आने पर तलवा पसीजने लगता था। भालू भी इन छत्तों के मधु को खाता है—यह मेरे लिए नई जानकारी हुई, जिसे पीछे उसके रूसी नाम 'मेद्वेद' (मधुअर) के समझने में आसानी हुई।

[सन् १९१९-२० ई० में चित्रकूट-प्रवास की एक झलक : 'मेरी जीवन यात्रा' से उद्धृत]

⊙



राष्ट्रपिता गान्धी जी

चित्रकूट अनादि तीर्थस्थान है, जहाँ पर श्री रामचन्द्र जी ने पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ १२ वर्ष तक निवास किया। प्राचीन काल में यहाँ बड़े-बड़े सन्तों के आश्रम थे, जिनमें महर्षि अत्रि प्रमुख थे। सती अनुसूया ने महारानी सीता को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दे कर उसकी महत्ता बताई थी। इसी चित्रकूट में महात्मा तुलसीदास ने अपनी काव्य-साधना की थी, जहाँ उन्हें भगवान राम का साक्षात्कार हुआ है, अतः यह तीर्थ हमारे लिए अनन्त प्रेरणा का स्रोत है।

[२७ नवम्बर, १९२० ई० को करवी (चित्रकूटधाम) में दिए गए गान्धी जी के भाषण से]

⊙



डा० राममनोहर लोहिया

तीर्थ अनेक हैं - मथुरा, काशी, अयोध्या, उज्जयिनी आदि। पर चित्रकूट की विशेषता ही और है। विकारों को शमन करने की ताकत जितनी चित्रकूट में है, उतनी दूसरे तीर्थों में नहीं—ऐसा मेरा अनुभव है। इसीलिए चित्रकूट में ही रामायण मेला सम्पन्न करने का इरादा मैंने किया है। चित्रकूट अभी बहुत पिछड़ा है। सरकार ने इधर ध्यान नहीं दिया। इतनी महत्वपूर्ण जगह की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। रामायण मेले से इसकी ओर जनता का, सरकार का ध्यान खिंचेगा। इसका विकास होगा। पयस्विनी की सफाई भी हो

जायगी, जो बहुत जरूरी है। यहाँ के लोगों में जागृति आयेगी। गरीबी दूर होगी।

⊙



डॉ० वी० गोपाल रेड्डी

राज्यपाल : उत्तर प्रदेश

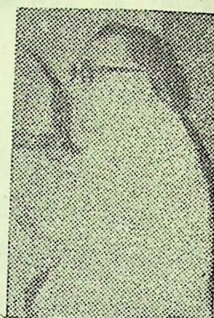
चित्रकूट एक पवित्र स्थान है। भगवान रामचन्द्र जी यहाँ कुछ दिन रहे हैं। मैं यहाँ बहुत दिनों से आना चाहता था, पर आज इसे देखने का अवसर मिला। इस पवित्र सांस्कृतिक भूमि में आने से मुझे पहली प्रेरणा तो यही मिली कि मैं तुलसीदास की साधना-भूमि चित्रकूट में सर्वप्रथम हिन्दी में भाषण करने का प्रयास करूँ। वैसे मैं अंग्रेजी में बोला करता हूँ, पर तुलसी की भूमि में हिन्दी में बोलने की प्रेरणा आज मेरे मन में स्वतः स्फूर्त हो रही है। मैं चित्रकूटधाम में हिन्दी में बोल कर इम्तहान-सा दे रहा हूँ और आगे मैं हमेशा हिन्दी में बोलने की आदत डालूँगा। मेरे लिए चित्रकूट की यह एक स्मरणीय देन है।

मुझे बताया गया कि यहाँ पानी का बड़ा अभाव है। मैं लखनऊ जा कर सचिवालय से मालूम करूँगा कि चित्रकूटधाम की 'जल योजना' कहाँ अँटकी है। इस दिशा में मैं यथोचित प्रयास करूँगा।

करवी नगर के लिए यह गौरव की बात है कि यहाँ चित्रकूट के दर्शन हेतु चारों ओर से लाखों लोग आते हैं, इसलिए इस स्थान को साफ-सुथरा रखना, यात्रियों के लिए अपेक्षित सुविधायें जुटाना तथा इसे आकर्षक एवं मनोरम बनाना आप लोगों का प्रथम कर्तव्य है।

[९ दिसंबर, १९६७ को चित्रकूटधाम नगरपालिका, करवी में दिए गए भाषण से]

⊙



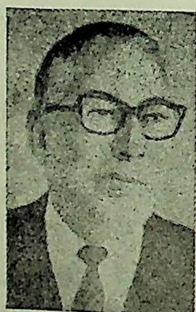
श्री कमलापति त्रिपाठी

मुख्यमंत्री : उत्तर प्रदेश

चित्रकूट के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यह सहस्रों वर्षों तक हमारी संस्कृति की प्रजनन भूमि रही है। राम ने गंगा-संतरण कर इस पवित्र भूमि 'चित्रकूट' में निवास किया था। उनके जीवन का वह उत्कृष्ट भाग, जिसमें उन्होंने भारतीय संस्कृति के संरक्षण का व्रत लिया था, इसी चित्रकूट में व्यतीत हुआ था। ऋषियों के आश्रमों का आदर्श, दर्शनों की विचार परम्परा और राम के त्यागमय जीवन का इतिहास यहाँ के कण-कण में समाहित है। यह अपनी सांस्कृतिक पवित्रता तथा ऐतिहासिक प्रभुता के लिए ही प्रसिद्ध तथा गरिमावान नहीं है, वरन् यह हमारे प्रदेश का अत्यन्त रमणीक प्रदेश भी है। इन सभी कारणों से यह हमारे गौरव का कारण है। अतः इसका विकास होना चाहिए। इसीलिए चित्रकूट के विकास के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश सरकार ने बहुत-से उपाय सोचे हैं।

['चित्रकूट-यात्रा' पर एक भाषण से]

⊙



श्री जनार्दन दत्त शुक्ल, आई० सी० एस०

अध्यक्ष : राजस्व परिषद् उत्तर प्रदेश

चित्रकूट और अयोध्या—दोनों भगवान राम से सम्बद्ध होने के कारण पवित्र स्थल हैं। इनमें से भी चित्रकूट का अपना विशिष्ट स्थान है। लम्बे काल के प्रवाह में नगर बसते हैं, उजड़ते हैं, अतएव बदलते रहते हैं। इसलिए वर्तमान अयोध्या यही है, जहाँ राम ने जन्म लिया था—इसमें सन्देह भी किया जा सकता है,

पर चित्रकूट एक आरण्यक पर्वतीय तीर्थ है। पर्वत अपनी जगह में स्थायी रहते हैं, इसलिए चित्रकूट की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। ऐसी स्थिति में चित्रकूट का महत्व सर्वोपरि है।

चित्रकूट तथा करवी का भ्रमण वास्तव में मेरे लिए बड़ा सुखमय तथा आनन्दप्रद रहा। इन स्थानों ने मुझे लुभा लिया और मैं अनुभव करता हूँ कि मैं यहाँ बहुत कम ठहर पाया। फिर भी मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं चित्रकूट भले ही कुछ घण्टों के लिए, और भगवान राम के बारह वर्षीय प्रवासधाम को देख सका। चित्रकूट की भूमि आध्यात्मिक वातावरण से ओतप्रोत है और आज भी उस अतीत की रहस्यमय अनुभूति होती है, जब भगवान राम के सान्निध्य से यह भूमि पावन और गौरवान्वित हुई है।

मैं पुनः वहाँ आऊँगा।

[२० अक्टूबर, १९७० के एक पत्र से]

⊙



डा० रामजीलाल सहायक,

शिक्षामंत्री : उत्तर प्रदेश

चित्रकूट दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता के लिए युग-युग से विख्यात है। लोगों के मन में इसके प्रति बड़ी निष्ठा है, इसीलिए यात्रीगण यहाँ दूर-दूर से आते हैं और इसका दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ मानते हैं। यहाँ की रज में, अणु-परमाणु में इतनी शान्तिदायिनी शक्ति है कि मैं कल से बराबर यहाँ घूम रहा हूँ, पर मुझे कोई थकान नहीं मालूम पड़ रही और बड़ी मानसिक शान्ति मिल रही है।

मुझे चित्रकूटवासियों का अपार स्नेह मिला है। ऐसा लगता है कि राम के सार्वभौम प्रेम का प्रभाव यहाँ के लोगों के ऊपर है। तुलसी के शब्दों में यहाँ के लोग

जो कहते हैं : 'लेहिं न बासन वसन चुराई' यह यहाँ के लोगों की विनयशीलता का प्रतीक है।

चित्रकूट एक मनोरम प्राकृतिक तीर्थ है। इसलिए हमारी (सरकार की) योजना है कि चित्रकूट को सुन्दर पर्यटन केन्द्र बनाया जाय। यहाँ की सड़कें अच्छी हों, विदेशियों के योग्य भी आवास गृह हों, पर्यटकों के योग्य यह स्थान बन जाय—यह सब विचाराधीन है। सरकार यहाँ कुछ करना चाहती है। चित्रकूट सचमुच एक अतीव रमणीक स्थान है। यहाँ कुछ होना चाहिए।

[१-८-७१ को चित्रकूटधाम नगरपालिका, करवी में दिए गए भाषण का एक अंश]

⊙



डा० के० एल० राव

केन्द्रीय विद्युत एवं सिंचाई मन्त्री

चित्रकूट आकर मुझे मालूम हुआ कि चित्रकूट की पावन भूमि पर लाखों यात्री आते हैं और उनके लिए न तो रोशनी का ही प्रबन्ध है और न पानी का ही। यह जान कर मुझे बड़ा क्लेश हुआ। यदि भगवान राम के नाम पर आये हुए उन लाखों यात्रियों को हम न रोशनी दे सकते हैं और न पानी पिला सकते हैं, तो इसका साफ मतलब होता है कि हम भगवान राम के प्रति आस्थावान नहीं और न उन्हें सच्ची श्रद्धाञ्जलि ही अर्पित करते हैं। पर हम आगे ऐसी स्थिति को बरदाश्त नहीं कर सकते और १९६४ के अन्दर ही हम चित्रकूटधाम को बिजली दे कर इसे अवश्य जगमगा देंगे।

[२१ जनवरी, १९६४ को चित्रकूटधाम नगरपालिका, करवी में दिए गए भाषण से]

[श्री राव की घोषणा पूरी हुई और आश्वासन-अवधि में क्षेत्र को बिजली मिल गयी, श्री राव इसके लिए बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं—लेखक]

⊙



श्री एस० एम० जोशी

अध्यक्ष : संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी

बाँदा सम्मेलन में मुझे जो सबसे बड़ा लाभ हुआ, वह यही कि मैं प्रसिद्ध स्थान चित्रकूट को देख सका। यहाँ मुझे अनोखी शान्ति मिल रही है। इसका विकास एक सुन्दर पर्यटक-केन्द्र के रूप में होना चाहिए। मुझे यह देख कर दुख भी हो रहा है कि चित्रकूट ऐसा रमणीक स्थान भी अब तक प्रदेशीय सरकारों की उपेक्षा का विषय बना हुआ है। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश—दोनों राज्यों को चित्रकूट की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और इसका विकास कर इसे अविलम्ब एक आकर्षक पर्यटक केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र बना देना चाहिए।

[अक्टूबर, १९६३ में चित्रकूट-यात्रा पर पत्रकारों की एक भेंट में दिए वक्तव्य से]

⊙



श्री एन० जी० गोरे

अध्यक्ष : प्रजा सोशलिस्ट पार्टी

चित्रकूट क्षेत्र मे आने से बहुत-सी भावनायें मन में उठती हैं। मैंने देखा कि चित्रकूट में सैकड़ों साधु गुफाओं में तपस्या कर रहें हैं। जिस स्थान में इतने महात्मा हों, वह स्थान उन्नति न करे; यह मेरी समझ में नहीं आता। हमारे महात्माओं को एक हो कर ऐसी जन-भावना पैदा करनी चाहिए और ऐसी प्रेरणा उत्पन्न करनी चाहिए कि यहाँ के लोग ऐसे वातावरण का यहाँ सृजन कर दें कि इस स्थान में प्रवेश करते ही मनुष्य यहाँ के वातावरण से परिचित हो जायँ और अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ की पवित्रता, स्वच्छता और शान्तिपरकता से अधिक प्रभावित हो जायँ। विदेशों में इस प्रकार के आकर्षक स्थलों की रक्षा बड़ी सुरुचि से की जाती है।

अत: यहाँ के लोगों का कर्तव्य है कि वे चित्रकूट ऐसी पवित्र भूमि को उसकी महत्ता के अनुसार ही एक आदर्श सांस्कृतिक केन्द्र बनायें, जिससे देश के किसी भी भाग का व्यक्ति यहाँ आकर जीवन में कुछ सबक सीख सके और यहाँ के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों को देख कर आनन्द का अनुभव कर सके।

[२० अप्रैल, १९६५ को चित्रकूट में दिए गए भाषण से]

⊙

● श्री प्रेमनाथ जी

फिल्मी अभिनेता, निर्माता तथा निर्देशक

चित्रकूट का भ्रमण करने से मैंने देखा कि यह स्थल भारत के प्रमुख पर्यटक केन्द्रों तथा तीर्थस्थलों में से है।

हमारे महान साहित्य एवं संस्कृति के कारण ही आज हमारा देश विश्व मे अपना प्रमुख स्थान रखता है और साहित्य एवं संस्कृति के प्रमुख स्रोत चित्रकूट जैसे ही तपोपूत स्थल हैं; किन्तु यह खेद का विषय है कि जो स्थान युगों से देश को प्रकाश दे रहा है वह खुद अंधकार-ग्रस्त तथा उपेक्षित एवं पिछड़ा है। न यहाँ बिजली का प्रवन्ध है, न पानी का और न तो यहाँ की सड़कों का ही विकास किया गया है।

इसके अतिरिक्त यह और भी आश्चर्य की बात है कि सरकार ने देश के तमाम अनावश्यक और अनाकर्षक स्थलों की 'न्यूजरीलें' तैयार कराई हैं, पर चित्रकूट ऐसे महान सौन्दर्यशाली एवं सुषमापूर्ण स्थल की अभी तक 'न्यूजरील' ही नहीं तैयार की गयी। सरकार को इसकी अविलम्ब व्यवस्था करनी चाहिए और यदि इस दिशा में कदम उठाया गया तो बिना पारिश्रमिक के अपना सहयोग देने को तैयार हूँ।

चित्रकूट के शान्त एवं मनोरम वातावरण से देश की जनता और सरकार को लाभ उठाना चाहिए और 'शान्ति निकेतन' की भाँति यहाँ भी एक विशाल 'विद्या-पीठ' की स्थापना करनी चाहिए। आदि-कवि वाल्मीकि, संत कवि तुलसी, महर्षि अत्रि तथा भगवान राम की यह भूमि चित्रकूट विश्व में वेजोड़ है।

[दिसंबर, १९६० में चित्रकूट यात्रा पर एक उद्‌गार]

⊙



डा० धर्मवीर भारती

संपादक : धर्मयुग (बम्बई)

चित्रकूट महान् सांस्कृतिक आरण्यक तीर्थ है। मानसिक शान्ति एवं आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए चित्रकूट बहुत ही उपयुक्त स्थान है।

मेरे मन में एक कलक थी, जो बराबर मुझे आन्दोलित करती रहती थी कि मैं इतने दिन इलाहाबाद में रहा, पर चित्रकूट नहीं देख पाया। यही अभिलाषा मुझे बम्बई से चित्रकूट खींच लाई। चित्रकूट देख कर आज हमें बड़ी प्रसन्नता है। यह हमें बहुत सुन्दर लगा, विशेषकर अनुसूया आश्रम बहुत भाया।

चित्रकूट को देखने से जहाँ एक ओर मुझे अमित हर्ष हुआ, वहाँ दूसरी ओर इस महान तीर्थ के प्रति लोगों के उपेक्षा भाव को देख कर दुख भी हुआ। शासन की ओर से तो चित्रकूट की उपेक्षा की ही गयी है; साहित्यकारों, पत्रकारों, नेताओं, समाजसेवियों तथा यहाँ के सन्त-महन्तों ने भी इसकी काफी उपेक्षा की—यह विचारणीय बात है। पयस्विनी के घाटों, विभिन्न दर्शनीय स्थलों तथा मार्गों में काफी गन्दगी व फूहड़पन भरा है। यह पर्यटकों की खिन्नता का विषय बन सकता है। मैंने आज एक आश्रम में लगभग ७०० साधुओं को भण्डारा (भोजन) करते देखा। क्या ही अच्छा होता, ये साधु चित्रकूट के निर्माण कार्य में जुट जाते। यदि मेरी चले तो मैं इन साधुओं को अवश्य चित्रकूट के निर्माण में लगा देता। मेरा विश्वास है—यदि यहाँ के सन्त-महन्त तथा सामाजिक कार्यकर्ता तनिक भी रचनात्मक दृष्टि से चित्रकूट पर गौर करते, तो सरकारी सहायता की अपेक्षा किए विना ही चित्रकूट का सुधार हो जाता।

चित्रकूट में 'रामायण मेला' करने की योजना बना कर डॉ० राममनोहर लोहिया ने चित्रकूट के विकास की दिशा में एक महान कार्य उठाया था। रामायण मेले की योजना से देश-विदेश के विचारकों का ध्यान चित्रकूट की ओर आकृष्ट हुआ था, किन्तु न जाने क्यों डॉ० लोहिया ने इसे स्थगित कर दिया।

मैं बम्बई जा कर 'धर्मयुग' के लिए छायाकार (चित्रकार) तथा लेखक

भेजूँगा, जो चित्रकूट के विभिन्न स्थलों के रंगीन चित्र तथा लेख तैयार करेंगे; जिन्हें 'धर्मयुग' में प्रकाशित किया जायगा।

[२४ फरवरी, १९६६ को चित्रकूट में एक भेंट के आधार पर]

⊙

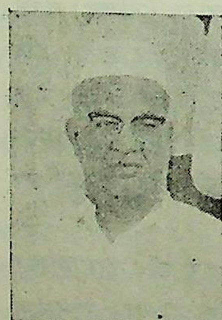
● **श्री जितेन्द्रसिंह जी**

प्रतिनिधि : टाइम्स आफ इण्डिया,
(तत्कालीन संपादक : लीडर, प्रयाग)

चित्रकूट एक ऐसा पुण्यतीर्थ है, जहाँ जाने पर मनुष्य एक ऐसी मानसिक स्थिति पर पहुँच जाता है, जो परम शान्ति एवं अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत बन जाती है। चित्रकूट वह भूमि है, जहाँ राजनीति ने धर्मनीति के चरणों पर अपना मत्था टेका है तथा मानवत्व एवं देवत्व की यह पवित्र मिलन भूमि है। यहाँ की पावन-रज लोगों के मानसिक विकारों को क्षालित कर सकती है और लोग यहाँ की चट्टानों से भी प्रेरणा पा कर लोक-कल्याण कर सकते हैं।

[जनवरी, १९५८ में चित्रकूट में दिए गए भाषण से]

⊙



श्री राधाकृष्ण अग्रवाल

उपकुलपति : कानपुर विश्वविद्यालय

चित्रकूट एक परम पवित्र धाम है। यहाँ भगवान राम ने तपस्या की थी। इसी भूमि से प्रेरणा ले कर संत तुलसीदास ने रामायण ऐसे महान ग्रन्थ की रचना की, जिससे कोटि-कोटि मानवों ने प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को उदात्त बनाया है।

परन्तु खेद की बात है कि यह पवित्र धाम आज उपेक्षित है, अतएव अत्यन्त पिछड़ा है। यदि स्थानीय जनता इसके विकास में तनिक भी रुचि ले तो निश्चय ही चित्रकूट को बाहरी सहयोग पर्याप्त मिल सकता है। राजकीय सहायता के साथ-साथ गुजरात, मालवा, बंगलोर, बंगाल आदि सुदूर प्रदेशों से चित्रकूट आने वाले धनी-मानी लोग भी इसके विकास में योगदान कर सकते हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा कितनी निराली है। पर इसके आधुनिक विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसके लिए योजनाबद्ध प्रयास होना चाहिए।

यह क्षेत्र भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ राम के पुरुषार्थ की कहानी जुड़ी हुई है। उनके आदर्श चरित को आप लोग जीवन में उतारें और इसके पिछड़ेपन को दूर करें। यह विचारणीय बात है कि यहाँ नार्वे तथा अमेरिका आदि सुदूर देशों की ईसाई मिशनरियाँ सेवा कार्य कर रही हैं और यहाँ के लोग इस दिशा में उदास तथा सुप्त-प्रायः हैं।

प्रस्तावित डिग्री कालेज की योजना अच्छी है। सचमुच इस क्षेत्र में डिग्री कालेज की परमावश्यकता है।

[१७ नवम्बर, १९७० को चित्रकूटधाम नगर-पालिका, करवी में दिए गए भाषण से उद्धृत]

⊙

डा० कैलाशनाथ काटजू

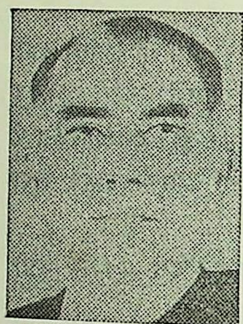


मुझे आज यह सुअवसर मिला कि मैं चित्रकूट की पवित्र भूमि की रज को अपने मस्तक में लगा सका, जहाँ भगवान राम ने सीता माता तथा छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ वनवास का अधिक से अधिक समय बिताया था।

चित्रकूट तीर्थ मध्यप्रदेश के सतना जिले तथा उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में पड़ता है। दोनों राज्यों की सरकारें इस स्थान की उन्नति करने को इच्छुक हैं। दोनों राज्यों की एक मिली-जुली 'चित्रकूट विकास सलाहकार समिति' इसलिए बनाई गयी है, जिससे (इस धाम के विकासार्थ) दोनों सरकारें समिति के उपयोगी सुझावों से लाभान्वित हो सकें।

['चित्रकूट चर्चा' से उद्धृत]

⊙



जस्टिस श्री शिवनाथ काटजू

न्यायाधीश : हाईकोर्ट, इलाहाबाद

चित्रकूट एक सांस्कृतिक तथा धार्मिक तीर्थ स्थान है। इसका विकास देश के हित में है।

यहाँ की समस्याओं का अध्ययन होना चाहिए और सभी समस्याओं को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर इसे राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सभी वर्ग के लोगों के पास भेज कर सभी लोगों का ध्यान इस स्थान की ओर आकृष्ट करना चाहिए।

निरन्तर लगन से इस काम में जुटने से सफलता निश्चित है।

[२४ जनवरी, १९७० को करवी (चित्रकूटधाम) में दिए गए भाषण से]

⊙

● **श्री सैयद मुहम्मद इब्राहीम**

कमिश्नर : झांसी

अपनी करवी-यात्रा में मुझे श्री कामदगिरि, सती अनुसूया, स्फटिकशिला, जानकी कुण्ड और सीतापुर के पवित्र मन्दिरों को देखने का अवसर मिला। ये सभी

स्थान बहुत ही आकर्षक हैं। दृश्यात्मक सौन्दर्य निसर्गतः मनमोहक है। ये स्थल यात्रियों एवं पर्यटकों को मानसिक शान्ति तथा संतुष्टि प्रदान करते हैं।

मैं जहाँ-जहाँ गया, हर जगह मुझे बड़ा स्नेह तथा सद्भाव मिला। स्वामी ज्ञानतीर्थ आद्योपान्त मेरे साथ रहे। बालाजी मन्दिर पहुँचने पर मुझे बादशाह औरंगजेब के समय का एक 'फरमान' दिखाया गया। यह पर्शियन भाषा में बड़े खूबसूरत अक्षरों में लिखा गया है। बालाजी मन्दिर के पूजा-भोग के लिए ८ गाँव तथा ३३० बीघा जमीन और एक रुपया दैनिक भत्ता श्री ठाकुर जी को मुगल बादशाह द्वारा प्रदान किए गए हैं।

मैं अपने साथ उपर्युक्त स्थलों की इस संक्षिप्त-यात्रा की बहुत ही सुहावनी याददाश्तें ले कर आया हूँ!

[२ जनवरी, १९७० को लिखे गए एक पत्र से उद्धृत]

⊙

● **श्री श्यामसुन्दर कक्कड़**

कमिश्नर : झाँसी

चित्रकूट आकर मुझे प्रसन्नता हुई। यह एक महान् तीर्थ केन्द्र है, किन्तु मुझे दुख है कि भारतीय-संस्कृति का मार्ग प्रशस्त करने वाले तथा उसमें समन्वय स्थापित करने वाले चित्रकूटधाम की हालत अच्छी नहीं है। इसलिए पारस्परिक भेद-भावों को भुला कर स्थानीय लोगों तथा अन्य चित्रकूट-प्रेमी जनों को इसके उत्थान में जुट जाना चाहिए।

[२२ जुलाई, १९६७ को युगधर्म प्रकाश केन्द्र, चित्रकूटधाम के उद्घाटन भाषण से]

⊙

● **श्री रामकृष्ण त्रिवेदी, आई० सी० एस०**

जिलाधीश : इलाहाबाद

मैं अब भी चित्रकूट तथा उसके तीर्थस्थानों की यात्रा का स्मरण करता हूँ। पूरा क्षेत्र आप्त पुरुषों से सम्बन्धित है। अब भी ये स्थान उन व्यक्तियों को यथेष्ट शक्ति प्रदान करते हैं, जिन्हें इन पर विश्वास है। मेरी इच्छा है कि विभिन्न तीर्थों तक पहुँचने के साधन उचित रूप से विकसित हों; ताकि उनके लिए यात्रायें शीघ्र-गामी ही न हों, वरन् अधिकाधिक सुविधाजनक भी हों।

['चित्रकूट चर्चा' से साभार]

⊙

● **आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल**

इलाहाबाद

चित्रकूट ऐसा स्थल है, जहाँ औषधियों की भरमार है। क्षीणता, अतीसार, धातुक्षय, पुराना ज्वर, साधारण कमजोरी और कफ-श्वास एवं फेफड़े की बीमारियों के लिए चित्रकूट का स्थान बहुत उपयोगी जगह है। विन्ध्याचल की इस पर्वत श्रेणी में असंख्य जड़ी-बूटियाँ और वनौषधियाँ मिलती हैं। यही नहीं, इसके आस-पास कितने ही रत्न और खनिज द्रव्य भी मिलते हैं, जो रोगियों के लिए अनुपम लाभदायक हो सकते हैं।

वाल्मीकि की पहाड़ी, ऋषियन, बाँके तीर्थ, देवांगना, अनुसूया-आश्रम, गुप्त गोदावरी, भरत कूप तथा करवी का क्षेत्र—ऐसे स्थल हैं जहाँ आरोग्याश्रम बनाये जा सकते हैं। यहाँ लोग विश्राम और चिकित्सा के द्वारा तथा सुखद जलवायु के सेवन से आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं।

['चित्रकूट चर्चा' से उद्धृत]

⊙



श्री वासुदेव सिंह

डिप्टी स्पीकर : विधान सभा, उत्तर प्रदेश

लौकिक सुषमा तथा आध्यात्मिक प्रेरणा—दोनों दृष्टियों से चित्रकूट का महत्त्व अनिर्वचनीय है। इसी से प्रभावित हो कर लोहिया जी ने यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'रामायण मेला' सम्पन्न करने की योजना बनाई थी। मेले के सिलसिले में १९६१ ई० में मैं यहाँ कई महीने रहा था। आज दस वर्ष बाद चित्रकूट को देखने से ऐसा लगा कि विकास के इस युग में भी इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यहाँ प्रति मास लाखों यात्री तथा पर्यटक आते हैं, इसलिए उनकी सुविधाओं को देखते हुए निम्नलिखित कार्य अविलम्ब सम्पन्न हो जाने चाहिए।

पर्यटकों के आवास के लिए एक बड़ा विश्राम गृह अवश्य होना चाहिए। मध्य प्रदेश की सीमा में वहाँ की सरकार द्वारा दो डाक-बँगलों का निर्माण करा दिया है, पर उत्तर प्रदेश सरकार का एक भी विश्राम गृह नहीं है।

जिन स्थानों में बिजली नहीं पहुँची, उसका विद्युतीकरण हो जाना चाहिए।

यह तीर्थ बीहड़ जंगलों से घिरा हुआ है, इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से मध्य प्रदेश की सीमा में दो-तीन पुलिस चौकियाँ होनी चाहिए।

एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रियों को पहुँचाने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा सरकारी टैक्सियाँ चलनी चाहिए।

इनके अतिरिक्त सब से आवश्यक बात यह है कि चित्रकूट के वनों का विकास होना चाहिए और इसे एक सुन्दर पर्यटन-केन्द्र बना दिया जाना चाहिए। इसके लिए मैं केन्द्रीय पर्यटन मंत्री डा० कर्णसिंह को चित्रकूट लाने का प्रयास करूँगा।

[२८ जून, १९७१ को चित्रकूट में एक भेंट-वार्ता के आधार पर]

⊙



डॉ० शम्भुनाथ सिंह, डी० लिट्
काशी विद्यापीठ : वाराणसी

श्री गर्ग जी की प्रेरणा एवं आमंत्रण से चित्रकूट के दर्शन का सौभाग्य मिला। चित्रकूट के विभिन्न दर्शनीय स्थलों, खास कर अनुसूया-आश्रम तथा मन्दाकिनी नदी का उद्गम-स्थल देख कर तो मुझे ऐसा लगा कि यदि मैं इन स्थानों को न देखता, तो मेरे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान अनदेखा रह जाता। मैंने हिमालय के भी अनेक प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन किया है; किन्तु जो आनन्द तथा सुख मुझे चित्रकूट में मिला, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिला। मेरी तो अब ऐसी इच्छा हो रही है कि मैं काशी विद्यापीठ से अवकाश ग्रहण कर चित्रकूट में ही स्थायी निवास करूँ। इस सन्दर्भ में मैं अपने मित्र श्री गर्ग जी से अनुरोध करूँगा कि वह मेरे यहाँ रहने की कोई व्यवस्था कर दें तो मैं उनका बड़ा उपकार मानूँगा। चित्रकूट तो बड़ी विलक्षण जगह है। अनुसूया-आश्रम की वन-श्रेणी के बीच मुझे आज अपूर्व आनन्द मिला, वैसा ५३ वर्ष की आयु में कभी भी, कहीं भी और किसी अवसर पर नहीं मिला।

[२८ नवम्बर, १९७१ को चित्रकूट-यात्रा के अवसर पर उनके वक्तव्य से उद्धृत]

⊙



श्रीमती इन्दुजा अवस्थी, एम० ए०
प्राध्यापिका : दिल्ली विश्वविद्यालय

रामलीला पर अनुसंधान-कार्य के सन्दर्भ में विजया-दशमी के अवसर पर मुझे प्रसिद्ध तीर्थ चित्रकूट देखने का अवसर मिला। प्राकृतिक सुषमा तथा आध्यात्मिक

शान्ति के लिए देश में एकमेव उपयुक्त स्थल चित्रकूट का दर्शन कर जहाँ मेरा मन प्रमुदित हुआ, वहाँ इसकी चतुर्दिक उपेक्षा देख कर दुख भी हुआ। परम रमणीक इस तीर्थ केन्द्र को तो बहुत पहले ही आधुनिक सुविधा सम्पन्न 'पर्यटन केन्द्र' बन जाना चाहिए था और इसका विकास इस ढंग से होना चाहिए था कि यह न केवल धार्मिक यात्रियों को परितोष प्रदान करता, अपितु विदेशी पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का विषय बन जाता। क्योंकि भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टियों से चित्रकूट जैसे सर्वथा सम्पन्न स्थल बहुत कम ही देश में होंगे।

चित्रकूट की नैसर्गिक छटा तथा सांस्कृतिक गरिमा को देख कर मेरा दृढ़ शब्दों में सुझाव है कि यहाँ 'मानस-भवन' का निर्माण कर उसे शोध-केन्द्र के रूप में विकसित किया जाय, जहाँ हिन्दी के विविध विषयों में शोध कार्य की पूर्ण व्यवस्था हो। आशा है मानस-चतुःशती के समर्थ कर्णधार इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

[१८ अक्टूबर, १९७२ की एक भेंट-वार्ता]

⊙



श्री रामेश्वरनाथ मिश्र

जिलाधीश : जौनपुर

चित्रकूट से पाँच मील करवी के एक मकान में मैं (ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट के रूप में) करीब एक वर्ष रहा। दुर्गम चित्रकूट तीर्थ और वहाँ के प्रत्येक दुर्गम स्थान की यात्रा परिस्थितिवश मेरे लिए खेल बन गई। सप्ताह में एक बार, कभी-कभी अनेक बार वहाँ जाया करता और अपने अरमान पूरे करता। अब मैं चित्रकूट के रज-कणों से, वहाँ के वायु-मंडल से, वहाँ की सरिता से, वन-पर्वतों से और गुफाओं से अच्छी तरह सम्बन्ध कर सकता था। मैंने इस सुयोग का पूरा लाभ उठाया। इच्छा होती है कि उन स्थानों की चर्चा करूँ, जहाँ मेरा मन रमा। ऋषियन, वाल्मीकि आश्रम नतो प्रयाग से मोटर-यात्रा के मार्ग में ही पड़ते हैं। चित्रकूट के क्षेत्रीय स्था जानकी-कुण्ड, स्फटिक शिला, कामदगिरि, अनुसूया आश्रम तो अनिवार्य हैं।

इनके अतिरिक्त गुप्त गोदावरी, हनुमान धारा, विराध कुण्ड, शरभंग आश्रम, बाँके सिद्ध, जयदेव संस्कृत महाविद्यालय इनमें से प्रत्येक स्थान विस्तृत वर्णन के अधिकारी हैं। प्रत्येक स्थान का अपना चुम्बकीय आकर्षण है और क्रमान्तर से किसी स्थान का महत्व कम करना सम्भव नहीं है। यहाँ के पंडे इन स्थानों के विषय में आपको बड़ी दिलचस्प बातें बताते हैं। जैसे गुप्त गोदावरी में खटखटाचोर की कहानी। एक बड़ी भारी काली शिला जल-वाहिनी कन्दरा में लटकी हुई है। मानो अब गिरी, अब गिरी। लेकिन अनन्त काल से वैसी ही है। यह खटखटाचोर है, जिसने जानकी जी के स्नान करते समय उनके वस्त्र चुरा लिए थे। जानकी जी ने शाप दे कर उसे पत्थर बना दिया और उलटी लटका दिया। तब से वह वैसे ही लटकी हुई है। उसके शाप-मोचन का उपाय भी किसी को नहीं मालूम।

अन्य स्थल, जहाँ मेरा मन रमता था, वह हैं यज्ञवेदी, जहाँ रामदास शास्त्री जी शास्त्रार्थ से जिज्ञासुओं की प्यास बुझाया करते हैं; स्फटिक शिला, जहाँ मगर पर चढ़ कर मंदाकिनी में सैर करने वाले बाबा का प्रभाव छाया हुआ है; सीतापुर में पयस्विनी के उस पार प्रदेश की सीमा में वनचारी राम, लक्ष्मण, जानकी का एक बड़ा भव्य और सुव्यवस्थित मन्दिर है; जिसका दर्शन प्रत्येक यात्री को अवश्य करना चाहिए। श्री जयदेव संस्कृत महाविद्यालय, चित्रकूट धाम भी मेरा प्रिय स्थान था; जहाँ डिग्री कोर्स तक संस्कृत शिक्षा उपलब्ध है।

['चित्रकूट चर्चा' से उद्धृत]

⊙

● **सम्पादकीय लेख**

'भारत' : इलाहाबाद ११ अगस्त, १९७१

चित्रकूटधाम नगरपालिका द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री डाक्टर रामजीलाल सहायक ने भाषण करते हुए चित्रकूट को पर्यटन केन्द्र बनाने के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किए हैं, उस पर केन्द्रीय सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। डाक्टर रामजीलाल सहायक ने कहा है कि 'चित्रकूट का पवित्र क्षेत्र दार्शनिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से युगों से विख्यात है। अब तक केन्द्रीय सरकार ने जिन स्थानों को पर्यटन केन्द्र बनाया है;

उस सम्बन्ध में उन स्थानों की प्रायः उपेक्षा की गयी है, जिनका सम्बन्ध हमारे देश के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभ्युत्थान से रहा है। इस प्रकार के स्थानों में चित्रकूटधाम, तीर्थराज प्रयाग, अयोध्या आदि का नाम लिया जा सकता है। इन तीनों ही स्थानों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मर्यादा पुरुषोत्तम राम से रहा है, जहाँ के कण-कण में आज भी उनकी पावन स्मृति बनी हुई है। इन तीनों ही पुण्य स्थलों ने अतीत-काल से देश की उन्नति एवं प्रगति में योग दिया है। . . .पर आश्चर्य की बात है कि केन्द्रीय सरकार ने खजुराहो एवं अन्य कम महत्व के स्थानों को तो 'पर्यटन केन्द्र' के रूप में विकसित कर दिया; लेकिन चित्रकूटधाम, तीर्थराज प्रयाग एवं अयोध्या जैसे स्थान अब तक 'पर्यटन केन्द्र' के रूप में विकसित न किए जा सके।' . . .प्रसन्नता की बात है कि हमारे प्रदेश के शिक्षा-मंत्री का ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ है और उन्होंने यह संकेत भी किया है कि चित्रकूटधाम को पर्यटन केन्द्र बनाने की राज्य सरकार की योजना है। यदि (राज्य शिक्षा-मंत्री) के निर्देशन में प्रदेश के कतिपय ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का पर्यटन केन्द्र के रूप में विकास हो सका, तो प्रदेश के लिए गौरव की बात होगी। आशा है डॉ॰ रामजीलाल सहायक (शिक्षा-मंत्री) इस दिशा में सक्रिय प्रयत्न करेंगे और 'चित्रकूटधाम' के साथ ही तीर्थराज प्रयाग को भी पर्यटन-स्थल बनाने की दिशा में ठोस प्रयत्न करेंगे।

●



